स्वामी रामचरण :
जीवनी एवं कृतियों का अध्ययन

स्वामी रामचरण :
जीवनी
एवं
कृतियों का अध्ययन

डॉ० माधवप्रसाद पाण्डेय



शक १९०४ : सन् १९८२ ई०
हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

प्रकाशक
प्रभात शास्त्री
प्रधानमंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

⊙

संस्करण : प्रथम
प्रकाशन-वर्ष : १९८२ ई०
प्रतियाँ : ११००
मूल्य : ५०.०० (पचास रुपये मात्र)

○

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

नामदेव पुंढरपुर भणीजै।
ज्यूं कबीर कासी मैं गिणीजै।
रामचरण भीलाड़े ऐसै।
तामै भूल न लाबो ससै।

—जगन्नाथ

प्रकाशकीय

मध्यकालीन भारतीय समाज को श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान और जीवनानुभव से अनुप्राणित करने का कार्य भक्तो और सन्तो ने लोकभाषा के माध्यम द्वारा प्रभावी रूप मे किया था। इस सन्त-परम्परा का गहन प्रभाव लोकजीवन मे देखा जा सकता है। नाना सम्प्रदायो के माध्यम से पुराणो द्वारा प्रतिपादित भक्ति का व्यापक स्तर पर प्रचार करने मे सन्तो और भक्तो का बहुत योग रहा है। भक्ति के विभिन्न सम्प्रदायो की भी ऐतिहासिक भूमिका रही है, किन्तु गुह्यसाधनाओ के प्रभाव से मध्यकालीन भक्ति का तत्त्वज्ञान दीक्षित व्यक्तियो को ही देने की परम्परा परिलक्षित होती है। अतएव बहुत-सा सन्त-साहित्य भारत के आधुनिक पुनर्जागरण के पूर्व मात्र सम्प्रदाय के आचार्यों और भक्तो के बीच ही सीमित रहा।

भारतीय सस्कृति और भारतीयता को उद्घाटित करने की भावना जब से देशी विद्वानो मे उत्कट रूप मे जगी, तभी से मध्यकालीन साम्प्रदायिक साहित्य के सम्बन्ध मे इतस्तत जानकारी मिलने लगी थी।

स्वामी रामचरण के जीवन और कृतित्व सबधी सामग्री भी सम्प्रदाय के वेष्टनो मे सुरक्षित थी, किन्तु कैप्टन वेसमकट नामक विदेशी सज्जन ने शाहपुरा के पाँचवे महन्त नारायणदास की सहायता से स्वामी रामचरण की कुछ रचनाओ का अध्ययन किया और स्वामी रामचरण जी के कुछ छन्दों का अनुवाद एशियाटिक सोसायटी के फरवरी १८३५ के जर्नल मे प्रकाशित भी किया। इसके पश्चात् सन् १९२५ मे ११०० पृष्ठो की "अणभै वाणी" का प्रकाशन हुआ और विद्वानो का ध्यान इस सम्प्रदाय और इसके श्रेष्ठ आचार्य की ओर आकृष्ट हुआ। फलतः कई आधुनिक विद्वानो ने इस सम्बन्ध मे सुन्दर कार्य किये है, जिनमे उसी सम्प्रदाय के साधु मनोहरदास, डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी, डॉ० अमरचन्द वर्मा के ग्रन्थ उल्लेखनीय है।

यह प्रसन्नता का विषय है कि डॉ० माधवप्रसाद पाण्डेय ने पूर्ववर्ती शोधको की सरणि को आगे बढाने का स्तुत्य कार्य किया है। सम्प्रदाय के आचार्यों की कृपा से डॉ० पाण्डेय को कुछ ऐसी सामग्री भी शोध-निमित्त प्राप्त हुई है, जो कभी किसी विद्वान् को उपलब्ध नही थी। अतएव उनकी लम्बी यात्राओं और गम्भीर साहित्यानुशीलन से सम्पन्न इस ग्रन्थ को प्रकाशित करते हुए सम्मेलन गर्व का अनुभव करता है। विश्वास है कि "स्वामी रामचरण : जीवनी एव कृतियों का अध्ययन" शीर्षक इस ग्रन्थ का हिन्दी-जगत् मे स्वागत किया जायगा।

—डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल
साहित्यमत्री

दीपावली, सवत् २०३९ वि०



ग्रंथकार के पिता स्वर्गीय श्री शुकदेव पाण्डेय
एवम् माता स्वर्गीया श्रीमती वाचकली देवी

ममतामयी अम्मा

और

देवतुल्य बाबू

की

पावन-स्मृति

को

भूमिका

समय की गति द्रुत है और नियति की लीला विलक्षण। किसी भी बात का होना इन्ही पर निर्भर है। बात पुरानी हुई। सन् १९५२ मे एम० ए० की परीक्षा मे उत्तीर्ण होने के बाद शोधकार्य मे लगने की कामना ने निश्चय का रूप ले लिया। अपने एम० ए० के अध्ययन-काल मे ही मैं गुरुवर डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी से रिसर्च-सन्दर्भ छेडकर अपनी रुचि व्यक्त कर चुका था। उनके प्रेरक एव उदार व्यक्तित्व से प्रभावित मेरे मन को शोध की धुन सवार हो गयी ओर उन्ही के निर्देशन मे खोज-कार्य प्रारम्भ करने का निश्चय हुआ। स्वामी रामचरण पर कार्य करने की प्रेरणा भी मुझे उन्ही से मिली। मै शोधछात्र के रूप मे दो वर्षों तक नियमित रूप से कार्यरत रहा, पर समय और नियति के सामने अपना वश नही चला। इन्दौर की यात्रा से वापस हुआ था, बात सन् १९५५ की है। मेरा बाक्स चोरी चला गया—कुछ कपडे, कुछ पैसे और थोडे-से कागज-पत्र। ये वही कागज-पत्र थे जिन्हे शोध के नाम पर लिखा-पढा गया था। मन बोझिल हो गया, वह निराशा का घर बन गया और मैं भगवान अमिताभ की धरती का वासी बना। पर शोधकार्य की ललक मन से न जाती। बरबस भूलना चाहता लेकिन उसकी याद पत्थर पर बनी लकीर सदृश अमिट थी। परन्तु याद-ही-याद थी, मन तो टूट गया था और इस प्रकार आगया सन् १९७२। स्मृतियाँ टूटे मन को सहारा देकर उठाने मे सफल हो गयी। समय की दूरी के चिह्न जैसे मिटने लगे और मैं पुन. शोध से जुड गया।

जब मैंने कार्यारम्भ किया था, उस समय तक स्वामी रामचरण पर कोई विशेष कार्य नहीं हुआ था। मेरी दृष्टि मे फरवरी, सन् १८३५ के 'जर्नल ऑव दी एशियाटिक सोसाइटी' के अक मे कैप्टेन वेस्मकट का रामसनेही सम्प्रदाय पर लिखित विस्तृत लेख ही एक महत्त्वपूर्ण कार्य था। इसके अलावा साधु मनोहरदास जी ने 'रामस्नेही धर्म दर्पण' नाम की एक पुस्तक भी प्रकाशित की थी। इस बीच रामसनेही सम्प्रदाय और स्वामी रामचरण पर कुछ कार्य हुए हैं। मुझे स्वामी रामचरण का प्रथम अध्येता बनने का सौभाग्य तो अवश्य प्राप्त हुआ पर मेरा यह ग्रन्थ प्रथम नही कहा जा सकता। रामसनेही सम्प्रदाय पर गोरखपुर विश्वविद्यालय मे डॉक्टर भगवतीप्रसाद सिंह के निर्देशन मे डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत कर चुके हैं। इस शोध-प्रबध में तीनो रामसनेही सम्प्रदाय एव उनके साम्प्रदायिक साहित्य पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। दूसरा शोध-प्रबध, गुजरात विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत डॉ० अमरचन्द वर्मा का है। डॉक्टर वर्मा ने 'स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन' विषय पर शोध-कार्य किया है।

डॉक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी की शोधकृति मे रामसनेही नाम के जो तीन सम्प्रदाय प्रचलित हे, उन तीनो के साम्प्रदायिक साहित्य एव उनके सर्जको का सम्यक् विवेचन मिलता है। स्वामी रामचरण शाहपुरा रामसनेही सम्प्रदाय के मूलाचार्य थे, अत. स्वामी जी के जीवन एव कृतित्व पर भी उन्होने सक्षेप मे विचार किया है। डॉक्टर अमरचन्द वर्मा की शोध-रचना विषय से सीधा सम्बन्ध रखती है। उनका अध्ययन सम्यक् पर सक्षिप्त है।

उक्त दोनो शोध-प्रबधो के अवलोकन के बाद भी मे इस निष्कर्ष पर रहा कि स्वामी रामचरण के जीवन एव कृतित्व के विस्तृत अध्ययन की अभी अपेक्षा है। डॉ० त्रिपाठी का शोध-प्रबंध विषय से सीधे सबधित नही है, फिर भी उनके शोध से स्वामी रामचरण के अध्ययन मे सहायता मिलती है। डॉक्टर वर्मा का अध्ययन इस विषय पर अवश्य प्रथम प्रकाशित शोध-रचना है। डॉक्टर वर्मा इस ग्रथ के 'प्राक्कथन' मे लिखते हैं—"इस सम्प्रदाय के सतो के सम्पर्क मे होने के कारण मैं अन्य व्यक्ति की तुलना मे प्रचुर मात्रा मे सामग्री प्राप्त करने तथा उनके वैज्ञानिक परीक्षण मे साम्प्रदायिक महत्त्व के व्यक्तियो का सहयोग प्राप्त करने मे अधिक सफल हो सकूँगा, ऐसा हुआ भी।"[1] इसी सन्दर्भ को वे आगे बढाते है—"सम्प्रदाय के सतो एव अनुयायियो से आशा के अनुरूप ही सामग्री प्राप्त हुई, परन्तु उसमे साम्प्रदायिक दृष्टिकोण इतना तीव्र था कि उसमे से वैज्ञानिक पद्धति पर सब स्वीकृत तथ्यो को निकाल पाना सरल न था।"[2] सम्प्रदाय-विशेष के प्रवर्त्तक के अध्ययन मे साम्प्रदायिक दृष्टिकोण की महत्ता अवश्य रहती है। उसे कैसे नकारा जा सकता है, किन्तु जहाँ दृष्टिकोण रूढिग्रस्त फलतः अप्रामाणिक प्रतीत हो, वहाँ उनके आवर्त्तों से निकल पाना अवश्य समस्या होती है। ऐसे कतिपय स्थल हैं जहाँ मै डॉक्टर वर्मा के दृष्टिकोण से सहमत नही हो पाया। मैंने उन स्थलो की समीक्षा कर अपने निष्कर्ष दिये भी है। साम्प्रदायिक व्यक्तियो से जुडे होने के कारण अध्ययन को वैज्ञानिक दृष्टि देना कठिन नही। मै भी इस अध्ययन के सन्दर्भ मे अनेक सतो एव गृहस्थों के सम्पर्क मे आया और उनसे अध्ययन मे पर्याप्त सुविधा भी मिली। स्वामी रामचरण के जीवन को चामत्कारिक घटनाओ से जोड़ने का प्रयास साम्प्रदायिक साहित्य मे जहाँ कही दृष्टिगत हुआ है, मैंने अपने अध्ययन को उससे अप्रभावित ही रखा है। डॉक्टर वर्मा कही-कही साम्प्रदायिक आवर्त्त से प्रभावित हो गये है। यथा—स्वामी जी को किसी स्त्री द्वारा विष दिया जाना और उस विष की प्रभावहीनता, भील द्वारा उन पर वार और फिर क्षमायाचना आदि।

अपने अध्ययन मे मैंने स्वामी रामचरण के जीवनवृत्त से सबधित साम्प्रदायिक और असाम्प्रदायिक साक्ष्यो की तुलना करके निष्कर्ष पर पहुँचने की चेष्टा की है। यद्यपि साम्प्रदायिक साक्ष्य पर्याप्त सबल है, उनका जीवनीकार जगन्नाथ सफल जीवनीकार सिद्ध

१. डॉक्टर अमरचन्द वर्मा—स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, प्राक्कथन, पृ० १।
२. वही।

हुआ है पर असाम्प्रदायिक साक्ष्यों मे से भी कतिपय को नकारा नही जा सकता। यथा—कैप्टेन वेस्मकट का एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल मे प्रकाशित सन् १८३५ ई० के फरवरी अक का लेख। जनश्रुतियो को प्रमाण रूप मे ग्रहण करने का अवसर बहुत कम यानी नहीं के बराबर आया है। एकाध ही स्थल ऐसे मिलेगे। इसी प्रकार अन्त.साक्ष्यो का भी अभाव है। एकाध ही स्थल उसके भी मिलते है। सम्पूर्ण अध्ययन को मैंने तीन खण्डो एव आठ अध्यायो मे विभाजित किया है—

(क) प्रथम खण्ड—परिचय

प्रथम अध्याय—अध्ययन के सूत्र
द्वितीय अध्याय—स्वामी रामचरण का जीवन-वृत्त
तृतीय अध्याय—स्वामी रामचरण का पथ—रामसनेही सम्प्रदाय
चतुर्थ अध्याय—स्वामी रामचरण की रचनाएँ

(ख) द्वितीय खण्ड—विचारधारा

पचम अध्याय—विचारधारा ' अध्यात्मपक्ष
षष्ठ अध्याय—विचारधारा : लोकपक्ष

(ग) तृतीय खण्ड—काव्यत्व

सप्तम अध्याय—काव्यत्व अनुभूति पक्ष
अष्टम अध्याय—काव्यत्व : अभिव्यक्ति पक्ष
उपसहार

अपने इस अध्ययन को मैंने भरसक पूर्ण बनाने की चेष्टा की है। इसे कहाँ तक पूर्णता मिल पायी है, इसका निर्णय तो सुधीजन ही कर सकेंगे। इस कार्य को जिन श्रद्धास्पद, स्नेही स्वजनो के कारण पूर्णता मिल सकी है उन्हें स्मरण कर उनके प्रति अपने भावो को अभिव्यक्त करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। सर्वप्रथम मै अपने पूज्य आचार्य गुरुवर डॉक्टर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, अवकाश प्राप्त अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय के चरणों मे भाव-प्रसून समर्पित करता हूँ, जिनके व्यक्तित्व की स्नेहिल छाँह मे मेरा विकास हुआ है। बी० ए०, एम० ए० की पढाई से लेकर रिसर्च स्कॉलर बनने की सम्पूर्ण प्रक्रिया मे उनका प्रेरणादायी व्यक्तित्व ही मुझे प्रोत्साहित करता रहा है। इस ग्रन्थ का प्रस्तुतीकरण भी उन्ही के प्रोत्साहन, आशीर्वाद एव शुभेच्छाओ का परिणाम है। स्वामी रामचरण के ये शब्द मेरे भावों के प्राण बन रहे हैं—'शीश धरूँ गुरुचरण तल'।

इस शोध-कार्य के सिलसिले मे मुझे शाहपुरा, भीलवाडा (राजस्थान) और इन्दौर (मध्यप्रदेश) की यात्राएँ करनी पडी थी। शाहपुरा और भीलवाडा इन दोनों स्थानो से स्वामी रामचरण का घना लगाव रहा है। शाहपुरा तो उनके पथ का केन्द्र ही है। इन दोनो

स्थानो की यात्रा मैंने सन् १९५३ मे फूलडोल के अवसर पर की थी। उस समय सम्प्रदाय के आचार्यपीठ पर स्वर्गीय स्वामी निर्भयराम जी विराजमान थे और भण्डारी पद पर स्वर्गीय नानूराम जी। वर्तमान आचार्य स्वामी रामकिशोर जी और इन्दौर गोराकुण्ड रामद्वारा के सत एव मेरे परमस्नेही मित्र श्री सन्मुखराम जी से भी वही सम्पर्क स्थापित हुआ था। पूज्य आचार्य श्री निर्भयराम जी एव परमादरणीय भण्डारी जी श्री नानूराम जी के स्नेह भरे आशीर्वचन आज भी मेरे स्मृति-पटल पर अकित-से है। उन लोगो को यह जानकर अपार हर्ष हुआ था कि मै मूलाचार्य स्वामी रामचरण पर ग्रथ लिख रहा हूँ। आज जब अध्ययन पूर्ण हुआ है, दोनो ही महापुरुष इस ससार मे नही हैं। मै दोनो ही महापुरुषों के प्रति अपनी मौन श्रद्धा समर्पित करता हूँ। मैं शाहपुरा मे लगभग १५ दिनो ठहरा था। भण्डारी जी एव स्वामी रामकिशोर जी (वर्तमान आचार्य) की मुझ पर विशेष कृपा थी। भण्डारी जी सदैव मेरी चिन्ता करते एव सुविधाओ पर दृष्टि रखते थे। उन्ही की कृपा एव स्वामी रामकिशोर जी की प्रेरणा से मै अणभैवाणी की प्राचीनतम प्रति (स्वरूपाबाई की पोथी) देख सका था। स्वामी रामकिशोर जी महाराज बराबर मुझे अपने स्नेह एवं आशीर्वाद से प्रेरणा देते रहे। स्वामी जी महाराज का मै बडा कृतज्ञ हूँ। इस अवसर पर मै मुनिद्वारा भीलवाडा के सत श्री नैनूराम जी के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी कृपा से मै कुहाड़ा की पावन भूमि का दर्शन कर सका था। मुनिद्वारे का दो दिनों का निवास आज भी मेरी स्मृति मे है।

इस अध्ययन को पूर्णता दिलाने में शाहपुरा से कम महत्त्व इन्दौर का भी नही है। इन्दौर के सत श्री सन्मुखराम जी मेरे मित्र है। उनकी प्रेरणा एव स्नेह से मैंने इन्दौर की कई यात्राएँ की है। सत सन्मुखराम जी ने मुझे सर्वाधिक प्रेरित किया है और हर सभव सहयोग से इस प्रबध को पूर्णता दिलायी है। उन्होंने उज्जैन तक से शोध-सामग्री मँगवाकर दी और मेरे लिए अनेक ग्रथ पहले से ही एकत्र कर रखे थे। उनके स्नेह एव सहयोग को धन्यवाद या आभार प्रदर्शित कर हल्का नहीं करना चाहता। इसी सन्दर्भ मे मै उनके पूज्य गुरु स्वर्गीय नवनिद्धराम जी का भी स्मरण कर श्रद्धावनत हूँ जिनकी कृपा सदैव मुझ पर रही। गुरुलीला विलास, परची, रामपद्धति आदि ग्रथो की हस्तलिखित प्रतियाँ उन्होने मुझे पहली यात्रा में ही दे दी थी। ये सभी ग्रथ उनकी पूजा की वस्तु थे, पर उन्होंने इन सब को मुझे सोल्लास दे दिया था। उनकी स्मृति का रूप इन ग्रथो ने ले लिया है। इन्दौर छत्रीबाग के सत श्री कनीराम जी का भी आभारी हूँ जिन्होने मुझे अपने सुझावो एव समाधानो से उपकृत किया है। इनके साथ में उज्जैन के साधु श्री उम्मेदराम, श्री सरोवरराम जी आदि का भी आभारी हूँ। इन सभी का सहयोग मेरा संबल रहा है।

गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डॉक्टर रामचन्द्र तिवारी ने समय-समय पर मुझे अपने अमूल्य सुझाव दिये हैं। उनकी प्रेरणा से मैं सदैव उत्साह ग्रहण करता रहा हूँ। एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ। मेरे अनुज श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय एवं प्रिय शिष्य श्री सुमिरन शर्मा तथा श्री ब्रह्मानन्द सिंह की अभिरुचि, सेवा एव शुभेच्छाएँ भी इस अवसर पर स्मरणीय हैं। ये सभी लोग मेरे स्नेह के पात्र हैं। अत में मैं अपनी अच्छी-बुरी

परिस्थितियो को धन्यवाद देते हुए भगवान तथागत की सोयी प्रतिमा के समक्ष नतमस्तक हूँ जिनकी छत्रछाया मे इस ग्रथ का प्रणयन पूर्ण हुआ है।

प्रणयन से प्रकाशन तक की लम्बी यात्रा मे इस ग्रथ ने अनेक उतार-चढाव देखे, अन्तत. यह प्रकाश मे आ रहा है। प्रकाशन की इस उल्लासमयी वेला मे अपने परम कृपालु एव स्नेही सुहृद्जनो के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन मै अपना पावन कर्त्तव्य समझता हूँ। सर्वप्रथम मै हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमत्री श्री प्रभात शास्त्री के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी अनुकम्पा मेरे ऊपर सदैव रही है। उनका स्नेह इस ग्रथ की प्रकाशन-यात्रा का सबल रहा है। सम्मेलन के सहायकमत्री श्री श्यामकृष्ण पाण्डेय मेरे अनन्य है, इस ग्रथ का प्रकाशन उनकी रुचि, लगन एव प्रीतिवश ही सम्भव हुआ है। आभार-प्रकाशन के द्वारा मैं उनके स्नेह को ससीम नही करना चाहता। साहित्य-विभाग के अध्यक्ष श्री हरिमोहन मालवीय मेरे मित्र है, उनके परिश्रम एव लगन के फलस्वरूप ही ग्रथ को यह कलेवर प्राप्त हुआ है। एतदर्थ मै उनका कृतज्ञ हूँ। अन्त मे, मैं सम्मेलन मुद्रणालय के सहायक व्यवस्थापक श्री शिवनारायण झा एव उनके सहयोगियो को धन्यवाद देता हूँ जिन्होने बडी रुचि के साथ इसका मुद्रण-कार्य सम्पन्न किया।

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जन्मशती
रविवार १, अगस्त १९८२ ई०
बुद्ध स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कुशीनगर, देवरिया

[signature]



शाहपुरा रामसनेही सम्प्रदाय के वर्तमान आचार्य
स्वामी जी श्री १००८ श्री रामकिशोर जी महाराज

अनुक्रम

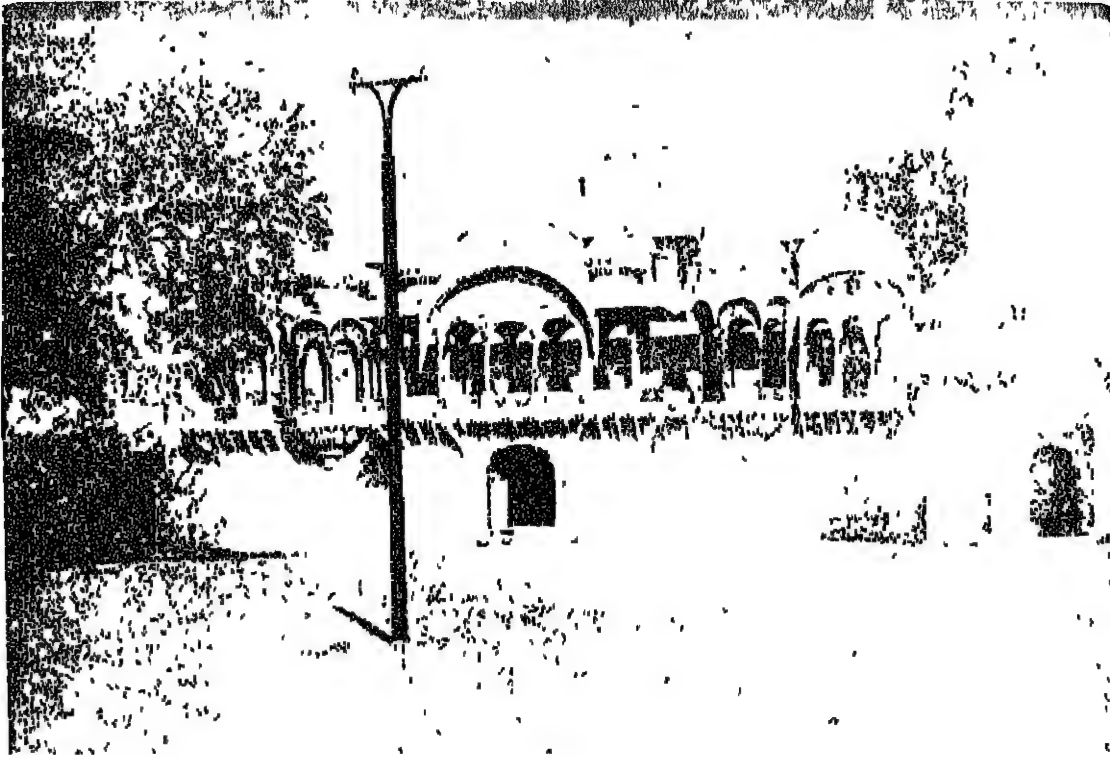
[क] प्रथम खण्ड : परिचय

[ग] तृतीय खण्ड : काव्यत्व





स्वामीजी श्री १००८ श्री रामचरण जी महाराज

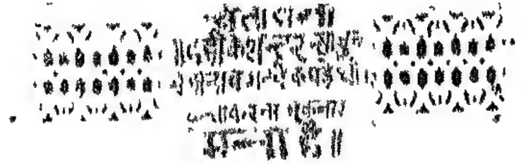


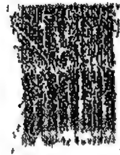
श्री रामनिवासधाम, शाहपुरा

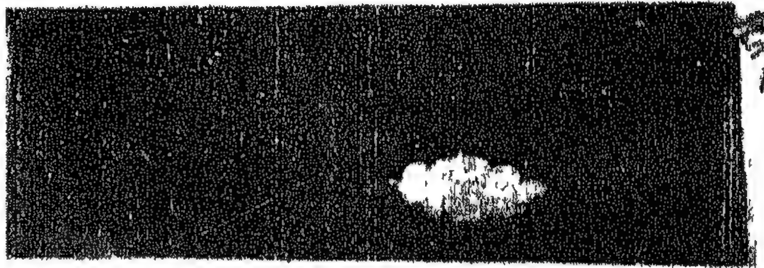


वारहधरी श्रीरामद्वारा, भीलवाडा









स्वामीजी श्री १००८ श्री रामचरण जी महाराज की तपस्थली
सेठ मयाचन्दजी की बावडी, भीलवाडी

प्रथम अध्याय

अध्ययन के सूत्र

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे स्वामी रामचरण और उनके द्वारा स्थापित रामसनेही सम्प्रदाय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके जीवन और कृतित्व के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए निम्नलिखित उपलब्ध प्रकाशित-अप्रकाशित सामग्री से अत्यधिक सहायता प्राप्त होती है—

१ तासी कृत हिन्दुई साहित्य का इतिहास अनु० डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

स्वामी रामचरण की जीवनी एव कृतियो के अध्ययन का सदर्भ-सूत्र सर्वप्रथम मुझे गार्सां द तासी लिखित 'इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी' के हिन्दी अश के अनुवाद की अनुक्रमणिका तैयार करते समय हाथ लगा। गुरुवर डॉक्टर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी ने 'हिन्दुई साहित्य का इतिहास' नाम से यह अनुवाद प्रस्तुत किया है। इस इतिहास ग्रथ मे तासी महोदय ने स्वामी रामचरण की जीवनी एव उनकी रचनाओ की सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की है। स्वामी जी के जीवनवृत्त से सबधित निम्नलिखित सूचनाएँ इस ग्रथ मे मिलती हैं—

१ स्वामी रामचरण रामसनेही हिन्दू सप्रदाय के सस्थापक एक वैरागी थे।

२ उनका जन्म सन् १७१९ मे जयपुर राज्यान्तर्गत सोरहचसन नामक गाँव मे हुआ था। उन्होने सन् १७५० ई० मे अपना जन्मस्थान त्याग दिया था और घूमने-फिरते उदयपुर राज्य के भीलवाडा नामक स्थान पर पहुँचकर दो वर्ष तक वहाँ निवास किया।

३ मूर्तिपूजा का विरोधी होने के कारण स्वामी रामचरण को महाराणा भीमसिंह ने ब्राह्मणो द्वारा प्रेरित होने पर कष्ट दिया, जिसके कारण उन्होने भीलवाडा का शीघ्र त्याग कर दिया।

४. भीलवाडा छोडकर स्वामी जी शाहपुरा आए। शाहपुरा के शासक भीमसिह ने उन्हे अपने दरबार मे शरण देकर उनकी रक्षा की। वे सन् १७६७ ई० मे शाहपुरा आ गए थे। भीलवाडा से उन्हे लाने के लिए सेवको का एक समूह हाथियो समेत गया था। किन्तु स्वामी जी उन साधनो की सेवा अस्वीकृत कर पैदल ही चलकर शाहपुरा पहुँचे।

५ इसके दो वर्ष बाद अर्थात् सन् १७६९ ई० मे शाहपुरा मे बस जाने के बाद उन्होने अपने सप्रदाय की स्थापना की।

६. स्वामी रामचरण की मृत्यु के सबध मे तासी महोदय लिखते है कि अपनी ७९वी वर्ष की अवस्था मे, सन् १७९८ ई० के अप्रैल मास मे मृत्यु को प्राप्त हुए।

तासी महोदय ने लिखा है कि भीलवाडा का सूबेदार देवपुर जाति का बनिया था जो स्वामी रामचरण का कट्टर विरोधी था। उसने इन्हे जान से मार डालने के लिए एक सिपाही को भेजा था। मारने की नीयत से पहुँचा सिपाही स्वामी रामचरण के अलौकिक गुणो से प्रभावित हो गया और उनके चरणो पर गिरकर क्षमा-याचना की।

तासी ने अन्त मे उनकी रचनाओ का उल्लेख करते हुए लिखा है कि रामचरण जी ने छत्तीस हजार दो सौ पचास शब्दो या भजनो की रचना की है। देवनागरी लिपि मे लिखे इन शब्दो या भजनो की भाषा प्रधानत हिन्दी है, जिसमे अरबी-फारसी और सस्कृत-पजाबी शब्दो के मिश्रण मिलते है। तासी ने उपर्युक्त जानकारी कैप्टन वेसमकट के उस लेख से प्राप्त की है, जिसे वेसमकट महोदय ने कलकत्ते की एशियाटिक सोसायटी के फरवरी, १८३५ ई० के जर्नल मे प्रकाशित कराया था।

२. जर्नल ऑव द एशियाटिक सोसायटी (फरवरी, १८३५)

प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे जर्नल की यह जिल्द मुझे प्राप्त हुई थी। जर्नल के इस अक मे कैप्टेन जी० ई० वेस्मकट का एक लेख 'Some account of a sect of Hindu Schismatics in Western India, calling themselves Ramsanehis of friends of God' प्रकाशित है। मेरी दृष्टि मे उक्त लेख प्रथम महत्त्वपूर्ण सामग्री है जो स्वामी रामचरण, उनके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय एव उनके विचारो की जानकारी देता है। कैप्टेन वेसमकट भारत के गवर्नर-जनरल के वैयक्तिक सचिव के सहायक थे। उन्होने शाहपुरा जाकर सप्रदाय सबधी जानकारी एकत्र की थी। इस लेख के अन्तर्गत विभिन्न उपशीर्षको मे लेखक ने स्वामी रामचरण के जीवनवृत्त, सम्प्रदाय के सगठनात्मक स्वरूप, सम्प्रदाय के उत्सव फूलडोल आदि की विस्तार से चर्चा तो की ही है, साथ ही शाहपुरा से प्राप्त कुछ कविताओ की पाण्डुलिपि का अंग्रेजी अनुवाद भी जोड दिया है। इस अनुवाद मे लेखक को कलकत्ता के बाबू काशीप्रसाद घोष से सहायता मिली थी जिसके लिए उन्होने आभार भी व्यक्त किया है।[1] वेसमकट महोदय सम्प्रदाय के तत्कालीन महत स्वामी नारायणदास जी से मिले भी थ। उन्होने स्वामी जी से हुए वार्तालाप का सक्षेप मे उल्लेख भी किया ह। वेसमकट ने शाहपुरा जाकर स्वामी नारायणदास जी से तीन चार भेट की थी। इस सदर्भ मे उनका यह कथन द्रष्टव्य है—

"*It may be right to mention in this place, that many of the reasons given for the institution of particular rites were received from the chief*

---

1. I have to acknowledge my obligations to Babu Kasi Prashad Ghos of Calcutta, for his courtesy in assisting me with a translation of these papers He purposely rendered it as literal as possible, and I am not sure if it would not have been better had I left it in that form.

—Journal of the Asiatic Society, Feb; 1835, p. 78.

of the Ramsanehis to whom I made thrce visits He usually delivered himself in Sanskrit verse, which he afterwards explained in local dialects, for the instruction of his hearers"[1]।

३ द निर्गुण स्कूल ऑव हिन्दी पोएट्री . डॉ० पी० डी० बडथ्वाल
[हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल]

सन्त साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने अपने शोध-प्रबन्ध 'द निर्गुण स्कूल ऑव हिन्दी पोएट्री' के पृष्ठ ३०७ पर शाहपुरा के स्वामी रामचरण का उल्लेख रामसनेही पंथ के संस्थापक के रूप मे किया है। इस पंथ का विकास अठारहवी शताब्दी मे हुआ था। स्वामी रामचरण की बानी का विशाल संग्रह डॉक्टर बडथ्वाल को बाद मे प्राप्त हुआ था जिसमे कबीर की विचारधारा प्रतिध्वनित हुई है। कबीर के लिए स्वामी रामचरण के मन मे बड़ा आदर था।

४ प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथो की खोज का चौदहवाँ वार्षिक विवरण (सन् १९२९-३१ ई०) . डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल

स्वर्गीय डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल द्वारा प्रस्तुत की गई यह खोज-रिपोर्ट काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित है। इस खोज-रिपोर्ट के अनुसार स्वामी रामचरण रामसनेही पंथ के संस्थापक और नवलराम के गुरु थे। रिपोर्ट म उनके निम्नलिखित ग्रंथो का उल्लेख मिलता है—

१ जिज्ञास बोध	[निर्माण-काल स० १८४७ वि०]
२ विश्राम बोध	[,, स० १८५१ वि०]
३ समतानिवास	[,, स० १८५२ वि०]
४ विश्वास बोध	[,, स० १८४९ वि०]
५ अमृत उपदेश	[,, स० १८४४ वि०]
६ रामचरण के शब्द	
७ अणभै विलास	[,, स० १८४५ वि०]
८ रामरसायनि	
९ सुख विलास	[,, स० १८४६ वि०]

रिपोर्ट मे डॉक्टर बडथ्वाल ने लिखा है कि इनमे से अब तक कोई भी ग्रंथ खोज मे नही मिला था। इसी रिपोर्ट के अनुसार 'विनोद'[2] के न० १०७५ पर इनके रचे पाँच ग्रंथो का उल्लेख मिलता है जो इस रिपोर्ट मे १, २, ४, ६, और ७ है। 'वाणी' नामक ग्रंथ की

१ Journal of the Asiatic Society, Feb 1835 P 69.

२ मिश्रबन्धु विनोद।

सूचना भी इसी रिपोर्ट मे मिलती है। 'विनोद' मे उल्लिखित 'रसमालिका' ग्रथ के रचनाकार स्वामी रामचरण के विषय मे डॉ० वडथ्वाल ने लिखा है कि वे रामचरण अयोध्या के महत थे, जो ठीक भी है।

खोज-रिपोर्ट मे डॉक्टर वडथ्वाल आगे लिखते है कि स्वामी रामचरण राजपूताने के शाहपुरा नामक स्थान के निवासी थे। 'अमृत उपदेश' एव 'शब्द' नामक ग्रथो की निम्नलिखित पक्तियाँ उदधृत करके उन्होने यह भी सिद्ध किया है कि उनके गुरु का नाम कृपाराम या कृपालराम था—

"सिर ऊपर सतगुरु तपै, कृपाराम जी सत।
रामचरण ता सरणि में, ऐसो पायो तंत॥"

—अमृत उपदेश

"सतगुरु संत कृपाल जी रामचरण सिष तासु के।
कारिज करि कारण मिले तुम गुरु रामजनदास के॥"

—शब्द

स्वामी रामचरण ने अपने सभी ग्रथो का आरभ जिस प्रसिद्ध दोहे से किया है, उसका उल्लेख भी इस खोज-रिपोर्ट मे है।[1] इसी रिपोर्ट मे आगे डॉक्टर बडथ्वाल ने 'राम रसायनि' के कुछ दोहे उद्धृत किए है।[2] इस उद्धरण के साथ उन्होने यह आशका व्यक्त की है कि क्या सचमुच इन ग्रथो की रचना एक ही व्यक्ति ने की है। पर ग्रथ के अन्त मे—इति श्री राम-रसाइनि ग्रथ रामचरणकृत सम्पूर्ण समाप्त—लिखित वाक्य से यह सदेह दूर हो जाता है।

विवरणकार आगे लिखता है कि रामचरण जी को उनका शिष्य समुदाय 'राम' नाम से भी अभिहित करता था। इसी सदर्भ मे उसने स्वामी जी के शिष्य नवलराम जी रचित 'नवल सागर' का एक दोहा भी प्रमाणस्वरूप उद्धृत किया है जो इस प्रकार है—

"राम गुरु उर मे बसे अनन्त कोटि जन सीस।
नवलौ अनुचर रावरौ मानूं बिसवा बीस॥"

विवरण मे 'अणभै विलास' ग्रथ की चर्चा स्वामी रामचरण के गुरु कृपाराम की मृत्यु-तिथि एव स्वामी रामचरण की जन्मतिथि के सदर्भ मे विवरणकार करता है। साथ

---

१ रमतीत राम गुरुदेव जी पुनि तिहु कालके सत।
जिनकू रामचरण की, वदन वार अनन्त।

२ सवद एक महराज का नग मोताहल जोइ।
ग्रथ जोडकर रामजन पानाजाद जु होइ।
ये वाहक उधार करण कू रामचरण जी भाषै।
राम रसाइनि रस का भरिया आप सबन कू दाषै।
ताकी जोड ग्रथ यह परगट रामजन बणवायो।
ज्ञान भगति वैराग जुगति मुक्ती पथ बतायो॥

ही 'राम रसाइनि' की अन्तिम पक्तियो से स्वामी रामचरण का निधन-काल भी ढूँढ निकालने मे सफल हो गया है। डॉक्टर बडथ्वाल ने यही यह शका उठाई है कि ग्रथकर्त्ता ने अपना मृत्यु-काल कैसे लिख दिया होगा ? यह सदिग्ध है। उनका यह अनुमान है कि वह उनके किसी शिष्य या प्रतिलिपिकार ने पीछे से जोड दिया होगा और उनका यह अनुमान सत्य प्रतीत होता है।

डॉक्टर बडथ्वाल इसी खोज-रिपोर्ट मे स्वामी रामचरण के जन्मकाल के सदर्भ मे निम्नलिखित पक्तियाँ उद्धृत करते है—

"अठारै से षट वर्ष मास फागुन बदि सातै।
सत पधारे धाम सनीचर वार विष्यातै॥"

इन पक्तियो से उन्होने यह अर्थ निकाला है कि स्वामी रामचरण का जन्म-सवत् १८०६ वि० के फागुन महीने की वदी ७, शनिवार को हुआ था। डॉक्टर बडथ्वाल के इस कथन से असहमत होते हुए मेरा निवेदन यह है कि **धाम पधारने का अर्थ मृत्यु है, जन्म नही**— पुनश्च, प्रकाशित 'वाणी' के आरभ मे स्वामी रामचरण के दादा गुरु स्वामी सतदास जी की 'वाणी' सगृहीत है। उसके अन्त मे सग्रहकार ने एक कुण्डलिया लिखी है। शीर्षक के साथ वह कुण्डलिया यहाँ दी जाती है—

'स्वामी जी श्री सतदास जी परमधाम पधार्‌या जी समै का ॥कूडल्य ॥

अठारा सै षट वर्ष मे सत भये निरकार।
बुध फागुण तिथि सप्तमी बार सनीसरबार।
बार सनीसर बार डार के अधम सरीरा।
प्रथम ही मिल रहे जे संघट भरीयो नीरा।
परापरे पदलीन था भिन्न दृष्टिरूप अपार।
अठारा सै षट वर्ष मे संत भये निरकार॥"[1]

अत यह स्पष्ट हो गया है कि यह स्वामी सतदास जी की मृत्यु-तिथि है। न जाने कैसे डॉक्टर बडथ्वाल को यह तिथि स्वामी रामचरण की जन्मतिथि प्रतीत हुई। मैने 'अणभै विलास' ग्रथ की प्रकाशित प्रति का अवलोकन किया, किन्तु डॉक्टर बडथ्वाल द्वारा उद्धृत पक्तियाँ इसमे नही मिली। मुझे ऐसा लगता है कि किसी भक्त प्रतिलिपिकार ने अपने लिए 'अणभै विलास' की प्रतिलिपि की होगी और अत मे स्वामी सतदास एव स्वामी कृपाराम की मृत्युतिथियाँ भी लिख दी होगी। डॉक्टर बडथ्वाल द्वारा उद्धृत स्वामी कृपाराम की मृत्यु-तिथि भी शुद्ध है पर 'अणभै विलास' से उद्धृत पक्तियाँ[2] मुझे प्रकाशित 'अणभै विलास' मे

---

१ अ० वा०, पृ० ६३ (सतदास जी की वाणी)।

२ 'बत्तीसे किरपाल भाद्रपद सुदि सुकर।
छोडे आप सरीर परमपद पहुँचे मुकर।'

—[प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थो की खोज का चौदहवाँ त्रैवार्षिक विवरण नागरी प्रचारिणी पत्रिका, पृ० १३८]। उद्धृत पक्तियाँ 'अणभै वाणी' के अत मे पृ० १०६९ पर अकित है।—लेखक

नही मिली। उद्धृत पक्तियो के तथ्य सन्तदास जी की वाणी के सग्रह के अत मे उद्धृत पक्तियो वाले ही ह। अत स्वामी कृपाराम की मृत्युतिथि सवत् १८३२ भाद्रपद सुदी ६, शुक्रवार सही है।[1]

डाक्टर बडथ्वाल ने स्वामी रामचरण की भाषा और कविता के विषय मे भी लिखा है। उनके अनुसार स्वामी जी की भाषा मे राजस्थानी के अतिरिक्त फारसी और अरबी के बहुत से शब्द आगे ह। इनकी रचना का सार गुरुमहिमा का गान, ससार से विरक्ति और केवल राम से नाता है। उदाहरणो द्वारा अपने कथन की पुष्टि भी करते गये ह।

५. प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथो की खोज (सन् १९३८-४०)

इस खोज विवरण मे स्वामी रामचरण को रामसनेही पथ का प्रवर्त्तक कहा गया है। इनके शिष्य रामजन थे, जिन्होने इनके ग्रन्थ 'दृष्टान्त सागर' की टीका लिखी है। यह सूचना इस विवरण से प्राप्त होती है।

६ श्री रामकृष्ण सेंटिनरी मेमोरियल, वॉल्यूम २ [द कल्चरल हेरिटेज ऑव इडिया]

इस खण्ड के अन्तर्गत आचार्य क्षितिमोहन सेन का 'द मिस्टिक्स ऑव नॉर्दर्न इडिया ड्यूरिंग द मिडिल एज' नामक लेख प्रकाशित है। इस लेख मे विद्वान् लेखक ने स्वामी रामचरण का सतराम या रामचरण नाम से उल्लेख किया है, जिनका जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत सूरसेन गाँव मे हुआ था। उनकी जन्म-तिथि सन् १७१५ से सन् १७२० के बीच अनुमानित है। उनके शिष्यो को रामसनेही कहा जाता है। रामसनेही मूर्तिपूजा मे विश्वास नही करते और भगवान् की प्राप्ति के लिए प्रेमपथ का अवलम्बन करते ह।

---

१. अथ स्वामीजी श्री सतदास जी के शिष्य स्वामी जी श्री कृपाराम जी परमधाम पधार्‌या जी समै का कवित्त—

अठारा सै बत्तीस वर्ष भादू सुदी होई।
छठ सुक दिन पहर ड्योढ उद्दोत जु सोई।
करत कूच किरपाल दर्स सबही कू दीन्ही।
झूठी झुगी डार परमपद वास जु कीन्ही।
सरणै सत दयाल के नग्र दातडे धाम।
साध सिख सेवग मिले कहत राम ही राम॥

—स्वामी सतदास जी महाराज की वाणी, पृ० ६३

७. मिस्टिक्स एसेटिक्स एण्ड सेण्ट्स ऑव इंडिया : जॉन कैम्पबेल ओमेन

जॉन कैम्पबेल ओमेन ने अपनी उक्त पुस्तक मे स्वामी रामचरण का अठारहवी शताब्दी पूर्वार्द्ध का एक सुधारक कहा है। मूर्तिपूजा का विरोधी होने के कारण वे ब्राह्मणो द्वारा प्रपीडित हुए थे। उनके द्वारा स्थापित रामसनेही सम्प्रदाय मे हिन्दुओ के सभी वर्गो एव जातियो को प्रवेश की सुविधा थी। सम्प्रदाय के सभी सदस्य शुद्ध शाकाहारी होते है और उन्हे तम्बाकू आदि मादक पदार्थो के सेवन से वचित रहना पडता है।

'राम' सम्प्रदाय के विशेष उपास्य है। दैनिक उपासना मे स्त्री-पुरुष दोनो भाग लेते है किन्तु दोनो की एक ही समय पर आराधना वर्जित है। लेखक ने सम्प्रदाय की उपासना-पद्धति के सबध मे एक विचित्र जानकारी दी है जो सभावनाओ के सर्वथा विपरीत है। वह कहता है—

"The religious services of the Ramsanehis are said to have a strong resemblance to those of Musulmans."[1]

वह राजपूताना के शाहपुर नामक स्थान को रामसनेहियो का प्रमुख पीठ कहता है।

८. ए हिस्ट्री ऑव हिन्दू सिविलाइजेशन ड्यूरिग ब्रिटिश रूल, वॉल्यूम १ : प्रमथनाथ बोस

उक्त ग्रथ के लेखक श्री प्रमथनाथ बोस ने रामसनेही सम्प्रदाय सबधी सूचना के लिए श्री अक्षयकुमार दत्त के 'उपासक सम्प्रदाय' ग्रथ को आधार माना है। वे फुटनोट मे लिखते है—

"For information regarding the Ramsanehi sect I am indebted to Akshaya Kumar Dutt's Upasaka Sampradaya."[2]

श्री बोस ने स्वामी रामचरण के विषय मे निम्नलिखित सूचनाएँ दी है—

१ रामसनेही सम्प्रदाय के सस्थापक स्वामी रामचरण का जन्म सन् १७१९ ई० मे जयपुर के सूरसेन नामक ग्राम मे हुआ था।

२ वे मूर्तिपूजा के विरोधी थे। गॉव के ब्राह्मणो से तग आकर उन्होने घर छोड दिया और भारत के विभिन्न भागो का भ्रमण करते हुए उदयपुर राज्य मे आकर बस गये। ब्राह्मणो द्वारा उभारे जाने पर उदयपुर के राजा ने स्वामी रामचरण को पीडा पहुँचाना आरभ किया। रामचरण जी ने शाहपुरा के राजा की शरण ली। राजा ने उन्हे निमत्रित किया। दो वर्ष बाद उन्होने अपने पथ की स्थापना की। सन् १७९८ ई० मे उनका देहावसान हो गया।

---

1 Mystics Ascetics and Saints of India p. 133

2 A History of Hindu Civilisation During British Rule, Vol. I, p. 131

३ स्वामी रामचरण के १२ प्रमुख शिष्य थे। प्रत्येक शिष्य को आर्थिक एव शैक्षिक व्यवस्था सम्बन्धी कार्य सौपे गये थे। एक भण्डारगृह का अधिकारी होता था, दूसरा सेवको द्वारा भेंट मे दिये गये वस्त्रो और कम्बलो की व्यवस्था का अधिकारी होता था। तीसरा पथ के अन्य सदस्यो के आचरण पर दृष्टि रखता था। चौथा विशेष रूप से स्त्रियो को धार्मिक शिक्षा देने के लिए चुना जाता था, आदि।

४ यदि पथ का कोई सदस्य गभीर अपराध करता था तो उसे शाहपुरा लाकर उन्ही बारह मे से आठ सदस्यो की पचायत द्वारा उसके मामले पर विचार किया जाता था। अपराध सिद्ध होने पर उसके सिर के बाल काट दिये जाते और उसे पथ से बहिष्कृत कर दिया जाता।

५ साधु बनने के लिए नाम-परिवर्त्तन ओर केश-मुण्डन आवश्यक है। दो मास से अधिक एक स्थान पर रहना उनके लिए वर्जित है।

६ रामसनेही साधुओ का प्रधान जो शाहपुरा की गद्दी पर आसीन होता है, महत कहा जाता है।

७ सभी जाति के लोग पथ मे प्रवेश पाते है।

८ रामसनेही मूर्तिपूजा के विरोधी है।

९ वे रामोपासक है।

१०. रामसनेहियो का उपासना-स्थल रामद्वारा कहलाता है। शाहपुरा के अतिरिक्त जयपुर, जोधपुर, नागौद, उदयपुर तथा अन्य स्थानो पर भी रामद्वारे है।

११ प्रात कालीन उपासना महत्त्वपूर्ण होती है जिसमे सभी का सम्मिलित होना आवश्यक है। किन्तु सध्योपासना मे केवल पुरुष ही भाग लेते है।

१२ फागुन के महीने मे रामसनेही फूलडोल का उत्सव मनाते है। यह रामसनेहियो का वार्षिकोत्सव है, किन्तु हिन्दुओ के परम्परागत त्योहार फूलडोल से इन लोगो का फूलडोल महोत्सव बिल्कुल भिन्न है।[1]

९. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास : आचार्य चतुरसेन

आचार्य चतुरसेन लिखित इस इतिहास से मात्र इतनी जानकारी मिलती है कि रामसनेही सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी रामचरण राजपूताना मे रहते थे। पहले ये मूर्ति

---

१ कर्नल जेम्स टॉड ने अपने ग्रथ 'राजस्थान का इतिहास' मे मेवाड राज्य के महत्त्वपूर्ण त्योहारो का वर्णन किया है। फूलडोल के विषय मे उनका निम्नलिखित कथन इस बात का प्रमाण है कि हिन्दुओ द्वारा परम्परागत ढग से मनाया जाने वाला फूलडोल रामसनेहियो के फूलडोल से भिन्न है। टॉड महोदय लिखते है—"फूलडोल-बरसात के आरम्भ मे इस त्यौहार का उत्सव होता है। इस त्यौहार की शुरुआत तलवार की पूजा से होती है। यह पूजा प्रत्येक राजपूत के घर से लेकर राणा के महल तक होती है। इस त्यौहार को राजपूत लोग बडे उत्साह से मनाते है और अपनी तलवारो की पूजा करते है।"
—कर्नल जेम्स टॉड : राजस्थान का इतिहास, हिन्दी, सस्करण, पृ० ३०७

पूजक थे। पीछे इन्होंने रामसनेही-पंथ की स्थापना की। इनके उपदेश 'वाणी' नामक संग्रह में संकलित है।

१० राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा : पं० मोतीलाल मेनारिया

पंडित मोतीलाल मेनारिया ने अपने उक्त ग्रंथ के चौथे अध्याय में रामसनेही पंथ एवं स्वामी रामचरण के सम्बन्ध में संक्षिप्त जानकारी दी है। शाहपुरा रामसनेही सम्प्रदाय के अलावा खेडापा और रैण के रामसनेही सम्प्रदायों एवं उनके संस्थापकों—क्रमश हरिरामदास और दरियाव जी का संक्षिप्त परिचय दिया है। मेनारिया जी ने स्वामी रामचरण एवं उनके द्वारा संस्थापित रामसनेही पंथ के सम्बन्ध की कतिपय और सूचनाएँ इस प्रकार दी हैं—

१ स्वामी रामचरण के अनुयायी निर्गुण परमेश्वर को राम के नाम से जानते हैं और उसी का ध्यान करते हैं।

२ रामसनेही साधु सिर्फ लंगोट बांधे रहते हैं और ऊपर से चादर ओढ लेते हैं।

३ ये लोग विवाह नहीं करते और किसी उच्च वर्ण के बालक को चेला बना लेते हैं। प्रथम शिष्य, गुरु की गद्दी का अधिकारी होता है। बडे शिष्य को छोटे शिष्य नमस्कार करते हैं और उन्हें गुरु सदृश आदर देते हैं। ये साधु रामद्वारों में निवास करते हैं और कथा-वाचन तथा भजन करते हैं।

४ वैसे सभी जातियों में इन लोगों के लिए आदर भाव है किन्तु अग्रवाल और माहेश्वरी बनिया की भक्ति इनके लिए विशेष होती है।

५ शाहपुरा का रामद्वारा रामसनेहियों का गुरुद्वारा है जहाँ प्रति वर्ष फागुन सुदी १ से चैत्र बदी ६ तक मेला लगता है।

६ स्वामी जी के जन्मस्थान, जन्मसंवत् तथा गुरु कृपाराम एवं उनसे इनके दीक्षित होने का उल्लेख भी मिलता है।

७ शाहपुरा में राजाधिराज रणसिंह ने इन्हें सम्मान दिया और शाहपुरा में इनकी गद्दी स्थापित करवायी।

८ इनके २२५ शिष्य थे, जिनमें से रामजन इनके उत्तराधिकारी हुए थे।

९ मेनारिया जी का अनुमान है कि इनकी वाणी में छन्दों की संख्या ८००० के लगभग है।

११. कबीर एण्ड हिज फॉलोअर्स : एफ० ई० के

१२. ए हिस्ट्री ऑव हिन्दी लिटरेचर : एफ० ई० के

श्री के महोदय ने उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों में रामसनेही सम्प्रदाय एवं उनके संस्थापक स्वामी रामचरण की संक्षिप्त चर्चा है।

१३. 'कल्याण' का 'संत अंक'

'कल्याण' के 'संत अंक' में 'श्री श्रीरामचरणजी रामसनेही' शीर्षक एक संक्षिप्त लेख प्रकाशित है। इस लेख के लेखक साधु श्री नैनूराम जी हैं। यह संक्षिप्त लेख इस दृष्टि से

२

महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें स्वामी जी के जन्मस्थान, जन्मसंवत् के अतिरिक्त इनके पिता एवं इनके वैरागी होने के पूर्व के नामों का उल्लेख है। आनुमानिक बाह्य साक्ष्यों में यह मेरी जानकारी में पहला सूत्र है जिसके द्वारा विदित होता है कि इनका जन्म श्री बखतराम की धर्मपत्नी के गर्भ से हुआ था और इनका नाम रामकृष्ण था।

स्वामी रामचरण के वैराग्य ग्रहण करने के पीछे जो ख्याति चली आ रही है, उसका उल्लेख करते हुए लेखक लिखता है कि—"जब आप इकतीस वर्ष के हुए तब सोते समय इनके चरणों में वज्र का चिह्न देखकर एक ब्राह्मण आश्चर्यचकित हो गया और सोचने लगा कि यह तो कोई संत है। अब तक गुप्त क्यों है?" फिर रामकृष्ण जी को स्वप्न में नदी की धारा में बहते हुए अज्ञात संत द्वारा बचाये जाने की बात भी लिखी हुई है। मेवाड़ के दांतड़ा नामक ग्राम में इनकी स्वामी कृपाराम जी से भेंट हुई थी। ये वही महात्मा थे जिन्हें रामकृष्ण जी ने स्वप्न में देखा था। कृपाराम जी ने इन्हें भगवत्-तत्त्व का उपदेश देकर इनका नाम रामचरण रख दिया था। इसी प्रकार गूदड़ वेश धारण कर २५ वर्ष तक गुफा में तप करने की बात भी नंदूराम जी ने लिखी है। इस लेख के लेखक के अनुसार स्वामी रामचरण जी ने छत्तीस हजार साखियों की रचना की जो अनुभवों से भरी हुई है तथा रामनाम महामंत्र की व्याख्या से पूर्ण है। लेख के अन्त में मृत्यु-संवत् का भी उल्लेख है।

१४ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ० रामकुमार वर्मा

डॉक्टर रामकुमार वर्मा ने अपने इस प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ में स्वामी रामचरण जी की चर्चा की है। उन्होंने इनका आविर्भावकाल संवत् १७७५ वि० माना है, जबकि उनके प्रामाणिक जीवनी ग्रंथों में स्वामी जी का जन्म संवत् १७७६ वि० है। डॉक्टर वर्मा ने स्वामी जी को रामोपासक और मूर्तिपूजा का विरोधी कहा है। उनके द्वारा संस्थापित रामसनेही सम्प्रदाय के विषय में डॉक्टर वर्मा लिखते हैं कि, "रामसनेही मत मुसलमानी मत से बहुत कुछ मिलता है दिन में पाँच बार नमाज की तरह निराकार ईश्वर की आराधना होती है।"[1]

डाक्टर वर्मा के इस वृहत् इतिहास ग्रंथ में आलोच्य कवि के अध्ययन की दृष्टि से कुछ विशेष या नया नहीं प्राप्त होता, प्रत्युत् भ्रामक एवं गलत सूचनाएँ मिलती हैं। ऐसा प्रतीत होता है डाक्टर वर्मा ने जॉन कैम्पबेल ओमेन के ग्रंथ—'मिस्टिक्स एसटिक्स एण्ड सेण्ट्स ऑव इंडिया' से स्वामी रामचरण सम्बन्धी जानकारी एकत्र की है। ओमेन महोदय को रामसनेहियों का मुसलमान मत से प्रभावित होने का भ्रम है।

मैंने स्वयं शाहपुरा में फूलडोल महोत्सव के अवसर पर उपस्थित होकर रामसनेही सम्प्रदाय की उपासना-विधि को ध्यानपूर्वक देखा है। किन्तु नमाज जैसी उपासना-विधि मेरी दृष्टि में नहीं आई। रामसनेही सम्प्रदाय के एक मर्मज्ञ विद्वान् संत (अब सम्प्रदाय

---

१. डॉ० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४११।

के आचार्य) पडित रामकिशोर जी महाराज से मैंने जिज्ञासा की कि क्या पाँच बार नमाज की भाँति की उपासना-पद्धति पथ में पचलित थी ? उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया था।

१५. भारतीय अनुशीलन ग्रथ : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (विभाग-३ मध्यकाल)

इस ग्रथ मे आचार्य क्षितिमोहन सेन का 'मध्ययुग मे राजस्थान और बगाल के बीच साधना सम्बन्ध' शीर्षक लेख प्रकाशित है। इस ग्रथ के २३वे पृष्ठ पर सन्त राम या रामचरण के सम्बन्ध म दो-तीन पक्तियो म उल्लेख मिलता है। सेन महोदय ने जयपुर के सूरसेन नामक ग्राम को स्वामी रामचरण का जन्मस्थान बतलाया है। उनके मठो का विस्तार गुजरात तक है और बगाल मे भी उनके भक्त कही-कही है।

१६. भारत का धार्मिक इतिहास : प० शिवशकर मिश्र

पडित शिवशकर मिश्र लिखित इस धार्मिक इतिहास ग्रथ म स्वामी रामचरण एव उनके द्वारा सस्थापित रामसनेही सम्प्रदाय की जानकारी प्राप्त होती है—

१ जयपुर निवासी रामचरण एक रामानदी साधु थे।

२ शाहपुरा म राज्याश्रय प्राप्त कर उन्होने सवत् १८२४ वि० म रामसनेही पथ की स्थापना की।

३ रामसनेही जन गुरु को परमेश्वर से भी बडा मानते है। स्त्रियाँ पति-सेवा से भी बढकर गुरु-सेवा को प्रधान धर्म समझती है।

४ इनमे ऊँच-नीच का भेदभाव नही है।

५. रामनाम इनका महामत्र है। 'रामरटन' मे ही मुक्ति मिलेगी, ऐसा इनका विश्वास है।

१७. रामस्नेही धर्म-दर्पण . साधु मनोहरदास जी

रामसनेही सम्प्रदाय के सत श्री मनोहरदास जी महाराज की 'रामस्नेही धर्म-दर्पण' नामक पुस्तक मुझे हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के सग्रहालय मे मिली थी। यह पुस्तक रामसनेही सम्प्रदाय के सम्बन्ध मे सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करती है। ग्रथलेखक साधु मनोहरदास जी ने रामसनेही सम्प्रदाय का मूल रामानुज सम्प्रदाय को माना है। पुस्तक की भूमिका का यह अश इस सदर्भ मे ध्यान देने योग्य है :—

"विदित हो कि भारत प्रख्यात श्रीमत् रामानुज सम्प्रदाय से आविर्भावित श्री रामानन्द साधु सम्प्रदाय हुआ। इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत आगे चलकर गलता (जयपुर राज्य) म श्री पैहारी महाराज तथा श्री अग्रदास जी महाराज बडे प्रख्यात सत हुए। उन्ही की शिष्य-परम्परा मे गूदड वेशधारी महात्मा श्री सतदास जी तथा उनके शिष्य श्री कृपाराम जी हुए। इन्ही श्री कृपाराम जी महाराज के श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, शाहपुरा (मेवाड) के मूल आचार्य श्री १००८ श्री रामचरण जी महाराज प्रगट हुए। आप परम निर्गुण गायक सत थे। आपकी

समाधि-स्थिति में जो-जो ब्रह्मानुभूतियाँ हुईं, वही अनुष्टुप श्लोकाक्षर गण्य। प्रमाण से सब। छत्तीस हजार सरस 'अनुभववाणी' के नाम से प्रसिद्ध हुई हैं।"[1]

१८ उत्तरी भारत की संत परम्परा : पं० परशुराम चतुर्वेदी

पण्डित परशुराम चतुर्वेदी लिखित 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' संत-साहित्य का गम्भीर एवं पूर्ण अध्ययन है। अपने इस विशाल ग्रंथ में चतुर्वेदी जी ने निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रामसनेही सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी रामचरण एवं सम्प्रदाय के विषय में अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख किया है—

१. संत रामचरण का संक्षिप्त परिचय—इस शीर्षक के अन्तर्गत विद्वान् लेखक ने स्वामी रामचरण के जन्मस्थान, जन्मतिथि, जाति एवं इनके पूर्व नाम का उल्लेख करते हुए ३१वें वर्ष में स्वामी कृपाराम का स्वप्न में दर्शन प्राप्त कर उनकी खोज में निकल पड़ने की बात लिखी है। दाँतड़ा ग्राम में उन्हें स्वामी कृपाराम का दर्शन मिला। वे स्वामी जी के शरणागत हुए। स्वामी कृपाराम जी ने इन्हें दीक्षित करके इनका नाम रामकृष्ण से रामचरण रख दिया। इसी में आगे स्वामी संतदास जी की मृत्युतिथि, स्वामी कृपाराम जी की मृत्युतिथि, स्वामी रामचरण द्वारा तपस्या करने की तिथि एवं अवधि का उल्लेख मिलता है।

२. मत—इस शीर्षक के अन्तर्गत सम्प्रदाय स्थापना का समय, देवी-देवताओं की पूजा का विरोध, फलस्वरूप लोगों द्वारा उत्पीड़न की बात लिखी है। चतुर्वेदी जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि 'रामावत' एवं 'रामानंदी सम्प्रदाय' का प्रभाव तपस्या के बाद जाता रहा और ये निराकार ईश्वर की उपासना में विश्वास करने लगे। इसी में निर्गुण राम के नामस्मरण की चर्चा के साथ लेखक 'नमाज की भाँति पाँच बार प्रार्थना' की बात भी कह गया है।

३. प्रेम-साधना—संत रामचरण द्वारा प्रेम-साधना की महत्ता के प्रतिपादन के सन्दर्भ में लेखक का कहना है कि "वास्तव में प्रेम को यह महत्त्व प्रदान करने से ही कारण इनके पंथ का नाम 'रामसनेही सम्प्रदाय' हो गया।"[2] स्वामी रामचरण रचित 'शब्द प्रकाश' की पंक्तियों को उद्धृत कर लेखक ने उनके द्वारा राम ब्रह्म की उपासना-पद्धति के स्वरूप की चर्चा की है।

४. मृत्यु व शिष्य—इस शीर्षक के अन्तर्गत निम्नलिखित विषय की सूचनायें संकलित मिल जाती हैं—

(क) किसी राजकर्मचारी द्वारा स्वामी रामचरण की हत्या का षड्यंत्र। किन्तु हत्या करने के उद्देश्य से किये गये व्यक्ति पर स्वामी जी के कथन एवं व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ना तदुपरांत उसके द्वारा क्षमा-याचना।

---

१ साधु श्री मनोहरदास जी रामस्नेही धर्म-दर्पण, पृ० १।

२ पं० परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ६१६

(ख) स्वामी जी की मृत्यु-तिथि का उल्लेख।

(ग) उत्तराधिकारी का समय एव नामोल्लेख।

(घ) स्वामी रामचरण के प्रमुख एव सामान्य शिष्यो की सख्या का उल्लेख।

(ङ) प्रकाशित 'वाणी' एव ग्रथो का उल्लेख।

५. अनुयायी—इस परिच्छेद म रामसनेही सम्प्रदाय के अनुयायियो से सम्बन्धित चर्चा मिलती है—

(क) रामसनेही साधु गले म माला पहनते ह और ललाट पर श्वेत चन्दन का तिलक लगाते है।

(ख) ये अहिसा मे पूर्ण विश्वास करते ह। दीपक जलाकर उसे ढँक देते ह, जिससे कोई कीडा उससे न जल मरे। रात मे खाना-पीना नही करते। 'आधे अषाढ से आधे कातिक के समय तक ये अत्यन्त आवश्यक कार्य पडने पर ही घर से बाहर निकलते है, क्योकि उस समय कीडो के कुचले जाने की आशका रहती है।'[1]

(ग) पथ मे जात-पाँत का भेदभाव नही है। किन्तु पथ मे प्रवेश से पूर्व उन्हे महत के पास परीक्षा देनी पडती है। वैरागी बनने के लिए ४० दिनो तक उन्हे शिक्षा दी जाती है।

(घ) बारह व्यक्तियो का समुदाय पथ का सचालन करता है। उनमे से किसी के मरने पर योग्य व्यक्ति द्वारा उसके स्थान की पूर्ति कर ली जाती है।

(ङ) साधु बनते ही सिर के बाल शिखा छोडकर कटा देते है। 'बदीही'[2] और 'मौनी' साधुओ की दो कोटियाँ होती है।

(च) महत के मरने पर उसके उत्तराधिकारी का चुनाव शाहपुरा मे एकत्र साधुओ एव गृहस्थो की सभा द्वारा योग्यता के आधार पर होता है।

(छ) अत मे रामसनेही सम्प्रदाय की वशावली भी दी हुई है।

(ज) लेखक ने फुटनोट मे प्रोफेसर वी० वी० राय की 'सम्प्रदाय' पुस्तक का हवाला दिया है जो मिशन प्रेस, लुधियाना मे सन् १९०६ म प्रकाशित हुई थी। प० परशुराम चतुर्वेदी से, जब वे एक बार प्रयाग आए थे, मैने प्रो० वी० वी० राय और 'सम्प्रदाय' की चर्चा की थी। श्री चतुर्वेदी जी ने बतलाया कि प्रो० राय ईसाई थे और सदर्भित पुस्तक उर्दू मे है।

(झ) पुस्तक के पृष्ठ ६१९-२० पर रामसनेही सम्प्रदाय की वशावली और स्वामी रामानन्द जी की शिष्य-परम्परा मे इसका विकास भी दिखलाया गया है, जो इस प्रकार है—

---

१ प० परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० ६१९।

२ वास्तव मे यह 'विदेही' शब्द है। सम्प्रदाय मे मौनी, विदेही और परमहस साधुओ की तीन कोटियाँ है। मै समझता हूँ यह भ्रम उर्दू पुस्तक 'सम्प्रदाय' (लेखक वी० वी० राय) से इस शब्द के लेने से हुआ है।—लेखक

स्वामी रामानन्द
|
स्वामी अनन्तानन्द
|
कृष्णदास पयहारी
|
अग्रदास
|
प्रेमदास
|
भराराम
|
नारायणदास
|
सतदास

उपर्युक्त वंशावली के अन्तिम महात्मा स्वामी सतदास जी के शिष्य स्वामी कृपाराम जी हुए। ये ही स्वामी कृपाराम जी रामसनेही सम्प्रदाय के मूलाचार्य स्वामी रामचरण जी के गुरु थे। ये स्वामी कृपाराम जी दाँतड़ा की वैष्णव-गद्दी के महन्त थे। स्वामी रामचरण से अब तक की वंशावली इस प्रकार है—

स्वामी रामचरण
|
रामजन
|
दूल्हेराम
|
चतुर दास
|
नारायणदास
|
हरिदास
|
हिम्मतराम
|
दिलशुद्धराम
|
धर्मदास
|
दयाराम
|
जगरामदास
|
निर्भयराम[1]

---

१ निर्भयराम जी के बाद दर्शराम जी आचार्य हुए थे, किन्तु उन्होंने आचार्य पद का परित्याग कर दिया। वर्त्तमान आचार्य स्वामी रामकिशोर जी हैं।—लेखक

१९. संतकाव्य : प० परशुराम चतुर्वेदी

संतकाव्य ग्रंथ वस्तुतः संग्रह ग्रंथ है। इसमें संत कबीर से लेकर आधुनिक युग के संतों का परिचय एवं उनकी रचनाओं में से चुनकर कुछ कविताएं संकलित हैं। स्वामी रामचरण का संक्षिप्त परिचय एवं उनकी 'अणभै वाणी' में चुनकर कुछ अंश दिये गये हैं। आरम्भ में एक अच्छी भूमिका भी है।

२०. द कल्चरल हेरिटेज ऑव इंडिया : स० हरिदास भट्टाचार्य

श्री रामकृष्ण जन्मशती प्रकाशन समिति द्वारा जन्मशती स्मारिका के रूप में इस ग्रंथ का प्रकाशन तीन भागों में सन् १९३७ में हुआ था। लगभग २०० पृष्ठों के इस ग्रंथ के दूसरे भाग में पृ० ३६८ पर आचार्य क्षितिमोहन सेन द्वारा स्वामी रामचरण एवं उनके पंथ की चर्चा हुई है। सन् १९५८ में इस ग्रंथ के नवीन संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण का प्रकाशन हुआ। अब सेन महोदय का यह लेख अंग्रेजी में 'द मिस्टिक्स ऑव नॉर्दर्न इंडिया' के नाम से संगृहीत हुआ।

२१. वीर विनोद – भाग २ : कविराजा श्यामलदास

इस इतिहास ग्रंथ में यद्यपि स्वामी रामचरण का कोई उल्लेख नहीं है किन्तु फूलडोल महोत्सव की चर्चा अवश्य मिलती है। सम्प्रदाय के सातवें महंत हिम्मतराम जी द्वारा राणा सरूपसिंह के आग्रह पर उदयपुर जाकर फूलडोल मनाना इस ग्रंथ के पृष्ठ २११७ पर वर्णित है। विनोदकार लिखता है—"विक्रमी फाल्गुन शुक्ल ७ (हि० १२९१ ता० ५ मुहर्रम ई० १८७४ ता० २३ फरवरी) को शाहपुरा के रामसनेही महंत हिम्मतराम अपनी सम्प्रदाय की रीति का फूलडोल करने के लिए उदयपुर आये।"

इसी पृष्ठ पर फुटनोट में रामसनेहियों के फूलडोल पर्व का संक्षेप में उल्लेख मिलता है। लेखक लिखता है—"शाहपुरा के रामसनेही साधु होली के दिन फूलडोल का उत्सव मनाते हैं। इस उत्सव पर दूर-दूर से रामद्वारों के रामसनेही साधु आकर अपने महंत को हाजिरी देते हैं और उनको मानने वाले हजारों यात्री भी दर्शन करने को आते हैं। यह जल्सा हर साल शाहपुरे में होता है, लेकिन इस वर्ष का उत्सव महाराणा साहिब की इच्छानुसार उदयपुर में किया गया।"

२२. सत्यार्थ प्रकाश : स्वामी दयानन्द सरस्वती

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में रामसनेही सम्प्रदाय एवं स्वामी रामचरण की समीक्षा के नाम पर कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं। पंथ एवं पंथ-प्रवर्त्तक का उल्लेख करने के बाद लेखक ने खण्डन आरम्भ कर दिया है। 'सत्यार्थ

---

१ यह संदर्भ पीछे आ चुका है, दे० श्री रामकृष्ण सेंटिनरी मेमोरियल, वॉल्यूम २।

२ द कल्चरल हेरिटेज ऑव इंडिया, पृ० ३७७।

प्रकाश' में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने रामसनेही सम्प्रदाय का सही चित्र न देकर छीछालेदर करने का प्रयास किया है। एक उपेक्षाभरी दृष्टि से सम्प्रदाय को देखकर स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं—"थोड़े दिन हुए कि एक 'रामसनेही' मत शाहपुरा से चला है। उन्होंने सब वेदोक्त धर्म को छोड़कर 'राम-राम' पुकारना अच्छा माना है। ... परन्तु जब भूख लगती है तब रामनाम में से रोटी शाक नहीं निकलता।"[1]

राम के नाम-स्मरण भाव पर खिल्ली उड़ाने के बाद स्वामी दयानन्द रामसनेहियों पर व्यंग्यात्मक आक्षेप करते हैं—"ये भी मूर्तिपूजा को धिक्कारते हैं परन्तु आप स्वयं मूर्ति बन रहे हैं।"[2]

'सत्यार्थ प्रकाश' में रामसनेही सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का खण्डन तो हुआ ही है, संतों के चरित्र पर भी कीचड़ उछाला गया है। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है—"स्त्रियों के संग में बहुत रहते हैं क्योंकि रामजी को 'राम की' के बिना आनंद ही नहीं मिल सकता था।"[3]

पंथ के सिद्धान्तों एवं संतों के आचरण के प्रति अपशब्दों का प्रयोग करने के बाद स्वामी महाशय ने पंथ-प्रवर्त्तक स्वामी रामचरण के प्रति भी अनादर भाव के वचनों का प्रयोग किया है। वे लिखते हैं—"अब इनका जो गुरु हुआ है रामचरण ... यह ग्रामीण एक सादा सीधा मनुष्य था। न वह कुछ पढ़ा था, नहीं तो ऐसी गपड़चौथ क्यों लिखता।"[4]

'सत्यार्थ प्रकाश' में स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा सम्प्रदाय एवं उसके प्रवर्त्तक के संबन्ध में लिखित विचारों का अध्ययन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लेखक स्वस्थ समीक्षक नहीं है। उसे रामसनेही सम्प्रदाय में दोष ही दृष्टिगोचर हुए हैं। साथ ही पंथ-संस्थापक स्वामी रामचरण के प्रति अनादर भाव व्यक्त करने के लिए उन्हें ग्रामीण, अनपढ़ आदि कहना किसी भी दशा में उचित नहीं। पर उनके मस्तिष्क की हीन भावना अपनी सीमा पार कर तब व्यक्त होती है जब उन्हें रामस्नेही और राँडस्नेही में कोई अन्तर ही नहीं प्रतीत होता।

स्वामी दयानन्द के इन विचारों से स्वामी रामचरण एवं उनके पंथ रामसनेही सम्प्रदाय के अध्ययन में कोई सहायता नहीं मिलती। हाँ, सम्प्रदाय की एक भद्दी तस्वीर, पंथ-प्रवर्त्तक का एक विरूप चेहरा देखने को मिलता है। सम्प्रदाय के सम्बन्ध में ऐसी भ्रामक एवं गलत सूचनाएँ स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे समाज-सुधारक से नहीं अपेक्षित थी।

२३ स्वामी रामचरण—एक अनुशीलन : डॉ० अमरचन्द वर्मा

स्वामी रामचरण के जीवन एवं विचारों से सम्बन्धित यह शोध-प्रबंध गुजरात विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हो चुका है। इस ग्रंथ के प्रकाशक श्री छगनलाल भगवानदास जरीवाला एवं श्री छगनलाल भूखणदास जरीवाला सूरत [गुजरात]

---

१ स्वामी दयानन्द सरस्वती : सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३७१।
२ वही, पृ० ३७१।
३ वही, पृ० ३७१।
४. वही पृ० ३७२।

है। यह शोध प्रबंध छ अध्यायो म लिखा गया है। लेखक डॉक्टर अमरचन्द वर्मा ने स्वामी रामचरण की जीवनी, रचनाओ, सम्प्रदाय, विचारदर्शन आदि विभिन्न विषयो का अध्ययन परिश्रमपूर्वक किया है। इस अध्ययन के कतिपय स्थलो पर मै डॉक्टर वर्मा से सहमत नही हूँ, फिर भी यह पुस्तक विषय के अध्ययन स सीधे सबद्ध है। मतभेदो के बावजूद भी मेरे अध्ययन म यह पुस्तक उपयोगी रही है। इस अध्ययन मे डॉक्टर वर्मा तटस्थता, सहृदयता एव वैज्ञानिकता का दावा करते है। पुस्तक के 'प्राक्कथन' म 'इस अध्ययन की विशेषताएँ' शीर्षक के अन्तर्गत ८वी विशेषता की पक्तियाँ इस तथ्य मे सबद्ध है। वे लिखते है—'प्रस्तुत प्रबध के तथ्यो का अध्ययन करते समय पूर्णत तटस्थ रहा गया है। किन्तु तथ्यो के विवेचन मे सहृदयता बरती गई है। अध्ययन को अधिक से अधिक वैज्ञानिक बनाने का विनम्र प्रयास किया गया है।"[1]

२४ रामसनेही सम्प्रदाय[2] : डॉक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी

डॉक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी लिखित शोध प्रबध 'रामसनेही सम्प्रदाय' गोरखपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हो चुका है। इस ग्रथ की जानकारी प्राप्त होते ही मैने गोरखपुर विश्वविद्यालय के ग्रथालय से सम्पर्क स्थापित किया। यह शोध प्रबन्ध तीनो रामसनेही सम्प्रदायो क्रमश शाहपुरा, खैडापा और रैण के मूलाचार्यो तथा तीनो ही सम्प्रदाय के अन्य सत कवियो का सक्षिप्त विवरण तो प्रस्तुत करता ही है, रामसनेही सम्प्रदाय के स्वरूप एव दर्शन पर भी प्रकाश डालता है। लेखक ने तीनो सम्प्रदायो मे कोई भेद नही देखा है और तीनो को एक ही वृक्ष की तीन शाखाओ के रूप मे निरूपित किया है।

इस सबध मे मेरा निवेदन है कि इन तीनो ही रामसनेही सम्प्रदायो का एक वृक्ष की शाखा जैसा कोई सबध नही है। तीनो ही एक दूसरे से असम्बद्ध सम्प्रदाय है तथा तीन आचार्यों द्वारा अलग-अलग स्थानो पर स्वतन्त्र रीति से स्थापित किये गये है। यह एक सयोग ही है कि तीनो आचार्यो ने अपने-अपने सम्प्रदाय का नाम रामसनेही रखा है। मैने शाहपुरा रामसनेही सम्प्रदाय के अधिकारी सतो से जब तीनो सम्प्रदायो के आपसी सबधो की बात पूछी तो उन लोगो ने ऐसे किसी सबध को स्पष्टतया अस्वीकृत कर दिया। इन्दौर के सत श्री सन्मुखराम जी ने मुझे बताया कि न तो शाहपुरा का रामसनेही सम्प्रदाय रैण या खैडापे मे से किसी की शाखा है और न रैण या खैडापा के पथ शाहपुरा की शाखा हैं।

सन् १९५३ म फूलडोल पर्व के अवसर पर मैं शाहपुरा गया था। वहाँ मैने दाँतडा की वैष्णव गद्दी के महत का आगमन देखा।[3] एक दादू पथी सत भी वहा दिखाई पडे थे, किन्तु

---

१ स्वामी रामचरण—एक अनुशीलन प्राक्कथन, पृ० च।

२ रामसनेही सम्प्रदाय डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी, आनन्द प्रकाशन, दीवानी मिसिल, फैजाबाद, १९७३ ई०।

३ स्मरणीय है कि दाँतडा की वैष्णव गद्दी के पीठाचार्य स्वामी कृपाराम जी स्वामी रामचरण के गुरु थे। स्वामी रामचरण दाँतडा गद्दी को गुरुगद्दी होने के कारण बडा सम्मान

रेण या खेडापा के रामसनेही पथ का कोई भी साधु वहा नही जाता था। वैद्य केवलराम स्वामी ने 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के 'प्रकाशकीय' मे इस सन्दर्भ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि—"नाम साम्य से जनसाधारण का ही नही, विद्वानो तक को एक सम्प्रदाय होने की भ्रान्ति हो जाती है।"[1]

अत मै इस निष्कर्ष पर हू कि तीनो सम्प्रदायो का अलग-अलग अध्ययन अपेक्षित हैं। कम से कम शाहपुरा रामसनेही सम्प्रदाय का विशाल साहित्य तो कई खण्डो मे विस्तृत अध्ययन की अपेक्षा रखता है। समीक्षा के साथ-साथ सम्प्रदाय के भक्त कवियो द्वारा रचित ग्रथो के पाठ-सम्पादन की समस्या है। फिर भी डॉक्टर त्रिपाठी का यह शोधप्रबन्ध एक महत्त्वपूर्ण कृति है।

अब विवेच्य कवि के अध्ययन मे सहायक साम्प्रदायिक सूत्रो की समीक्षा प्रस्तुत है।

२५. *गुरलीला विलास : जगन्नाथ*

इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति मुझे गोराकुण्ड रामद्वारा, इन्दौर के सत श्री मन्मुखराम जी से प्राप्त हुई थी। इस हस्तलिखित सग्रह मे तीन पुस्तके है—

१ रामपद्धति, २ गुरलीला विलास, ३ श्री दुल्हराम जी महाराज की महिमा। इस हस्तलिखित सग्रह ग्रथ के प्रतिलिपिकर्ता श्री नानदराम थे जिन्होने पोष कृष्ण १२, सवत् १९७९ वि० को इसकी प्रतिलिपि इन्दौर के गोराकुण्ड रामद्वारा मे पूर्ण की।

'गुरलीला विलास' जगन्नाथ माहेश्वरी द्वारा लिखित ग्रथ है। जगन्नाथ स्वामी रामचरण के शिष्यो मे से एक थे। 'गुरलीला विलास' के अत मे ग्रथकार ने ग्रथ-परिचय इस प्रकार दिया है—

"साहिपुर सुषधाम राजकरे अमरेस नर्प।
जगन्नाथ सो नाम जात जेकि मुमेसरी॥
अठारा सै अरसाठ माघ सुध पचमी।
ग्रंथ बनायो हाट बार शनीचर जानिऐ॥
गुरलीला ज विलास बुध माफक बरन्यौ कछू।
जगन्नाथ अभ्यास किरपा सुत जानीऐ॥
ऐ हे ग्रथ बाचे सुणे हिरदे करे विचार।
रामभजन जन संग करे तो तिरतां लगै न बार॥"[2]

देते थे। दाँतडा के आचार्य को स्थान देने की यह परम्परा तभी से चली आ रही है। आज भी दाँतडा के आचार्य के आगमन पर उन्हे शाहपुरा मे ससम्मान आचार्य के समकक्ष आसन मिलता है।—लेखक

१ वैद्य केवलराम स्वामी श्री रामस्नेही सप्रदाय, प्रकाशकीय, पृ० १।

२ गुरलीला विलास की हस्तलिखित प्रति।

उपर्युक्त के अनुसार यह ग्रथ शाहपुरा म निर्मित हुआ था। ग्रथकार न अपना परिचय 'जगन्नाथ मुमेसरी' और 'किरपा सुत' लिखकर दिया ह अर्थात् इनके पिता का नाम किरपा था और ये मुमेसरी जाति के थे। ग्रथ 'गुरलीला विलास' की रचना इन्होने माघ सुदी पचमी, सवत् १८६० वि० शनिवार के दिन हाट मे की थी। अतिम दो पक्तियो म ग्रथ की महिमा लिखी हुई है।

'गुरलीला विलास' म जगन्नाथ न स्वामी रामचरण के जीवन की आद्यन्त कथा लिखी है। जीवन की आरमिक कथा कवि ने कानो सुनी थी पर अन्त की उसकी अपनी आँखो देखी थी—

"आदि कथा श्रवणा सुनी निजर्‌या देखी अत।
जगन्नाथ वरणी उभे सो सुणियो बुधवन्त॥"[1]

प्रामाणिकता

इस 'गुरलीला विलास' ग्रथ का रचयिता जगन्नाथ मुमेसरी स्वामी रामचरण के जीवन-वृत्त के सदर्भ म लिखे गए विवरण की प्रामाणिकता के विषय मे भी अन्त मे लिखता ह जिससे ग्रथ की प्रामाणिकता मे कोई सदेह नही रह जाता। ग्रथकार के अनुसार यह गुरलीला अमृत की बूटी सदृश है जिसे उसने जसा सुना व देखा था, बुद्धि के अनुसार कह डाला—

"गुरलीला इम्रत की बुटी।
सो हम भणी सुणी सब दीठी॥"[2]

वह कहता हे कि रामचरण महाराज १८५५ बरस मे शरीर त्याग निर्वाण म लीन हुए, यह सारी दुनिया जानती हे। जगन्नाथ उस दिन वहाँउपस्थित था, किन्तु उस दिन लीला नही लिखी गई। यह लीला पाच वर्ष बाद लिखी गई—

"रामचरण महराज जन, तन तज गऐ निरवाण।
अठारा सैं पचपन बरस जाणे सकल जहान॥
ता दिन लीला ना लिखी हाजर था जगन्नाथ।
पाच बरस पाछे लिखी जाको इ अचरज आथ॥"[3]

जगन्नाथ ने इसी सदर्भ म लिखा ह कि एक चतुर भाई ने जिज्ञासा की कि तुमने जन्म-कथा कान से सुनी है, स्वय तुम नही जानते। इसलिए मेरे मन मे शका उत्पन्न हुई हे। तुम इसका समाधान करो कि अस्सी बरस की वार्ता कैसे तुम्हारे हाथ लगी—

"जनम कथा काणै सुणी तुम नहीं जानत आप।
ऐसे सै उर ऊपजी, जाको करो निसाफ॥

---

१ गुरलीला विलास, हस्तलिखित प्रति।
२ वही।
३. वही।

असी बरस की वार्ता, फेरो आई हाथ।
ताको ऊतर अब कहूं सो बरणो जगन्नाथ॥"[1]

इस प्रश्न का उत्तर भी इसी सिलसिले में कवि ने दिया है:---

'एक बार रामजन महाराज ने चाटसू में चौमासा किया। हम सभी रामसनेही दर्शनार्थ वहाँ गए। मार्ग में तीसरा विश्राम पार कर सोडा पहुँच गए। गुरुदेव की जन्मभूमि को हमने प्रणाम किया और उस नगर में दो पहर ठहरे। यह संयोग १८६० के वर्ष में बना था। वहाँ सभी गुरुदेव की आदि कथा कहने लगे। तभी वहाँ हम लोगों को एक शतवर्षीय व्यक्ति प्रेमपूर्वक मिला। उसने बीजावर्गी जाति की कथा कह सुनायी। उस वृद्ध पुरुष ने स्वामी जी के माता-पिता का नाम बतलाया और जिस घर में उनका जन्म हुआ था, उसे भी दिखलाया। उसने सभी बातें अलग-अलग बतलाईं और हमने उसे हृदयस्थ कर लिया'।[2]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण की आदि कथा का जो वर्णन जीवनीकार जगन्नाथ ने किया है, वह प्रामाणिक है। जगन्नाथ ने स्वयं संवत् १८६० वि० में सोडा जाकर छानबीन की थी। वहाँ उन्होंने एक शतवर्षीय पुरुष से भेंट की; जिससे उन्हें स्वामी रामचरण के आरंभिक जीवनवृत्त की जानकारी मिली। स्वामी जी के जन्म-सदन को भी जीवनीकार ने अपनी आँखों देखा था। उनके पिता और माता का नाम भी उन्हें वहीं उसी सौ वर्षीय वृद्ध मनुष्य से ज्ञात हुआ। इसके अतिरिक्त जीवन के शेष विवरण का साक्षी वह स्वयं है। अतः हम इस निष्कर्ष पर हैं कि इस ग्रंथ में लिखित स्वामी रामचरण का जीवनवृत्त प्रामाणिक है।

२६. ब्रह्मसमाधिलीन जोग : जगन्नाथ

'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' ग्रंथ स्वामी रामचरण की रचनाओं के संग्रह 'अणभै वाणी' के अन्त में पृ० १०७५ से १०८६ पर मुद्रित है। उस ग्रंथ के रचयिता भी स्वामी जी के शिष्य

---

१ गुरलीला विलास ह० प्र०।

२ जनमभूमि गुरुदेव की पल से करी प्रनाम।
पहर दोइ ता नगर मे सबही कीयो मुकाम।
बरस साठ के साल से असो बण्यो सजोग।
आदि कथा गुरुदेव की कहन लगे सब लोग।
सौ बरसा को पुरस इक मिलीयो हेत लगाइ।
विजा बरगी जात को सब विधि कही सुणाइ।
मात पिता का नाम बताया।
जनम लीयो सो भवन दिखाया।
सारी बात भिनोभिन कही।
सो सब हम हिरदे धर रही।
---वही।

एव जीवनीकार जगन्नाथ ही है। जगन्नाथ न इस ग्रथ के रचना-काल का उल्लेख निम्न-लिखित पक्तियो मे इस प्रकार किया है--

"अठारा से पचपन बरस, रवि चवदश वैशाख।
ग्रथ सम्पूरण जगन्नाथ, पुनि जानो सुदि पाख॥"[1]

उपर्युक्त कथन स स्पष्ट है कि इस ग्रथ की रचना-समाप्ति बैसाख सुदी चतुर्दशी रविवार, सवत् १८५५ वि० को हुई थी। इस सदर्भ मे यह स्मरणीय है कि स्वामी रामचरण की मृत्यु बैसाख बदी पचमी बृहस्पतिवार, सवत् १८५५ वि० को हुई थी, अर्थात् स्वामी जी के निधन के चौबीसवे दिन यह ग्रथ लिखकर पूर्ण हो गया था। सभव है कि स्वामी जी के ब्रह्मलीन होने के दिन से ही जगन्नाथ ने इस ग्रथ का लेखन आरभ कर दिया हो।

'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' म जीवनीकार न स्वामी रामचरण का सक्षिप्त जीवन-चरित, क्रमश जन्मसवत्, जन्मस्थान, गृहत्याग, वैराग्यधारण करने से लेकर पथ-स्थापन, शिष्य-समाज, भीलवाडा-शाहपुरा, शाहपुरा के नरेश भीमसिह, अमरसिह, फूलडोल, वाणी रचना एव मृत्यु तक का विशद वर्णन किया है। जगन्नाथ जो स्वामी रामचरण के बहुत निकट सम्पर्क मे थे। उन्होंने स्वामी जी की ब्रह्मलीन-अवस्था की बडे विस्तार के साथ चर्चा की है। ग्रथ का अधिकाश वर्णन आँखो देखा हाल है।

स्वामी रामचरण के उत्तराधिकारी स्वामी रामजन जी ने अपने ग्रथ 'रामपद्धति' मे स्वामी रामचरण के निधन-प्रसग की चर्चा की है और इस सदर्भ मे उन्होने जगन्नाथ रचित इस ग्रथ 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।[2] स्वामी रामचरण के अध्ययन म यह ग्रथ भी अत्यन्त प्रामाणिक एव उपयोगी है।

२७. रामपद्धति . स्वामी रामजन

ग्रथ 'रामपद्धति' प्रकाशित 'अणभै वाणी' के अन्त मे पृष्ठ १०७१ से १०७५ पर मुद्रित है। इस लघुग्रथ के रचयिता रामसनेही सम्प्रदाय के द्वितीय आचार्य स्वामी रामजन जी है। स्वामी रामजन, स्वामी रामचरण के शिष्य एव उत्तराधिकारी थे। इस लघुग्रथ मे उन्होने अपने गुरु की महिमा का गान किया है। एकाध स्थल पर उन्होने स्वामी जी के जीवन का प्रसग भी उपस्थित कर दिया है। जैसे स्वामी रामचरण की मृत्यु तिथि का स्पष्ट उल्लेख[3] एव

---

१ 'अणभै वाणी', पृ० १०८६।

२ जाकी रैस जो अनुक्रम्मसू, जगन्नाथ कछु भाखी।
ब्रह्म समाधि लीन ग्रथ जो, ताके माही दाखी।
—अ० वा० मे सगृहीत 'रामपद्धति,' पृ० १०७४

३. रामहि राम भई ध्वनिसार,
सवत अष्टादश पचपन्ना,
बैसाख बदी की पाचे परगट,

तत्संदर्भ में जगन्नाथ रचित 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' ग्रंथ की चर्चा। किन्तु ग्रंथकार ने इस ग्रंथ के रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया है। फिर भी इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इस ग्रंथ की रचना 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' के बाद ही हुई है।

इस ग्रंथ में ग्रंथकार ने फूलडोल महोत्सव के अवसर पर स्वामी रामचरण के दर्शनार्थ नगरराज के उपस्थित होने की बात भी कही है।

"नगर लोग अरु नगरराज।
धनभाग कहै महा ये समाज॥"[1]

इस 'अणभै वाणी' संग्रह के अन्त में 'प्रह्लाद चरित' नामक लघु पुस्तक भी जुडी हुई है। फूलडोल के ही अवसर पर जब महाराज रामचरण जी सूर्य के समान सुशोभित सबको दर्शन देकर निहाल करते थे, उस समय इस 'प्रह्लाद चरित' का उच्चारण भी होता था। इस सभा को रामजन जी 'राम सभा' कहते है और इसमे नगर के नर-नारियो तथा राजा के उपस्थित होने की बात की पुष्टि भी करते है —

"महराज आप आसण बिराज।
जहा फूलडोल समयो समाज॥
विवि रूप आप दीदार शोभ।
दर्श कियां मिट जात क्षोभ॥

जहा राम सभा भरपूर संत।
सब करै भजन निज नाम तंत॥

अरु रामसनेही बहुत वृन्द।
तहा आय बैठे नरंद॥
नगर लोग नर नारि जेत।
सब चल आये दर्श हेत॥
प्रह्लाद चरित करि हे उचार।
जहां राम टेक जन को उधार॥"[2]

'गुरुलीला विलास' और 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' में जगन्नाथ ने मृत्युतिथि का दिन और संवत् के साथ उल्लेख किया है पर स्वामी रामजन ने अपने इस 'रामपद्धति' ग्रंथ में दिन, तिथि, संवत् के साथ पहर का भी उल्लेख कर दिया है।

गुरुवार किये जब गवना।
—अ० वा० : रामपद्धति, पृ० १०७८।

१ वही, पृ० १०७३।
२ वही, पृ० १०७३।

"ये रामचरण महाराज राज।
हम वपु त्यागन करिहि आज॥
संवत अठारा सै पचान।
वैसाख बदी पाचे प्रमान॥
गुरुवार पहर तीजे तयार।
आप भये निज निराकार।"[1]

उपर्युक्त विवेचन हम इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि स्वामी रामजन रचित यह लघुग्रंथ विवेच्य विषय के अध्ययन म सहायक है।

२८. स्वामी रामचरणजी म्हाराज की परची : लालदास

श्रीरामद्वारा गोराकुण्ड, इन्दौर के सत श्री सन्मुखराम जी से मुझे एक हस्तलिखित गुटका पोथी सन् १९५३ में प्राप्त हुई थी। इस गुटका पोथी मे स्वामी सतदास जी की साखी, स्वामी रामचरण जी की संक्षिप्त वाणी, गुरु महिमा, नाम प्रताप, शब्द प्रकाश, मनखण्डन और चितावणी आदि ग्रथो के साथ अत म 'स्वामी रामचरण जी म्हाराज की परची' भी सलग्न है। यह गुटका पोथी दो हस्तलेखों मे है। प्रारम्भिक भाग मोटे अक्षरो मे तथा अतिम भाग सुदर महीन अक्षरो मे लिखा गया है। इस गुटका पोथी के हस्तलिपिकार साधु रामदयाल हैं जिन्होने पोथी के अत मे लाल स्याही से निम्नलिखित उल्लेख किया है—

"इति परची सपुरण॥ गोटको सपुरण ॥ लीष्यतम॥
ग्राम कपासन मध्ये॥ हस्ताअक्षरस॥ साधु रामदयालस्य॥
ग्राम॥ इन्दोर नीवासी॥ मीती॥ जेठ वदि॥ ग्यारस॥
सुकरवार॥ स० १९७७॥ राम॥ राम॥"

इस 'परची' ग्रथ के रचयिता साधु लालदास है। परचीकार लालदास ने स्वामी रामचरण के जीवनीकार जगन्नाथ की भाँति न तो अपना परिचय दिया है और न ग्रथ-परिचय ही। जगन्नाथ रचित दोनो ग्रथो 'गुरलीला विलास' तथा 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' की अपेक्षा यह ग्रथ अधिक व्यवस्थित ढग स लिखा गया है किन्तु तथ्यो म कोई अन्तर नही है, सिवाय इसके कि जीवनवृत्त के अलावा स्वामी जी के जीवन म चमत्कारी घटनाओ का भी समावेश परचीकार ने कर दिया है। स्वामी रामचरण की जीवनी सबधी घटनाएँ, तिथियाँ, स्थानादि एव उनके सपर्क के लोगो तथा शिष्यो की नामावली मे भी जीवनीकार जगन्नाथ से एकरूपता है। अत इस ग्रथ मे उल्लिखित तथ्यो की प्रामाणिकता भी निर्विवाद है। परचीकार का अपना परिचय न देना ही खटकने वाली बात है। इस परिचय के अभाव म लालदास के विषय मे भिन्न-भिन्न

१ अ० वा० रामपद्धति, पृ० १०७३।

२ रामपद्धति ग्रथ की हस्तलिखित प्रति भी मुझे गोराकुण्ड रामद्वारा, इन्दौर के सत श्री सन्मुखराम जी से प्राप्त हो गई थी।—लेखक

अनुमान लगाये जाते हैं। लालदास के विषय में यह अनुमान बहुश्रुत है कि वे स्वामी रामचरण जी के काका गुरु थे। किन्तु मैं इस अनुमान से कदापि सहमत नहीं हूँ। इस अनुमान का पहले न तो कोई आधार है और यदि हो भी तो वह अविश्वसनीय है, क्योंकि परचीकार लालदास द्वारा 'परची' में स्वामी रामचरण के प्रति अभिव्यक्ति की भाषा जिस आदर एवं पूज्य भाव से पूरित है, उसे देखते हुए लालदास परचीकार को काका गुरु तो नहीं ही कहा जा सकता। कितना अच्छा होता यदि परचीकार ने परची का रचनाकाल तथा अपने विषय में संक्षेप में उल्लेख कर दिया होता। जो भी हो, संत रामचरण के जीवन, कार्य एवं महत्त्व का विवेचन परचीकार ने व्यवस्थित शैली में किया है। यह ग्रंथ इस अध्ययन में पर्याप्त सहायक सिद्ध होता है।

उद्धृत उद्धरण से इतना और स्पष्ट हो जाता है कि 'परची' की प्राप्त हस्तलिखित प्रति इन्दौर निवासी साधु रामदयाल द्वारा लिखी गई है और इसे उन्होंने कमासन ग्राम में ज्येष्ठ बदी ११, शुक्रवार, संवत् १९७७ वि० को पूर्ण किया था।

२९. फूलडोल समाद . जगन्नाथ

'फूलडोल समाद' की हस्तलिखित प्रति भी मुझे गुटका पोथी के रूप में गाराकुण्ड रामद्वारा के संत श्री सन्मुखराम जी से प्राप्त हुई थी। जगन्नाथ रचित इस ग्रंथ की प्राप्त प्रति के हस्तलिपिकार जोशी रूपराम है। अपने अन्य ग्रंथों की भाँति इस ग्रंथ के अन्त में भी जगन्नाथ जी ने ग्रंथ की विषयवस्तु का संक्षेप में उल्लेख करते हुए ग्रंथ-परिचय के साथ अपना परिचय भी दिया है—

"बोहोत उछाह हिरदे प्रगटायो।
जगन्नाथ तब ग्रंथ सुनायो॥
सब संतन मिलि किरपा कीन्ही।
तब ये जुगति भली में चीन्ही॥
जगन्नाथ कहै सरणि तुम्हारी।
सतगुरुजी कूं लाज हमारी॥"[1]

फूलडोल की महिमा के वर्णन में कवि कहता है—

"फूलडोल महमा अधिक, बरनूं कहा विचार।
रोज सहरि हरिजनन को, कहत सुनत भवपार॥"

जगन्नाथ ने इस ग्रंथ को सावन वदी ५, मंगलवार संवत् १८४५ वि० को नयनकोट में पूर्ण किया। लेखक कहता है कि बिना गुरु-कृपा के यह कार्य संभव नहीं था—

"संबत अठारा सै बरस चालीसा पर पाच।
सावण बुधि पांचि मंगल इहु विधि जानूं सांच॥

---

१ फूलडोल समाद हस्तलिखित प्रति।
२. वही।

चत्रकोट मे एहि बन्यो, ग्रथ सपूरन सोइ।
जगन्नाथ गुरु महरि बिन, एह कारिज नहि होइ॥"[1]

ग्रथकार ने अन्त की पक्तियो मे अपना पूर्ण परिचय दे दिया है। परिचय की पक्तिया निम्नलिखित है—

"भीलाडे अर साहिपुर, बास जानिती ठाम।
कृपाराम सुत जानिये, जगन्नाथ तिस नाम॥
जात ज डीड मुमेमरी, सोनी गोतज आप।
जगन्नाथ सो नाम है, राम सनेही छाप॥
जिन एहु ग्रथ बणाईयो, सतगुरु धरि कें सीस।
अपना नैना देखि कै, भाषी बसवा बीस॥
एहु ग्रथ बाचै सुनै, करै भगति अधिकार।
जगन्नाथ वे मानवी, पावै सुख अपार॥"[2]

३०. उपदेशामृत विन्दु (तृतीय पुष्प)

उपदेशामृत विन्दु सम्प्रदाय के भूतपूर्व आचार्य स्वामी दर्शनराम जी के भाषणो का सग्रह है। इस ग्रथ के प्रकाशक सेठ रमणलाल हीरालाल जरीवाला, सलावतपुरा, खागडसेरी (सूरत) है। इस ग्रथ के पृष्ठ १५ से पृष्ठ ३९ तक स्वामी रामचरण के सक्षिप्त जीवनवृत्त एव उनके तैतीस चमत्कारो का वर्णन किया गया है।

सम्प्रदाय के चार धाम

इस ग्रथ मे रामसनेही सम्प्रदाय के चार धामो की चर्चा की गई है। ये धाम है, बनवाडा, सोडा, भीलवाडा ओर शाहपुरा।

१. बनवाडा

स्वामी रामचरण का पैतृक निवास स्थान जिला टोक (राजस्थान) मे है।

२. सोडा

स्वामी रामचरण का जन्मस्थान सोडा दूसरा धाम है। यह स्वामी रामचरण के ननिहाल ग्राम का नाम है।

३. भीलवाडा

स्वामी जी की तपोभूमि भीलवाडा तीसरा धाम है। रामसनेही सम्प्रदाय की स्थापना एव वाणी की रचना यही हुई थी।

---

१. फूलडोल समाद हस्तलिखित प्रति।
२ वही।

४. शाहपुरा

रामसनही सम्प्रदाय का पीठस्थान शाहपुरा चोथा धाम है। यह सम्प्रदाय का केन्द्र-स्थान है। पीठाचार्य यहाँ रहते है।

तेतीस चमत्कारो के विषय म इतना ही कहना है कि यद्यपि चमत्कारी घटनाएं सिद्ध सतो के जीवन मे घटती ह किन्तु बहुत-सी घटनाएँ उनके भक्तजन भी जोड दिया करते ह। स्वामी रामचरण सिद्ध सत थे। उनके जीवन मे चमत्कारपूर्ण घटनाएँ सभव है। जो भी हो इन घटनाओ से कतिपय निष्कर्ष अवश्य निकाले जा सकते है।

३१. रामचरण चरितावली : श्री मानकराम रामस्नेही

रामचरण चरितावली वस्तुत सग्रह ग्रथ है, जिसका प्रकाशन व सम्पादन श्री मानकराम रामस्नेही ने किया। यह पुस्तक फरवरी सन् १९६६ ई० मे प्रकाशित हुई थी। इस सग्रह ग्रथ के अन्तर्गत (१) स्वामी रामचरण म्हाराज की परची, (२) गुरुवाणी पाठ ग्रथ, (३) फूलडोल समाद, (४) श्रीरामनिवास धाम महिमा ओर (५) प्रह्लाद चरित्र सगृहीत है।

१ 'परची' ग्रथ की चर्चा पीछे हो चुकी है।

२. **गुरुवाणी पाठ** इस ग्रथ मे स्वामी रामचरण की 'अणभै बाणी' से कुछ अश लेकर सगृहीत कर दिया गया है। यह अश रामसनेही जनो के नित्यपाठ के लिए मुद्रित करके प्रकाशित किया गया है।

३. **फूलडोल समाद** जगन्नाथ रचित इस ग्रथ की चर्चा भी पिछले पृष्ठो मे हो चुकी है।

४. **श्रीरामनिवास धाम महिमा** जगन्नाथ रचित ग्रथ 'गुरुसमाधि महिमा' ही का नाम श्रीरामनिवास धाम महिमा प्रचलित है। इस ग्रथ की रचना जगन्नाथ जी ने सम्प्रदाय के चोथे आचार्य महत चतुरदास के आदेश स की थी। इस ग्रन्थ को अगहन सुदी १२, शुक्रवार, सवत् १८८१ वि० को रचनाकार न विख्यात किया। ग्रथ के अत मे लिखित ग्रथ-परिचय से यह बात ज्ञात होती ह—

"जगन्नाथ लघुदास, सब सतन की चरण रज।
कीनो ग्रंथ प्रकाश, सतगुरु का परताप सू॥
शाहिपुरे सतसंग मे, रामनिवास आवास।
चतुर्दास जन महंत है, हाजिर मुकतादास॥
जिनकी आग्या पायके, करी ग्रथ की जोड़।
गुरु समाध महिमा उभे, कही ठोड़ की ठोड॥
समत अठारा से परे, ओर अक्यासी जात।
अगहन सुदि बारस शुक्र, कीनो ग्रंथ विख्यात॥"[1]

इस ग्रथ के आरभ मे स्वामी रामचरण की महिमा, सम्प्रदाय, शिष्यादि के वर्णनोपरान्त स्वामी जी के स्वर्गवास का उल्लेख है। लेखक लिखता है कि निधनोपरान्त स्वामी जी

---

१ रामचरण चरितावली, पृ० १४७।

का कामकाज सम्पन्न करने के लिए बड़ी संख्या में रामसनेही जन एकत्र हुए। सभी ने गुरुदेव स्वामी रामचरण की समाधि निर्मित कराने का निश्चय किया। राव-रंक सभी की कौड़ी उस समाधि-निर्माण में लगी। गुरु समाधि की जैसी कल्पना उस समय की गई रामनिवास धाम उसी कल्पना का साकार रूप है। उन लोगों का निश्चय जगन्नाथ जी की भाषा में इस प्रकार है—

"ज्यों जहाज दरियाव मे, दर से अधिक सरूप।
यो समाध गुरुदेव की, करणी अधिक अनूप॥"[1]

गुरु समाधि के निर्माण हेतु रामसनेही जन कितने उत्साहित थे, इसका वर्णन जगन्नाथ ने निम्नलिखित पंक्तियों में किया है—

"गुरु समाध तो करणी एसी।
ओर नजर नही आवे जैसी॥"[2]

आगे समाधि निर्माण की प्रक्रिया की चर्चा है। जगन्नाथ ने लम्बी उमर पायी थी। वे महंत चतुरदास के समय तक वर्तमान थे। इस ग्रंथ का निर्माण उन्होंने उनके ही समय में किया था। जगन्नाथ ने लिखा है—

"निजर्या देखी कहत हूं साठ बरष की बात।
भीलाडे सतगुर शरण, जा दिन सू जगन्नाथ॥"[3]

५ **प्रह्लाद चरित्र : संत रामखुशाल जी**—महंत हिम्मतराम जी के आदेश से संत रामखुशाल जी ने इस ग्रंथ का निर्माण किया। 'अणभैवाणी' के अंत में सम्बद्ध 'प्रह्लाद चरित' ग्रंथ दादूपंथी संत जनगोपाल जी रचित है जिसका पाठ फूलडोल के अवसर पर किया जाता था। स्वामी रामचरण के जीवनकाल से ही इस ग्रंथ के पाठ का विधान चला आता था। हिम्मतराम जी ने रामखुशाल जी को प्रेरित कर पाठ-हेतु इस नूतन 'प्रह्लाद चरित्र' का निर्माण कराया। 'रामचरण चरितावली' संग्रह का यह अंतिम ग्रंथ है।

३२. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय : वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य

श्री स्वामी केवलराम आयुर्वेद सेवा निकेतन ट्रस्ट, बीकानेर के संस्थापक वैद्य केवलराम स्वामी ने सन् १९५९ में इस ग्रंथ को प्रकाशित किया। यह ग्रंथ रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य और इतिहास की संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत करता है। इस ग्रंथ का सम्पादन वैद्य केवलराम स्वामी, स्वामी रामनिवास, श्री अक्षयचन्द्र शर्मा एवं वैद्य ठाकुरप्रसाद द्वारा हुआ है। इसकी प्रस्तावना संत-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् श्री वियोगी हरि जी ने लिखी है। सम्पादकों ने 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' ग्रंथ को चार खण्डों में विभक्त किया है। यथा—

---

१ रामचरण चरितावली, पृ० १२८।
२ वही, पृ० १२८।
३ वही, पृ० १४३।

प्रथम खण्ड जीवनी

द्वितीय खण्ड समीक्षा

तृतीय खण्ड स्वरूप

चतुर्थ खण्ड अणभै वाणी

स्वामी रामचरण के अतिरिक्त रामसनेही सम्प्रदाय के अन्य वाणीकार सत कवियो के जीवन एव साहित्य का भी सम्यक् निरूपण इस ग्रथ मे हुआ है। साथ ही सम्प्रदाय के स्वरूप पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। चतुर्थ खण्ड मे रामसनेही सम्प्रदाय के वाणी साहित्य की चर्चा के साथ सम्प्रदाय के केवल १७ वाणीकारो की वाणी से थोडे अश उद्धृत किये गए है। आरभ मे इन वाणीकारो का सक्षिप्त परिचय भी लिख दिया गया है। ये वाणीकार है—स्वामी सतदास, स्वामी रामचरण, स्वामी रामजन, स्वामी दुल्हेराम, स्वामी हरिदास, श्री भगवानदास जी, श्री देवादास जी, श्री मुक्ताराम जी, श्री सग्रामदास जी। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित सतो की वाणी के अश भी इसमे सम्मिलित किय गये है। श्री वल्लभराम, श्री रामसेवक, श्री रामप्रताप, श्री चेतनदास, श्री कान्हडदास, श्री द्वारकादास, श्री मुरलीराम, श्री तुलछीदास, श्री नवलराम एव स्वरूपा बाई।

'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' खोज विद्यार्थियो के लिए बडा ही उपयोगी ग्रथ सिद्ध हुआ है। स्वामी रामचरण के जीवन, साहित्य तथा सम्प्रदाय एव उसके इतिहास, विचार-दर्शन आदि पर यह प्रथम प्रकाशित कृति है। सबसे उत्तम बात तो यह है कि इस ग्रथ के लेखको मे सम्प्रदाय के सतजन भी है।

प्रस्तावनाकार श्री वियोगी हरि जी ने प्रस्तावना मे स्वामी रामचरण एव उनकी 'अणभै वाणी' की बडी प्रशसा की है। उन्हे इस बात का पछतावा भी है कि ग्रथ 'सतसुधासार' मे स्वामी रामचरण जी की वाणी को स्थान नही दे सके। वे लिखते है—'अणभै वाणी के बिना 'सतसुधासार' को मै अपूर्ण-सा मानता हूँ।"[1] 'अणभै वाणी' के विषय मे वियोगी हरि जी की निम्नलिखित पक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य है।

"अणभै वाणी के निर्मल सरोवर मे गोरख, नामदेव, कबीर, दादू आदि कितने ही सतो के स्वरूप की शुभ्र झलक हम पाते है। वैराग्य और अनुराग की सुन्दर धूप-छाँह जहाँ-तहाँ देखने मे आती है। सगुण-निर्गुण के बीच का वाचनिक भेद सहज ही तिरोहित हो जाता है। सुरत-निरत का गगन हिडोला मन को बरबस खीच लेता है। वाणी के प्रखर तेज के सामने धर्म-मजहब की आँखे चकाचौध मे पड जाती है। शील और अभेद को एक निश्चल स्थान मिल जाता है। मूढ ग्राह के पैर उखड जाते है, मानवता का स्वरूप निखर उठता है।"[2]

अध्ययन के सूत्रो की चर्चा समाप्त करते हुए मै अनुभव करता हू कि स्वामी रामचरण तथा उनके द्वारा निर्मित पथ 'रामसनेही सम्प्रदाय' से सबधित उपलब्ध अधिकाश सामग्रियो

---

१ वियोगी हरि दो शब्द श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ३।

२ वही, पृ० २।

का मैंने अवलोकन एव अध्ययन कर लिया है। मुझे दु ख है कि मै श्री अक्षयकुमार दत्त लिखित 'उपासक सम्प्रदाय' एव प्रोफेसर वी० बी० राय लिखित 'सम्प्रदाय' नामक ग्रथों को अवलोकनार्थ नही प्राप्त कर सका। फिर भी इन ग्रथो की विषय से सम्बद्ध सामग्री मुझे क्रमश श्री प्रमथनाथ बोस की पुस्तक "ए हिस्ट्री ऑव हिन्दू सिविलाइजेशन ड्यूरिंग ब्रिटिश रूल" (वॉल्यूम–१) तथा पडित परशुराम चतुर्वेदी लिखित 'उत्तरी भारत की सत परपरा' से प्राप्त हो गई थी।



द्वितीय अध्याय

स्वामी रामचरण : जीवन-वृत्त

स्वामी रामचरण का जीवन-वृत्त हिन्दी के अन्य भक्त कवियो की भाति अस्पष्ट नही है। सामान्यतया हिन्दी के प्रमुख भक्त कवि या मध्यकालीन कवियो म से अधिकाश की जीवन-रेखाएँ स्पष्ट नही दृष्टिगोचर होती—वे चाहे कबीर हो या जायसी, सूर हो या तुलसी, बिहारी हो या भूषण, इन कवियो म से अधिकाश के जीवन के बहुत से अश आज भी या तो स्पष्ट नही है या विवाद के विषय बने हुए है। इन कवियो को खोज का विषय बनाकर अनेक शोधकर्ताओं ने शोध-प्रबन्ध भी प्रस्तुत किये है, परन्तु हिन्दी का पाठक उनके जीवन के कतिपय पहलुओ पर लगे प्रश्नचिह्नो एव विवादो को आज भी यथावत् पा रहा है। स्वामी रामचरण की जीवन-रेखाएँ बहुत स्पष्ट है। उनकी जीवनी के सन्दर्भ मे अन्तर्साक्ष्य, बहिर्साक्ष्य एव जनश्रुतिया सभी कुछ उपलब्ध है, किन्तु इनमे ऐसा कुछ बहुत कम है, जो विश्वास के योग्य न हो।

जन्मतिथि

स्वामी रामचरण के जीवनीकार जगन्नाथ ने जो उनके जीवनकाल म वर्तमान ही नही थे, उनके शिष्य भी थे, अपने जीवनी ग्रथो—'गुरलीला विलास' एव 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' मे उनकी जन्मतिथि माघ सुदी चतुर्दशी, शनिवार, सवत् १७७६ लिखी है।[1] इसकी पुष्टि परचीकार ने भी की है।[2] जन्मतिथि के सन्दर्भ म ये साम्प्रदायिक साक्ष्य निर्विवाद है और इन्हे मान लेना समीचीन है, पर कतिपय विद्वानो ने जन्म-सवत् को सन् म परिवर्तित करते समय थोडी असावधानी कर दी है और एकाध ने तो अनुमान से जन्म सवत् या सन् की घोषणा कर

---

१ सतरा से र छहत्तर बरेषा । माघ माहा सुद जान वशेषा ।।
चवदस वार सनीसरवारा । वेस बरण लीन्हो अवतारा ।।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०

सतरा से र छहतर बरसा । मास महासुद कहूँ विशेषा ।।
चवदस वार सनीसर नीको । जा दिन काढ्यो बहुगिर टीको ।।
—ब्रह्मसमाधिलीन जोग, प्रकाशित वाणी के अन्तर्गत, पृ० १०७६

२ समत सतरा से हो तो और छैहत्तर जान ।
चत्रदसी तथी म्हासुदि वार सनेश्वर मान ।
—रामचरण म्हाराज की परची, ह० प्र०

दी है। कैप्टेन जी० ई० वेस्मकट ने अपने महत्त्वपूर्ण लेख—'सम एकाउट्स ऑव ए सेक्ट ऑव हिन्दू शिज्माटिक्स इन वेस्टर्न इंडिया, कालिग देमसेल्व्ज रामसनेही ऑर फ्रेण्ड्स आव गॉड' की प्रारंभिक पंक्तियों में ही स्वामी रामचरण का जन्म सन् १७१९ ही लिखते है।[1] श्री प्रमथनाथ बोस ने भी इसी ईस्वी सन् की पुष्टि की है।[2] गार्सा द तासी ने भी अपने इतिहास ग्रंथ में वेस्मकट का ही ऋण माना है।[3] वेस्मकट ने फुटनोट में संवत् १७७६ वि० भी लिख दिया है। 'स्वामी रामचरण—एक अनुशीलन' नामक शोध-प्रबन्ध के लेखक डा० अमरचन्द्र वर्मा, डॉक्टर रामकुमार वर्मा के मत की समीक्षा के सन्दर्भ में लिखते है—"स्वामी जी का जन्म विक्रम संवत् १७७६ में हुआ था। यदि ईस्वी सन् में इसकी गणना की जाय तो यह सन् १७१९ ठहरता है।"[4]

डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी ने अपने शोध-प्रबन्ध 'रामसनेही सम्प्रदाय'[5] में इस सन्-संवत् का सन्दर्भ उपस्थित किया है—"रामचरण का जन्म संवत् १७७६ में हुआ था। वेस्मकट महोदय भी इसको मानते है। विक्रम संवत् को ईस्वी सन् में परिवर्तित करते समय प्रायः विक्रम संवत् में से ५७ वर्ष कम कर दिया जाता है। इसी नियम के अनुसार लेखक ने १७७६ में से ५७ वर्ष घटाकर रामचरण का जन्मकाल १७१९ ईस्वी माना है। लगता है, ऐसा करते समय विद्वान् लेखक का ध्यान इस बात की ओर नही गया कि रामचरण विक्रम संवत् १७७६ के माघ महीने की उन्नीसवी तिथि को पैदा हुए थे और ईस्वी सन् मार्गशीर्ष अथवा पोष के मध्य में ही बदल जाता है। कहने का तात्पर्य यह कि उक्त काल निश्चित रूप से नये वर्ष का जनवरी या फरवरी महीना रहा होगा। अतः उनका आविर्भाव माघशुक्ल १४, संवत् १७७६ तदनुसार सन् १७२० माना जाना चाहिए।" डॉ० त्रिपाठी का यह मत युक्तियुक्त है। इस मत से सहमत होते हुए मेरा निवेदन यह है कि कैप्टेन वेस्मकट या तासी विदेशी थे। उनसे संवत् को सन् में बदलते समय यह भूल संभव है, पर भारतीय विद्वानों एवं प्रमुखतया शोधकर्त्ता का ध्यान इस ओर जाना अपेक्षित था।

अनुमानकर्त्ताओं में जॉन कैम्पबेल ओमेन ने अठारहवी शताब्दी पूर्वार्द्ध[6] एवं आचार्य क्षितिमोहन सेन ने सन् १७१८ से सन् १७२० के बीच[7] स्वामी रामचरण का जन्म होना लिखा है। ओमेन और सेन महोदय के इन अनुमानों से स्वामी रामचरण के जन्मकाल के निर्धारण में यद्यपि विशेष सहायता नही मिलती किन्तु फिर भी यह उसके निकट है। पर डॉक्टर रामकुमार

---

१ जर्नल ऑव एशियाटिक सोसायटी, न० ३८, फरवरी १८३५, पृ० ६५।

२ ए हिस्ट्री ऑव हिन्दू सिविलाइजेशन ड्यूरिंग ब्रिटिश रूल, वॉल्यूम १, पृ० १२८।

३ हिन्दुई साहित्य का इतिहास, पृ० २३७।

४ स्वामी रामचरण एक अनुशीलन, पृ० ३५।

५ रामसनेही सम्प्रदाय—अप्रकाशित (शोध-प्रबन्ध), गोरखपुर विश्वविद्यालय पुस्तकालय।

६ मिस्टिक्स, एसेटिक्स एण्ड सेण्ट्स ऑव इंडिया, पृ० १३३।

७ 'द कल्चरल हेरिटेज ऑव इंडिया' में क्षितिमोहन सेन का लेख 'द मिस्टिक्स ऑव नॉर्दर्न इंडिया ड्यूरिंग द मिडिल एज' श्री रामकृष्ण सेंटिनरी मेमोरियल, वॉल्यूम २, पृ० २६४।

वर्मा ओर एफ० ई० के ने क्रमश सवत् १७१८[1] और सन् १७१८[2] जन्म वर्ष लिख दिया है। इन लोगो न इतने गलत अनुमान कैसे लगाये, कहा नही जा सकता। डॉक्टर पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने स्वामी रामचरण का जन्म फागुन बदी ७, सवत् १८०६ लिखा है। डॉक्टर बडथ्वाल ने प्राचीन हस्तलिखित ग्रथो की खोज के चोदहवे वार्षिक विवरण मे स्वामी रामचरण रचित 'अणभै विलास' की प्राप्त हस्तलिखित प्रति की पक्तियाँ उद्धृत करते हुए लिखा है—"और इससे पूर्व रामचरण का जन्मकाल—"अठारै से षट वर्ष मास फागुन बदि सातं। सत पधारे धाम सनीचर वार विख्यानै॥" इस प्रकार दिया है।"[3] इस अश की समीक्षा पिछले अध्याय मे हो चुकी है। यह स्वामी रामचरण के दादा गु० स्वामी संतदास जी की मृत्यु-तिथि है। धाम पधारने का अर्थ मृत्यु है जन्म नही[4] डॉक्टर बडथ्वाल ने भ्रमवश ही यह तिथि रामचरण जी की जन्मतिथि मान ली है। मेने प्रथम अध्याय मे यह भी स्पष्ट कर दिया है कि प्रकाशित 'वाणी' के 'अणभै विलास" मे डॉक्टर बडथ्वाल द्वारा उद्धृत पक्तियाँ है भी नही। किन्तु एक अन्य सूत्र के माध्यम से यह तिथि स्वामी सतदास की मृत्यु-तिथि सिद्ध होती है।

अध्ययन के सूत्र, जिनमे प्रमुख आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखित 'उत्तरी भारत की सत-परम्परा"[5] एव 'सतकाव्य'[6], प० मोतीलाल मेनारिया लिखित 'राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा'[7], कल्याण का 'सत अक'[8] मे साधु श्री नेनूराम जी का लेख तथा श्री वियोगी हरि लिखित 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय'[9] की भूमिका है, स्वामी रामचरण की जन्मतिथि माघ शुक्ल १४, शनिवार, सवत् १७७६ वि० ही मानते है, जो साम्प्रदायिक साक्ष्यो के अनुकूल है।

जन्मस्थान

स्वामी रामचरण का जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत ढूंढाड प्रदेश के सोडा नामक ग्राम मे हुआ था। सोडा ग्राम स्वामी रामचरण जी का ननिहाल था।[10] जयपुर राज्य मे सोडा ग्राम

---

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४११।

२ ए हिस्ट्री ऑव हिन्दी लिट्रेचर, पृ० ६८।
कबीर एण्ड हिज फॉलोअर्स, पृ० १६५।

३ प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रथो की खोज का चौदहवाँ त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९२९-३१ ई०), नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग २०, अक २, पृ० १३८।

४ विशेष विवरण के लिए देखिए : प्रथम अध्याय के अन्तर्गत प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थो की खोज का चौदहवाँ वार्षिक विवरण' की समीक्षा।

५ उत्तरी भारत की सत-परम्परा, पृ० ६१४।

६. सतकाव्य, पृ० ५०५।

७ राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, पृ० ८२।

८. कल्याण 'सत अक', पृ० ७४८।

९ 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' दो शब्द, पृ० १।

१० ढुढाड देस जैसिह निरंदा
सेहर वसायो आप उनिंदा

की स्थिति का वर्णन करते हुए जीवनीकार जगन्नाथ ने कतिपय ऐतिहासिक तथ्यो की ओर भी संकेत किया है। जयपुर की राजधानी का निर्माण सवाई जयसिंह ने अपने नाम पर कराया था जो पुरानी राजधानी आमेर से ६ मील दूर है। कर्नल जेम्स टाड के अनुसार सवाई जयसिंह सन् १६९९ ई० मे सिंहासन पर आसीन हुआ था और १७४३ ई० मे उसका निधन हो गया। स्मरणीय है कि १७२० ई० मे स्वामी रामचरण का जन्म हो गया था। इसी काल मे जयपुर राजधानी की स्थापना हुई। नयी राजधानी मे शिल्प ओर विज्ञान का बडा विकास हुआ जिसमे प्राचीन राजधानी आमेर का गौरव जाता रहा।[1] 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' मे भी सोडा नगर को स्वामी जी का जन्मस्थान बताया गया है।[2] परचीकार लालदास ने 'स्वामी रामचरण म्हाराज की परची' म भी जगन्नाथ जी के उपर्युक्त कथन पर मुहर लगा दी है—

ढूढाड देस सोडे नगर नानाजी के द्वार।
भगतिराज कलि अवतरे, जगजीवन हितकार।।[3]

अत स्पष्ट हुआ कि स्वामी रामचरण जयपुर राज्यान्तर्गत मालपुरा के निकट सोडा नामक ग्राम मे, जो उनका ननिहाल था, उत्पन्न हुए थे। सत साहित्य के अन्य विद्वानो प० परशु-

---

देस देस का सेठ बुलाया
जाफा करके ताहा बसाया।

च्यारो तर्फ कराया किल्ला।
जैपुर नाम धर्‍यो कर सल्ला।
राजा देव अस औतारी।
प्रजा सहत पूजा सुषकारी।
ताका देस माहि दोइ गामा।
मालपुरा ढिग बरणे नामा।
ताहा सत प्रगटे सुषसागर।
रामभगति को करण उजागर।
उतन गाम वनवाडो चोडे।
जन्म लीयो नाने रे सोडे।

—गुरलीला विलास, ह० प्र०

१ राजस्थान का इतिहास कर्नल जेम्स टॉड, पृ० ६३७-३८, ६४९।

२ देश ढूढाड सोमे अजमेरो।
सोडो नगर मालपुरे नेरो।
—ब्रह्मसमाधिलीन जोग, प्रकाशित 'वाणी' के अन्तर्गत, पृ० १०७५

३ लालदास कृत स्वामी रामचरण म्हाराज की परची, ह० प्र०।

राम चतुर्वेदी[1] एव पं० मोतीलाल मेनारिया[2] आदि ने भी इसी साम्प्रदायिक साक्ष्य को स्वीकारते हुए सोडा को स्वामी जी का जन्मस्थान कहा है।

सूरसेन या सोरहचसन

आचार्य क्षितिमोहन सेन[3] एव डॉक्टर रामकुमार वर्मा[4] तथा प्रमथनाथ बोस[5] आदि ने रामचरण जी का जन्मस्थान जयपुर राज्य का सूरसेन नामक ग्राम माना है जबकि कैप्टेन वेस्मकट[6] उसे सोरहचसन कहते है। डॉ० अमरचन्द वर्मा की जानकारी मे सूरसेन सोडा का शुद्ध रूप है।[7] मुझे लगता है कैप्टेन वेस्मकट को सम्प्रदाय के अधिकारियो ने स्वामी रामचरण का जन्मस्थान सोडा न बताकर सूरसेन ही बताया होगा, जिसे वेस्मकट सोरहचसन लिखते है। निष्कर्ष यह है कि सूरसेन या सोरहचसन सोडा का ही रूपान्तर है अत इससे कोई भ्रम नही उत्पन्न होना चाहिए।

माता-पिता

स्वामी रामचरण के पिता का नाम बखतराम और माता का नाम देऊजी था। जीवनीकार जगन्नाथ ने 'गुरलीला विलास' के अन्त मे उनके माता-पिता का उल्लेख किया है। सवत् १८६० वि० मे स्वामी रामजन जी महाराज ने चाटसू मे चौमासा किया था। जगन्नाथ तथा अन्य अनेक रामसनेही उनके दर्शनार्थ चाटसू गये थे। मार्ग मे तीसरे विश्राम पर सोडा ग्राम पडा था। जगन्नाथ तथा उनके दल ने वहाँ दो पहर विश्राम किया। गुरुदेव की जन्मभूमि मे पहुँचकर जगन्नाथ ने उस भवन का दर्शन किया जिसमे स्वामी रामचरण जी का जन्म हुआ था ओर एक शतवर्षीय पुरुष से उन्होने स्वामी जी के प्रारम्भिक जीवन की जानकारी की। उसी वृद्ध द्वारा उन्हे विदित हुआ था कि इनके पिता का नाम बखतराम और माता का नाम देऊजी था।[8] परचीकार भी इस कथन से सहमत

---

१ उत्तरी भारत की सत परपरा, पृ० ६१४। सतकाव्य, पृ० ५०५।

२ राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, पृ० ८२।

३. द कल्चरल हेरिटेज ऑव इडिया, पृ० २६४।

४ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४११।

५ ए हिस्ट्री ऑव हिन्दू सिविलाइजेशन ड्यूरिंग ब्रिटिश रूल, वॉल्यूम १, पृ० १२८।

६ जर्नल ऑव द एशियाटिक सोसायटी, फरवरी १८३५, पृ० ६५।

७. स्वामी रामचरण एक अनुशीलन, पृ० ३८।

८ रामजन माहाराज चौमासो कीयो चाटसू।
हम दरसण के काज रामसनेही सब गए।
दस गाडी सो आत्मा दरसण गए चलाइ।
मारग मे तीजी मजल सोडे पुहुता जाइ।
जनम भोम गुरुदेव की पलसे करी प्रनाम।

है।[1] 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' में जगन्नाथ ने इनके माता-पिता के नामो की चर्चा नही की है। यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि इस जीवनी-ग्रथ मे माता-पिता का नामोल्लेख जगन्नाथ ने क्यो नही किया ?

डॉक्टर अमरचन्द्र वर्मा ने अपने शोध-प्रबन्ध मे एक प्रश्न उठाया है कि 'एक ही उपजीव्य को आधार मानकर एक ही कवि के द्वारा दो रचनाओ का प्रणयन क्यो हुआ ?'[2] वे आगे लिखते है—'इस सम्बन्ध मे यह बात ध्यान देने की है कि 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' स्वामी रामचरण के निधन के समय से सम्बन्धित है। इसमे उनके जन्म, माता-पिता एव जन्मस्थान के उल्लेख के पश्चात् अतिम समय एव सस्कार से सबधित प्रसगो का विशेष रूप से वर्णन किया गया है जबकि 'गुरलीला विलास' मे उनके जीवन पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है।'[3]

अपने उपर्युक्त कथन म डॉक्टर अमरचन्द्र वर्मा ने एक भिन्न प्रश्न के माध्यम से यह कह दिया है कि 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' मे जीवनीकार जगन्नाथ ने स्वामी रामचरण के माता-पिता का उल्लेख किया है। विनम्र निवेदन है कि 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' प्रकाशित 'वाणी' के अत मे मुद्रित रचना है, जिसे मैने आदि से अन्त तक देखा है, किन्तु जगन्नाथ ने इसमे उनके माता-पिता के नाम की चर्चा कही नही की है। यह सही है कि 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' स्वामी रामचरण के निधन-काल से सबधित रचना है और स्वामी जी के निधन

पहर दोइ ता नगर मे सबही कीयो मुकाम।
बरस साठ क साल ऐ अैसो वण्यौ सजोग।
आद कथा गुरुदेव की कहण लगे सब लोग।
सो वरसा को पुरस इक मिलीयो हेत लगाइ।
बीजा बरगी जात को सब बिध कही सुणाइ।
मात-पिता का नाम बताया। जनम लियो सो भवन दिखाया।
सारी बात भिनोभिन कही। सो सब हम हिरदे धर लही।
वषतराम सो कहिऐ तात। जाधर घरनी देउ मात।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०

१ वेस बरण हरिभगता ग्याता।
भगतरामजी पीता वीख्याता।
देउ जी माता का नामा।
परम सुसील सुछन वामा।
ताकिको कक लियो अवतारा।
प्रिया एकोत्तर कीयो पारा।
—परची, ह० प्र०

२ स्वामी रामचरण एक अनुशीलन, पृ० ३०।

३ वही, पृ० ३०।

के चौबीसवे दिन अर्थात् वैशाख शुक्ल १४, रविवार, सवत् १८५५ वि० को यह रचना पूर्ण हो चुकी थी।[1] मेरी दृष्टि मे इस रचना म माता-पिता का नामोल्लेख न होने का कारण दूसरा ही है। वस्तुत जगन्नाथ ने अपनी इन दोनो रचनाओ के द्वारा अपने को सफल जीवनी-कार सिद्ध किया है। सफल जीवनीकार बिना प्रमाण के कुछ भी कहना उचित नही समझता। 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' लिखने के पूर्व जगन्नाथ सोडा नही गये थे। वे सोडा सवत् १८६० म गये और वहाँ उन्होने स्वामी रामचरण के जीवन से सबधित तथ्यो को विभिन्न लोगो से प्राप्त किया। उन्होने वह मकान भी देखा जिसमे स्वामी रामचरण का जन्म हुआ था और शतवर्षीय वृद्ध द्वारा उनके माता-पिता के नामो की जानकारी प्राप्त की। 'गुरलीला विलास' की रचना जगन्नाथ ने सोडा प्रवास के बाद ही की जब उन्हे बीजावर्गी जाति एव स्वामी रामचरण के माता-पिता के सबध मे पूर्ण जानकारी हो गई।

अध्ययन के आधुनिक सूत्रो मे से एक-दो को छोडकर उपर्युक्त सदर्भ मे सभी मौन है। वेसमकट, तासी, प्रमथनाथ बोस, प० परशुराम चतुर्वेदी और प० मोतीलाल मेनारिया आदि किसी ने स्वामी जी के माता-पिता की चर्चा नही की है। 'कल्याण' के 'सत अक' मे साधु नैनूराम जी ने अपने सक्षिप्त लेख 'श्री श्रीरामचरण जी रामसनेही' मे उनके पिता का नामोल्लेख किया है।[2] माता का नाम इस लेख म नही है। इधर सम्प्रदाय के उत्साही जनो द्वारा सम्पादित पुस्तक 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय'[3] और उसकी भूमिका म श्री वियोगी हरि जी ने उनके पिता बखतराम और माता देऊ जी का नामोल्लेख किया है।[4] यह आश्चर्य का विषय है कि साम्प्रदायिक सूत्रो के अतिरिक्त अन्य सभी सूत्र माता-पिता के नाम पर मौन है। फिर भी दोनो नामो पर कोई विवाद नही है।

'गुरलीला विलास' के अनुसार स्वामी रामचरण के पिता बखतराम धन-धाम स सम्पन्न व्यक्ति थे। राजदरबार मे उनका महत्व था। वे राजकर्मचारी थे, अन्य कोई धन्धा नही करते थे।[5] जनश्रुति भी उन्हे जयपुर राज्य का पटवारी बतलाती है। 'गुरलीला विलास' के अतिरिक्त अन्य सूत्र इस सदर्भ म मौन है पर गुरलीला विलासकार जगन्नाथ प्रामाणिक जीवनीकार है। अत यह मान लेना उचित है कि वे जयपुर राज्य की नौकरी मे थे।

---

१ अठारा से पचपन बरस, रवि चवदश वैशाख।
ग्रथ सम्पूरण जगन्नाथ, पुनिजानो सुदिपाख। —ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०८६
स्मरणीय है कि स्वामी रामचरण का निधन वैशाख कृष्ण ५, बृहस्पतिवार, सवत् १८५५ को हुआ था।

२ कल्याण : सत अक, पृ० ७४४-४५।

३ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ४।

४. वही, दो शब्द, पृ० १।

५ हैदररथ सुष पाल सिपाई। राज्यस्थाना भलमणसाई।
सुष सपति धन-धाम उमदा। बिना चाकरी और न धधा।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०

वर्ण और गोत्र—स्वामी रामचरण बीजावर्गी [विजयवर्गीय] वैश्यकुल मे उत्पन्न हुए थे। जगन्नाथ ने 'गुरलीला विलास' के आरम्भ मे ही उनकी जाति का उल्लेख इस प्रकार किया है—

"वैस बरण लीन्हो अवतारा।'[1]

रामचरण जी के गोत्र की चर्चा आगे इस प्रकार करते है—

"बीजा गोती नावड नामी।
राजदुवारे पूग विश्रामी॥"[2]

'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' की प्रारभिक पक्तियो मे ही स्वामी रामचरण के वर्ण एव गोत्र की चर्चा जगन्नाथ ने कर दी है। यथा—

वैश्य वर्ण कुल उत्तम मानो।
बीजागोति बहुत बुधिवानो॥[3]

परचीकार लालदास ने भी उपर्युक्त की पुष्टि की है।[4]

स्वामी रामचरण जी ने अपने ग्रथ 'अमृत उपदेश' मे स्वय जाति का सकेत इस प्रकार किया ह।

"जन्म वैश्य घर पाईयो। पुनि सेवत राजदुवार॥"[5]

स्वामी रामचरण के वर्ण एव गोत्र के सबध मे अन्य सूत्र भी सहमत है। कही विवाद या सदेह की गुजाइश नही है।

नाम : रामकृष्ण से रामचरण—इनका नाम नाना ने रामकृष्ण रखा था। नामकरण सस्कार की चर्चा जगन्नाथ ने 'गुरलीला विलास' मे की है।[6] परचीकार लालदास ने भी

---

१ गुरलीला विलास, ह० प्र०।
२ वही, ह० प्र०।
३ अ० वा० ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७५।
४ वेस बरण हरि भगता ग्याता। —परची, ह० प्र०
५ अमृत उपदेश, प्रकाश ५, प्रकाशित 'वाणी', पृ० ८५६।
६ नाम कढायो नाना सोडे
जन्मपत्रिका बाची चौडे

गाजा बाजामा लगाया
रामकृश्न सो नाम कढाया।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०

इस कथन की पुष्टि कर दी है[1]। सवत् १८०८ मे वैराग्य लेने पर इनका नाम रामकृष्ण से रामचरण हो गया। यह नाम उन्हे अपने गुरु से प्राप्त हुआ था।[2]

स्वामी रामचरण को सतराम भी कहा गया है। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने अपने निबधो क्रमश 'मध्ययुग मे राजस्थान और बगाल के बीच साधना सबध,'[3] एव 'द मिस्टिक्स ऑव नार्दर्न इडिया'[4] मे रामसनेही सम्प्रदाय के प्रवर्तक का नाम सतराम या रामचरण कहा है। आचार्य प० परशुराम चतुर्वेदी लिखते है कि—'सत रामचरन का एक नाम सतराम भी प्रसिद्ध है।'[5]

रामसनेही सम्प्रदाय मे रामनाम की बडी महिमा है। स्वय स्वामी रामचरण जी ने रामनाम की महिमा गाई है। सम्प्रदाय के साधुओ मे भी राम शब्द बडा ही प्रिय एव प्रचलित है। अत यदि स्वामी जी को भी इसी नाम का पर्याय मानकर सम्प्रदाय मे उन्हे 'राम' नाम से अभिहित किया गया हो तो यह अस्वाभाविक नही प्रतीत होता। किन्तु यह नाम उनके गुरु या परिवार का दिया नही प्रत्युत् सत-समाज मे सतो द्वारा प्रचलित किया हुआ नाम समझना चाहिए।

पैतृक निवास स्थान : बनवाडा—स्वामी रामचरण के पिता जयपुर राज्यान्तर्गत माल्पुरा के निकटस्थ ग्राम बनवाडा के निवासी थे। बनवाडा वर्तमान समय मे टोक जिले मे पडता है। बनवाडा ग्राम की चर्चा स्वामी रामचरण के जीवनीकारो जगन्नाथ एव लालदास ने अपने-अपने जीवनी ग्रथो मे की है।[6]

---

१ रामकिशन जी नाम बताया।
सकल कुटुम्बी के मन भाया।

—परची, ह० प्र०

२ सवत अठारा से अरु आठा।
ले वैराग गहे मत काठा।
भाद्रव मास दासपद पायो।
रामचरण जी नाम कहायो।

—अ० वा० के अतर्गत ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७६

रामचरण जी भए प्रसिद्ध—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

रामचरणजी नाम दे, सीस धर्‌यागुरु हाथ।
सतगुर का प्रताप ते, जग मे भाऐ विख्यात। —परची ह० प्र०।

३ भारतीय अनुशीलन ग्रंथ . हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० २३, विभाग-३।

४ 'द कल्चरल हेरिटेज ऑव इडिया, पृ० ३७७।

५ उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० ६१४।

६ उतन ग्राम बनवाडो चोडे।
जनम लियो नाने रे सोडे।

—गुरलीला विलास, ह० प्र०

प्रारम्भिक जीवन

शैशव—स्वामी रामचरण के शिशु-काल की चर्चा जीवनीकारो ने अत्यत सक्षेप म की है। इनके लिए साम्प्रदायिक जीवनीकारो जगन्नाथ एव लालदास के जीवनी ग्रन्थो के अतिरिक्त कही कुछ नही मिलता। जगन्नाथ रचित 'गुरुलीला विलास' एव 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' तथा लालदास रचित 'परची' के अनुसार शिशु रामकिशन के जन्म लेते ही द्वार पर गाजा बाजा की धूम मच गई और मगल उत्सव की तैयारी आरभ हो गई। शिशु की जन्मपत्रिका ब्राह्मण ने बनाई।[1] जन्मपत्रिका मे बडे भारी ग्रह पडे हुए है ऐसा ज्योतिषी ने बाँचकर बतलाया और यह भी कि छत्रपति के घर भी ऐसा पुत्र न हुआ है और न होगा।[2] नाना ने नेगियो को नेग दिया और जन्मपत्रिका लेकर नाई उनके पिता के पास पहुँचा और उन्हे बधाई दी। पिता ने पुत्रोत्पत्ति के उल्लास मे नगर मे नारियल बँटवाया और दूसरे दिन सम्पूर्ण परिवार को भोजन कराया।[3]

उतन ग्राम बनवाडा जाके।
लोग कुटुम्बी ऐसे भाखे।
—ब्रह्मसमाधिलीन जोग, प्रकाशित 'वाणी' के अन्तर्गत, पृ० १०७५

तात ग्राम बनवाडो कहीये।
मालपुरा के नेरे लहीये।
—परची, ह० प्र०

१ गाजा बाजा द्वारै बाजै।
घर घर मगल उच्छवसाजै।
जन्मपत्रिका द्विज लिखिमोई।
हरिगति उनके हाथ न कोई।
—प्रकाशित 'वाणी' के अन्तर्गत 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' पृ० १०७६

२ तामे पडा ग्रहै अतिभारी।
सपन गोत त्यारण नरनारी।
ऐसी बाच सुणाई जोसी।
छत्रपती घर हुवो न होसी। —गुरलीला विलास, ह० प्र०

३ नेगी आया दई जनाई।
नाने वाको दई बधाई।
जनमपत्रका लेकर नाई।
जाइ पिता से लई बधाई।
नगर माहि नारियल बटाया।
दूजे दिन परिवार जमाया।
घरमाफिक सोदई बधाई।
सब परिवार भई हरपाई। —गुरलीला विलास, ह० प्र०

सम्पूर्ण परिवार में प्रसन्नता की लहर दौड गई और याचकों को उनके मनोनुकूल दान दिया गया।[1]

बाल-व्यक्तित्व—स्वामी रामचरण के बाल व्यक्तित्व का सुंदर चित्र परचीकार लालदास ने खींचा है। उनके अनुसार स्वामी रामचरण का रूप सूर्य की आभा के समान देदीप्यमान था। वे गौर वर्ण के थे तथा उनके नयन कमल के सदृश थे। उनके हाथ लम्बे थे, व्यक्तित्व मोहक था। छोटी अवस्था में ही उन्हें बडी बुद्धि एव सद्बुद्धि प्राप्त थी।[2]

शिक्षा—स्वामी रामचरण की शिक्षा के विषय मे उनकी जीवनी के सभी सूत्र मौन है। अत अनुमानो के आधार पर ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचना सभव है। स्वामी रामचरण के पिता एक सम्पन्न व्यक्ति थे और जयपुर राज्य की सेवा मे थे। उनके जन्मोत्सव की धूमधाम की चर्चा जीवनीकारो ने की है। अत यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनकी शिक्षा-दीक्षा की उत्तम व्यवस्था अवश्य हुई होगी । फिर यह भी सिद्ध हो चुका है कि वैराग्य धारण करने के पूर्व स्वामी रामचरण स्वय जयपुर राज्य की सेवा मे उच्चपदस्थ कर्मचारी थे। अत यह निर्विवाद मान लेना चाहिए कि उन्हे बचपन मे अच्छी शिक्षा मिली होगी। यह भी सहज ही समझा जा सकता है कि उनका विशाल साहित्य उनकी गहन अध्ययनशीलता, सत्सग एव जीवन के विभिन्न पक्षो के अनुभव का परिणाम है। अत मैं निस्सकोच इस निष्कर्ष पर पहुँच गया हूँ कि स्वामी रामचरण उत्तम शिक्षाप्राप्त व्यक्ति थे।

गृहस्थ-जीवन

विवाह—स्वामी रामचरण के विवाह की चर्चा उनके किसी भी जीवनीकार ने नही की है। अन्त साक्ष्य भी मौन है। पर जनश्रुति कैसे मौन रह सकती है। जनश्रुति उनका विवाह होना बतलाती हैं। डॉक्टर अमरचन्द्र वर्मा ने साधु लक्ष्यराम लिखित 'राम-रहस्य दर्शन' का हवाला देकर लिखा है, उनका विवाह चानसेन ग्राम के एक सम्पन्न परिवार

---

१ दे नारियल बधाई ताजी।
जाचक लोग किये सब राजी। —परची, ह० प्र०

२ अब स्वामी का रूप बखानू।
काति दिपै सूरज सम जानूं।
गौरवरण अम्बुज से नैना।
. .
हस्तकमल गोडे लग सोहैं।
देखत दरश सकल मनमोहैं।
बालकुमार किशोर सुबुद्धी।
लघु अवस्था दीरघ बुद्धी। —रामचरण चरितावली, पृ० ४

मे हुआ था।[1] 'रामरहस्य दर्शन' कार को भी इसे प्रमाणित करने के लिए जनश्रुति का ही सहारा लेना पडा है। जो भी हो सम्प्रदाय मे प्रचलित जनश्रुति के अनुसार चानसेन ग्राम में उनकी ससुराल थी ।

यद्यपि प्रमाणो के अभाव मे किसी बात का स्वीकारना कठिन होता है, किन्तु जनश्रुतियो को अनुमान के सहारे प्रमाण मान लेना सहज बात है। स्वामी रामचरण एक सम्पन्न परिवार मे उत्पन्न हुए थे। उनके पिता और वे स्वय उच्चपदस्थ राजकर्मचारी थे। अत उनका विवाह नही हुआ होगा यह कैसे कहा जाय। मेरा निश्चित मत है कि वे विवाहित थे और ऐसी स्थिति मे उपर्युक्त जनश्रुति तथ्यो से परे नही।

सतति—स्वामी रामचरण ने ३१ वर्ष ७ महीने तक गार्हस्थ्य जीवन का उपयोग किया था। अत इस बीच उन्हे सतति लाभ हुआ था, ऐसी जनश्रुति है। इसी जनश्रुति के सहारे डॉक्टर अमरचन्द वर्मा ने उनके एक पुत्र एव पुत्री होने की बात कही है।[2] सत सन्मुख-राम जी ने मुझे बतलाया कि उन्हे केवल एक पुत्री थी, किन्तु उनके कथन का आधार भी जनश्रुति ही है। उन्हे पुत्र था या पुत्री थी, या दोनो थे, यह निश्चित करने के पूर्व यह निश्चित करना अपेक्षित है कि उन्हे सन्तान-सुख मिला था या नही ? इसके लिए साक्ष्यो की परीक्षा करना अपेक्षित है।

परचीकार लालदास ने इतना सकेत दिया है कि हृदय मे निर्वेद उपजने पर उन्होने मोह-पाश तोड दिया।[3] किन्तु इससे मूल प्रश्न का उत्तर नही मिलता। 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' भी 'जगविलास को करियो त्याग' मात्र कहकर मौन हो जाता है।[4] किन्तु 'गुरलीला विलास' मे जगन्नाथ ने इस सदर्भ को अधिक स्पष्ट किया है। वैराग्य प्रेरक स्वप्न से जगने के बाद स्वामी रामचरण को उत्तम ज्ञान का प्रकाश मिला। उन्हे ससार अन्यथा प्रतीत होने लगा। उसी दिन से वे घर मे ही वनवासी सदृश रहने लगे। यही उनका चिन्तन जगन्नाथ के शब्दो मे माता, भ्राता, कन्या, सुत आदि की ओर से विमुख होता है और वे इन सभी को त्यागने का निश्चय करते है।[5] इससे तो यह निष्कर्ष निकलता है कि उनके पुत्र-पुत्री और भाई सभी थे।

---

१ स्वामी रामचरण एक अनुशीलन, पृ० ४२।

२ वही।

३ उपजा उर निरवेद दिढ तोड मोह की पास।

—रामचरण चरितावली, पृ० ३

४. 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग', पृ० १०७६, प्रकाशित 'वाणी' के अन्तर्गत।

५ जाग आप यो कियो विचारा।
यो तो जगत अन्नथा सारा।
. .
जा दिन सू मन भयो उदासी।
रहे भवन मे ज्यो वनवासी।

इसी सदर्भ मे हम एक अन्त साक्ष्य पर भी विचार करेगे। ग्रथ 'ठिगपारख्या' मे सत रामचरण लिखते है—

"हमकूं ठिग्ग कहे सब कोई।
सत्य कथ ये झूठ न होई।
मात-पिता हम ठिगिया भाई।
बहन भाणजी सजन सगाई।
और ठिग्या सबही परिवारा।
हमकूं कहता वंश उजारा।
ठिगी एक हम घरकी नारी।
जासू कहता प्राण पियारी।"[1]

उपर्युक्त पक्तियो मे स्वामी रामचरण ने कहा है कि लोग उन्हे सत्य ही ठग कहते है क्योकि उन्होने अनेक सगे-सबधियो को ठगा है पर यहाँ पर 'वश उजारा' ध्यान देने योग्य है। स्वामी रामचरण यह अनुभव करते है कि लोग उन्हे वश उजाडने वाला भी कहते है। स्पष्ट हुआ कि स्वामी रामचरण के विरागी हो जाने के कारण उनकी वशावली वही से समाप्त हो जाती है। यदि उन्हे पुत्र होता तो 'वश उजारा' की उपाधि से उन्हे नही विभूषित होना पडता और समस्त परिवार एव प्राणप्यारी नारी को ठगने की बात भी नही सुननी पडती। अत मैं समझता हूँ कि जगन्नाथ की 'गुरलीला विलास' वाली बात प्रतीकात्मक है। वह एक सामान्य कल्पना है। किन्तु पुत्री वाली बात का 'वश उजारा' से कोई रिश्ता नही। अत. यहाँ जनश्रुति से समझौता किया जा सकता है कि उन्हे एक कन्या थी।

'पुनि सेवत राज दवार'

स्वामी रामचरण ने अपने ग्रथ 'अमृत उपदेश' की एक कुण्डलिया का प्रारम्भ 'जन्म वैशघर पाईयो पुनि सेवत राज दवार'[2] से किया है। इस अन्तःसाक्ष्य के आधार पर प्रकाशित 'अणभैवाणी' के प्रस्तावनाकार साधु कार्याराम ने स्वामी रामचरण को जयपुर नरेश का प्रधानमत्री कहा है।[3] इसी आधार पर सम्प्रदाय मे यह बात प्रचलित हो गई कि स्वामी जी जयपुर राज्य के प्रधान मत्री थे। डॉक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी ने भी अपने अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध 'रामसनेही सम्प्रदाय' मे स्वामी रामचरण

मात भ्रात कन्या सुत जवती।
धराधाम धन सपति होती।
ऐह तज सब निज कारज करना।
सुरति लगी सतन का चरना। —गुरलीला विलास, ह० प्र०

१. ठिग पारख्या, प्रकाशित 'वाणी' के अन्तर्गत, पृ० ९८३।
२. अमृत उपदेश—प्रकाशित 'वाणी' पृ० ४५६।
३. 'अणभैवाणी' की 'प्रस्तावना', पृ० १।

जी को जयपुर राज्य का प्रधानमत्री लिखा है।[1] इस सदर्भ मे 'श्री रामसनेही सम्प्रदाय' के लेखको ने भी स्वामी रामचरण की जीवनी वाले खण्ड मे निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण पक्तियाँ लिखी है—"जयपुर नरेश ने इनकी प्रशसा सुनी और इनको अपना मत्री बना लिया। मत्री बनने के बाद इनकी न्याय-निष्ठा व कर्तव्य-भावना की चारो ओर प्रशसा होने लगी। मत्री के रूप मे इनका यश चारो ओर फैल गया।"[2]

हिन्दी के मूर्द्धन्य विद्वान् श्री वियोगी हरि 'श्री रामसनेही सम्प्रदाय' के 'दो शब्द' के अन्तर्गत लिखते है—"सुयोग्य, कर्तव्य-परायण तथा कार्यकुशल होने के कारण जयपुर के तत्कालीन महाराजा ने रामकिशन जी को अपना मत्री नियुक्त किया था। इस पद पर रहकर बडी न्यायनिष्ठा से इन्होने अपने कर्तव्य का पालन किया।"[3]

उपदेशामृत (तृतीय पुष्प) मे 'गृहस्थाश्रम मे स्वामी जी का परचा' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी रामचरण का सक्षिप्त जीवन-वृत्त एव उनके जीवन से सबधित कतिपय चमत्कारपूर्ण घटनाओ का उल्लेख है। गृहस्थ जीवन मे स्वामी रामचरण की भगवद्भक्ति, सत सेवा, भजन, सत्सग आदि की चर्चा करते हुए सग्रहकार लिखता है—"जिस समय यह पटवारी के पद पर नियुक्त थे किसी पर बेजा दोषारोपण करके और दबाव डालकर अनुचित पैसा लेना पाप समझते थे। आप मे न्याय-निष्ठा, कर्तव्य-भावना, निष्पक्षता के विचार अति ही उत्तम थे।"[4]

इसी सदर्भ मे सग्रहकार ने उनके पटवारी-जीवन को एक चमत्कारी गाथा से सम्बद्ध कर दिया है। वह लिखता है—"एक समय किसानो से भूमिकर (लगान) की रकम एकत्रित करके तहसील मे जमा कराने के लिए बैलगाडी मे बैठकर जा रहे थे। रास्ते मे चोर मिल गये और इनकी रकम छीन कर चल दिये। आपने अपने इष्टदेव की प्रार्थना की तो ऐसी विचित्र लीला हुई कि थोडी ही दूर जाने पर चोर अधे हो गये। तब चोरो ने इनकी करामात समझकर आपसे क्षमा चाही और धन वापस देकर भविष्य मे चोरी न करने की प्रतिज्ञा ली।"[5]

सग्रहकार ने यह नही बताया कि उसने स्वामी रामचरण के पटवारी पद पर कार्य करने की बात कहाँ से खोज निकाली है। मै समझता हूँ यह तथ्य भी जनश्रुति पर ही आधारित है। पर इस जनश्रुति पर सहज विश्वास किया जा सकता है। 'गुरलीला विलास' से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण के परिवार मे चाकरी के अतिरिक्त अन्य धन्धा नही होता था।[6] रामचरण जी के पिता जयपुर राज्य के चाकर थे और रामचरण जी ने भी राज-सेवा की थी। किन्तु स्वामी रामचरण के जयपुर नरेश का मत्री या प्रधान मत्री होने की बात किसी प्रकार सिद्ध नही होती।

---

१ रामसनेही सम्प्रदाय—अप्रकाशित शोधप्रबध, गोरखपुर विश्वविद्यालय।
२ श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ५।
३ श्री रामसनेही सम्प्रदाय की भूमिका, दो शब्द, पृ० १।
४ उपदेशामृत बिन्दु (तृतीय पुष्प), पृ० १६।
५. वही।
६ सुख सपति धन-धाम उमदा।
बिना चाकरी और न धन्धा। —गुरलीला विलास, हु० प्र०

डॉक्टर अमरचन्द वर्मा लिखते है कि, "जयपुर राज्य के किसी भी इतिहास मे रामकृष्ण नाम के मत्री होने का उल्लेख नही है।"[1] मने इन्दौर के छत्रीबाग रामद्वारा के विद्वान् सत श्री कन्हैयाराम जी से स्वामी रामचरण के मत्री होने की बात को स्पष्ट करने के लिए कहा तो उन्होने इसे स्पष्ट रूप से कल्पित बात कही। हाँ, उन्होने यह कहा कि वे कानूनगो के पद पर अवश्य थे। इस सदर्भ मे जीवनीकार जगन्नाथ एव लालदास के मतो पर भी विचार कर लेना उचित होगा।

जीवनीकार जगन्नाथ लिखते है कि "जब रामकृष्ण कार्य करने लगे तो माता-पिता को परम आनन्द हुआ। उन्हे काम करते बहुत दिन व्यतीत हो गए और अब रामकृष्ण की ओर से सभी निश्चिन्त थे। वे सभा मे बडे भले लगते थे अत सबको अच्छे लगने लगे।"[2]

इसी सन्दर्भ मे जीवनीकार के निम्नलिखित कथन से उनके जयपुर दरबार मे रहने की बात भी पुष्ट हो जाती है—

"जुग दोइ बीता पिता समाया।
रामकृस्न जैपुर सूं आया।
मोसर कीयो सरस अति नीको।
राज सहत आयो वोहो टीको।"[3]

उपरिलिखित पक्तियाँ यह तो स्पष्ट करती ही है कि पिता के निधन का समाचार जानकर रामकृष्ण जयपुर से आये थे अर्थात् उनके निधन के समय वे जयपुर मे ही थे। साथ ही यह भी कि उस समय उनकी आयु दो युग (२४ वर्ष) की थी।[4] उन्होने पिता का मोसर बडे अच्छे ढग से किया। राजा के दरबार से भी उस समय टीका आया था।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वामी रामचरण अपने राज-सेवा-काल मे जयपुर राज्य के उच्चपदस्थ राजकर्मचारी थे। उनका राजदरबार मे प्रभाव था। पिता

---

१ स्वामी रामचरण एक अनुशीलन, पृ० ४३।

२. रामकृसन तब काम रमाया।
मात-पिता कै आनद आया।
काम करत बो होता दिन बीता।
रामकृस्न सू सबही नचीता।
. . .
सभा माहि अति लगे सुभाया।
ताते ऐ सबके मन भाया। —गुरलीला विलास, ह० प्र०

३. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

४ "इनकी २४ वर्ष की अवस्था मे ही पिताजी का स्वर्गवास हो गया। इस दु:संवाद को सुनकर वे बडे व्यथित हुए। मोसर करने के लिए जयपुर से अपने गाव को रवाना हुए।"
—श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ५

के मोसर पर राजदरबार से टीका आना ही इस बात का प्रमाण है कि वे उच्चपद प्राप्त राजपुरुष थे। किन्तु वे किस पद पर थे, इसका उल्लेख 'गुरलीला विलास' मे जगन्नाथ ने नही किया है।

'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' मे भी इनकी सम्पन्नता की चर्चा करते हुए जगन्नाथ आगे लिखते है—

"कोई रीति कभी नहीं बरते।
राजनीति मे नीकां निरते।
न्याव निसाफ निवेरे सारो।
ज्यू ज्यू बधे तेज तप भारो।"[1]

इस सदर्भ मे परचीकार लालदास का निम्न कथन भी महत्त्वपूर्ण एव विचारणीय है—

"तरण अवस्था भये मुसद्दी।
आप विराजै हाकिम गद्दी।
न्याव निसाफ करै अति नीको।
सुख पहुचावै सबही जी को।
वैश्य उजागर सबही भाखै।
राजमाहि बड कारण राखै।
संसकार परब पुन्य भारी।
जस गावै सबही नरनारी।"[2]

'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' और 'परची' के उद्धरणो से स्पष्ट होता है कि रामचरण जी राजसेवा-काल मे सभी रीतियो का व्यावहारिक ज्ञान रखते थे पर राजनीति मे भलीभाँति निष्णात थे। वे न्याय-इन्साफ करने मे कुशल थे। तरुणाई मे वे हाकिम की गद्दी पर विराजमान हुए थे। उनके न्याय से सभी सुख पाते थे। सभी कहते है कि वैश्य बडा उजागर है और राज्य मे उनका बडा प्रभाव था। परचीकार कहता है कि यह उनके पूर्वजन्म के सस्कारो और सत्कर्मो का प्रभाव था कि सभी नर-नारी उनका यशगान करते थे। उपर्युक्त विवेचन से भी मैं इस निष्कर्ष पर हूँ कि स्वामी रामचरण जी अपने राजसेवा-काल मे जयपुर राज्य के प्रभावशाली, न्यायनिष्ठ, राजनीतिकुशल एव यशस्वी उच्चपदस्थ राजपुरुष थे। आश्चर्य नही कि उनके उपर्युक्त गुणो से प्रभावित होकर जयपुर नरेश ने उन्हे भिन्न-भिन्न ऊँचे पदो पर कार्य करने का अवसर दिया हो। सत सन्मुखराम जी ने मुझे एक चर्चा मे यह बतलाया था कि जयपुर नरेश के समक्ष एक बार ये अपने पिता के साथ उपस्थित हुए थे। इनकी बुद्धिमत्ता से राजा तभी प्रभावित हुए थे और इन्हे अपना निजी सचिव नियुक्त किया था।

---

१. ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७६ ——प्रकाशित 'वाणी' के अन्तर्गत
२ रामचरण चरितावली, पृ० २।

यद्यपि इस कथन का आधार भी जनश्रुति ही है किन्तु स्वामी रामचरण जैसे व्यवहार-कुशल राजनीति-विशारद, न्यायी हाकिम एवं प्रभावी राजपुरुष के लिए उक्त पद पर नियुक्त होना आश्चर्य का विषय बिल्कुल नहीं। हाँ, इतना तो निश्चित है कि वे न तो पटवारी या कानूनगो जैसे सामान्य पद पर थे और न जयपुर राज्य के प्रधानमंत्री ही थे प्रत्युत् यही कि 'जनम वैश्य घर पाईयो पुनि सेवत राज दवार।'

धर्मप्राण परिवार

स्वामी रामचरण का परिवार धर्मप्राण आस्तिक परिवार था। धन-सम्पन्नता के साथ धर्मप्राणता भी थी। उनका परिवार धर्मशील सगुणोपासक यशस्वी भगवद्भक्त परिवार था। सगुण भक्ति के साथ दान-स्नान, नियम-आचार के प्रति उसमें आस्था की भावना थी।[१] बालक रामकृष्ण पर परिवार की इस धर्मशीलता का प्रभाव अवश्य पड़ा था। तभी "आप बाल्यकाल से ही भगवद्भक्ति, संतसेवा, भजन, सत्संग आदि में तल्लीन रहते थे।"[२] स्वामी रामचरण अपने गार्हस्थ्य जीवन में परिवार के अन्य लोगों की भाँति सगुण भक्ति, दान-स्नान, नेम-आचार आदि में विश्वास करते थे। विरक्त होने पर भी पर्याप्त समय तक सगुणोपासक वैष्णव ही रहे थे।

परिवर्तन के दो सोपान

एक घटना : एक सपना

स्वामी रामचरण एक बार एक हाट में लेटे हुए थे[३], तभी ऐसा हुआ कि एक यती उस मार्ग से निकला। उसने उनके पगतल की रेखा देखी। देखते ही यती बोला, "तुम्हारे चरण में उर्ध्व रेखा है, मुझे आश्चर्य हो रहा है। या तो तुम्हें राजा होना चाहिए या योगी।"[४]

---

१. स्याम धर्म सूं काम करावे।
जहां तहां जसवास बधावे।
सरगुण भगति करै कुलसारो।
दान सनान नेम आचारो। —गुरलीला विलास, ह० प्र०

२. उपदेशामृत बिन्दु (तृतीय पुष्प), पृ० १६।

३. एक सहा की हाट व जानी।
तहां सहज में सयन करानी। —ब्रह्म समाधिलीन जोग, पृ० १०७६

४. एक समै एक जुग जुरानो।
जती एक मारग निकसानो।
चरण पगतली देखी रेखा।
ताके पाछे कियो बवेका।
कोण लोग तुमरे काहा विभा।

किन्तु परचीकार लालदास का कथन है कि इन्हे विरागी होना चाहिए, ये गृहस्थ कैसे है ?[१] 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' मे जगन्नाथ ने भी इस आशय की पुष्टि की है—

"उर्ध्व रेख जो चक्र दबाई।
ये कुण है गृह मे क्यू भाई।
इनके उग्र निर्वेद करारो।
रामभजन करि होइहै पारो।"[२]

स्मरणीय है कि 'गुरलीला विलास' और 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' दोनो ही के रचनाकार जगन्नाथ है, किन्तु इस सदर्भ के दोनो के कथनो मे अन्तर क्यो ? पुन निवेदन है कि 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' स्वामी रामचरण के निधन के तत्काल बाद की रचना है और 'गुरलीला विलास' निधन के पाँच वर्ष बाद सोडा-यात्रा के बाद की। 'गुरलीला विलास' स्वामी रामचरण के जीवन का पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् जीवनीकार द्वारा लिखी गई कृति है। इसलिए इस जीवनी-ग्रन्थ के तथ्य ही विशेष विश्वसनीय है। वैसे 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' के तथ्य भी अविश्वास के योग्य नही है, फिर भी तथ्यो मे यदि कही अतर दृष्टिगोचर हो तो 'गुरलीला विलास' के तथ्यो को ही वरीयता दी जानी चाहिए। यद्यपि यहाँ परचीकार लालदास 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' के तथ्य की ही पुष्टि करते है पर मेरा निश्चित मत है कि 'गुरलीला विलास' का तथ्य ही प्रामाणिक है।

इस घटना के समय स्वामी रामचरण ३१ वर्ष के थे।[३] किन्तु लालदास के अनुसार इस घटना के समय उनकी अवस्था ३१ वर्ष ७ मास थी।[४] 'श्री रामसनेही सम्प्रदाय' के लेखको ने इससे भिन्न मत व्यक्त किया है। उन लोगो के अनुसार पिता के निधन के बाद

याकी मोको आत अचभा।
उरध रेख तुमरे चरनन मे।
याते इचरज आवतु मन मे।
के राजा होइ चवर ढुलावै।
के जोगेस्वर जोग कु भावै।   —गुरलीला विलास, ह० प्र०

१. चरणचिन्ह को देख के, बोला ग्यान विचार।
इनके दृढ निरवेद है, ये कैसे गृहवार।
—रामचरण चरितावली, पृ० २

२ ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७६।

३ इकतीस बरस को यो बरतारो।
श्रवणा सुणी सो बरनो सारो।   —गुरलीला विलास, ह० प्र०

४. इकतिस बरस की अवस्ता, सात महीना ओर।
प्रौढे थे इक हाट मे, जती आया तही ठोड़।   —परची, ह० प्र०

मोसर के लिए जयपुर से बनवाडा जाते समय मार्ग मे इस यति से मिलन हुआ था।[१] इससे यह सिद्ध होता हे कि २४ वर्ष की अवस्था मे उस यति ने सदर्भित भविष्यवाणी की थी।

मेरी दृष्टि मे जगन्नाथ एव लालदास के मतो पर अधिक चर्चा की गुंजाइश नहीं हे। वैसे वरीयता जगन्नाथ के मत को ही दी जा सकती हे। किन्तु 'श्री रामसनेही सम्प्रदाय के लेखको ने अपने इस कथन का कोई आधार नही दिया है। मैं यह भी समझता हूँ कि 'गुरलीला विलास' एव 'परची' के अतिरिक्त अन्य कोई भी साम्प्रदायिक या बाह्य साक्ष्य नही है जिसके आधार पर यति-मिलन के समय स्वामी रामचरण की आयु क्या थी, इसका उल्लेख हो। फिर 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के विद्वान् लेखको को यह भ्रम कैसे हो गया कि पिता के मोसर के लिए जाते समय अर्थात् २४ वर्ष की आयु मे भविष्यवक्ता यति से स्वामी रामचरण की भेट हुई थी। इस विवेचन से एक बात ओर स्पष्ट हो जाती हे, वह यह कि स्वामी रामचरण अपने पिता के निधन के पश्चात् सात वर्षों तक जयपुर राज्य की सेवा मे थे।

परचीकार लालदास लिखते है कि वह यति तो अपनी बात कह कर चला गया पर उसी दिन रात को स्वामी रामचरण ने एक स्वप्न देखा।[२] 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' मे जगन्नाथ ने यह तो नही लिखा हे कि उसी दिन की रात को स्वप्न हुआ किन्तु ३१ वर्ष ७ महीने का समय स्वप्न के लिए अवश्य निर्धारित करते हे।[३] आगे चल कर 'गुरलीला विलास' मे वे 'एक समय' कह कर निकल गए है।[४] पडित परशुराम चतुर्वेदी भी जीवन के ३१वें वर्ष मे स्वप्न देखने की बात लिखते है।[५]

'गुरलीला विलास' कार जगन्नाथ के शब्दो मे स्वप्न इस प्रकार चलता है—

"सिलता मे ज्यो करत सनाना।
धारा मे पड़ बहै निदाना।

---

१. 'मोसर करने के लिए जयपुर से अपने गाँव को रवाना हुए। मार्ग मे एक यति से इनका मिलन हुआ। यति ने आचार्य चरण को देख कर आश्चर्य प्रकट किया और कहा—'ज्योतिष के अनुसार तुम्हे या तो राजा होना चाहिए था कोई योगी।'

—श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ५-६

२. जती बचन कह रम गया, आप सुनी ऐ बात।
निद्रा मे सुपना भया, वाइ दिन की रात। —परची, ह० प्र०

३. तबे एक दृष्टान्त दिखायो।
सोवत समय स्वप्न मे आयो।

. . . . .

इकतीस वर्ष महीने साती।
भयो दृष्टान्त निद्रा में राती। —ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६

४. ऐक समय निसि आयो सुपनो।
जाहा निजर नही आवे अपनो। —गुरलीला विलास, ह० प्र०

५. उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० ६१५।

तहा ऐक संत पुरातन ठाडे।
बहत बेष दोरवाहा काढे।[1]

अर्थात् वे सरिता मे स्नान करते समय धार की चपेट मे पड कर बहने लगे। किन्तु परचीकार लिखता है कि पैर फिसल गया और वे धारा मे बह चले।[2] वहाँ खडे वृद्ध सत ने इन्हे बहता देख दौड कर बाहर निकाला।[3] डॉक्टर अमरचन्द वर्मा लिखते हे कि "कुछ समय पश्चात् एक शुभ्रवेषधारी साधु दौडता हुआ आया।"[4] वे पुरातन सत महासुख देने वाले, श्वेतकेशी एव अमृतवाणी बोलने वाले थे।[5] स्वप्न मे सत मूर्ति का दर्शन परचीकार लालदास भी स्वीकारते है। 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' मे जगन्नाथ ने उस महासुखदानी सत मूर्ति की अमृतवाणी सुनी है और तभी स्वप्न भग की चर्चा निम्नलिखित पक्तियो मे की है—

"जाकी मूर्ति महासुख दानी।
राम राम करुणा जु करानी।
लिये उबार भीति सब भागे।
इतना ही मे सोवत जागे।"[6]

महासुखदानी सत की करुणा ने उनसे 'राम राम' उच्चरित कराया। स्वामी रामचरण नदी मे डूबने से सत द्वारा उबार लिये गये और उनका सारा भय जाता रहा। तब तक निद्रा टूटी और स्वप्न भग हो गया।

जागरण

नीद भग होने के साथ स्वामी जी की मोह-निद्रा भी भग हो गई। जागने पर आपको समस्त ससार मिथ्या प्रतीत होने लगा।[7] स्वप्न मे सत-मिलन के साथ ही उत्तम ज्ञान का उदय हुआ। उसी दिन से मन ससार से विरक्त हो चला और घर मे भी स्वामी रामचरण वनवासी सदृश रहने लगे। उनके मन मे सत-शरण मे रहकर भगवद्भजन करने तथा मनसा,

---

१ गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२ नदी पधारे सुपन मे करने को स्नान।
चरण फिसल धारा बहे हरि जन काढे आन।—रामचरण चरितावली, पृ० २।

३ तहा इक सत वृद्ध से ठाडे।
बहते देखि दोरि बा काढे। —ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७६।

४ स्वामी रामचरण एक अनुशीलन, पृ० ८५।

५ जे निज सत महा सुपदानी।
सेत बाल मुष इमृत वानी। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

६ ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७६।

७ जाग आप यू कियो विचारा।
यो तो जगत झूठ है सारा। —ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७६।

वाचा ससार से विलग हो जाने का भाव जगा। उन्हे प्रतीत होने लगा कि घर-बार, धन-सम्पत्ति का सुख, स्त्री, पुत्र, परिवार ये कभी भी अपने नही।[१] परमोकार लालदास की दृष्टि यहाँ तनिक दार्शनिक हो गयी है। उनके अनुसार स्वामी जी ने विचार किया कि मोह नदी की धार मे डूबने वाला मेरा जीव है और सतगुरु उबारने वाले है और तभी हृदय मे वैराग्य जगा और सासारिक मोह-बधन को तोडकर सतगुरु की खोज मे निकल पडे।[२] इसी सदर्भ मे 'गुरुलीला विलास' मे जगन्नाथ लिखते है—

"जगत सुष तज निसरया ऐकाऐकी आप।
नरतन काज सुधारणे करणो संत मिलाप।[३]

बाह्य साक्ष्यो मे आचार्य पडित परशुराम चतुर्वेदी ने भी स्वप्न से प्रभावित होकर घर-बार छोडने तथा उक्त महात्मा की खोज मे सर्वत्र भरमने की बात लिखी है।[४]

महात्मा की खोज

इस प्रकार वैराग्य उपजने पर स्वामी रामचरण लोक-सुख का परित्याग कर स्वय मुक्ति पाने तथा अन्य अनेक जनो को मुक्ति दिलाने के लिए घर से निकल कर वन की ओर चल पडे।[५]

---

१ उत्तम ग्यान उदय होइ आया।
नब सुपना मे सत मिलाया।
जा दिन सू मन भयो उदासी।
रहे भवन मे ज्यों बनवासी।

. . . .

मनसा वाचा जग को तजना।
सतो सरने हरि को भजना।
सुप सपति घरबार धन सुत बिनता परिवार।
ऐता कदेन आपणा मन मे कीयो विचार। —गुरुलीला विलास, ह० प्र०।

२ बूडन हारा जीव मम, मोह नदी की धार।
सतगुर काढनहार हे, जिनसे कीजै प्यार।
उपजा उर निरवेद दढ, तोडी मोह की पास।
सतगुर को ढूढन चले, लगी दरस की प्यास। —परची, ह० प्र०।

३ गुरुलीला विलास, ह० प्र०।

४ उत्तरी भारत की सत परपरा, पृ० ६१५।

५ ऐसी विधि उपज्यो वैराग।
जग विलास को करियो त्याग।
सब सुख छाडि चले अब आरण।
आप तिरन बहुतन को तारन। —महासमाधि लीन जाग, पृ० १०७६।

वे स्वप्न में उबारने वाले संत की खोज में निकले थे। जगन्नाथ ने 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है—

"जे मोहि स्वप्ने लिये उबारी।
ऐसे हेरो परम उदारी।[1]"

उदासी रामचरण दक्षिण दिशा की ओर चले और शाहपुरा पहुँचे। शाहपुरा में उन्होंने स्वप्न में उबारने वाले महात्मा के विषय में पूछताछ की। विदित हुआ कि ऐसे संत दांतड़ा में रहते हैं। यह सुनकर स्वामी जी अत्यन्त हर्षित हुए और प्रभात होते ही दांतड़े के लिए प्रस्थान कर गए।[2] 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' कार लिखता है—

"पूछि ठौर गुरु शरणे आये।
नगर दांतड़े सतगुरु पाये।[3]"

स्वामी कृपाराम से भेंट

दांतड़ा पहुँच कर रामचरण जी महंत स्वामी कृपाराम जी से मिल कर अत्यन्त उल्लसित हुए। स्वप्न में जो संत मूर्ति उन्होंने देखी थी, उसी का साक्षात् दर्शन कर रहे थे।[4] भावविभोर रामचरण जी ने शीश नवा कर प्रणाम किया, प्रसाद चढ़ाया और प्रदक्षिणा की।[5] स्वामी कृपाराम जी ने स्वामी रामचरण को देख कर पूछा—"किण दिस आया, किण

---

१. ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६।

२ तब उदास होइ छाड्यो भवना।
दक्षिण दिसा को कीयो गवना।
साहिपुरा में आया जबही।
ऐसा संत दांतड़ै सुनीया।
मन मे हरष्या तन मे गुणीया।
तब प्रभात दांतड़े चलीया।
जन किरपाल परसपर मिलीया। —गुरुलीला विलास, ह० प्र०।

३ ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६।

४ जै छवि देषी सुपन मे सो निरषी निजनैन।
डडवत कर चरणा पडे, उपज्यो उर सुपचैन। —परची, ह० प्र०।
जो स्वरूप स्वप्ना में पेखे।
सो महाराज आपने देखे। —ब्रह्मसमाधि लीन जोग।

५. कर प्रनाम प्रसाद चढायो।
परदषणा दे सीस नवायो।
सो दरसण सुपना मे दरस्या।
सो उत काल आइ पद परस्या। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

दिस जाएयो ?"[1] स्वामी रामचरण ने करबद्ध होकर अपनी सम्पूर्ण गाथा सुना दी और निवेदन किया—"महाराज ! मै आपकी शरण मे आया हूं।"[2] चरणस्पर्श करते हुए कहा प्रभु जी ! आज मेरा भाग्योदय हुआ है। हे दयानिधि ! मुझे स्वरूप दीजिए, मै वैराग्य लूंगा, आप इसका रहस्य बताये।[3]

स्वामी रामचरण का निवेदन सुनकर स्वामी कृपाराम जी ने उत्तर दिया कि—"भाई ! वैराग्य महा कठिन है। इसकी शोभा का बखान संतो ने किया है। वैराग्य उसे मिलता है जो परम सौभाग्यशाली होता है।[4] 'गुरलीला विलास' की निम्नलिखित पंक्तियां इस संवाद मे महत्त्वपूर्ण है—

"जोग कु भावण करडो कामा।
रो तुम जावो अपणी धामा।"[5]

स्वामी कृपाराम जी ने योग-साधना की कठिनाइयाँ बताकर स्वामी रामचरण जी को घर लौट जाने की सलाह दी। किन्तु स्वामी रामचरण दृढनिश्चयी थे। उन्होने पुन निवेदन किया कि मेरी इच्छा घर वापस होने की तनिक भी नही है।[6]

वैराग्य जीवन

दीक्षा

गुरलीला विलासकार जगन्नाथ लिखते है कि इस प्रकार विचार-विमर्श मे एक पक्ष लग गया। पक्ष बीतने पर स्वामी कृपाराम जी ने उन्हे वैराग्य दिया। यह घटना संवत्

---

१ गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२ तब कर जोड सुनाई गाथा।
मै सरनागत आयो नाथा। —वही, ह० प्र०।

३ कर परणाम आय पग लागे।
प्रभु जी आज भाग मम जागे।
देहु स्वरूप दयानिधि देवा।
त्यू वैराग बताओ भेवा। —ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६।
अरज करि कर जोड के लीजे माहि शरण। —परची, ह० प्र०।

४. ये वैराग कठिण है भाई।
जाकी शोभा संतो गाई।
सो वैराग भाग बड जाके। —ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६।

५. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

६. तब विचार कर कीन्ही अरजी।
घर नही जाऊँ याही गुरजी। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

१८०८ के भादो महीने की है।' इसी सुअवसर पर स्वामी कृपाराम जी ने इनका नाम रामकृष्ण से रामचरण कर दिया। परचीकार लालदास ने इस नाम-परिवर्तन की घटना का बड़े स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है—

"रामचरण जी नाम दे सीस धर्‌या गुर हाथ।
सतगुर का प्रताप तें जग मे भए विख्यात।"[२]

डॉ० अमरचन्द वर्मा एव श्री रामस्नेही सम्प्रदाय के लेखको ने दीक्षा-वर्ष एव मास के अलावा दीक्षा-तिथि एव दिन भी खोज निकाला है। डा० वर्मा लिखते हैं—"श्री कृपाराम ने स्वामी रामचरण को विक्रम सवत् १८०८ भाद्रपद शुक्ल ७ गुरुवार के दिन रामनाम का मत्र देकर दीक्षित कर दिया और उनका नाम रामकृष्ण से रामचरण रख दिया।"[३] इस सदर्भ म 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखको की प क्तियाँ निम्नलिखित है—

"विक्रम सवत् १८०८ भाद्रपद शुक्ल ७ गुरुवार के दिन स्वामी कृपाराम जी ने रामकिशन को रामनाम का तारक मत्र देकर दीक्षित किया और इनका दीक्षा-नाम रामचरण रखा।"[४]

विनम्र निवेदन है कि शोध-कर्त्ता डॉ० वर्मा एव 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के विद्वान् लेखको ने तिथि और दिन कहाँ से खोज निकाला है, विचारणीय है। मैंने स्वामी रामचरण जी के जीवनीकार जगन्नाथ एव परचीकार लालदास रचित जीवनी ग्रथो का अवलोकन किया।

---

१ एक पाष चरचा मे लागा।
तब महाराज दीयो बैरागा।
अठारा सैर आठ की साला।
माथे हाथ दियो किरपाला।
भाद्रप मास भये निर्बन्ध।
रामचरण जी नाम प्रसिद्ध। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।
सवत अठारा सै अरु आठा।
ले बैराग गहे मन काठा।
भाद्रप मास दास पद पायो।
रामचरण जी नाम कहायो। —ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६।
तब सतगुर कृपाल होय दीया साध सरूप।
रामनाम मत्र दीया सब वरमा सिरभूप।
अष्टादस अरु आठ के समत भइ गुर भेट।
आप सरीखा कर लिया मूल भरमना मेट॥ —परची, ह० प्र०।

२ वही।

३. स्वामी रामचरण एक अनुशीलन, पृ० ४८-४९।

४. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १०।

गमी ने सवत् १८०८ भाद्रपद मास का तो उल्लेख किया है किन्तु तिथि एव दिन का किसी ने भी नही। डॉक्टर अमरचन्द जी तथा वैद्य केवलराम स्वामी आदि ने फुटनोट मे उपर्युक्त जीवनीकारो के अतिरिक्त अन्य किसी का भी हवाला नही दिया है जिसने दीक्षा-तिथि एव दिन का उल्लेख किया हो। मै यह समझने मे असमर्थ हू कि विद्वान् शोधकर्ता ने बिना प्रमाण तिथि एव दिन का उल्लेख कैसे कर दिया। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखक सम्प्रदाय के अनुयायी एव सत ही है। यदि उन्हे किसी ऐसे सूत्र की जानकारी थी तो उसका उल्लेख अवश्य करना चाहिए था। मेरा निश्चित मत है कि यदि जीवनीकार जगन्नाथ को तिथि और दिन का ज्ञान होता तो 'गुरुलीला विलास' या 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' मे इसका निश्चित उल्लेख करते। अन्त मे मै, इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि दिन और तिथि का उल्लेख इन लोगो ने कही से सुन-सुना कर लिख दिया है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने भी सवत् और मास का उल्लेख अपने ग्रथ 'उत्तरी भारत की सत परम्परा' मे किया है।[1]

गूदड धारण

अपने गुरु स्वामी कृपाराम से दीक्षा ग्रहण कर स्वामी रामचरण ने गूदड वेश धारण किया।[2] तब स्वामी कृपाराम जी ने इन्हे इस प्रकार उपदेश दिया—

"तब कृपाल ऐसी फुरमाई।
अपनो कारज कीजो भाई।
हमरे निमत कछु वीन न हेज्यो।
रामनाम निसिबासुर कहि ज्यो।
कनक कामणी को मति धीजो।
जगत बात सुण के मति रीजो।
वृत अजाची भिख्या ली जो।
मन बस भया आपहा आज्यो।"[3]

उपदेश ग्रहण कर स्वामी रामचरण जी विचरण के लिए निकल पडे।[4] वे अकेले सिह के समान स्वेच्छया विचरते थे।[5] वे सात वर्ष तक उस वेश मे रहे, तत्पश्चात् पुनर्विचार

---

१. उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० ६१५।

२ गूदड दिशा बणाई नीकी।
कनक कामणी जदि सू फीकी। —ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६।

३. गुरुलीला विलास, ह० प्र०।

४. वचन मान के रामत कीनी।
मनसा वाचा सिर धर लीनी। —गुरुलीला विलास, ह० प्र०।

५. एकल मल्ल सिह ज्यू विचरन।
अपणे हूवाल करै तहा सचरन। —ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७६-७७।

किया।[1] इन सात वर्षों में स्वामी रामचरण जी का पर्याप्त प्रभाव बढ़ा। उनके गुणों की चर्चा होने लगी। स्वामी जी की महिमा बढ़ी और अनेक नर-नारी उनसे प्रभावित होने लगे। पूजा पर्याप्त बढ़ती थी पर वे उसे ग्रहण न कर गुरु के पास भेज देते थे।[2] यहाँ कृपाराम जी ने उन्हें पुन एक उपदेश और दिया—

तब गुरु कहे सुणो हो सिक्खा।
ये तुम सुणोज मेरी दिक्खा।
हमरे निमित कछु दीन न भाखो।
मति कीजो माया अभिलाखो।
ये माया झूटी है भाई।
झूठ कपट बिन निकसे नाही।
तुम तो काज आपणो कीज्यो।
राम राम रटि अमृत पीज्यो।
जो तुम समझ तज्यो गृह बास।
तो रहज्यो तन लग सदा उदास।
हम तो माया टहल नचाहूँ।
राम कहाय राम मिलवावैं।[3]"

इस उपदेश से प्रेरित होकर स्वामी रामचरण रामनाम में लीन हो गए। तभी एक घटना घटी। गूदड वेशधारी संत रामचरण एक दिन रसोई बना रहे थे। उन्होंने जलती हुई लकड़ियों से चीटियों को निकलते देखा। उनका मन उद्विग्न हो उठा और वे रसोई से दूर जा बैठे।[4]

---

१ सात वर्ष लग गूदड धारा।
पीछे मन में कियो विचारा। —वही, पृ० १०७७।

२ देश मालवे तीन ठिकाणा।
गूदड जी गुण होत बखाणा।
महिमा पधति बधी अतिभारी।
पावौं लगें बहुत नर-नारी।
पूजा चढै सएरे नाही।
परभाती गुरुद्वार पठाही। —वही, पृ० १०७७।

३ ब्रह्मसमाधि लीन जोग, पृ० १०७७।

४ ऐसे करत इसी होइ आई।
भण्डार जगत कीडी निकस्याई।
तब करि तर्क फर्क होइ बैठा।
वा स्थान में फेर न बैठा। —वही, पृ० १०७७।

गलता मेला : ऐतिहासिक मोड़

संवत् १८१५ विक्रमी में प्रसिद्ध वैष्णव गद्दी गलता[1] में एक बहुत बड़ा मेला हुआ था। इस मेले में सम्मिलित होने के लिए लाखों साधु एकत्र हुए। स्वामी रामचरण उस समय दांतड़े में आए। स्वामी कृपाराम जी भी उस मेले के लिए आमंत्रित होने पर गलता चल पड़े।[2] स्मरणीय है कि इस मेले में चारों दिशाओं के सभी वेशधारी संत आमंत्रित हुए थे। महंत कृपाराम जी अपनी साधु-मंडली के साथ गलता जाते समय मार्ग में चूरे नगर में रुके।[3] यहाँ रसोई की दूसरी घटना घटी। चूरे नगर में आपने पंथ की रसोई की किन्तु पंगत के समय साधु-मंडली में आपसी द्वेष के कारण अव्यवस्था हो गई। स्वामी रामचरण ने यह 'गड़बड़' देख कर गुरुदेव स्वामी कृपाराम जी से आग्रहपूर्वक पूछा, 'हे दयालु गुरुदेव, क्या मुक्ति प्राप्त करने का यही ढंग है या अन्य कोई भी? हे देव मुझे उसका रहस्य कृपा कर बतलाइए।'"[4]

स्वामी कृपाराम जी अपने शिष्य के चित्त का उद्वेलन समझ रहे थे। स्वामी रामचरण गार्हस्थ्य जीवन एवं सम्मानित राज-पद छोड़ कर साधुवेश में आए थे। किन्तु यहाँ भोजन के अवसर पर साधुओं का आपसी झंझट देख कर यदि उनका मन उद्वेलित हो उठा तो यह स्वाभाविक ही था। स्वामी कृपाराम ने शिष्य रामचरण को प्रवृत्ति मार्ग का दुखदायी बता कर उस

स्मरणीय है कि इस चींटी निकलने की घटना का उल्लेख गुरुलीला विलास में जगन्नाथ ने नहीं किया है। हाँ, 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' में गलता मेले के प्रसंग के पूर्व इस घटना का वर्णन वे करते हैं। अतः डॉ० वर्मा के इस मत से सहमत नहीं हुआ जा सकता कि गलता जाते समय रास्ते में रसोई बनाते समय जलती लकड़ी से चींटियों का निकल कर मरना देखा गया।

१ गलता जयपुर के पास प्रसिद्ध वैष्णव स्थान है।

२ अठारा में पनरोतरे गलते मेला थाइ।
च्यार दिसा का भेष को दल द लिया बुलाइ। —गुरुलीला विलास, ह० प्र०।

३ नगर दांतड़े जब दल आया।
तब स्वामी किरपाल सिधाया। —वही, ह० प्र०।

४. चूरे नगर पहुँचा होई।
आप पंथ की करी रसोई।
तब पंगत में बड़बड़ जानो।
जब रामचरणजी अरजकरानी।
हे गुरुदेव दयाल कृपाल।
मुकति जाण की ऐही चाल।
कै कोई चाल और है देवा।
याको मोहि बतावो भेवा।
—वही, ह० प्र०।

छोडने का सुझाव दिया और स्पष्ट किया कि निवृत्ति मार्ग ग्रहण कर राम का नाम स्मरण करो तभी मुक्ति का मार्ग पाओगे।[1]

परचीकार लालदास ने यद्यपि इस सत-मण्डली की खीचातानी वाली घटना का वर्णन नही किया है किन्तु भेप मे खडबड का सकेत देकर मुक्ति मार्ग की प्राप्ति की युक्ति पूछने का उल्लेख अवश्य किया है।[2] 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखको एव डॉक्टर अमरचन्द वर्मा ने 'कीडी निकस्याई' वाली घटना का उल्लेख भी इसी सदर्भ म किया है। डॉक्टर अमरचन्द वर्मा ने तो यह भी लिख दिया है कि साधु-मण्डली म गडबडी के कारण स्वामी रामचरण का मन खिन्न था ही, चीटियो वाली घटना से उनके खिन्न मन का चिंतन और तीव्र हो उठा।[3]

मै पहले ही निवेदन कर चुका हूँ कि 'कीडी निकस्याई' वाली घटना गलता-मेला-प्रकरण से पहले ही जगन्नाथ ने 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' मे उल्लिखित कर दी है। किन्तु यह घटना उनकी दृष्टि मे बहुत महत्त्वपूर्ण नही थी। यदि इस घटना का स्वामी रामचरण के जीवन-परिवर्तन मे महत्त्व होता तो 'गुरलीला विलास' म इसका उल्लेख जीवनीकार अवश्य करता। दूसरी बात यह कि साधु-मण्डली की जिस खडबड से स्वामी रामचरण खिन्न हुए थे, वह खडबड की घटना चूरे नगर मे गलता जाते समय घटी थी। फिर डॉक्टर अमरचन्द वर्मा ने दोनो को एक दूसरे से सम्बद्ध कैसे किया और चीटी वाली घटना को क्या प्रमुखता दे दी? यहाँ उस साक्ष्य पर तनिक विचार करना आवश्यक है जिसके कारण डाक्टर वर्मा भ्रमित हुए है। डॉक्टर वर्मा ने 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' को इस तथ्य के लिए सदर्भित किया है और 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखको ने 'रामचरण चरितावली' के अन्तर्गत मुद्रित 'परची' का सहारा लिया है। वस्तुत 'परची' का यह मुद्रित सस्करण ही सारे भ्रमो की जड है। इसके सम्पादक श्री मानकराम जी है। इस मुद्रित 'परची' के पृष्ठ ४ पर 'चौपाई' शीर्षक के अन्तर्गत तीसरी एव चोथी पक्ति ध्यान देने योग्य है—

---

१ तब किरपाल कहै सुण भाई।
परवरति थाट तजो दुपदाई।
निरब्रत होइ राम को गावो।
तबही मुकति माघ को पावो।

—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२. सपत बरस तन गुदड भेपा।
इक दिन उपजी तरक वसेषा।
भेप माहि अति पडबड देखी।
तब गुर पूछी सीप विवेकी।
मुकती होन की ऐह जूगती।
के कोई ओर भात है मूकती।

—परची, ह० प्र०।

३. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ५२।

"ऐसे करत इसी बन आई। भण्डार करत कीडी निकस्याई।
तब करि तरक फर्क होई बैठा। वा स्थान गे फेर न पेठा।"[1]

ग पक्तियाँ लालदास रचित 'श्री रामचरण जी म्हाराज की परची' ग्रथ मे नही है।[2] स्पष्ट यो समझना चाहिए कि लालदास ने 'परची' मे 'कीडी निकस्याई' वाली घटना का उल्लेख किया ही नही है। ऊपर सदंगित पक्तियाँ 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' की है जिन्हे 'परची' के इस मुद्रित सस्करण मे घुसेड दिया गया है।[3] यदि 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के विद्वान् लेखको एव डॉक्टर वर्मा ने 'परची' की किसी प्रामाणिक प्राचीन प्रति का अवलोकन कर लिया होता तो कदाचित ऐसा भ्रम न होता।

प्रवृत्ति-निवृत्ति का अन्तर्द्वन्द्व

गुरु द्वारा निवृत्ति-पथ पर चलने का उपदेश पाने के बाद स्वामी रामचरण ने मन म विचार कर गूदड वेश के परित्याग की आज्ञा माँगी।[4] गुरु कृपाराम जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होने गूदड वेश उतार विरक्त होने का आदेश शिष्य रामचरण को दे दिया। गुरुलीला विलासकार वेश-परिवर्तन का वर्णन इस प्रकार करता है—

गूदड वसा धरी गुर चरणा।
विरकत कियो वेख सिष करणा।"[5]

इस प्रकार चूरू नगर मे गूदड त्याग कर पूर्ण विरक्त बने और निवृत्ति-मार्ग का पथिक प्रवृत्तिपरक गलता मेले की ओर महत कृपाराम जी के साथ गया।[6] गलते का यह मेला वस्तुत साधु-सम्मेलन था। इसमे चार सम्प्रदाय और बावन द्वारो के सभी पथो के महतजन आए थे। इस मेले म आमेरपति और अनेक राव-राजे दरस-परस के लिए अत्यत चाव से आते

---

१ रामचरण चरितावली, पृ० ८।

२ इस ग्रथ की हस्तलिखित प्रति मुझे इन्दौर के सत श्री सन्मुखराम जी से प्राप्त हुई थी। इसके हस्तलिपिकर्त्ता साधु रामदयाल हे जिन्होने स० १९७७ मे कपासन (मेवाड) मे इसे लिपिबद्ध किया था। [देखिए, प्रथम अध्याय मे 'परची' की समीक्षा]

३ मेरा निवेदन इस सदर्भ म यह है कि मुद्रित 'परची' किसी ऐसी 'परची' ग्रथ की प्रतिलिपि है जिसमे 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' की उक्त पक्तिया किसी ने बाद म लिख दी है। इसे 'परची' के सम्पादक को ध्यान से देख कर इसका सम्पादन करना चाहिए था और वैसी ही किसी अप्रामाणिक 'परची' की प्रति 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखको के हाथ लग गई।

४ तब उर कीयो विचार अरज करी गुरदेव सू।
गूदडपणो उतार, विरकत करद्यो रामजी। —गुरुलीला विलास, ह० प्र०।

५ गुरुलीला विलास, ह० प्र०।

६ मेले गये महत जी सगा।
परबरत सू मन रहे असगा। —वही, ह० प्र०।

थे।[1] डॉक्टर अमरचन्द वर्मा लिखते है कि इस मेले मे भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो के साधक सम्मिलित हुए थे। स्वामी रामचरण को इन सभी की साधना-पद्धति एव विचारो को निकट से देखने का अवसर मिला था।[2]

गलता का मेला एक महीने रहा। उसके बाद स्वामी कृपाराम जी अपन साधु-शिष्यो के साथ जयपुर चले आये। अभी भी स्वामी रामचरण गुरु कृपाराम के साथ ही थे। किन्तु उनके मन मे प्रवृत्ति-निवृत्ति का सघर्ष चल रहा था, वे उदास थे। गुरु ने उनसे पूछा—'अब किधर जाओगे ?' स्वामी रामचरण ने वृन्दावन जाने की इच्छा व्यक्त की। उनकी वृन्दावन प्रस्थान करने की अभिलाषा वस्तुत प्रवृत्ति-निवृत्ति-सघर्ष मे प्रवृत्ति की विजय का द्योतक है। वस्तुत स्वामी रामचरण के गुरु स्वामी कृपाराम स्वय प्रवृत्तिमार्गी थे और जिस परिवार मे रामचरण जी का जन्म हुआ था, वह भी प्रवृत्तिपरक सगुण भक्त परिवार था। यद्यपि गुरु ने उन्हे निवृत्ति मार्ग पर चलने का उपदेश दे दिया था, फिर भी वृन्दावन की ओर उनका मन आकर्षित हो रहा था। 'गुरलीला विलास' मे इस स्थल पर पुन स्वामी कृपाराम का एक उपदेश इन्हे मिलता है जिसकी कुछ पक्तियाँ निम्नलिखित है—

"वृत्ति निभै जो गाम बिचरणा।
संग कुसग देख के करणां।।"[4]

स्वामी रामचरण ने गुरु का उपदेश ग्रहण कर उन्हे प्रणाम किया, प्रदक्षिणा की, चरणोदक लिया, फिर सभी सतो को शीश झुकाकर उत्तर दिशा की ओर चल पडे।[5]

---

१ च्यार सम्प्रदा मै मुखी, बावन द्वारा लार।
सब पथन का महतजन, आइ मिलै जी बार।।
ऐक जग्यासी आवेरपति, ओर सबे अमराव।
दरसण परसण करण कौ, आवै करकर चाव।। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२. स्वामी रामचरण एक अनुशीलन, पृ० ५४।

३ एक मास मेलो रयौ, सोभा भई सरस।

महत कृपाल उठि सब व्याया।
निज साधा मू जैपुर आया।
रामचरण जब भया उदासी।
तब गुरु कया कौण दिसि जासी।
तब कर जोडर कीन्ही अरजी।
बिन्दराबन जावण की मुरजी। —गुरलीला विलास ह० प्र०।

४ वही, ह० प्र०।

५ कर प्रनाम प्रदक्षिणा दीनी।
चरणोदक परसादी लीनी।

रामसनेही तुम काहा चलीया

स्वामी रामचरण वृन्दावन की ओर चले जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक गुप्त संत मिले। उस संत ने इनसे पूछा—'रामसनेही तुम कहाँ चले?' वृन्दावन का संकेत प्राप्त होने पर संत ने इन्हें वहाँ जाने से मना किया।[१] संत ने स्वामी रामचरण को समझाते हुए कहा—

"वाहा रजोगुण है सब थाट।
विषर जाइ मन बारा बाट।
तुमरो ह्वालनि मे नही उठे।
पाछ्या जावो आया जठे।
रामभजन सूं कारज सधसी।
ताको सुजस बहू दिस बधसी।
हमरो बचन मान के लीजे।
सतगुर सूं मिल सुमरण कीजे।"[२]

स्वामी रामचरण को संत वाणी ने प्रभावित किया और वे अपनी उसी मन स्थिति में वापस मुड़ गये। लेकिन यह क्या? अभी एक-दो पग ही चले थे कि मुड़कर देखते हैं तो संत अदृश्य हो गए थे।[३] 'स्वामी रामचरण जी विस्मित हो गये, इन्हें लगा, साक्षात् ईश्वर ने प्रत्यक्ष दर्शन दिए हों।'[४] गुरुलीला विलासकार भी लिखता है—

"साध रूप होइ दरस दिखाया।
रामचरण के आनंद आया।
इत उत हेरे दरसे नाही।
तब जन समझ रहे मन माही।

सब संता को सीस नवाया।
रामत करी उतर दिसि ध्याया। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

१ गुपत संत रसता माही मिलीया।
रामसनेही तुम काहा चलीया।
बनराबन की सैंन बताई।
तब वा कयौ जाइ मत भाई। —वही, ह० प्र०।

२ वही, ह० प्र०।

३ पाछ्या फिर्‌या ऐक दोइ ध्याया।
तब वे साधू वाहा बिलाया। —वही, ह० प्र०।

४. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १४।

तब मन के उपज्यौ बिसवासा।
पाछ्या आया सतगुर पासा।"[1]

डॉक्टर अमरचन्द वर्मा इस घटना की सत्यता अथवा औचित्य पर कुछ कहने से इन्कार करते है। फिर 'घटना की सत्यता मे शका उठाई जा सकती है'[2] कह कर यह कहते है कि उन्हे प्रेरणा देने वाला उनका अन्त मन ही था। डॉ० वर्मा की इस भावना का आदर करते हुए निवेदन है कि मै उनके इस मत से पूर्णतया सहमत हूँ कि स्वामी रामचरण के मन मे प्रवृत्ति-निवृत्ति का अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था और इस बार निवृत्ति की विजय हुई थी पर अज्ञात सत के मिलन को प्रतीकात्मक मानने मे मै इन्कार करता हूँ। जीवनीकार की भाषा प्रतीकात्मक नही होती है। जगन्नाथ सफल जीवनीकार थे। वे तथ्य को प्रतीक मे नही बदल सकते थे। पुनश्च, जहाँ उन्हे तनिक भी सदेह हुआ है ऐसे स्थलो को छोड गए है।

अज्ञात सत के वचन से स्वामी रामचरण के हृदय म व्याप्त प्रवृत्ति-निवृत्ति का सघर्ष समाप्त हो गया। अब वे पूर्ण विश्वास के साथ विरक्त रूप म अपने गुरु स्वामी कृपाराम जी के निकट पहुँचे और उनसे मार्ग की आप बीती गाथा कह गए। गुरु कृपाराम जी ने अज्ञात संत के प्रभाव मे डूबे रामचरण से उपदेश की भाषा मे कहा—

"राम भजन करज्यौ भरपूर।
तब हरि निकट न जाणै दूर।"

गुरु का उपदेश सुनकर स्वामी रामचरण कुछ दिनो के लिए चाटसू चले गए। वहाँ अनेक लोगो मे भक्ति भावना भरी। फिर चाटसू से जयपुर चले आए और यही कुछ काल तक रहे।[4]

भीलवाड़ा की ओर

स्वामी रामचरण और भीलवाडा

गुरलीला विलासकार की निम्नलिखित पक्तियाँ उपर्युक्त शीर्षक के सदर्भ मे ध्यान देने योग्य है—

---

१ गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ५६।

३ गुरलीला विलास, ह० प्र०।

४ कितक दिवस चाटसू ध्याया।
बौहो जीवन के भाव बधाया।
बोहोर पधार्‌या जैपुर आया।
तब रामत की करी उपाया। —वही, ह० प्र०।

"नामदेव पुंडरपुर भणीजै।
ज्यूं कबीर कासी मे गिणीजै।
रामचरण भीलाडे असैं।
तामैं भूल न लावो ससै।"[1]

स्वामी रामचरण भीलवाडे मे वैसे ही प्रसिद्ध हुए थे जैसे पढरपुर मे नामदेव और काशी मे कबीर। स्वामी जी जयपुर से मेवाड की ओर रवाना हुए और भीलवाडा मे आ गए। यह यात्रा उन्होंने सवत् १८१७ विक्रमी म की।[2] भीलवाडा मे पश्चिम की ओर स्थित बावडी पर स्वामी जी ने अपना आवास बनाया। स्वामी जी वहाँ अकेले विराजते थे, तब कोई जिज्ञासु या शिष्य उनके समीप नही था।[3]

स्वामी रामचरण जी भीलवाडा मे निर्गुण भक्ति का प्रचार करने के लिए पधारे थे। इससे पूर्व मेवाड प्रदेश मे निर्गुण भक्ति तनिक भी नही थी। 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' की निम्नलिखित पक्तियाँ इस कथन की पुष्टि करने मे सहायक है—

"भक्ति नहीं ती देस मे, निर्गुण को लवलेस।
सो अब परगट होत है, जाहर देस विदेस।"[4]

रामसनेही छाप

अल्प समय मे ही स्वामी रामचरण जी निर्गुण भक्ति के प्रचारक के रूप मे विख्यात हो गए। पश्चिम दिशा की बावडी पर आसन जमा कर साधना-रत रहने लगे। भीलवाडे का नगरसेठ भी स्वामी रामचरण जी के दर्शनार्थ आया और उन्हे देख कर सुखी हुआ।[5] पहले साधनारत स्वामी जी ने मौनव्रत धारण किया था। शनै-शनै भीलवाडा नगर मे

---

१. गुरलीला विलास, ह० प्र०।
२. तब उदास होइ चले विच्यारी।
गवन कियो मेवाड मजारी।
अठारा से सतरा व्रष बीता।
भीलाडै आगे अणचीता। —वही, ह० प्र०।
३ पिछम दिसा बावडी देषी।
ताहा विराज्ये परम बवैकी।
जा दिन नही जग्यासी चेला।
ऐका ऐकी आप अकेला। —वही, ह० प्र०।
[स्मरणीय है कि उक्त बावडी मायाराम की बावडी के नाम से प्रसिद्ध है]
४ ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७८।
५. नग्र सेठ सुण दरसण आयौ।
देषी दसा बोत सुष पायौ। —वही, ह० प्र०।

इनकी ख्याति बढने लगी। सबसे पहले स्वामी रामचरण जी से देवकरण जी मिले।[1] देवकरण और स्वामी रामचरण जी मे प्रश्न-उत्तर भी चले थे।[2] देवकरण जी नवलराम से फिर नवलराम कुशलराम से मिले और स्वामी रामचरण की साधुता की प्रशसा की। फिर तीनो एकत्र होकर स्वामी जी के दर्शनार्थ आए। धीरे-धीरे नगर के लगभग सभी लोग स्वामी जी के दर्शनार्थ आने लगे। दर्शनार्थियो से स्वामी रामचरण जी उत्तम ज्ञान की चर्चा करते। जब उनके जिज्ञासु भक्तो की सख्या बढने लगी तो उन्होंने अपने जिज्ञासु जनो को 'रामसनेही' छाप दी। तभी से उनके सभी भक्त रामसनेही छाप से जाने जाते है।[3]

देवकरण, कुशलराम, नवलराम

"स्वामी रामचरण के ग्रेही सीख अनेक।
देवकरण कुसला नवल मुखिया तीन वसेस।"[4]

स्वामी रामचरण के इन तीनो शिष्यो की सक्षिप्त चर्चा यहाँ इसलिए अपेक्षित है क्योकि पहले तो स्वामी जी के भीलवाडा के और फिर पूरे साम्प्रदायिक सदर्भो मे इन लोगो की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यह पीछे कहा जा चुका है कि भीलवाडा मे सबसे पहले देवकरण स्वामी जी से मिले थे, बाद मे कुशलराम और नवलराम उनके सम्पर्क मे आये। उस समय जो भी पाँच-पचीस जिज्ञासु स्वामी रामचरण के प्रभाव मे थे, देवकरण उनके मुखिया थे।[5] इन तीनो ने स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित धर्म के अनुकूल आचरण करने का निश्चय

---

१ सवत अष्टादस अरु सतरा कहिये।
दवकरण तहा दरसण लहिये। —ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७८।

२ प्रश्न उत्तर भयो तीवारा।
ताको मूल यहा बिस्तारा। —वही, पृ० १०७८।

३ देवकरण नवला सू मिलीया।
तीजा कुशलराम सू पुलीया।
ऐसा सत ऐक देष्या माई।
आगे निजर न आया काई।
तीनो मिल दरसण कू आया।
कीनो दरसण सीस नवाया।

नगर लोग सब दरसण आवै।
जाकू उत्तम ग्यान सुणावै।
पाच पचीस भया जग्यासी।
रामसनेही छाप प्रकासी। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

४. श्री रामचरण जी म्हाराज की परची, ह० प्र०।

५ नरनारी का नाव न लिपीया।
देवकरण सबही मै मुषीया। —वही ह० प्र०।

करके 'शीलव्रत'[1] लेने का विचार किया। ये तीनों ही अपनी धुन के पक्के स्वामी जी के यशस्वी शिष्य थे। गुरलीला विलासकार तीनों का चरित्र वर्णन करते हुए लिखता है—

"देवकरण बड टेक दिवाना।
कुसलराम भी जान सयाना।
नवलराम सब के मन भाया।
तीना का जस बध्या सवाया।"[2]

'शीलव्रत' लेने के समय कुशलराम की आयु ३० वर्ष, देवकरण की २५ वर्ष और नवलराम की इक्कीस वर्ष थी। कुशल राम के पुत्र-पुत्री, देवकरण को केवल एक पुत्र और नवलराम की पत्नी गर्भवती थी, फिर भी शील व्रत लेने का निश्चय कर लिया।[3]

जिस समय देवकरण आदि ने 'शीलव्रत' धारण कर निर्गुणभक्ति का उपदेश स्वामी रामचरण जी से लिया, सम्पूर्ण भीलवाड़ा सगुण भक्ति की लपेट में था। देवकरण का परिवार शहर का प्रख्यात परिवार था। देवकरण के पिता भी सगुणोपासक थे। उनकी शहर में प्रतिष्ठा थी, उन्होंने सुन्दर बाग लगवाये थे, बावड़ी बनवाई थी और देश-विदेश में मन्दिरों का निर्माण कराया था। उन्होंने 'तीरथ बरत' बहुत किया था। उनका पुत्र देवकरण पिता से भी सवाया निकला। उसे स्वामी रामचरण से निर्गुण भक्ति का ज्ञान प्राप्त हो चुका था। देवकरण के माता-पिता को यह नहीं अच्छा लगा। उन्होंने संत रामचरण का विरोध आरंभ किया। विरोध के कारण स्वामी रामचरण ने वह स्थान छोड़ दिया और वे एक देवल के पीछे चले गये, जहाँ सभी सेवक-जिज्ञासु आते थे और सब जग से अलग होकर भगवान् का नाम स्मरण करते थे।[4] देवकरण अपने पिता द्वारा स्वामी रामचरण के विरोध की

---

१. शीलव्रत—साम्प्रदायिक परिभाषा में गार्हस्थ्य जीवन में ब्रह्मचर्य-व्रत को कहते हैं।

२ गुरलीला विलास, ह० प्र०।

३. कुसलराम बरसा में तीसा।
देवकरण सो मगर पचीसा।
नवलराम के बरस इकीसा।
• • •
कुशलराम के धीसुत उभे।
देवकरण कै एक सुत जबे।
नवलराम के घर पग भारी।
पै सील लेण की नेहचै धारी। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

४. सेहर माहि भलमणसी भारी।
सरगुण भगति करै नरनारी।
बाग बावडी कीना सुदर।
देसबदेस बनाया मिन्दर।
तीरथ बरत कीया बोहो नुगता।
च्यार दिसा के माही जुगता।

बात सुनकर अत्यन्त अप्रसन्न हुआ और घर का काम-काज छोड बैठा। तब पिता स्वामी जी के पास गए और पुन प्रतिष्ठित किया। गुरलीला विलासकार देवकरण की प्रशसा करते हुए लिखता है—

"तात मात भाई सुत सारा।
सबकौ तज कर हो गया न्यारा।
सतजुग मे प्रह्लाद बषाणा।
देवकरण कलजुग मै जाणा।"

देवकरण के पिता द्वारा स्वामी रामचरण की पुन प्रतिष्ठा स्वामी जी द्वारा प्रचारित निर्गुणभक्ति की विजय का सकेत है। गुरलीला विलासकार लिखता है कि स्वामी जी की महिमा से चारो दिशा मे भक्ति का विस्तार हो चला।[2]

वाणी रचना

गुरु से प्राप्त राममत्र की साधना करके स्वामी रामचरण साधना म पारगत हो गए। उन्होने रामनाम स्मरण करते हुए योगसाधन किया और सुरति शब्द का योग मिलाया। इस प्रकार अनेक वर्ष भजन मे लीन रहे, फिर मदोन्मत्त की भाँति बकने लगे। गुरलीला विलासकार जगन्नाथ ने 'अणभैवाणी' का खजाना खुलते अपनी आँखो देखा था।[3] वह कहते है—

देवकरण सुत भया सवाया।
निरगुण ग्यान जिनू सू पाया।
तात मात के मन नही भायो।
तब सता सू क्रोध उठायो।
तब म्हाराज उदासी भया।
देवल पाछे आसण कीया।
जाहा जग्यासी आवै सारा।
भजन करै सब सू होइ न्यारा।—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

१ वही, ह० प्र०।

२ भक्ति बधी च्यारू दिसा जाणी सब ससार।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

३ रामनाम रसना सू गाया।
सुरत सबद का मेल मिलाया।
द्वादस बरस भजन कर छकीया।
ज्यू मतवाला मद पी बकीया।
सो हम दषी प्रगट आनो।
अणभैवाणी पुल्यो खजानो।—वही, ह० प्र०।

"ज्यू दरीया की लहरा आवै।
यू महाराज सबद फुरमावै।
लहर्‌या आवै पवन चलता।
सबद फुरे यू भजन करता।"[1]

जैसे नदी मे लहरे उठती है वैसे स्वामी जी वाणी फरमाते। जेसे लहरे पवन वेग से आती है वेसे ही महाराज भजन-वेग से शब्द फरमाते थे। स्वामी जी के शब्द सुन-सुनकर अनेक लोग विरागी हो गए, जिज्ञासु ओर त्यागी तो घर-घर मे होने लगे।[2] 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' के अनुसार 'वाणी' का रचना काल सवत् १८२० विक्रमी है।[3] 'अणभै वाणी म सगुफित विभिन्न विषयो की चर्चा करते हुए जीवनीकार 'वाणी' के सकलनकर्त्ता की भी चर्चा करता है—

"सो वाणी महाराज उचारी।
नवल राम जी झेलि विचारी।

अंग विभाग बना ये सारा।
ये जिहाज उतरै भव पारा।"[4]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'अणभै वाणी' की रचना सवत् १८२० मे भीलवाडे मे प्रारभ हो गयी थी और स्वामी जी के जीवनकाल मे ही नवलराम जी ने उसका अगबद्ध सकलन कर दिया था। मै इस निष्कर्ष पर पहुचने के लिए विवश हूँ कि "स्वामी रामचरण जी की अणभैवाणी" नामक विशाल ग्रथ का सम्पूर्ण अगबद्ध वाणी अश का निर्माण एव सम्पादन भीलवाडे मे ही हो गया था क्योकि सवत् १८२५ के पूर्व स्वामी रामचरण भीलवाडा नही छोड सके थे। अत सवत् १८२० से स० १८२५ के बीच का काल वाणी की रचना एव सम्पादन का काल माना जाना चाहिए।

---

१ गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२ सुण सुण सबद भए बेरागी।
जग्यासी घर घर मे त्यागी।
—वही, ह० प्र०।

३ सवत अठारा से अरु बीसा।
बचन असोलक निपट वरीसा।

तबही अणभो शब्द उचारे।
छन्द बध बहु न्यारे न्यारे।
—ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७९।

४ वही, पृ० १०७९।

विरोध की अनुगूंज

सगुण भक्ति का क्षेत्र भीलवाडा स्वामी रामचरण की निर्गुण वाणी एव उनके उपदेशो से गूंजने लगा। उनके अनुयायी रामसनेही छाप मे पहचाने जाने लगे थे। उनके द्वारा निर्देशित आचरण एव प्रचारित भक्ति के आदर्शों का आकर्षण दिनानुदिन विकसित हो रहा था। उनके उपदेशो मे सामाजिक रूढियाँ, धार्मिक अधविश्वासो एव पाखण्डो के विरोध का स्वर ऊँचा था। अत निर्गुण भक्ति के बढते चरण को रोकने के लिए स्वामी रामचरण का विरोध आरभ हुआ। जीवनीकार जगन्नाथ लिखते है कि सवत् १८२४ वि० मे उत्पात की उपज हुई। इस उत्पात का कारण शहर का दुर्भाग्य था।[1] यह विरोध प्रमुख रूप से ब्राह्मणो की ओर से आया क्योकि जीवनीकार लिखता हे कि सम्पूर्ण द्विज-मण्डली अपने कुल-परिवार एव सगे सबधियो के साथ स्वामी रामचरण की निन्दा करती थी। 'गुरलीला विलास' की निम्नलिखित पक्तियाँ इस कथन की पूर्णतया पुष्टि करती है—

"जगत भेषनंदक द्विज सारा।
सगासनेही कुल परिवारा।"[2]

उन विरोधियो ने सयुक्त रूप से स्वामी जी के विरुद्ध शिकायती प्रार्थनापत्र उदयपुर के महाराणा के पास लिख भेजा।[3] प्रार्थना-पत्र लेकर जाने वाले लाग झूठा-सच कहते नही थके।[4] जगन्नाथ ने अपने दोनो जीवनी ग्रथो 'गुरलीला विलास' एव 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' म शिकायतो का ब्यौरा लिखा है जिसमे महाराणा से निवेदन किया गया हे कि रामसनेही पथ सबसे न्यारा हे। ससार मे यह कौन-सा पथ चला हे? हमने ऐसा पथ न देखा था और न सुना था और भी बहुत-सी बाते घटा-बढाकर लिख दी।[5]

---

१ अठारा से चोबीस वृष बीता पिछली बात।
होतब आयो सेहर की तब उपज्या उतपात।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२ वही, ह० प्र०।

३ पाच पचीस अरू मिलगरजी।
उदीयापुर को भेजी अरजी।—वही, ह० प्र०।

४ देशपती लग जाय पुकार्या।
साची झूठी कहत न हार्या।—ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७८।

५ रामसनेही सब सू न्यारा।
अपणा मत का करै बधारा।
और हू घाट बाधि लिख दीनी।
छत्रपती सारी सुण लीनी।—गुरलीला विलास, ह० प्र०।
कुण यो पथ चल्यो जगमाही।
हम तो सुण देख्यो भी नाही।—ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७८।

उस समय मेवाड के सिंहासन पर महाराणा अरिसिंह जी विराजमान थे। राणा अरिसिंह संवत् १८१८ वि० से संवत १८२८ वि० तक सिंहासनासीन थे।[1] राणा द्वारा उदयपुर से एक अधिकारी साम-दाम किसी प्रकार से रामसनेहियो को समझाने के लिए भेजा गया। उसे यह भी आदेश था कि यदि वे लोग इस पर भी न माने तो स्वामी रामचरण को भीलवाडा नगर से निष्कासित कर दिया जाय। इस आदेश के साथ वह अधिकारी भीलवाडे आया और रामसनेहियो को समझाया। रामसनेहियो के नेता देवकरण को उस अधिकारी का समझाना पसंद नही आया। अत राजाज्ञा के अनुसार उस अधिकारी ने स्वामी रामचरण से कहा कि महाराज! आप बडे चेला को समझाये और नही तो आप यहाँ से चले जाये।[2] परचीकार लालदास ने निम्नलिखित कुण्डलिया द्वारा उपर्युक्त कथन की पुष्टि मे यह कहा है कि दुष्टो द्वारा शिकायत सुनकर राणा ने बिना विचारे क्रुद्ध होकर आदेश दिया कि प्रजा नही चाहती है, इसलिए स्वामी रामचरण को भीलवाडा से उठा दिया जाय—

"स्वामी रामचरण से दुष्टा किया विवाद।
जाय पुकारे राज पे भीलाडे अफराध।
भीलाडे अफराध साध इक ऐसा आया।
धरम करम सब मेट आपका पंथ चलाया।
राणा सोधन ना किया बोला वचन रिसाय।
परजा बैराजी भई वीजे ताहि उठाय।"[3]

बाह्य साक्ष्यो से भी स्वामी रामचरण के इस विरोध की पुष्टि होती है। कैप्टेन जी० ई० वेस्गकट लिखते है कि राज्य के तत्कालीन राजकुमार और वर्तमान राणा के पिता भीमसिंह से पुरोहितो ने निवेदन किया कि स्वामी रामचरण को इस सीमा तक तग किया जाय

---

१. कर्नल जेम्स टॉड—राजस्थान का इतिहास, २५वाँ परिच्छेद, पृ० ७५३। (हिन्दी संस्करण)

२ कही कामेती ऐक पठायो।
रामसनेह्या कु समझायो।
स्यामदाम कर पाछा जाज्यो।
नही माने तो मत रमाज्यो।
कामेती मीलेडे आया।
रामसनेया को समझाया।
देवकरण के मन नही आई।
तब साधा आगै गुदराई।
आप बडे चेला समझावौ।
कै माहाराज आप रमजावौ।—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

३. श्री रामचरण म्हाराज की परची, ह० प०।

जिससे वह नगर छोडने को विवश हो जाये।[1] स्वामी रामचरण मूर्तिपूजा के विरोधी थे। इस कारण उन्हे ब्राह्मणो द्वारा वडा कष्ट दिया गया।[2] स्मरणीय है कि भीमसिंह राणा अरिसिंह के छोटे पुत्र थे जो सवत् १८३४ मे मेवाड के सिंहासन पर आसीन हुए थे। इस समय भीमसिंह की अवस्था आठ वर्ष की थी। इससे सिद्ध होता है कि सवत् १८२६ वि० के साल भीमसिंह का जन्म हुआ था, तब तक स्वामी रामचरण भीलवाडा छोडकर शाहपुरा आ गए थे। अत राजकुमार भीमसिंह से ब्राह्मणो द्वारा निवेदन की बात ठीक नही ठहरती। फिर गुरलीला विलासकार जगन्नाथ इस उत्पात का वर्ष सवत् १८२४ बताते हैं। जीवनीकार जगन्नाथ स्वामी रामचरण के समकालीन एव उनके शिष्य थे। अत ऐसी स्थिति म वेस्मकट महोदय के कथन म संशोधन की आवश्यकता है कि स्वामी रामचरण के विरुद्ध सीधे महाराणा अरिसिंह से शिकायत की गई थी। गार्सां द तासी ने भी वेस्मकट की ही बात दुहराई है। वस्तुत तासी के कथन का आधार भी वेस्मकट महोदय का सदर्भित लेख है।[4]

जॉन कैम्पबेल ओमन ने भी इनको मूर्तिपूजा के विरोध के कारण ब्राह्मणो द्वारा उत्पीडित बतलाया है।[5] श्री प्रमथनाथ बोस ने श्री अक्षयकुमारदत्त लिखित 'उपासक सम्प्रदाय' के आधार पर लिखा है कि ब्राह्मणो द्वारा उकसाये जाने पर राज्य के राजा ने स्वामी रामचरण को कष्ट पहुँचाया।[6]

ब्राह्मणो एव अन्य मतानुयायियो द्वारा स्वामी रामचरण का इतना उग्र विरोध इस बात का परिचायक है कि स्वामी रामचरण का प्रभाव भीलवाडा नगर पर पूर्णतया छा गया था।

---

१ Bhim Singh, prince of that state, and father of the present Rana, was urged by the priests to harass him to a degree which compelled him abondon the town

—Journal of the Asiatic Society, No 38, Feb 1835, page 65

२ But he steadily denounced idol-worship, and suffered on this account great persecution from the Brahmans —Ibid, p 65

३ कर्नल जेम्स टॉड—राजस्थान का इतिहास, २६वाँ परिच्छेद, पृ० २६६ (हिन्दी स०)

४ हिन्दुई साहित्य का इतिहास—गार्सां द तासी (अनु० डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय)

५ Ramcharan, belonging to the first half of the eighteenth century, was another reformer who, resolutely opposing idol worship embroiled himself with the Brahmans and was in consequence subjected to much persecution at their hands

—John Campbell Oman Mystics, Asaetics and saints of India p 133

६ The King of this State being incited by Brahmans began to persecute Ramcharan

—Pramath Nath Bose A History of Hindu Civilisation during British Rule Vol I, P.128,

उनके धार्मिक आदर्शों एव सामाजिक मूल्यो की ओर जन-मानस तीव्रगति से उन्मुख हो रहा था।

कुहाडा प्रस्थान

उदयपुर से आये कामेती की बात सुनते ही भीलवाडा नगर से निकलकर स्वामी जी कुहाडे की ओर प्रस्थान कर गए। यह कु ाडा भीलवाडा से ढाई मील की दूरी पर कोठारी नदी के तट पर स्थित है।[1] इस स्थान पर आकर स्वामी रामचरण अपनी साधना मे पुन लीन हो गए। साधना-भूमि होने के कारण स्वामी रामचरण के हृदय मे कुहाडा का स्थान था। इस स्थान की चर्चा उन्होने अपने एक पद मे की है। पद की पक्ति इस प्रकार है—

गेबी चलो तो कुहाडे जाइये।[2]

कोदूकोट सम्मेलन

स्वामी रामचरण के कुहाडा चले जाने की सूचना ज्यो ही उनके जिज्ञासुओं को मिली सभी जिज्ञासु कुहाडा पहुचे। स्वामी जी ने उन लोगो के आगमन का कारण समझते हुए उन्हे समझाया कि आना-जाना तो दानी-पानी पर निर्भर है। आप लोग अपने-अपने घर वापस चले जायें। भक्तो ने पुन निवेदन किया कि हम लोग आपके बिना भीलवाडा नही जा सकते। यदि आप भीलवाडा न जावे तो कोई दूसरा स्थान चुने, वही चलकर हम लोग भी बसे।[3]

तब महाराज उत्तर दिशा की ओर चलकर वहाँ पहुचे जहाँ सभी रामसनेही एकत्र थे। वहाँ से सब कोदूकोट आये जहाँ चारो दिशाओ के सभी रामसनेही एकत्र हुए। सभी ने सगठित होकर विरोधियो की इस विजय को पराजय मे परिवर्तित करने का उपाय ढूंढ़ने का

---

१ सन् १९५३ मे फूलडोल के अवसर पर शाहपुरा प्रवास से लौटते समय मे मुनिद्वारा भीलवाडा मे रुका था। मुनिद्वारा के सत श्री नेनूराम जी के साथ दूसरे दिन प्रात काल मुझे कुहाडा जाने का सुअवसर मिला था। कुहाडे की तपस्या-स्थली के दर्शन मैंने तभी किये थे —लेखक।

२. अणभैवाणी, पृ० ९९७।

३. सुण जग्यासी सबही दोडा।
सतगुर पास जाइ कर जोडा।
बोहोर बचन ऐसा प्रकारया।
दाणा पाणी आस्या-जास्या।
बाद बढावन सू नही कामा।
अब तुम जावो अपणी धामा।
हम तो आप बिना नही जास्या।
नातर दुजौ वास बसास्या—गुरलीला बिलास, ह० प्र०।

निश्चय किया। कोदूकोट का यह सम्मेलन निर्णायक सम्मेलन था जिसमें सभी पथ 'सन्मुख' जिज्ञासु संघर्ष तक के लिए तैयार हो गए। उन लोगो ने धन-धाम की आशा छोड दी और निश्चय की दृढता से उनका हृदय भर उठा।[1]

कोदूकोट सम्मेलन मे यह निर्णय हुआ कि एकलिंग अवतार सब राजाओ के सिरमोर, हिन्दुओ के सरदार उदयपुर-नाथ से रूबरू हुआ जाय। वे रामभक्त के साथ अवश्य ही न्याय करेंगे। इसके अतिरिक्त अन्य उपाय शेष नही। सत्य का रक्षक राम है।[2] और तन-मन-धन की आशा छोडकर देवकरण ने न्याय के लिए उदयपुर जाने का बीडा उठाया।[3]

उदयपुर मे देवकरण

कोदूकोट सम्मेलन के निश्चयानुसार देवकरण उदयपुर गए और राज्य के दीवान से सारी बाते बतायी। तीन महीने तक उदयपुर मे रुकने के बाद राजेन्द्र महाराणा अरिसिंह का साक्षात्कार हुआ। राणा ने अमरदास प्रधान को रामसनेहियो की समस्या सौप दी।

---

१ तब म्हाराज उत्तर दिसि ध्याया।
रामसनेही जाहा रहाया।
सबही कोदूकोटे आया।
च्यार दिसा का सीद चलाया।
रामसनेही सब चल आया।
भेला होइ मचकूर उपाया।
सुनमुप समसत भया तयारी।
वेमुख नदक रहे किनारी।
माल-मुलक की आसा छाडी।
पकडी टेक समायी गाढी।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२ ऐकलिंग ओतार सब राजा सिर सेवरो।
हिन्दवा मे सिरदार उदीयापुर गादीर हु।
o o o
राम भगत को न्याव वाहा करेगे रूबरू।
दुजो नही उपाव साचा बोली राम है।—वही, ह० प्र०।

३ देवकरण अपणे सिर ओडी।
तन-मन-धन की आस। छोडी।—वही, ह० प्र०।

४ कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार महाराणा अरिसिंह का प्रधानमत्री अमरचन्द बरवा था। अमरचन्द बडा ही कार्यकुशल, नीति-निपुण, देशभक्त और मेवाड-राज्य का हितैषी प्रधानमत्री था। उसने मेवाड को अनेक बार सकटो से बचाया था और जीवन-पर्यन्त मेवाड का शुभचिन्तक बना रहा। जगन्नाथ ने इस अमरचन्द को अमरदास कहा है—लेखक।

प्रधान ने शिकायत देवकरण को बता दी, तब देवकरण ने धर्म-संबंधी भ्रमों का निवारण करते हुए निवेदन किया[1]—

"राम धरम हम धार्यो अैसैं।
वेद पुराण बतावैं जैसैं।
ओर चूक होइ तो डंड कीजें।
नातर न्याव अदल कर दीजें।"

हमने वही 'रामधर्म' धारण किया है जो वेद-पुराण सम्मत है। अतिरिक्त इसके यदि हमारी कोई और गलती हो तो हमें दण्डित करें अन्यथा न्याय करें। प्रधान को देवकरण की बातें यथार्थ लगी। उसने महाराणा के समक्ष देवकरण का पक्ष प्रस्तुत किया। महाराणा को देवकरण का पक्ष जँच गया। तदनुसार दूसरे दिन देवकरण को दरबार में उपस्थित होने का आदेश मिला। देवकरण दूसरे दिन दरबार में उपस्थित हुए और उन्होंने महाराणा को नजराना भेंट किया।[3] गुरलीला विलासकार ने महाराणा के आदेश का निम्नलिखित पंक्तियों में वर्णन किया है—

"धरम माहि तुम गाढा रहियो।
और दूसरी कुछु न गहियौ।"[4]

उपर्युक्त आदेश के साथ महाराणा की ओर से रामसनेहियों के लिए ३०० पगड़ियाँ

---

१ तब उदीयापुर पुचा जाई।
श्री दीवाण सू सब गुदराई।
तीन मास लग बैठ्या रह्या।
तब राजिन्दर परसण भया।

० ० ०

अमरदास परधान बुलाया।
रामसनेह्या पास पठाया।
तब परधान कही सब गाथा।
देवकरण जब जोड्या हाथा।—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२. वही, ह० प्र०।

३ परधान जथारथ बात सुणाई।
तब छत्रपति का मन में भाई।
दुजै दिन दरबार बुलाया।
निजराणौ ले हुकुम कहाया। —वही, ह० प्र०।

४. वही, ह० प्र०।

और उनके अगुवा देवकरण को एक दुशाला भेट स्वरूप दिया गया। इससे यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि भीलवाडा म रामसनेहियो की सख्या ३०० या उसके लगभग थी।

वापसी [देवकरण की उदयपुर से एव रामचरण की कुहाडा म]

तीन सौ पगडियो के साथ महाराणा का फरमान लेकर देवकरण ने विजयी की भाँति भीलवाडा मे प्रवेश किया। देवकरण का उस समय बडा सम्मान बढ गया और शहर के सभी लोग सुखी हुए। अब सभी लोग कुहाडे गए और स्वामी जी से प्रणाम निवेदन कर भीलवाडा लौटने की प्रार्थना की। स्वामी जी अपने जनो की इच्छा कैसे टालते। उन्होने कहा—तुम सब चलो, मै रमते हुए आऊँगा और दस दिन बाद वे भीलवाडा आ गए।[3]

भीलवाडा मे इस बार स्वामी रामचरण जी अधिक दिनो तक नही टिके। यद्यपि सघर्ष मे सफलता ने स्वामी जी के चरण चूमे। फिर भी उनका मन भीलवाडा से उचट चुका था। भीलवाडा मे सवत १८१७ वि० म स्वामी जी का आगमन हुआ था। सवत् १८२५ वि० तक वे भीलवाडा म विराजे। सात-आठ वर्षा का उनका यह समय साधना, सृजन, सघर्ष एव सफलता का रहा। उन्होने भीलवाडा एव कुहाडे मे साधना की, वाणी का सृजन किया, विरोधियो का विरोध झेलते हुए अन्त म विजयी हुए। उन्होने विरोधियो की हर चुनौती का सामना किया और इस अल्प समय मे ही उन्हे भीलवाडे मे वही प्रसिद्धि एव सम्मान प्राप्त हुआ जो नामदेव को पढरपुर मे और कबीर को काशी मे प्राप्त हुआ था।[4] स्वामी रामचरण भीलवाडा के कबीर थे ऐसा जगन्नाथ ने 'गुरुलीला विलास' मे लिखा है। शाहपुरा का रामद्वारा

---

१ पाग तीन स बगसी सबका।
एक दुसालो देवकरण का।—गुरुलीला विलास, ह० प्र०।

२ कागद पत्र पुपत कर दीया।—वही, ह० प्र०।

३ कर परनाम सब अरजी कीनी।
सो म्हाराज सबै सुण लीनी।

तब चरचा माहाराज परकास्या।
तुम जावो हम रमता आस्या।

सब दरसण कर पाछा ल्याया।
दिन दस मैं माहाराज पधार्‍या।—वही, ह० प्र०।

४. नामदेव पुडरपुर भणीजै।
ज्यू कबीर कासी म गिणीजै।
रामचरण भीलाडै ऐसे।
तामे भूल न लावौ ससै।—वही, ह० प्र०।

स्वामी जी के जीवन-काल में नहीं निर्मित हो सका था यद्यपि स्वामी जी ने वहाँ एक लम्ब काल-खण्ड तक निवास किया था पर भीलवाड़ा का रामद्वारा स्वामी जी के उस अल्प-निवास-समय में ही निर्मित हो चुका था। बारह बीघे भूमि रामसनेहियों ने ली, चूना, ईंट-पत्थर एकत्र हो गया और रामद्वारा बनने लगा।[1] संवत् १८२५ के सावन महीने में भीलवाड़ा पर दक्षिणी सेना (मराठों की सेना) ने आक्रमण कर लूट लिया। भीलवाड़ा उजाड़ हो गया और बहुत दिनों तक उजाड़ रहा। वहां के नर-नारी तितर-बितर हो गए।[2] स्वामी जी ने शाहपुरा के महाराजा रणसिंह के आमंत्रण पर शाहपुरा जाने का निश्चय कर लिया था।

शाहपुरा का जीवन

भीलवाड़ा-निवास के समय ही स्वामी रामचरण की प्रसिद्धि मेवाड़ के विभिन्न भागों में पहुँच गई थी। वस्तुतः स्वामी जी के बढ़ते प्रभाव से ही भीलवाड़े के पुरोहित-समाज में चिन्ता व्याप्त हो गयी थी और इसीलिए उन लोगों ने उनका तीव्र विरोध किया। जब उदयपुर के महाराणा की आज्ञा उन्हें भीलवाड़ा से रमा देने की हुई तभी शाहपुरा नरेश महाराजा रणसिंह ने उन्हें शाहपुरा पधारने का आमंत्रण भेजा। कैप्टेन वेस्सकट के अनुसार उदयपुर के राजकुमार पर ब्राह्मणों ने स्वामी रामचरण को जब भीलवाड़ा से निकाल देने का दबाव डाला तभी शाहपुरा के प्रधान भीमसिंह ने स्वामी रामचरण को शाहपुरा में शरण दी और उन्हें सादर बुला लाने के लिए एक दल भेजा। स्वामी रामचरण ने दल और हाथी वापस कर दिये और पैदल ही शाहपुरा सन् १७६७ ई० में पहुंचे।[3] श्री प्रमथनाथ बोस भी इस आमंत्रण एवं

---

१ तब रामसनेह्या ऐह विचारी।
अपणी बैठक करो नियारी।
द्वादस बीघा जमी गुलाई।
दाम दिया अपणी अपणाई।
चुना ईट पषाण मगाया।
राम द्वारे काम चलाया।

२ अठारा से पचीसै सावण।
दिषण्या दल की भई दबावण।
भीलाडौ समसत लुट गयो।
बोहोत बरस लग उजड रयो।—गुरलीला विलास, हु० प्र०।

३ The then chief of Shahpura, who also bore the name of Bhim Singh compassionating his misfortune, offered the wanderer an asylum at his court, and prepared a suitable escort to attend him the sage, while availed himself of the courtesy, humbly excused himself from accepting elephants and equipage sent for his conveyance, and arrived at Shahpura on foot, in the year 1767.

—Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835.

शरण की बात स्वीकार करते हैं। पर साम्प्रदायिक साध्य ग्रंथों में शरण और आमंत्रण की कोई चर्चा नहीं है। गुरुलीला विलासकार जगन्नाथ लिखते हैं कि स्वामी रामचरण जी महाराज ने संवत् १८२६ में भक्ति-विस्तार एवं शाहपुरा को पावन करने के लिए सोलह साधुओं के साथ आकर छतरी में आसन जमाया तथा रात-दिन भगवान् के भजन में लगे।[२] 'ब्रह्म-समाधिलीन जोग' में भी शाहपुरा सहज भाव से पधारने की बात जगन्नाथ जी लिखते हैं।[३] शाहपुरा पहुँचने पर महाराजा ने रामचरण जी का बड़ा स्वागत किया। परचीकार काल्हदास लिखते हैं कि स्वामी रामचरण के आगमन से शाहपुरा तीर्थ देश-विदेश में प्रसिद्ध हो गया।[४] स्वामी रामचरण ने शाहपुरा में राजाओं की छतरी में अपना निवास बनाया। 'यही स्थान उनकी उत्तर तपस्या की गरिमामयी स्थली है।'[५]

राजावत रानी

महाराजा रणसिंह की रानी राजावत स्वामी रामचरण के प्रति अगाध श्रद्धा एवं भक्ति रखने लगी।[६] 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने किसी जनश्रुति के आधार पर रानी साहिबा द्वारा स्वामी जी के लिए छतरी बनवाने की बात लिखी है—"कहते हैं, इन्होंने स्वामी जी के निवास के लिए छतरी बनवाने की इच्छा प्रकट की। उस समय समस्या सामने आयी कि छतरी तो किसी मृतक पर ही बनवायी जाती है। यह जानकर रानी जी ने एक रास्ता निकाला और अपनी अँगुली से नाखून काटकर दे दिया, उस पर छतरी का निर्माण किया गया। छतरी का यह निर्माण रानी जी के हृदय की असीम भक्ति का प्रमाण है।"[७]

---

१ He, in consequence, took shelter with the Raja of Shahpur, who had sent him an invitation

—A History of Hindu Civilization during British Rule, Vol I, p 128

२. रामचरण महाराज अठारा से छाइस मैं।
भगत बधारण काज साहिपुरो पावन करन।
षोडस साधू लार छत्रया में आसण कीया।
भजन करै दिन रात भवरब्रित भोजन कदा। —गुरुलीला विलास, ह० प्र०।

३ शाहिपुरै सहज ही आये।
निस्प्रेही छतर्‌या ज रहाये।—ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०८०।

४ साहिपुरा तीरथ भया परसिध देस विदेस।—स्वामी रामचरण म्हाराज की परची, ह०प्र०

५ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० २८।

६ जाके घर राजावत राणी।
जिन सता की जुगत पिछाणी।
प्रथम भगति उनेके आई।
पाछी दुनीगम बताई। —गुरुलीला विलास, ह० प्र०।

७ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० २९।

महाराज भीमसिंह

अपने पिता महाराजा रणसिंह की मृत्यु के बाद भीमसिंह शाहपुरा के सिंहासन पर ज्येष्ठ बदी ५, सोमवार, संवत् १८३१ वि० को आरूढ़ हुए थे। अपने पिता की भाँति भीमसिंह भी स्वामी रामचरण का सम्मान करते थे। ब्रह्मसमाधिलीन जोगकार लिखता है कि राजा भीम अपने बन्धुओं के साथ स्वामी जी के दर्शनार्थ नित्य छतरी पर आते थे। राजा प्रसन्न मन स्वामी जी के दर्शन कर अपना भाग्य सराहता था।[1]

साधराम

शाहपुरा नरेश द्वारा राज्याश्रय दिए जाने के बाद भी स्वामी रामचरण का एक बैरी उन्हें जान से मरवाने का प्रयास कर ही बैठा। यह भीलवाड़ा का तत्कालीन सूबेदार साधराम था। इस साधराम की चर्चा साम्प्रदायिक साक्ष्य ग्रंथों में से किसी में भी नहीं है। कैप्टेन जी० ई० वेस्मकट ने इस व्यक्ति एवं स्वामी रामचरण को मरवाने के उसके षड्यन्त्र का उल्लेख अपने प्रसिद्ध लेख—"Some account of a sect of Hindu Schismatics in Western India, calling themselves Ramsanehi or Friends of God" में इस प्रकार किया है—

"Sadha Ram, Governor of Bhilwara, a Bania of Deopura Tribe, was one of Ramcharan's bitterest enemies, he on one occassion dispatched a Singi to Shahpura to put the Schismatic to death, but the latter, who probabely got information of his purpose, bent his head low as the man entered and told him to perform the service on which he was deputed, but to remember that as the almighty alone bestowed life, man could not destroy it, without the Divine permission, the hired assassin trembled at what he took for preter natural foresight in his intended victim, fell at his feet, and asked forgiveness."[2]

गार्सां द तासी ने साधराम का नामोल्लेख तो नहीं किया है पर यह अवश्य लिखा है कि भीलवाड़े का सूबेदार, देवपुर जाति का बनिया, स्वामी रामचरण के सबसे बड़े दुश्मनों में से था। उसने स्वामी जी को मार डालने के लिए एक सिंगी शाहपुरे भेजा था।[3] कैप्टेन वेस्मकट लिखित स्वामी रामचरण द्वारा सिंगी से वार्ता एवं हत्यारे द्वारा उनके चरणों पर गिर कर

---

१ जहाँ नृप भीम सब भाई संगा।
नित ही दर्शन करै उतगा॥
करि-करि दर्श हुलस मन आन।
धनि धनि अपनो भाग बखानै॥ —ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०८०।

2 Journal of the Asiatic Society, Feb 1835, p. 66

३ गार्सां द तासी कृत हिन्दुई साहित्य का इतिहास—अनु० डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।

क्षमा माँगने का उल्लेख भी तासी ने किया है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इस घटना का उल्लेख निम्नलिखित शब्दों में किया है—

"कहा जाता है कि शाहपुर में रहते समय संत रामचरन को किसी राज-कर्मचारी ने किसी व्यक्ति को नियुक्त कर जान से मरवा डालना चाहा था। परन्तु इन्होंने जब उस हत्यारे के सामने अपनी गर्दन झुकाकर प्रहार करने को कहा और साथ ही यह भी बतला दिया कि देख, ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध किसी के प्राण नहीं लिए जा सकते और यदि तू इस प्रकार कर सकता है तो देख भी ले, तब हत्यारे को यह बात लग गई और उसने पैरों पर गिर कर क्षमा-याचना की।"[1]

इसी से मिलती-जुलती एक घटना का उल्लेख परचीकार लालदास ने किया है। पर उस घटना का संबंध भीलवाड़ा के सूबेदार से न हो कर एक स्त्री से है जो अपने पति के शीलव्रत ग्रहण करने का कारण स्वामी रामचरण को समझ कर एक भील द्वारा उनकी हत्या करानी चाही। भील भी स्वामी जी की अलौकिकता से प्रभावित हुआ और उनके चरणों में गिर कर क्षमा-याचना की।[2] किन्तु यह घटना भीलवाड़े की है। डॉक्टर अमरचन्द वर्मा एवं 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने इसे भीलवाड़ा के कार्य-कलापों के अन्तर्गत रखा है।[3]

परचीकार लालदास द्वारा उल्लिखित घटना का शाहपुरा के जीवन से कोई संबंध नहीं है, पुनश्च, यह घटना स्वामी रामचरण जी के चमत्कारों के अन्तर्गत आती है। किन्तु कैप्टेन वेस्मकट, तासी एवं आचार्य प० परशुराम चतुर्वेदी ने स्पष्ट लिखा है कि हत्यारा भीलवाड़े से सूबेदार द्वारा शाहपुरा भेजा गया था। यद्यपि साम्प्रदायिक साक्ष्यग्रंथ इस घटना का उल्लेख नहीं करते फिर भी इस घटना की सत्यता में अविश्वास करने का कोई कारण नहीं दीखता। कैप्टेन वेस्मकट का यह लेख सन् १८३५ ई० में प्रकाशित हो गया था और स्वामी रामचरण का निधन सन् १७९८ ई० में हुआ था अर्थात् स्वामी जी के निधन के ३८वें वर्ष पश्चात् यह लेख प्रकाश में आया। स्मरणीय है कि वेस्मकट महोदय गवर्नर जनरल के एजेण्ट के सहायक थे और रामसनेही सम्प्रदाय के पाँचवें महन्त नारायणदास के समय में स्वयं शाहपुरा गए थे। महन्त नारायणदास सन् १८३१ ई० में पीठाधीश बने थे और १८३५ ई० में यह लेख प्रकाशित हो गया था। वेस्मकट ने स्वामी रामचरण एवं रामसनेही सम्प्रदाय के विषय में जो कुछ लिखा है उसके साक्ष्य नारायणदास जी हैं। फिर तीन दशक पूर्व जिस व्यक्ति का निधन

---

१ उत्तरी भारत की संत-परंपरा, पृ० ६१८।

२ भील पठाया घात कूं वा बाई मतिमंद।

हाथ जोड़ बिनती करी बगसो मम अपराध।
मेरे मन निश्चै भई, रामरूप तुम साध॥

—श्री स्वामी रामचरण महाराज की परची, ह० प्र०।

३ स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० ७९।
श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १९।

हुआ हो, उसके जीवन के सदर्भ पुराने होकर अविश्वसनीय नही माने जा सकते। अत मेरा निश्चित मत है कि कैप्टेन वेरमकाट द्वारा उल्लिखित घटना सत्य है।

अब साहिपुरो भयो उजागर

स्वामी रामचरण के शाहपुरा-आगमन के पश्चात् भीलवाडा के साहूकार भी बुला कर शाहपुरा बसाए गए। 'गुरुलीला विलास' के अनुसार उदयराम बारोती भीलवाडे गया और सभी साहूकारो को असामिया समेत बुला लाया। नरेश ने सबका आदर किया और आवश्यकताओं की पूर्ति की। इन्ही लोगो को बसाने के लिए नये बाजार का निर्माण भी करवाया।[1]

स्मरणीय है कि सवत १८२५ मे भीलवाडा मराठो की लूट-पाट से उजाड हो गया था और वहाँ के लोगो की दुर्दशा हो गई थी। मैं समझता हूँ कि भीलवाडा के उजडे-पीडित रामसनेही साहूकारो तथा अन्य भक्तो को शाहपुरा-नरेश ने आश्रय देकर या बुलाकर बसाने का जो कार्य किया था, वह स्वामी रामचरण की प्रेरणा एव प्रभाव के फलस्वरूप ही हो सका था। नये बाजार मे बसे सेठ-साहूकारो मे कुशलराम, देवकरण आदि के परिवारो के लोग है।[2] शाहपुरा-धीश ने रामसनेही गृहस्थो का बसा कर स्वामी रामचरण के साथ उनके अनुयायियो के आश्रय-दाता बनने का श्रेय भी लिया। इस प्रकार वे रामसनेही सम्प्रदाय के सरक्षक बने।

भीलवाडे के समान फूलडोल का उत्सव शाहपुरा मे भी प्रारभ हुआ। स्वामी रामचरण की छतरी मे ही इसका आयोजन हुआ। फूलडोल के प्रारभ होने से सचमुच शाहपुरा उजागर हो गया। चारो ओर से देश-देशान्तर के रामसनेही भक्त एव जिज्ञासु फूलडोल के मेले मे शाहपुरा आने लगे।[3]

---

१ उदेराम बारोती जानो।
भीलवाडा को कीयो पयानो।
राजा साहूकार बुलाया।
सो आसामी लेकर आया।
नरपति सबको आदर कीनो।
ज्यो माग्यौ सो पेली दीनो।
नयो बजार बसायो जबही।
हास अदल कर दीनू तबही। —गुरुलीला विलास, हु० प्र०।

२ शाहपुरा-निवास के समय मुझे प्रसिद्ध रामसनेही गृहस्थ श्री गगारवक्स बिडला ने बतलाया था कि वे कुशलराम के वशज है। उनका आवास नये बाजार मे ही है। —लेखक।

३ फूलडोल छत्र्या मे धमीयो।
ज्यू भीलाडे होइहे समीयो।
अब साहिपुरो भयो उजागर।
चहुदिस का आवै नर नागर।

स्वामी कृपाराम का निधन

संवत् १८३२ वि० में स्वामी रामचरण के गुरु स्वामी कृपाराम का स्वर्गवास दाँतडे में हो गया। यह समाचार जब शाहपुरा पहुँचा तो दास-जिज्ञासुओं के साथ स्वामी रामचरण दाँतडा गए और अपने गुरु की तेरही में सम्मिलित हुए। इस अवसर पर उन्होंने दूर-दूर के साधुओं को बुलाया। वृहत् भण्डारा हुआ और अनेक नर-नारियों ने भोजन किया। काम-काज से मुक्त होकर पुनः शाहपुरा आ गए।[1]

दाँतडा-गद्दी के उत्तराधिकार निर्णय में स्वामी रामचरण की भूमिका

दाँतडा गद्दी के आचार्य एवं रामचरण के गुरु कृपाराम जी के निधन के उपरान्त कौन आचार्य-पद ग्रहण करे, यह समस्या उपस्थित हुई। दाँतडा की गद्दी प्रवृत्तिमार्गी है। वहाँ के आचार्य विवाहित होते थे। स्वामी संतदास जी विवाहित थे और स्वामी कृपाराम उनके पुत्र थे। स्वामी रामचरण ने अपने ग्रंथ 'नामप्रताप' में इसका स्पष्ट संकेत दिया है—

"संतदास कलि भया कबीरा।
रामभजन रत मत सुधीरा।

कृपाराम संत का बाला।
ज्यूं कबीर घर भया कमाला।"

'*ब्रह्मसमाधिलीन जोग*' में जगन्नाथ लिखते हैं कि जब गुरु-आज्ञा से स्वामी रामचरण ने विरक्त स्वरूप धारण किया तो सभी साधुओं ने एकत्र होकर स्वामी रामचरण से निवेदन किया कि *स्वामी, आप महंत पद के अधिकारी हैं और हम सब आपकी शरण में हैं। आप* महंत पदी ग्रहण कर हमारा प्रतिपाल करें,[3] पर स्वामी जी निवृत्तिमार्गी हो चुके थे। अतः उन्होंने स्पष्ट इंकार कर दिया।

देस-देस सूं दास जग्यासी।
चल-चल आवैं राम उपासी। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।
१ अठारा से बतीस व्रस आया।
तब कृपाल प्रमधाम सिधाया।
समाचार-साहिपुरे भया।
दास जग्यासी समसत गया।

कारज कर साहपुरे आया। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।
२ अणभै वाणी, पृ० २०६।
३ तुम महंतन के निज अधिकारी।
हम सब रहं जु शरण तुम्हारी।
महंतपदी स्वामी तुम लीजे।
हमरी प्रतिपाल अब कीजै। —ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७८।

"हम तो महंतपदो नहिं चाहवै।
गुरु आज्ञा निवृत्ति निरभावै।"[1]

जनश्रुति बतलाती है कि कृपाराम जी के दो विवाह हुए थे—एक माडलगढ़ में और दूसरा काछोला में। माडलगढ़ की पत्नी से उन्हें एक पुत्र था और काछोला वाली निस्संतान थी। कृपाराम की ज्येष्ठ पत्नी अपने पुत्र के साथ माडलगढ़ में थी। उसने अपने पुत्र को दाँतड़े की गद्दी के लिए भेजने से इन्कार कर दिया। स्वामी रामचरण विशेष रूप से उसे राजी करने के लिए भेजे गए थे किन्तु जब वह टस-से-मस न हुई तो स्वामी रामचरण ने काछोला की माता जी से प्रार्थना की। उन्होंने अपने भाई के पुत्र को गोद ले लिया और स्वामी रामचरण जी ने उसे ही दाँतड़ा के पीठ पर आसीन कराया।[2]

इस घटना का आधार जनश्रुति है। अतः इसकी प्रामाणिकता चिन्त्य हो सकती है। पर इससे दो निष्कर्ष निकलते हैं। प्रथम यह कि स्वामी रामचरण जी का अपने गुरु एवं उनकी गद्दी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा एवं आदर का भाव था। तभी उन्होंने यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। दूसरे यह कि स्वामी रामचरण जी का तत्कालीन समाज विशेषतः साधु-समाज में अच्छा प्रभाव था, उनकी महत्ता साधु-समाज में बढ़ रही थी और वे मेवाड़ के जन-जीवन पर छा गए थे। इसलिए भी उन्हें यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने का अवसर मिला। यहाँ यह भी स्मरण योग्य है कि स्वामी रामचरण जी गुरुधाम दांतड़ा के दर्शनार्थ हर महीने में एक बार जाते थे।[3]

स्वर्गारोहण

इस प्रकार भक्ति का विस्तार करते स्वामी रामचरण के जीवन के अनेक दिन बीते। जिज्ञासु भक्त आते रहते थे। संवत् १८५३ आया। इसी वर्ष राजा भीम सिंह का देहावसान हो गया। अब महाराजाधिराज अमरसिंह शाहपुरा के नरेश थे।[4] समाज भक्ति-भावना से मंगलमय हो रहा था। रामचरण जी छतरी के मध्य विराजते और रामनाम की अखण्ड ध्वनि सुनाई पड़ती। ऐसे ही वह दिन भी आ गया जब अनजाने सतगुरु स्वामी रामचरण ने देहत्याग की इच्छा की।[5]

---

१ ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०७८।

२ यह कथा मुझे इन्दौर के संत सन्मुखराम जी ने सुनाई थी—लेखक।

३. एक मास पाछे उठ धावै।
नगर दातड़े दरसण जावै। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

४ सं० १८५३ वैशाख सुदि १३ गुरुवार [ई० सन् १७९६ ता० १३ मई।] को ९ वर्ष की आयु में ही शाहपुरा के स्वामी हुए। राजपूताने का इतिहास, पृ० ५६१ —श्री जगदीश सिंह गहलोत।

['श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' से उद्धृत]

५ सतगुर तन छाडन की करी।
सो नही काकु मालुम परी। —गुरलीला विलास, ह० प्र०।

स्वामी रामचरण ने वैशाख कृष्ण ५, सवत् १८५५ विक्रमी, गुरुवार के दिन अपनी इहलीला सवरण की।[1] जीवनीकार जगन्नाथ ने अत समय का दृश्य अपनी आँखो से देखा था।* 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' मे जीवनीकार ने स्वामी जी के अत समय का बडा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।

वैशाख बदी पचमी, बृहस्पतिवार, सवत् १८५५ स्वामी रामचरण जी के लौकिक जीवन का अतिम दिन था। जिज्ञासु-शिष्यो मे प्रेम का विस्तार ज्ञान-चर्चा के द्वारा स्वामी जी कर रहे थे, तभी स्वरूपाबाई[2] गुरुप्रसाद लेकर आई और उसे स्वामी रामजन[3] के हाथ मे दिया। रामजन जी द्वारा निवेदन करने पर स्वामी जी ने गुरुप्रसाद मुख मे डालने को कहा। गुरु-प्रसाद ग्रहण कर स्वामी रामचरण गुरु शब्दो मे लीन हो गए। क्षण भर की विचारणा के बाद स्वामी जी ने उच्च स्वर मे 'राम राम'[4] कहा जिसे सुनकर सभी उपस्थित जनो के हृदय हिल गए। रामजन जी ने राम-राम किया। शिष्य-जिज्ञासुओ ने गुरुदेव के समक्ष शीश झुकाया और सब ने मिल कर 'राम-राम' का उच्चारण किया। सभी उपस्थित जनो ने स्वामी जी का चरण-स्पर्श किया। प्रेम-विह्वल देवकरण और स्वरूपा खडे थे। स्वामी जी ने पुन रामध्वनि का उच्चारण वैसे ही किया जैसे 'रामत'[5] के लिए निकलते समय करते थे। यह अन्तिम 'रामत' थी। रामध्वनि करके स्वामी जी राम मे समा गए जैसे जल मे जल समा जाता है। यह दिवस का अतिम प्रहर था।[6] और देहावसान के बाद—

"देख्यौ इचरज एक तन छूटा हाले अधर।
रामनाम की टेक आद अत जानी परी।"[7]

---

१ रामचरण महाराज परमधाम प्रापत भया। सो नही जाणी आज सतगुरधाम पधारसी।
अठारा से पचपनै बुध पाचै वैसाष। गुरूवार के दिन साहिपुरे छत्र्या मही।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०

रामहि राम भई ध्वनि सारै, सवत अष्टादस पचपन्ना।
वैसाख बदी की पाचै परगट, गुरुवार किये जब गवना।
—रामजन . रामपद्धति, पृ० १०७४

*निजर्‌या देखी अत—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२ नवलराम की पुत्री एव स्वामी रामचरण की शिष्या।

३ स्वामी रामचरण के उत्तराधिकारी, सम्प्रदाय के द्वितीय आचार्य।

४ रामसनेही सम्प्रदाय मे 'राम-राम' का अर्थ नमस्कार होता है। रामसनेही एक-दूसरे से राम-राम कहकर नमस्कार करते है। यहाँ 'राम-राम' का उसी अर्थ मे प्रयोग हुआ है।—लेखक

५ सतो की भाषा मे 'रामत' यात्रा या तीर्थयात्रा को कहते है।—लेखक

६. ब्रह्मसमाधिलीन जोग, छन्द १३४-१४४, पृ० १०८०-८१।

७. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

स्वामी रामचरण जी अन्त समय तक राम-नाम का उच्चारण करते रहे। जगन्नाथ को यह दृश्य देख कर विस्मय हुआ और तभी भावुक भक्त जीवनीकार ने लिखा—

"ज्यूं पंखी तरु तैं उडै, पीछें हालैं पान।
जुगल अधर यूं हलत हे, जान होत है ध्यान।"[1]

पछी तरु से उड गया और क्षण भर उसके पत्ते हिलते रहे।

अन्तिम संस्कार

स्वामी रामचरण का अतिम सस्कार उसी छतरी के निकट सम्पन्न हुआ। एक सुदर सजे विमान मे स्वामी जी का शव रखा गया। स्वामी जी की शिष्या स्वरूपाबाई जिस समय स्वामी जी के चरणो पर यह कहती हुई गिरी, कि हे प्रभु! अपनी गति तुम्ही जानो, सभी जिज्ञासी विह्वल हो गए और गुरुदेव का मुख देखते रहे।[2] स्वामी जी के अतिम दर्शन के लिए भीड हो गई। नगर के हजारो लोग एकत्र हो गए। स्वामी जी के निधन से सभी पुरवासी उदास होकर पछताते थे।[3] दाह-सस्कार के बाद स्वामी जी की भस्मी थैले मे भर कर रामसनेही जिज्ञासु दांतडा गए। फिर बनास नदी मे उनकी रास प्रवाहित कर दी गई।[4] जीवनीकार जगन्नाथ ने स्वामी रामचरण के ७९ वर्ष के जीवन को दो भागो मे विभक्त कर के देखा है—

"बरस गुण्यासी तन रयो तामे दोइ विभाग।
इकतीस बरस आश्रम मही च्यार जुगां वैराग।"[5]

३१ वर्ष गृहस्थाश्रम मे एव ४८ वर्ष विरागी के रूप मे जीवन सफल कर स्वामी रामचरण ससार मे 'रामसनेही सम्प्रदाय' के रूप मे अपना जीवित स्मारक छोड गए, यद्यपि उनकी समाधि-स्थली पर निर्मित शाहपुरा का 'राम निवास धाम' भी चिरकाल तक उनका पुनीत स्मरण करते हुए भारतीय लोक-जीवन को प्रेरणा देता रहेगा।

---

१ ब्रह्मसमाधि लीन जोग, छ० १४६, पृ० १०८१।

२. दास स्वरूपा पाय परानी।
तुमरी गति प्रभु तुम ही जानी।
जिज्ञासी विह्वल अति होवे।
पलक पलक सतगुरु मुख जोवे। —ब्रह्मसमाधिलीन जोग, पृ० १०८२।

३. ब्रह्मसमाधिलीन जोग, छ० १७१, १७३, पृ० १०८२।

४. वही, छ० २०२, २१२, पृ० १०८३-८४।
तीजे दिवस ले चलिया छारा, बनास नदी पधरानी।
जामे रामहि राम अवाजा, परगट भई सब जानी।
—रामजन कृत रामपद्धति, अ०वा०, पृ० १०७४।

५. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

तृतीय अध्याय

स्वामी रामचरण का पंथ

रामसनेही सम्प्रदाय

मध्ययुगीन राजस्थान की वसुधा निर्गुणगायक सतो की बानियो से गूँज उठी थी। अलवर, साँगानेर, द्यौसा (जयपुर) मे लाल, रज्जब और सुदरदास जैसे निर्गुनिये सतो ने जन्म लेकर निर्गुण भक्ति के प्रवाह को अजस्र गति दी। ऐसे अनेक निर्गुन गौरवो से राजस्थान गौरवान्वित हो रहा था। अब राजस्थान की धरती वीरभोग्या के साथ-साथ सतभोग्या भी हो चली थी। मध्ययुगीन पथ-निर्माण की प्रवृत्ति की समीक्षा करते हुए सत-साहित्य के खोजी विद्वान् पडित परशुराम चतुर्वेदी लिखते है कि—"प्राय देखा जाता है कि किसी भी एक धार्मिक महापुरुष के नेतृत्व मे विश्वास रखने वाले व्यक्ति अपने को क्रमश एक सयुक्त परिवार का सदस्य समझने लगते है और अपनी सामुदायिक एकता को अक्षुण्ण बनाये रखने के प्रयत्न भी करने लग जाते है। तदनुसार एक समान सिद्धान्तो को स्वीकार करने वालो का एक पृथक् वर्ग बनने लगता है जिसका सबध दूसरे वैसे वर्गों के साथ नही रह जाता।"[1]

राजस्थान मे रामसनेही नाम से तीन पथ जाने जाते है। बहुत कुछ सैद्धान्तिक निकटता होने के बाद भी तीनो पथो के उद्गम-स्थल और उद्गाता अलग-अलग है। यह एक सयोग की बात है कि तीनो के पथ-प्रवर्त्तको ने अपने-अपने पथ का नाम रामसनेही रख दिया। प्रदेश, सिद्धान्त ओर नाम की समरूपता के कारण अनेक जनो को तीनो की एकता का भ्रम हो जाता है। कतिपय विद्वानो ने समानता के कारण तीनो को एक सम्प्रदाय की तीन शाखाओ के रूप मे स्वीकार किया है। डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी का अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध 'रामसनेही सम्प्रदाय' तीनो का एकीकृत अध्ययन है। डॉ० त्रिपाठी ने तीन शाखाएँ लिखा है[2]। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के 'प्रकाशकीय' के प्रथम पृष्ठ पर ही वैद्य केवलराम जी इस विन्दु को स्पष्ट करते हुए लिखते है कि "श्री रामस्नेही सम्प्रदाय का प्रचलन भी तीन अलग-अलग स्थानो से तीन भिन्न गुरु-परम्पराओ के आधार पर हुआ है। इस कारण ये तीनो ही एक-दूसरे से अलग है। पर नाम-साम्य से जन-साधारण को ही नही, विद्वानो तक को एक सम्प्रदाय

---

१ उत्तरी भारत की सत परपरा, पृ० ३८६।

२ डॉक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी का अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध 'रामसनेही सम्प्रदाय (गोरखपुर विश्वविद्यालय ग्रथालय)।

होने की भ्रान्ति हो जाती है।"[१] यहाँ हम तीनों पंथों को उनके पीठ स्थान से अभिहित करेंगे—

१. शाहपुरा का रामसनेही सम्प्रदाय।
२. खैड़ापा का रामसनेही सम्प्रदाय।
३. रैण का रामसनेही सम्प्रदाय।

"शाहपुरे का पंथ रामचरण जी से चला है। खैड़ापे का रामसनेही पंथ हरिरामदास जी से निकला है। इनके एक शिष्य रामदास जी हुए। इन्होंने खैड़ापे में अपनी गद्दी स्थापित की। अतएव खैड़ापे के रामसनेही रामदास जी को अपना आदि गुरु, हरिरामदासजी को आदि प्रवर्त्तक मानते हैं। रामदास जी स्वयं गृहस्थ थे और अपने चेलों को भी उन्होंने गृहस्थधर्म पालन का आदेश दिया था। . . . रैण (मेड़ता) के रामसनेही दरियाव जी को अपना आदि गुरु मानते हैं. . . इनका गुरुद्वारा रैण है जहाँ दरियाव जी का एक चित्र रखा हुआ है।"[२]

पंडित मोतीलाल मेनारिया के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि खैड़ापा और रैण का न तो आपसी रिश्ता है और न स्वामी रामचरण के रामसनेही पंथ से ही। यह भिन्न बात है कि तीनों के उद्गमस्थल राजस्थान प्रदेश में हैं और तीनों ही निर्गुण-मार्गी पंथ हैं। वैसे यदि इन तीनों में कोई अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष किसी प्रकार का संबंध होता तो साम्प्रदायिक साक्ष्य-ग्रंथों के ग्रंथकारों ने उसका उल्लेख अवश्य किया होता। हाँ, आधुनिक साम्प्रदायिक साक्ष्य ग्रंथ 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के 'प्रकाशकीय' में प्रारंभ में ही लेखक ने किसी प्रकार के आपसी संबंध के विषय में स्पष्ट रूप से इन्कार कर दिया है। मैंने स्वयं शाहपुरा और इन्दौर में पंथ के विभिन्न अधिकारी संतों से रामसनेही नामधारी तीनों पंथों के संबंध के विषय में पूछताछ की थी पर सभी ने किसी प्रकार का संबंध न होने की ही बात बतायी। पुनश्च; यदि कोई संबंध होता तो साम्प्रदायिक साक्ष्यों की मौनता के बाद वेसमकट, तासी, बोस, ओमन आदि तो मौन नहीं रहते। अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हुआ कि स्वामी रामचरण के रामसनेही सम्प्रदाय से अन्य दो रामसनेही पंथों का कोई संबंध नहीं। एक नाम होने के कारण किसी को भी भ्रम नहीं होना चाहिए।

रामसनेही सम्प्रदाय शाहपुरा

नामकरण

गुरलीला विलासकार जगन्नाथ के अनुसार 'रामसनेही' शब्द स्वामी रामचरण को उस अज्ञात संत से प्राप्त हुआ था जो वृन्दावन जाते समय उनसे मार्ग में मिला था। वस्तुतः उस अज्ञात संत ने स्वामी रामचरण को 'रामसनेही' कह कर संबोधित किया

---

१. प्रकाशकीय : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १।
२. राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा; पृ० ८०-८२; पं० मोतीलाल मेनारिया।

था।[1] उस अज्ञात सत के मना करने पर ही स्वामी रामचरण वृन्दावन न जाकर मेवाड की ओर लोट पडे थे। 'गुरलीला विलास' मे जगन्नाथ और 'परची' मे लालदास ने उस अज्ञात सत के अदृश्य हो जाने वाली घटना से रामचरण जी को ओर भी प्रभावित वतलाया है। दोनो के अनुसार स्वामी जी को उस अज्ञात सत के रूप मे ईश्वर के दर्शन हुए थे।[2] 'स्वामी रामचरण जी विस्मित हो गए, इन्हे लगा साक्षात् ईश्वर ने प्रत्यक्ष दर्शन दिए हो।'[3]

मै समझता हूँ स्वामी रामचरण ने इसे ईश्वर या तेजस्वी सत का दिया हुआ नाम समझ कर अपने सभी अनुयायियो के लिए यह छाप चला दी। रामसनेही छाप का प्रकाश स्वय रामचरण जी ने किया था, इसका उल्लेख 'गुरलीला विलास' मे जीवनीकार जगन्नाथ ने स्पष्ट रूपसे किया है—

"पाच पचीस भया जग्यासी।
राम सनेही छाप प्रकासी।"[4]

कैप्टेन जी० ई० वेस्मकट ने भी लिखा है कि "उन्होने अपने विचारग्राहियो को रामसनेही, ईश्वर का मित्र या दास कहा।"[5] आचार्य पडित परशुराम चतुर्वेदी पथ मे 'प्रेम-साधना' का महत्त्व होने के कारण ही पथ का नाम 'रामसनेही' होना मानते हैं। इस सदर्भ मे उनका यह कथन ध्यान देने योग्य है—"सत रामचरण ने प्रेम-साधना को भी अपने यहाँ एक प्रधान साधन माना था और उनका कहना था कि प्रेम की ही सहायता से ईश्वर की प्राप्ति एव सामाजिक सुख दोनो सभव हो सकते हैं। वास्तव मे प्रेम को यह महत्त्व प्रदान करने के ही कारण इनके पथ का नाम 'रामसनेही सम्प्रदाय' हो गया।"[6]

डॉक्टर अमरचन्द वर्मा 'नामकरण' शीर्षक के अन्तर्गत लिखते है कि "हिन्दी सत-साहित्य में जितने सम्प्रदाय हे, प्राय उनका नामकरण उनके प्रवर्त्तको के नाम से ही हुआ है। कबीर-पथ, दादू पथ, दरिया पथ आदि इसके उदाहरण कहे जा सकते है। इनमे इनके प्रवर्त्तको के

---

१ गुपत सत रसता माही मिलीया।
रामसनेही तुम काहा चलीया। —गुरलीला विलास, ह० प्र०

२ साध रूप होइ दरस दिखाया।
रामचरण के आनन्द आया। —वही, ह० प्र०
इतना ही उपदेस करके हो गए अन्तरध्यान।
रामचरण जी लप लिया निश्चै सारगपान। —परची, ह० प्र०

३ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १४।

४ गुरलीला विलास, ह० प्र०।

५ And he called those who adopted his opinions Ramsanehi, friends or servants of God

Journal of the Asiatic Society, Feb 1835.

६ उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० ६१६।

व्यक्तित्व एव विचारधारा की प्रमुखता को देखा जा सकता है। रामसनेही सम्प्रदाय का नामकरण इसके प्रवर्त्तक के नाम पर न होकर उसमे स्वीकृत साधना के मूल विन्दु 'राम' को आधार मान कर किया गया है।"[1]

डाक्टर वर्मा के इस कथन से कि 'राम' को आधार मानकर सम्प्रदाय का नामकरण किया गया है, सहमत होते हुए मेरा निवेदन है कि कबीर पथ, दादू पथ, दरिया पथ आदि का नामकरण पथ-प्रवर्त्तको द्वारा नही किया गया था। वस्तुत कबीर, दादू या दरिया ने अपने-अपने नाम पर पथ नही चलाये प्रत्युत इन सतो के बाद उनके शिष्यो एव अनुयायियो ने उनकी विचारधारा को जीवित रखने के लिये जो सगठन बनाये, उन्हे उन लोगो के नाम से सम्बद्ध कर दिया। किन्तु स्वामी रामचरण ने अज्ञात सत का आदेश पाकर मेवाड मे निर्गुण भक्ति के प्रसार का निश्चय करके वृन्दावन की ओर न जाकर मेवाड वापस लौटे थे और इस कार्य को चलाने के लिए उन्होने भीलवाडा मे जो अनुयायियो का समूह एकत्र किया उन सभी को रामसनेही छाप लगाने की अनुमति दी। स्पष्ट यह समझना चाहिए कि स्वामी रामचरण ने अपने पथ का नामकरण स्वय किया था, किसी अन्य के द्वारा नामकरण नही हुआ था। यदि सदर्भित अन्य सतो की भाँति स्वामी जी ने भी अपने जीवन-काल मे पथ नही निर्मित किया होता तो उनके बाद उनके अनुयायी भी 'रामचरण पथ' नाम रख सकते थे।

पुन यह भी निवेदन है कि प्रवर्त्तको के व्यक्तित्व एव विचारधारा की प्रमुखता केवल कबीर पथ, दादूपथ या दरियापथ मे है और रामसनेही सम्प्रदाय मे उसके प्रवर्त्तक के व्यक्तित्व और विचार प्रमुखता नही पा सके है, यह मानने को मै नही प्रस्तुत हूँ। मै समझता हूँ कि डॉ० वर्मा द्वारा सदर्भित पथो मे उनके प्रवर्त्तको के व्यक्तित्व और विचार जितनी प्रमुखता पा सके है, स्वामी रामचरण का व्यक्तित्व एव उनकी विचारधारा उनमे कम नही, प्रत्युत कुछ अधिक ही प्रमुख है। रामसनेही सम्प्रदाय का सुदृढ सगठन, व्यवस्थित अनुशासन एव निरतर विकासोन्मुख जीवन पर स्वामी रामचरण के व्यक्तित्व की अत्यन्त गहरी एव सर्वाधिक छाप है। विपरीत इसके कबीर, दादू आदि के पथो का सगठन बिखर गया है और उन पथो का जीवन गिरावट की ओर है। एक बात और भी—ऐसा नही कि स्वामी रामचरण के बाद सम्प्रदाय मे प्रभावशाली व्यक्तित्वो की कमी हो गई हो किन्तु स्वामी रामचरण का व्यक्तित्व सर्वाधिक प्रभावसम्पन्न एव गौरवमय है और उनके द्वारा प्रतिपादित विचारधारा ही उनके अनुगामी परवर्त्ती सतो की वाणी मे मुखर हुई है। इसी सदर्भ मे यह भी निवेदन है कि स्वामी रामचरण अपने जीवन-काल मे केवल सगठन का प्रारूप ही बना सके थे, उसका विस्तार तीसरे महत दूल्हे राम जी तक होता रहा। इसे भी स्वामी रामचरण के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व एव सुचिन्तित विचारधारा का ही परिणाम समझना चाहिए। उपर्युक्त विवेचन के साथ मै डॉक्टर वर्मा के इस कथन से सर्वथा सहमत

---

१ स्वामी रामचरण एक अनुशीलन, पृ० ६७।

हूँ कि "इस प्रकार रामसनेही 'राम' से 'स्नेह' अथवा प्रेम रखने वाले के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।"[१]

संस्थापन : समय एवं स्थान

रामसनेही सम्प्रदाय के सस्थापन-समय एव स्थान के विषय मे साम्प्रदायिक साक्ष्यो एव बाह्य-साक्ष्यो मे स्पष्ट रूप से मतभिन्नता है। बाह्य-साक्ष्यो मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य कैप्टेन जी० ई० वेस्मकट का लेख है जिसके अनुसार--"स्वामी रामचरण सन् १७६७ (सवत् १८२४) मे शाहपुरा आए और दो वर्ष बाद ही वे वहाँ स्थायी रूप से बसे, इसी तिथि (सवत् १८२६) से पथ की स्थापना समझना उचित होगा।"[२] गार्सा द तासी भी वेस्मकट महोदय के मत का ही समर्थन करते है।[३] आचार्य पडित परशुराम चतुर्वेदी लिखते है--"सत रामचरण ने सवत् १८२५ मे रामसनेही सम्प्रदाय की स्थापना की थी।"[४] जबकि पडित शिवशकर मिश्र लिखते है कि--"जयपुर के रामचरण नामक एक रामानन्दी साधु ने शाहपुर से राज्याश्रय प्राप्त कर सवत् १८२४ मे इस पथ की स्थापना की थी।"[५] श्री रामदास गोड एव डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी ने सवत् १८०० वि० को रामसनेही सम्प्रदाय का सस्थापना-वर्ष लिखा है।[६]

साम्प्रदायिक साक्ष्यो मे स्वामी रामचरण के जीवनी-ग्रथ 'गुरलीला विलास' से इस विषय मे बहुत स्पष्ट सूचना मिलती है। गुरलीला विलासकार के अनुसार स्वामी रामचरण भीलवाडे मे सवत् १८१७ वि० मे आगए थे।[७] यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि भीलवाडा मे उन्होने निर्गुण भक्ति के प्रचार-प्रसार का निर्णय लेकर ही प्रवेश किया था। परिणामत भीलवाडा पधारते ही उनकी देवकरण आदि से भेट हुई। अतिशीघ्र उनके अनुयायियो की

---

१ स्वामी रामचरण एक अनुशीलन, पृ० ६८-६९।

2 And arrived at Shahpura on foot, in the year 1767, but he does not seem to have settled there permanently until two years later, from which time, it may be proper to date the institution of the sect

—Journal of the Asiatic Society Feb 1835

३ गार्सा द तासी हिन्दुई साहित्य का इतिहास, (अनु०—डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय) —पृ० २३५।

४ उत्तरी भारत की सत परपरा, पृ० ६१५।

५. भारत का धार्मिक इतिहास, पृ० ३३२-३३।

६ श्री रामदास गौड हिन्दुत्व, पृ० ७३९।
डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी. सतकवि दरिया एक अनुशीलन, पृ० २८

७. अठारा से सतरा ब्रष बीता।
भीलाडे आया अणचीता।—गुरलीला विलास, हु० प्र०।

सख्या बढी ओर उन्होने रामसनेही छाप का प्रकाशन कर दिया।[1] अत जीवनीकार जगन्नाथ के अनुसार सवत् १८१७ वि० मे भीलवाडा मे रामसनेही सम्प्रदाय की स्थापना स्वामी जी ने कर दी थी।

यहाँ उपर्युक्त विभिन्न मतो की सक्षिप्त समीक्षा अपेक्षित प्रतीत होती है। बाह्य साक्ष्यो में प० परशुराम चतुर्वेदी ने सस्थापन-समय सवत् १८२५ माना है। पिछले अध्याय मे यह स्पष्ट किया जा चुका है कि सवत १८२५ भीलवाडे के पतन का वर्ष था। मराठो की लूटपाट एव बर्बर अत्याचार से भीलवाडा वीरान हो गया था। ऐसी स्थिति मे वहाँ किसी पथ की स्थापना कदापि सभव नही। अत चतुर्वेदी जी का यह मत कि सवत् १८२५ मे स्वामी जी ने पथ-सस्थापन किया, समीचीन नही जान पडता।

प० शिवशकर मिश्र के मतानुसार यह समय सवत् १८२४ वि० है। स्मरणीय है कि यह वर्ष स्वामी जी के जीवन का सर्वाधिक सघर्षपूर्ण समय रहा है। इसी वर्ष मे स्वामी रामचरण के विरुद्ध भीलवाडे के पुरोहितो एव अन्य सगुणोपासको ने उदयपुर के महाराणा के पास शिकायत भेजी थी और उन्हे भीलवाडा नगर से निकालवाने मे सफल भी हो गए थे।[2] यह भी स्मरणीय है कि स्वामी जी के विरोध का मूल कारण उनके द्वारा सस्थापित पथ के सिद्धान्तो का प्रचार था। अत यह निष्कर्ष निकलता है कि सवत् १८२४ से पहले ही 'रामसनेही सम्प्रदाय' की स्थापना हो चुकी थी। मिश्र जी ने स्थान की चर्चा भी कर दी है। उनके अनुसार शाहपुरा मे राज्याश्रय मिलने के बाद स्वामी रामचरण ने पथ-निर्माण किया। जीवनी-अश म यह भली प्रकार स्पष्ट कर दिया गया है कि शाहपुरा मे स्वामी रामचरण सवत् १८२६ वि० मे राजा रणसिह के आमत्रण पर पहुँचे थे, सो भी भक्ति-विस्तारण के लिए। अत मिश्र जी का यह मत भी युक्तियुक्त नही। श्री रामदास गौड एव डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी के मत का कोई औचित्य नही दृष्टिगोचर होता।

अब रही बात वेस्मकट महोदय के मत-परीक्षण की। मैं यह पहले ही स्पष्ट कर चुका हूँ कि वेस्मकट के साक्ष्य सम्प्रदाय के पाँचवे महत नारायणदास जी है। अत वेस्मकट के दृष्टिकोण का विवेचन सजगता की अपेक्षा रखता है। वेस्मकट यह नही लिखते कि सम्प्रदाय का सस्थापन-वर्ष सन् १७६९ अर्थात् सवत् १८२६ है। वह कहते है कि उक्त वर्ष मे स्वामी रामचरण शाहपुरा मे स्थायी रूप से बसे, अत इसी वर्ष को सम्प्रदाय का सस्थापन-वर्ष मानना उचित होगा। मैं समझता हूँ कि कैप्टेन वेस्मकट ने स्वामी नारायणदास से पथ-सस्थापना का वर्ष पूछा ही नही, प्रत्युत स्वय अनुमान कर लिया कि जब स्वामी रामचरण उक्त वर्ष मे शाहपुरा आए तो सम्प्रदाय स्थापित हुआ। यदि वेस्मकट ने पूछा होता तो

---

१ दे०, द्वितीय अध्याय मे 'भीलवाडा की ओर' शीर्षक के अन्तर्गत 'रामसनेही छाप'। —लेखक

२ दे०, द्वितीय अध्याय मे 'भीलवाडा की ओर' शीर्षक के अन्तर्गत 'विरोध की अनुगूंज'।—लेखक

नारायणदास जी को उद्धृत कर निश्चयात्मक भाषा मे इस वर्ष का उल्लेख करता जैसा कि कई स्थलो पर उसने महत नारायणदास को उद्धृत किया है। जो भी हो वेस्मकट का यह अनुमान निराधार है। ऐसी स्थिति मे गुरलीला विलासकार जगन्नाथ द्वारा घोषित भीलवाडा आगमन का वर्ष सवत् १८१७ वि० एव भीलवाडा नगर क्रमश रामसनेही सम्प्रदाय का सस्थापन-समय एव स्थान निर्धारित होता है।

उद्गम स्रोत : रामावत सम्प्रदाय

कैप्टेन जी० ई० वेस्मकट के अनसार रामसनेही सम्प्रदाय के सस्थापक स्वामी रामचरण रामावत वैरागी थे।[१] 'अणभैवाणी' के प्रस्तावनाकार साधु कार्यराम जी ने लिखा है कि 'श्री रामानुजाचार्य से २३ पद्धति परत्व श्री रामानन्द स्वामी सम्प्रदाय का मूल है। तच्छिष्य श्री स्वामी अग्रदास जी हुए [इन्ही महापुरुष के नाम से इस सम्प्रदाय का द्वारा 'अग्रदास' जी का द्वारा कहाता है।] उनसे पचम पद्धति परत्व श्री स्वामी सतदास जी महाराज हैं उन सतदास जी महाराज के शिष्य श्रीमन्त महापुरुष कृपाराम जी महाराज हुए जिनके शिष्य स्वय रामचरण जी महाराज है।'[२] इस दृष्टि से साधु मनोहरदास जी लिखित 'रामसनेही धर्म दर्पण' की भूमिका की निम्नलिखित पक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य हैं—"विदित हो कि भारत प्रख्यात श्रीमत् रामानुज सम्प्रदाय से आविर्भावित श्री रामानन्द साधु सम्प्रदाय हुआ। इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत आगे चलकर गलता (जयपुर राज्य) मे श्री पैहारी महाराज तथा श्री अग्रदास जी महाराज बडे प्रख्यात सत हुए। इन्ही की शिष्य परम्परा मे गूदड वेषधारी महात्मा श्री सतदास जी तथा उनके शिष्य श्री कृपाराम जी हुए, इन्ही श्री कृपाराम जी महाराज के श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, शाहपुरा (मेवाड) के मूल आचार्य श्री १००८ श्री रामचरण जी महाराज प्रकट हुए।"[३] आचार्य प० परशुराम चतुर्वेदी ने अपने ग्रथ 'उत्तरी भारत की सत-परपरा' मे स्वामी रामानन्द से लेकर सतदास तक के नाम गिनाये हैं।[४]

---

१. Ram Chaian, the founder of the Ramsanehis, was a Ramavat Byragı. —Journal of the Asiatic Society. Feb 1835, p. 65.

२. अणभैवाणी की 'प्रस्तावना', पृ० १-२।

३. 'रामस्नेही धर्म दर्पण' की भूमिका, पृ० १।

४. 'स्वामी रामानन्द से लेकर सतदास तक के नाम इस प्रकार है—स्वामी रामानन्द, अनन्तानन्द, कृष्णदास पयहारी, अगदास, प्रेमदास, भूराराम, नारायणदास [छोटे] और सतदास।'—उत्तरी भारत की सत परपरा, फुटनोट, पृ० ६२१।

'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' में यह सूची थोडी भिन्न है। उसके अनुसार निम्नलिखित नाम हे—'रामानन्द जी, अनन्तानन्द जी, कृष्ण पयहारी, अग्रदासजी, नारायणदास जी, रामदास जी, प्रेमभूराजी, रामदास जी, छोटा नारायणदास जी, सतदास जी।'

—श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ३९।

सतो एव विद्वानो के उपर्युक्त उद्धरणो से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण 'रामावत' सम्प्रदाय मे दीक्षित हुए थे। यह 'रामावत' सम्प्रदाय स्वामी रामानन्द जी द्वारा प्रवर्त्तित किया गया था। इनके समय मे प्राय सारे भारत मे मुसलमानो के अनेक प्रकार के अत्याचार हुए थे, जिन्हे देखकर इन्होने जाति-पाँति का बन्धन कुछ ढीला करना चाहा ओर सबको राम-नाम के महामत्र का उपदेश देकर अपने 'रामावत' सम्प्रदाय मे सम्मिलित करना आरम्भ किया। रामानुज के श्री वैष्णव सम्प्रदाय की सकुचित सीमा तोडकर इन्होने उसे अधिक विस्तृत तथा उदार बनाया इनके शिष्यो मे पीपा, कबीर, सेना, धना, रैदास आदि है।[1] स्वामी रामानन्द ने श्री रामानुजाचार्य द्वारा प्रवर्तित वैष्णव सम्प्रदाय के स्वरूप मे परिवर्त्तन करके 'रामावत' सम्प्रदाय खडा कर दिया था। स्मरणीय है कि जहाँ स्वामी रामानन्द ने जाति-पाँति के बन्धन ढीले किये वही उन्होने सगुण-निर्गुण के समन्वय का भी प्रयास किया। यदि स्वामी जी का झुकाव इस समन्वय की ओर नही होता तो 'रामावत' सम्प्रदाय से दीक्षित होकर निकले कबीर, रैदास, पीपा आदि निर्गुण भक्ति की ओर शायद ही झुकते। स्वामी रामचरण के दादा गुरु स्वामी सतदास जी दाँतडा की वैष्णव गद्दी पर विराजमान थे और उनकी 'वाणी' पढने के बाद उन्हे सगुण वैष्णव कोई नही मानने को तैयार होगा। स्वामी रामचरण भी इसी परपरा मे दीक्षित हुए थे। स्मरणीय है कि स्वामी रामचरण को निवृत्तिपरक होने का आदेश उनके गुरु स्वामी कृपाराम ने ही दिया था जो स्वय प्रवृत्तिमार्गी वैष्णव सत थे और दाँतडे की वैष्णव गद्दी पर आसीन थे। निष्कर्ष यह कि रामानन्द जी द्वारा प्रवर्त्तित 'रामावत' सम्प्रदाय के मूल मे ही सगुण-निर्गुण का समन्वय था। परिणामत. इस सम्प्रदाय मे दीक्षित अनेक सतो ने निर्गुण-भक्ति के प्रचारार्थ पथो का निर्माण किया। स्वामी रामचरण द्वारा निर्मित रामसनेही सम्प्रदाय भी वैसा ही एक सम्प्रदाय है। अत 'अणभैवाणी' के प्रस्तावनाकार साधु कार्यराम जी का यह कथन युक्तियुक्त है कि "श्री स्वामी रामानन्द सम्प्रदाय का मूल है।"

विकास

यद्यपि सवत् १८१७ वि० मे रामसनेही सम्प्रदाय की स्थापना स्वामी रामचरण जी ने भीलवाडे मे ही कर दी थी किन्तु वहाँ उन्हे पर्याप्त विरोधो का सामना करना पडा, तो भी सघर्षो एव विरोधो के बीच स्वामी रामचरण जी के सिद्धान्तो की लोकप्रियता बढती ही जा रही थी। उनके दास-जिज्ञासु जन बडे ही सुदृढ व्यक्तित्व वाले थे, उन्ही के एक प्रमुख शिष्य देवकरण ने उदपुर राज्य के प्रधानमत्री अमरचन्द बरवा को प्रभावित कर विरोधियो के समक्ष रामसनेही जनो का मस्तक ऊँचा किया था। यह स्वामी रामचरण के व्यक्तित्व की गुरुता एव सिद्धान्तो की निवेदन-शक्ति थी जिसके कारण वे अल्पकाल मे ही भीलवाडा के कबीर बन बैठे और यही कारण था कि शाहपुरा-नरेश ने उन्हे अपने दरबार मे 'आश्रय'

---

१ श्री रामदास गौड, हिन्दुत्व, पृ० ६८४।

का आमत्रण भेजा ओर स्वामी जी के शाहपुरा पधारने पर उन्हे ससम्मान वसाया एव पथ के प्रसार की पूर्ण सुविधा दी। गुरुलीला विलासकार जगन्नाथ ने लिखा हे कि राजा रणसिह, भीमसिह और महाराजा अमरसिह सभी स्वामी रामचरण के परम भक्त थे। एक प्रकार मे शाहपुरा नरेश रामसनेही सम्प्रदाय के सरक्षक ही थे। स्वामी रामचरण के अनुयायी साधु एव गृहस्थो की एक अच्छी सख्या उनके जीवनकाल मे ही हो गयी थी। सम्प्रदाय के विकास एव क्रिया कलापो मे दोनो का योग समान था।

साधु

तीन दसा सता की न्यारी।
बिरकत बदेही परमहस न्यारी।"[१]

रामसनेही सम्प्रदाय के साध तीन श्रेणियो मे स्वामी रामचरण के जीवनकाल मे ही विभक्त हो गए थे। 'गुरुलीला विलास' की उपर्युक्त पक्तियो के अनुसार विरक्त, विदेही ओर परमहस ये तीन दशाएँ हे। कैप्टेन वेस्मकट भी तीन श्रेणियो की चर्चा करते हे किन्तु उनमे से अतिम दो 'विदेही' और 'मोहनी' के विषय मे लिखा हे।[२] उच्चारण-भेद के कारण वेस्मकट 'मौनी' को 'मोहनी' कह गए हे क्योकि वे आगे इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हे कि "जिन साधुओ को अपनी वाणी पर पर्याप्त नियत्रण नही रहता हे वे जीवन भर के लिए नही अपितु कुछ समय के लिए 'मोहनी' बन जाते हे।"[३] आचार्य प० परशुराम चतुर्वेदी भी वेस्मकट से सहमत होकर लिखते है—"वैरागियो मे कुछ लोग 'विदीही' कहलाते हे और नगे रहा करते है और कुछ 'मोनी' होते हे जो वाक्-सयम की साधना के कारण बहुत दिनो तक कुछ नही बोलते।"[४]

यद्यपि वर्तमान समय मे उपर्युक्त श्रेणियाँ नाम भर के लिए हे। सभी साधु एक समान ही रहते हे, पर मौनी कोई श्रेणी नही प्रत्युत साधना की एक प्रक्रिया हे जिसमे वाक-सयम के लिए साधु कुछ दिन रहता हे। यह आवश्यक नही है कि सभी साधु 'मौनता' की इस प्रक्रिया से गुजरे। किन्तु विरक्त, विदेही और परमहस श्रेणियाँ हे, नाममात्र के लिए ही सही।

---

१ गुरुलीला विलास, ह० प्र०।

२ Priests are called either Byragi or Sadh, and are divided into three classes, the last two of which, denominated Bedehi and Mohani

—Journal of the Asiatic Society Feb 1835

३ Priests who have not sufficient command over their tongues become "Mohani" not for life but for a period of years

—Journal of the Asiatic Society Feb 1835

४ उत्तरी भारत की सत परपरा, प० ६१९।

रामसनेही साधु के लक्षण

स्वामी रामचरण ने अपने ग्रंथ 'अमृत उपदेश' में रामसनेही साधु के लक्षण गिनाये हैं। इस संदर्भ की निम्नलिखित कुण्डलिया द्रष्टव्य है—

"रामसनेही साधसो ऐसी लछता मांहि।
मुख सूं कछु मांगै नहीं संग्रह हरसा नाहि।
संग्रह हरसा नाहि राम बिन और न जानै।
आसन सुमरण अचल चंचलता मन की मानै।
संजम शील संतोष सत दयाधर्म उपजांहि।
रामसनेही साधसो ऐसी लछता मांहि।"[१]

इसी प्रकार 'अणभैवाणी' में 'कवित जिज्ञासी को अंग' के अन्तर्गत स्वामी जी ने रामसनेही की पहचान करायी है—

"इष्ट राम रमतीत आनकूं पूठ दई है।
पग नंगे गुरु दर्श दया की मूंठ गही है।
विषय त्याग विषवचन हांसि खिलवत नहि जाणै।
हाणि वृद्धि की बार भरोसो हरि को आणै।
जूआ चोरी परलुब्धि झूठ कपटां नहि राखै।
भांग तमाखू अमल अखज मद पान न चाखै।
पाणी बरतै छाणिकै निरख पांव धरणी धरै।
रामसनेही जाणिये सो कारज अपणो करै।"[२]

इस संदर्भ में गुरलीला विलासकार की पंक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य है—

रामसनेही नाम सो पालै बतीस लछ।
सबै ठाम का ठाम सो आगे सुण लीजियो।
गुर दरसण प्रभात कर परकरमो गुर की।
सीत चरणामृत पाइ तिलक माथे श्री अरकी।
भजो राम दोइ अंक संक बिन हरि जस गावै।
जल गाटे पट छाण आन पूजे न पुजावै।
हरष सोग सम भाइ भरम परच्या नहि मानै।
बिधंनि सेव दोइ तजै बात होतब पर आनै।
भांग तमाखू अमल पान जर वो नहीं चाखै।
ऊंची संगत करै नीच को संग न राखै।

---

१ अमृत उपदेश, चतुर्थ प्रकाश, छ० ३६, पृ० ४५० अ० वा०।
२. अणभै वाणी, कवित जिज्ञासी को अंग, छ० १, पृ० १२२।

झूठ कपट पाखण्ड यार को बुरो न ताकै।
चचा ममा की गरल सुणे नही मुख सूं भाखै॥
रामसनेही चाल ये लक्षण जाण बतीस।
जगन्नाथ गाटा रहै जाके सतगुर सीस।"[1]

उपर्युक्त अन्त साक्ष्यो एव साम्प्रदायिक बाह्य साक्ष्य से रामसनेही साधुओ के लक्षण स्पष्ट हो रहे है।[2] बाह्य साक्ष्यो मे कैप्टेन वेस्मकट, श्री पी० एन० बोस एव आचार्य परशुराम चतुर्वेदी आदि विद्वानो ने भी रामसनेहियो के नियन्त्रक नियमो की चर्चा की है। कैप्टेन वेस्मकट लिखते हैं—

"Priests are commanded never to look at their face in a glass, nor to use snuff, perfumes or ornaments, as such things savour of vanity. To go bare footed and on no account to ride on any kind of conveyance never to destroy anything animate, nor to live in solitude, nor to ask or receive money, dancing, music and other frivolous amusements are forbidden and to taste of tubacoo, opium and all intoxicating drugs & Spirit."[3]

श्री पी० एन० बोस एव आचार्य परशुराम चतुर्वेदी भी श्री वेस्मकट से सहमत है।[4]

कंचन-कामिनी और रामसनेही साधु

स्वामी रामचरण ने कचन-कामिनी को सम्पूर्ण कुकृत्यो का प्रमुख स्रोत बताया है। इसलिए उन्होने अपने साधुओ को दोनो से विरत रहने का कठोर आदेश दे रखा था। वेस्मकट इस प्रसग की चर्चा करते हुए स्वामी जी के व्यक्तिगत जीवन तक मे झाँक आते है—

"It was a maxim of Ramcharan that woman and gold in the present vicious state of society were the principal sources of mischief in the world. He, therefore, enacted a strict ordinance for priests to shun both of them

---

१ गुरलीला विलास, ह० प्र०।

२ 'कवित जिज्ञासी को अग' और 'गुरलीला विलास' मे वर्णित नियमो का पालन यथासभव सभी रामसनेही [साधु और गृहस्थ दोनो] करते है। स्पष्ट यह कि स्वामी रामचरण ने उपर्युक्त का पालन सभी रामसनेहियो के लिए आवश्यक बतलाया है। यही मत गुरलीला विलासकार जगन्नाथ का भी है।—लेखक।

३. Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835

४ P N. Bose A History of Hindu Civilisation During British Rule, Vol I, P 129

उत्तरी भारत की सत परपरा, पृ० ६१९।

The founder, a married man without a family, set the example of putting away his wife, and this sacrifice, with the desertion of one's children are essential to obtain admission to the order."[1]

उपर्युक्त उद्धरण इस बात की सूचना देते हैं कि पथ-सस्थापन के साथ साथ स्वामी रामचरण ने पथ के साधु-समुदाय के लिए विशेष नियम बनाये और उन्हे कठोरता से पालन करने का आदेश भी दिया। स्वामी रामचरण एव उनके परवर्त्ती आचार्यों द्वारा उपरिलिखित नियमो का पालन साधुओ से कहाँ तक कराया जा सका, यह चिन्त्य है क्योकि आधुनिक साम्प्रदायिक साक्ष्य 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखक लिखते है कि 'अब अधिकाश राम-द्वारो मे पुरानी परपराएँ लडखडा गई हैं रामसनेही साधुओ मे पहले की मजबूत परपराएँ ढीली हो रही है।'[2] यद्यपि इस आचार सहिता का पालन आज इतनी सतर्कता से नही हो रहा है फिर भी कतिपय नियम रामसनेही सतो के जीवन मे एकदम घुलमिल कर सामान्य बन गए है, जैसे—राम का इष्ट, गुरु दर्शन, दयालुता, मादक पदार्थों के सेवन का निषेध, पानी छानकर पीना, मास मदिरा से दूर रहना, अहिसा के प्रति तीव्र निष्ठा, सयम, शील, सतोष आदि के पालन की प्रवृत्ति ।

स्वरूप

नाम परिवर्त्तन

पथ-प्रवेश के बाद साधु का नाम-परिवर्त्तन कर नया नाम रख दिया जाता है। यह इस बात का प्रतीक है कि उसने नये जीवन मे प्रवेश लिया है।[3]

वस्त्र

डॉक्टर अमरचन्द वर्मा लिखते हैं कि रामसनेही साधुओ का पहनावा भी स्वामी रामचरण द्वारा निश्चित किया गया था।[4] किन्तु साम्प्रदायिक साक्ष्य ग्रथो मे ऐसा उल्लेख नही मिलता। जनश्रुति है कि चाटसूँ ग्राम के किसी भक्त ने स्वामी रामचरण को हिरमिज के रग की चादर भेट की थी, तभी से रामसनेही साधु हिरमिजी रग के कपडे धारण करने लगे किन्तु आजकल गुलाबी रग का वस्त्र धारण किया जा रहा है। यह परिवर्त्तन कैसे हुआ, कहा नही जा सकता। वेस्मकट महोदय ने उन्हें 'गेरू' रग के रगे वस्त्रो मे देखा

---

१ Journal of the Asiatic Society. Feb 1835

२ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १४२।

३. The priest changes his name on admission to the order, to denote he enters on a new state of life.

—Journal of the Asiatic Society, Feb 1835.

४ स्वामी रामचरण—एक अनुशीलन, पृ० ८४।

है। वेस्मकट के अनुसार यह कपड़ा साढे सात फीट का होता है। यह चादर सिर से पैर तक ढँकने के लिए होती है। भीतर एक कौपीन और कमरबन्द रखते हैं। जाडो मे एक वस्त्र और धारण करते है और कभी कभी तीसरा भी।[१] मौनी साधु काले रग का वस्त्र धारण करते है।

तिलक, कण्ठी-माला और मुण्डित सिर

रामसनेही साधु ललाट पर गोपी चदन का श्री तिलक लगाते है और गले मे चदन की कण्ठी धारण करते है। नाम स्मरण के लिए हाथ मे भी चदन की माला रखने का नियम है। रामसनेही साधु केश-मुण्डन करा लेते है पर शिखा रखते है।

पात्र

साधुओ के लिए धातु-पात्रो का प्रयोग वर्जित है। वे लकडी और मिट्टी के पात्रो का प्रयोग करते है।

गुटका

ये लोग एक गुटका पोथी [प्राय हस्तलिखित] रखते है जिसमे 'अणभै वाणी' के अश सकलित होते है। इसे 'गुरुवाणी' कहा जाता है।

दैनिक जीवन

रामसनेही साधु का प्रात कालीन समय उपासना मे व्यतीत होता है। वे वाणी का पाठ करते है और गृहस्थ भक्तो को भी सुनाते हैं। नामोपासना में दिन व्यतीत करते है और सूर्यास्त के पूर्व भोजन ग्रहण कर लेते है। सान्ध्य आरती के बाद वे पुन नामोपासना मे रत हो जाते है।

दण्ड-विधान

अपराधी साधुओ के लिए दण्ड-विधान की भी व्यवस्था है। फूलडोल के अवसर पर ऐसे साधुओ को सतो के बीच निवास की आज्ञा नही मिलती। वे रामनिवास धाम के

---

१. The only covering worn by the sadh is a cotton cloth of course texture, seven feet and a half long, with a small piece for a waistband, and another for a percolator .. The sheet is coloured with 'Geru', a kind of red-ochre emblimatical of humanity, they add a second in the winter season and sometimes a third, when if warmth be not obtained

—Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

निकट इमली-वृक्ष के नीचे रहते है, वही उन्हे भोजन दिया जाता है। अपराध सिद्ध होने पर पथ से निकाल दिये जाते है।

पथ मे स्त्री-प्रवेश

स्वामी रामचरण ने पथ मे स्त्री-प्रवेश की कोई चर्चा नही की है। उन्होने तो कचन के साथ कामिनी का भी निषेध किया है। पथ मे स्त्री-प्रवेश के प्रश्न पर लगभग सभी साक्ष्य मौन हैं, केवल कैप्टेन वेसमकट ने यह प्रश्न उठाया है। यह प्रश्न भी स्वरूपाबाई के कारण उपस्थित हुआ दीखता है। वेसमकट महोदय लिखते हैं—

"A woman may become a priestess, as in the instance of Sarup, a devoted adherent of Ramcharan."[1]

इस सदर्भ मे निवेदन है कि स्वरूपाबाई की एक विशेष स्थिति थी। वह स्वामी रामचरण की समर्पित शिष्या थी। उन्होने अपने पति का परित्याग कर दिया था। स्वामी रामचरण के अतिम समय मे स्वरूपा स्वामी जी के निकट थी। 'गुरलीला विलास' मे जगन्नाथ ने स्वरूपा की प्रशसा करते हुए लिखा है कि —

"नवलराम के कन्या जाई।
सो बेटा सू भई सवाई।
जाकी महिमा किस विधि कीजै।
सो मेरा के जोड़े दीजै।
× × ×
मीरा निज खावद सूं मुरड़ी।
ऐसी करी सरूपा करड़ी।"[2]

किन्तु विशेष स्थिति के बावजूद भी स्वामी जी ने स्वरूपा को साधु-जीवन मे आने की अनुमति दे दी हो, इसका उल्लेख कही नही मिलता। गुरलीला विलासकार स्वरूपा की तुलना मीरा से करता है, अत यदि स्वामी रामचरण ने उसे विरागिनी बनने की आज्ञा दी होती तो जगन्नाथ उसे अवश्य महत्त्व देकर अपने जीवनी-ग्रथो मे चर्चा करते। फिर स्वामी राम चरण के २२५ शिष्यो मे स्वरूपा का कहीं नामोल्लेख नही है। यदि स्वामी रामचरण ने उसे वैराग्य धारण कराया होता तो उसका नाम भी वैरागी शिष्यो मे प्रमुखता से आया होता। फिर यदि पथ मे स्त्री-प्रवेश की अनुमति स्वामी रामचरण ने दे दी होती तो परवर्त्ती आचार्यों ने भी इस परम्परा का पालन अवश्य किया होता। वर्तमान मे मुझे नही विदित है कि कोई स्त्री पथ मे विरागिनी के रूप मे प्रतिष्ठित है। वेसमकट महोदय को यह धारणा स्वरूपाबाई की स्वामी रामचरण से अति निकटता के कारण हुई प्रतीत होती है। यह भी

१. Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.
२. गुरलीला विलास, ह० प्र०।

सभव है कि सतो की समाधियो के पास स्वरूपा की समाधि देखकर वेस्मकट ने यह धारणा वना ली हो।

पथ का सम्पूर्ण स्वरूप-विधान स्वामी रामचरण ने ही कर दिया था यह कहना समीचीन नही है। स्वामी रामचरण ने अपने सतो के लिए जो आचार-सहिता बनायी थी उसका उन्होने स्वय उल्लेख किया है। जगन्नाथ ने भी 'गुरलीला विलास' मे रामसनेही के जो लक्षण लिखे है, उन्हें भी स्वामी रामचरण निर्मित माना जा सकता है क्योकि जगन्नाथ 'गुरलीला विलास' की रचना सवत् १८६० में पूर्ण कर चुके थे जो स्वामी रामचरण का जीवनी-पथ होने के कारण उनसे सबधित तथ्यो का उल्लेख करता है। इसके अतिरिक्त पथ के साधुओ के लिए अन्य विधान स्वामी जी के परवर्ती आचार्य स्वामी रामजन एव स्वामी दुल्हैराम द्वारा किया गया।

रामसनेही गृहस्थ

रामसनेही सम्प्रदाय मे गृहस्थो का महत्त्व अन्य पथो एव सम्प्रदायो की अपेक्षा अधिक है। स्वामी रामचरण के सम्पूर्ण साम्प्रदायिक जीवन मे गृहस्थ शिष्य प्रमुख रहे है। 'गुरलीला विलास' एव 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' मे जीवनीकार जगन्नाथ ने स्वामी जी के उत्तराधिकारी स्वामी रामजन को छोडकर किसी भी साधु शिष्य का नामोल्लेख नही किया है। जगन्नाथ स्वय भी गृहस्थ शिष्य थे। आज भी सम्प्रदाय मे गृहस्थ शिष्यो की महत्ता एव मर्यादा वैसी ही है। कैप्टेन वेस्मकट ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि—

"The laity, known by the general name of Gnhist, are at liberty at any time to enter the hierarchy and the office of the Mahant is open to them "[1]

किन्तु किसी गृहस्थ ने गार्हस्थ छोडकर सीधे महत पद सम्हाला हो, ऐसा नही हुआ है। हाँ, यह अवश्य है कि कोई भी महत केवल साधुओ द्वारा प्रतिष्ठित नही हो सकता। महत के मनोनयन मे गृहस्थो की भूमिका महत्त्वपूर्ण और अपरिहार्य होती है। स्वामी रामचरण द्वारा निर्मित जिस आचार-सहिता का उल्लेख साधु-लक्षण शीर्षक के अन्तर्गत किया जा चुका है, वस्तुत उन सभी का आचरण गृहस्थो से भी अपेक्षित है। भीलवाडे मे जब स्वामी रामचरण ने रामसनेही छाप का प्रकाशन किया, उस समय उनके साधु-शिष्य कितने थे, इसका उल्लेख जीवनीकार ने नही किया है। हाँ, गृहस्थ शिष्यो देवकरण, कुशलराम और नवलराम की महत्ता बार-बार प्रतिपादित हुई है। अत आचार-सहिता का उद्घोष करते समय स्वामी रामचरण के मस्तिष्क म गृहस्थ अवश्य थे और प्रमुख रूप से थे।

कैप्टेन वेस्मकट ने रामसनेही गृहस्थो के आचरण की नियमावली इस प्रकार प्रस्तुत की है—

---

1 Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835

"They are particularly enjoined to speak the truth to be constant in their affections and just and honest in their dealings."[1]

रामसनेही सम्प्रदाय मे वेस्मकट के अनुसार पथ मे व्यय के लिए गृहस्थ अनुयायी ही धन प्राप्त करते थे। शाहपुरा के सम्प्रदाय के दो बनिये रुपया ग्रहण करने, ऋण देने और पवित्र भाईचारे के कारण व्यापार चलाने के लिए नियुक्त थे।[2]

स्वामी रामचरण ने धन-सबधी सम्पूर्ण व्यवस्था गृहस्थ रामसनेहियो के हाथ मे दे रखी थी। उन्होने साधुओ को इससे दूर रखा। यहाँ तक कि रामसनेही साधु भोजन स्वय नही बनाते थे। भोजन का प्रबध शाहपुरा शहर मे रामसनेही गृहस्थो की देख-रेख मे होता था और बना-बनाया भोजन समय से 'रामनिवास धाम' मे पहुँच जाता था। रामसनेही गृहस्थ सतो का बडा सम्मान करते थे और सन्त भी गृहस्थो को सम्मान देते थे।[3]

मै समझता हूँ कि साधु एव गृहस्थ रामसनेहियों का यह सतुलित समन्वय स्वय स्वामी रामचरण ने स्थापित किया था। अन्य सम्प्रदायो और पथो मे इस प्रकार के समन्वय का सर्वथा अभाव दीखता है। इस समन्वय का ही परिणाम है कि रामसनेही सम्प्रदाय स्थापना-काल की विषम परिस्थितियो को झेलकर आगे निकल गया और निरन्तर विकास के सुदृढ सोपान पर चढता चला जा रहा है। वस्तुत यह सम्प्रदाय के विधाता स्वामी रामचरण की निपुणता का परिचायक है।

शिष्य परम्परा

साधु शिष्य

परचीकार लालदास के अनुसार स्वामी रामचरण के शिष्यों की सख्या २२५ थी।[4]

---

1. Journal of the Asiatic Society, Feb 1835

2. 'Lay followers receive money for the use of the order and two Banias of the sect residing in Shahpura are appointed expressly to receive remittances, lent out money and carry on trade on account of the holy fraternity

—Journal of the Asiatic Society, Feb 1835

३ सन् १९५३ मे फूलडोल के अवसर पर शाहपुरा मे उपस्थित होकर मैने स्वय साधु-गृहस्थ-समन्वय का दृश्य अपनी आँखो देखा था। शहर के भीतर 'राम हवेली' मे भोजन बनता था और बैलगाडी पर लाद कर 'रामनिवास धाम' पहुँचाया जाता था। पूज्य श्री नानूराम जी भण्डारी [अब स्वर्गीय] ने मुझे रामहवेली मे निवास करने की आज्ञा दी थी। वहाँ श्री रामविलास विजयवर्गीय मुनीम थे और अन्य राम सनेही गृहस्थो की देखरेख मे पंथ का कारबार चलता था।—लेखक।

४ स्वामी रामचरण के शिष दो सै पचीस—'परची', ह० प्र०।

पडित मोतीलाल मेनारिया भी इस सख्या से सहमत है।[1] इस सबध मे 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखको ने बहुत स्पष्ट लिखा है—"किवदती के अनुसार २२५ शिष्य माने जाते हे, पर अद्यावधि सम्पूर्ण नामावली उपलब्ध नही हो सकी है।"[2] साम्प्रदायिक साक्ष्य ग्रथो मे 'परची' को छोडकर २२५ की सख्या का किसी मे उल्लेख नही है। 'गुरलीला विलास' और 'ब्रह्मसमाधि लीन जोग' दोनो ही ग्रथो मे जगन्नाथ ने इसकी कोई चर्चा नही की है। पता नही डॉक्टर अमरचन्द वर्मा को 'गुरलीला विलास' की किस प्रति मे यह २२५ की सख्या उपलब्ध हुई है, डॉ० वर्मा लिखते हे कि—"स्वामी रामचरण के २२५ शिष्य होने की बात जहाँ सम्प्रदाय के ग्रथो से प्राप्त होती है, वहाँ हिन्दी सत साहित्य के विद्वान् भी इसका समर्थन करते है।"[3] फुटनोट मे डॉक्टर वर्मा ने 'गुरलीला विलास' को सदर्भित करके 'परची' की फुटनोट मे उद्धृत पक्ति उद्धृत कर दी है। फिर वे आचार्य पडित परशुराम चतुर्वेदी लिखित 'उत्तरी भारत की सत परपरा' के पृष्ठ ६१९ की ओर ध्यान आकृष्ट करते है। निवेदन है कि पृ० ६१९ देखने पर भी निराशा ही हाथ लगती है। इस सदर्भ मे 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखका का मत ही समीचीन जान पडता है। वस्तुत २२५ की सख्या का आधार किवदन्ती ही है। इसी ग्रथ मे थोडे-से शिष्यो की नामावली दी गई है जिसे लेखको ने शाहपुरा 'रामनिवास धाम' की 'बारादरी' और भीलवाडा रामद्वारे की भित्ति पर लिखा हुआ पाया है। यह सख्या १६७ ठहरती ह।

बारह थम्बे के साध

कैप्टेन वेस्मकट के अनुसार स्वामी रामचरण के बारह प्रमुख शिष्य थे जिन्हे उन्होने अपने शिष्यो मे से चुना था। इनमे से किसी स्थान के रिक्त होने पर उस रिक्ति की पूर्ति सर्वाधिक योग्य वरिष्ठो मे से की जाती थी। इस प्रथा का अनुसरण उनके उत्तराधिकारी भी कर रहे है। इन्हे 'बारह थम्बे के साध' कहा जाता है।[4] इन बारह शिष्यो की चर्चा जीवनीकार जगन्नाथ या परचीकार लालदास ने नही की है। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखको ने 'द्वादश प्रमुख शिष्य' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है कि 'रामस्नेही सम्प्र-

---

१ राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, पृ० ८२।

२ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ४२।

३ स्वामी रामचरण एक अनुशीलन, पृ० ७५।

4 Ramcharan had twelve pupils or disciples, called Chela whom he selected from the priesthood, filling up vacancies as they occurred, from the most virtuous of the elders and this custum is continued by his successors They are called the "Baruh Thumbe ke sadh" or "disciples of twelve pillars"

—Journal of the Asiatic Society Feb 1835

दाय मे द्वादश शिष्य सर्वोपरि वन्दनीय है।"[1] इसी ग्रथ मे 'रामरसाबुधि' की एक कविता द्वारा उन १२ शिष्यों की नामावली प्रस्तुत की गई है। ये शिष्य है[2]—१ सर्वश्री बल्लभराम, २ रामसेवक, ३ रामप्रताप, ४ चेतनदास, ५ कान्हडदास, ६ द्वारिकादास, ७ भगवान दास, ८ रामजन, ९ देवादास, १० मुरलीराम, ११ तुलसीदास, १२ नवलराम।

आचार्य पडित परशुराम चतुर्वेदी एव श्री प्रमथनाथ बोस ने भी इन बारह शिष्यो की बात कही है।[3] वेस्मकट के अनुसार ये बारहो शिष्य स्थायी रूप से शाहपुरा मे नही रहते किन्तु चार या पाँच सदैव एक साथ वहाँ बने रहते है।[4]

उत्तरदायित्व

कैप्टेन वेस्मकट ने विस्तारपूर्वक एव श्री परशुराम चतुर्वेदी तथा श्री प्रमथनाथ बोस ने सक्षेप मे इन प्रमुखो के उत्तरदायित्वो का वर्णन किया है। वेस्मकट के अनुसार उनके कार्यों का विभाजन निम्नाकित प्रकार से हुआ था।

१ **कोतवाल**—मदिर मे जमा अन्न एव औषधि के भण्डारी का काम करता है।

---

१ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ४२।

२ लैसामगरी सब साथ भगति हलमो करी भारी।
बलभराम बलवत रामसेवक तप धारी।
रामप्रताप पुनीत दास चेतन सुख देही।
कान्हड करणीवान द्वारकादास विदेही।
भगवानदास भजनीक राम ही जन अधिकारी।
देवादास दिल शुद्ध जान मुरली तनधारी।
तुलसी तत परबीन नवल पुसती धरण्यारा।
ये द्वादश शिश साथ कल्यो रथ काटणहारा।

—रामरसाम्बुधि, भाग-२, पृ० १२३।

३ पथ के सगठन के लिए बारह शिष्यो का एक समुदाय आरभ से ही चला आता है जिनमे से किसी के मरते ही किसी दूसरे योग्य व्यक्ति द्वारा उस स्थान की पूर्ति कर दी जाती है।—उत्तरी भारत की सत परपरा, पृ० ६१९।

'Ramcharan had twelve chief disciples, a number which is kept up to the present day.'

—A History of Hindu Civilization During British Rule. Vol I, p 129.

४ 'The twelve does not reside permanently at shahpura, but four or five are always found there at one time'

—*Journal of the Asiatic Society*, Feb. 1835.

वह महत के आदेश से अन्न वितरित करता है। साधुओ का मध्यरात्रि की उपासना के लिए आह्वान करना कोतवाल का ही कर्त्तव्य है।

२ **कपडेदार**—यह सम्प्रदाय के साधुओ के लिए गृहस्थो एव अतिथियो द्वारा प्रदत्त सूती-ऊनी वस्त्रो का अधिकारी होता है।

३ **निरीक्षक**—यह साम्प्रदायिक भ्रातृत्व के आचरण एव नैतिक चरित्र पर कड़ी निगरानी रखता है।

४ चौथा साधुओ को पढाता है।

५ पाँचवाँ लेखन की शिक्षा देता है।

६ छठाँ सभी मतानुयायियो को पढाने-लिखाने के लिए नियुक्त होता है जो उससे निवेदन करते है।

७ सातवाँ अपनी आयु एव उदासीन प्रकृति के कारण स्त्रियो को शिक्षित करने के लिए चुना जाता है।

शेष पाँच

शेप पाँच तथा द्वादश मे से ही इनके अतिरिक्त तीन और को मिला कर आठ साधुओ की एक परिपद् महत द्वारा नियुक्त की जाती है। यह परिपद पथ के साधुओ द्वारा पथ के नियमो का उल्लघन एव अन्य अपराधो की जाँच करती है।[1]

---

1 "One of them lenominated Kotwal acts as steward of the grain and medicines deposited in the temple and distributes a daily allowence of food to the inmates It is also the duty of the Kotwal to summon the priests to midnight prayer

Another of the body called kapredar—Keeper of the wardrobe-has charge of various kinds of clothes presented by the laity and strangers for the use of the brotherhood, these includex coarse cotton, blankets and other woollens.

A third fills the office of censor, and maintains strict watch over the manners and moral conduct of the fraternity A fourth teaches the priesthood to read, and a fifth instruct them in writing

Another is appointed to teach reading and writing to men of all persuasions who apply to him, while a seventh, usually selected for his age and saturnine temper, instructs females in the same acquirements

The remaining five, with three disciples chosen indifferently from among those mentioned above, from a council of eight, appointed

कैप्टन वेस्मकट ने इन बारह शिष्यो की चर्चा वर्तमान काल मे की है। उन्होने स्पष्ट लिखा है कि यह व्यवस्था स्वामी रामचरण ने की थी और उनके उत्तराधिकारियो द्वारा इसका पालन हो रहा है। स्मरणीय है कि वेस्मकट महत नारायणदास के समकालीन थे और उनसे तीन बार भेट करने गये थे। अत यह तो निश्चित हो गया कि नारायणदास जी के समय मे 'बारह थम्बे के साध' अस्तित्व मे थे और अपनी-अपनी भूमिका सफलतापूर्वक निभा रहे थे किन्तु बाद मे यह व्यवस्था समाप्त हो गई। मैने शाहपुरा मे सम्प्रदाय के अधिकारियो से पूछताछ की थी किन्तु उन लोगो ने इस सन्दर्भ मे अपनी अनभिज्ञता ही प्रदर्शित की। पर स्वामी जी के बारह शिष्यो की नामावली और उन लोगो के द्वारा सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार की गाथा सम्प्रदाय मे आज भी प्रचलित है। यह बात भिन्न है कि आज वैसे बारह शिष्य व्यवस्था के लिए नही चुने जा रहे है। समय के अनुसार परिवर्त्तन होता ही है। अब महत के नीचे व्यवस्था का सम्पूर्ण बोझ भण्डारी सम्हालता है और कोतवाल के पद पर अब भी कोई साधु नियुक्त होता है।

स्वामी रामचरण के उक्त द्वादश शिष्यो मे से रामजन जी उनके स्वर्गवास के बाद आचार्य-पीठ पर आसीन हुए। इन बारह थम्बे के साधुओ मे स्वामी जी ने एक गृहस्थ शिष्य भी सम्मिलित किया था। ये थे शीलव्रत धारी नवलराम जी जिन्होने स्वामी जी की वाणी को अगबद्ध करके उसका सम्पादन किया था। शेष दस शिष्यो ने राजस्थान-मालवा के विभिन्न स्थानो मे रामद्वारे स्थापित कर 'राम धर्म' का प्रचार किया। डॉक्टर अमरचद वर्मा ने इन दसो सतो एव उनके द्वारा स्थापित रामद्वारो के स्थानो की तालिका इस प्रकार दी है।[१] साम्प्रदायिक सूत्रो ने भी इसकी पुष्टि की है—

१ श्री वल्लभराम—बीकानेर
२ श्री रामसेवक—उदयपुर
३ श्री रामप्रताप—माधोपुर
४ श्री चेतनदास—कोटा
५ श्री कान्हडदास—सागवाडा
६ श्री द्वारकादास—धलपट (मालवा)
७ श्री भगवानदास—जोधपुर

---

by the Mahant to investigate into offences and infringements of the rules of the order"

—Capt. G. E Westmacott Some account of a Sect of Hindu Schismatics in western India, calling themselves Ramsanchi or friends of God.

—Journal of The Asiatic Society Feb 1835
A history of Hindu Civilization During British Rule Vol I, p. 1

१. स्वामी रामचरण एक अनुशीलन, पृ० ७७।

८ श्री देवादास—प्रतापगढ
९ श्री मुरलीराम—रायपुर
१० श्री तुलसीदास—खानपुर (कोटा)

खालसा

स्वामी रामचरण के पश्चात् आचार्य पद पर बैठने वाले आचार्यों की शिष्य-परपरा के साधुओ को 'खालसा' कहते हैं।

थाभायत

उपर्युक्त शिष्या द्वारा स्थापित रामद्वारो की शिष्य-परम्परा को 'थाभायत' कहते हैं।

गृहस्थ शिष्य

यह भलीभाँति स्पष्ट हो चुका है कि रामसनेही सम्प्रदाय मे गृहस्थ शिष्यो का विशिष्ट स्थान है। वस्तुत पथ-सचालन के लिए स्वामी रामचरण ने साधु और गृहस्थो को समान महत्ता दी ओर पथ-शकट के दो पहिए के रूप मे आज भी दोनो सम्प्रदाय की व्यवस्था सम्हाले हुए हैं। सभवत, इसीलिए स्वामी जी ने नवलराम को गृहस्थ होने के बाद भी बारह शिष्यो मे स्थान दिया था। साम्प्रदायिक साक्ष्य ग्रथो मे गृहस्थ-शिष्यो की ही चर्चा है। इसका कारण यह है कि स्वामी रामचरण ने पथ-स्थापन के बाद सीधे लोगो को साधु बनने की प्रेरणा नही दी प्रत्युत् गृहस्थो मे से कुछ को पहले विश्वास मे लिया जिन्होने आगे चलकर भीलवाडा-सघर्ष मे पथ की ओर से प्रमुख भाग लिया।

शीलव्रत

पथ-विकास की परम्परा मे 'शीलव्रत' का अपना एक विशिष्ट स्थान है। मैने अभी निवेदन किया है कि स्वामी जी ने पथ-सस्थापन के सदर्भ मे लोगो को पहले साधु नही बनाया। वस्तुत उन्होने अपने गृही शिष्यो को शीलव्रत लेने की प्रेरणा दी। शीलव्रत ब्रह्मचर्य पालन को कहा जाता है। अस्तु, स्वामी रामचरण ने अपने शिष्यो को गार्हस्थ्य जीवन मे रहते हुए शीलव्रत धारण करने की प्रेरणा दी। शीलव्रतधारी व्यक्ति गृहस्थ वेश मे ही साधु सदृश रहता है। अत शीलव्रतधारियो की एक विशिष्ट एव महत्त्वपूर्ण स्थिति सम्प्रदाय मे है।

शीलव्रती कतिपय प्रमुख शिष्य

देवकरण, कुशलराम और नवलराम[1] जिन्होने भीलवाडा-सघर्ष मे प्रमुख भूमिका

---

१ स्वामी रामचरण के ग्रही शिष्य अनेक।
देवकरण कुसला नवल मुखिया तीन विसेष।
मुखिया तीन विसेप सील तीनू ने लिया।—'परची', लालदास।

निभायी थी, पहले शीलव्रत धारण करने वाले शिष्य थे। ये तीनो भीलवाडा के प्रमुख वैश्य परिवारो के व्यक्ति थे। अभी इन लोगो की अवस्था भी कम ही थी। ऐसी स्थिति मे शीलव्रत लेने पर इन लोगो के परिवारो मे स्वामी रामचरण के प्रति जो आक्रोश उत्पन्न हुआ वह सहज ही था। गुरलीला विलासकार ने देवकरण के परिवार मे उत्पन्न विवाद-ग्रस्त परिस्थिति का वर्णन किया है जिसकी चर्चा पिछले अध्याय मे हो चुकी है।

स्वरूपाबाई

ये स्वामी रामचरण के प्रमुख शिष्य नवलराम की पुत्री थी। पीछे स्वामी जी के जीवन-वृत्त एव स्त्री-पथ-प्रवेश के सदर्भ मे स्वरूपाबाई की चर्चा हो चुकी है। 'गुरलीला विलास' मे जगन्नाथ ने स्वरूपा की प्रशसा करते हुए उसकी तुलना मीराँ से की है। मीराँ के समान स्वरूपा भी अपने पति का परित्याग कर दिया था[१] और स्वामी रामचरण का शिष्यत्व ग्रहण कर उनके सान्निध्य मे जीवन-पर्यन्त रही। कैप्टेन वेस्टकट ने भी स्वरूपा को स्वामी रामचरण की समर्पित शिष्या कहा है और उसके पति-त्याग की चर्चा करते हुए उसे पथ मे स्त्री-प्रवेश का उदाहरण माना है।[२] स्वरूपा शीलव्रत धारण कर गुरु एव सम्प्रदाय की सेवा मे लीन हुई थी।

कतिपय अन्य शिष्य[३]

'गुरलीला विलास' मे जगन्नाथ ने कतिपय और शिष्यो की चर्चा की है जिन्होने शीलव्रत ग्रहण कर जीवन को सफल बनाया है।[४] सीताराम, सेवाराम, भूपसिह शक्तावत (ग्राम पानराल), मुरधर निवासी आणददास, शिम्भुराम सागर, गुरधर की वेजाबाई आदि के अतिरिक्त अर्जुन, जिसकी ३४ वर्ष की आयु मे पत्नी का स्वर्गवास हो गया था, ने भी

---

१ जाकी महिमा किस बिध कीजै।
सो मीरा के जोडे दीजे।

मीरा निज खावद सू मुरडी।
ऐसी करो सरूपा करडी।
—गुरलीला विलास, ह० प्र०।

2. 'A woman may become a priestess, as in the instance of Sarup, a devoted adheent of Ramcharan, by abandoning her hausband and offspring, and by confirming strictly to chastity and other status '

—Journal of the Asiatic Society. Feb 1835

३. गुरलीला विलास, ह० प्र० छ० २६८-२८२।

४. वही, ह० प्र०, छ० २८३-२८८।

अपने भाई राजा भीमसिंह के पुनिर्ववाह का प्रस्ताव इन्कार कर दिया और स्वामी रामचरण से निवेदन कर 'शील' ग्रहण कर लिया। इसी प्रकार देवकरण के पुत्र फतेहराम तथा गोविन्दराम समनाणी ने भी शीलव्रत ले लिया। शाहपुरा को काशी बनाने वाले बलू और समोर चारण भी उदासी बन गए। ऐसे ही अनेक लोगों ने शीलव्रत धारण कर अपना जीवन सफल किया।

आचार्य

आचार्य का निर्वाचन

रामसनेही सम्प्रदाय मे आचार्य के मनोनयन की प्रणाली अन्य साधु-सम्प्रदायो से भिन्न है। यहाँ आचार्य के चुनाव के लिए लोकतान्त्रिक पद्धति स्वीकृत है। आचार्य-पद के चुनाव मे साधु और गृहस्थो को समान अधिकार प्राप्त है। ऐसा नही कि यह लोकतान्त्रिक चुनाव-पद्धति आधुनिकता का परिणाम हो वरन् यह सम्प्रदाय के प्रारभ से ही चली आ रही है। कैप्टेन वेस्मकट लिखते है कि महत के देहावसान के बाद उसके उत्तराधिकारा के चुनाव के लिए शाहपुरा मे साधुओ एव गृहस्थो की एक सभा बुलायी जाती है। उत्तराधिकारी बुद्धिमत्ता एव सद्गुणो के आधार पर निर्वाचित होता है। मरणोपरान्त तेरहवे दिन या अन्य किसी नियत दिन पर एकत्र समाज द्वारा नये आचार्य को पीठासीन कराया जाता है। उस दिन एक उत्सव मे साधु लोग नगर की समस्त हिन्दू जनता मे मिष्ठान्न वितरित करते है। यह वितरण नगर के भीतर राममेडी मे होता है।[1]

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी की निम्नलिखित पक्तियाँ भी इस सदर्भ की पुष्टि करती हैं—"मुख्यत महन्त के मरने पर तेरहवे दिन उसका उत्तराधिकारी शाहपुर मे एकत्र की गई वैरागियो व गृहस्थो की सभा द्वारा योग्यता के विचार से चुना जाता है और उसके उपलक्ष्य मे वहाँ के 'राममरी' नामक मदिर मे एक सहभोज भी होता है।"[2]

अचार्य के चुनाव की इस प्रणाली पर पुराने साम्प्रदायिक साक्ष्य मौन है पर आधुनिक साम्प्रदायिक साक्ष्यग्रथ 'श्री रामसनेही सम्प्रदाय' की निम्नलिखित पक्तियाँ अवश्य ही ध्यान देने योग्य है। "जिस समय सम्प्रदाय की स्थापना के साथ-साथ ही इस पद्धति को

---

1. On the demise of a Mahant, an assembly of the priest and and laity is convened at Shahpura to elect a successor, who is chosen with reference alone to his wisdom and vertues. He is installed on the thirteenth day after the office falls vacant, on which occassion the Byragis entertain the entire Hindu population of the town with a banquet of sweetmeats at the temple within the city walls, known by the name of Rammerr. —Journal of the Asiatic Society Feb. 1835

२ उत्तरी भारत की सत परपरा, पृ० ६२०।

अपनाया गया, उस समय भारतवर्ष मे राजा का पुत्र राजा और सम्प्रदाय के आचार्य का प्रधान शिष्य ही पीठाचार्य या प्रधानाचार्य का पद प्राप्त करता था। यह आश्चर्य की बात है कि चारो ओर सामन्ती वातावरण के होते हुए, राजा व जमीदारो के प्रभावशाली युग मे यह प्रणाली किस प्रकार रखी गई और कैसे विकसित हुई।"[१] लेखक चुनाव-प्रणाली के इसी सदर्भ को आगे बढाता हुआ कहता है—"आचार्य के चुनाव मे गृहस्थो व साधुओ दोनो को समान अधिकार प्राप्त है। सारे भारतवर्ष के रामस्नेही सत व गृहस्थ इसमे भाग लेते हे। गृहस्थो व साधुओ के प्रतिनिधियो की पहले अलग-अलग सभाएँ होती हे ओर उसमे विचार-विमर्श के बाद सर्वसम्मति से किसी एक सत को आचार्य बनाने का निर्णय किया जाता हे। कोई भी रामस्नेही सत, चाहे वह पीठ स्थान का शिष्य हो, खालसा का हो या थाभायत का हो, आचार्य पद के लिए मनोनीत किया जा सकता हे गृहस्थो व सतो के प्रतिनिधियो की निर्णायक समिति बारहद्वारी के ऊपर छत्रमहल मे बैठ कर निर्णय करती है और नीचे हजारो की भीड निर्णय जानने के लिए सोत्सुक खडी रहती है। निर्णायक लोग निर्णय करके नीचे आते है और उस सत को जिसे उन्होने चुना है—हाथ पकडकर चुपचाप ऊपर ले जाते है तथा वहाँ गुदडी और अलफी पर बैठा देते है, यह आचार्य बनाने की मूक घोषणा हे। इसके बाद दूसरे दिन वे सत विधिवत् आचार्य पद पर आसीन होते है। उस सुअवसर पर शाहपुरा के राजा, उदयपुर महाराणा के प्रतिनिधि व बैदलाराव जी तीनो अपने-अपने राज्यो की ओर से पूरा सम्मान प्रदर्शित करते हे।"[२]

सम्प्रदाय के पीठाचार्य का लोकतात्रिक प्रणाली से मनोनयन पूर्व आधुनिक युग की विस्मयकारी किन्तु अभिनव घटना है। यद्यपि स्वामी रामचरण का चुनाव इस प्रणाली से नही हुआ था, क्योकि वे तो स्वय सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक थे पर प्रणाली के मूल मे स्वामी जी के प्रगतिशील व्यक्तित्व का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। गृहस्थ एव साधु शिष्यो को समान स्तर पर रखकर परस्पर एक-दूसरे के लिए सम्मान एव विश्वास का भाव जगाने की प्रेरणा स्वामी रामचरण ने ही दी थी। बारह प्रमुख शिष्यो मे एक गृहस्थ शिष्य रख कर उन्होने सम्प्रदाय की सर्वोच्च परिषद् मे गृहस्थो को प्रतिनिधित्व दिया था। इसी प्रकार सम्प्रदाय-सचालन तथा अन्य साम्प्रदायिक कार्यों मे लगने वाले धन एव साम्प्रदायिक आय का सारा विवरण पथ के गृहस्थो के हाथ मे ही उन्होने दे रखा था, इसलिए आचार्य के चुनाव मे भी उनका सहयोग प्राप्त करना स्वाभाविक ही था। किन्तु स्वामी रामचरण के पथ मे यह कार्य उनके युग से आगे का था। तात्पर्य यह कि स्वामी रामचरण का व्यक्तित्व नितात प्रतिभासम्पन्न, दूरदर्शितापूर्ण एव प्रगतिशील था। इन्ही कारणो से अनास्था के इस युग मे जहाँ अनेक साधु-पथ पतनोन्मुख है, रामस्नेही-सम्प्रदाय निरतर विकासोन्मुख है।

---

१ श्री रामस्नेही-सम्प्रदाय, पृ० १४७—वैद्य केवलरवामी तथा अन्य।
२. वही, पृ० १४७-४८—वैद्य केवलस्वामी तथा अन्य।

आचार्य-परम्परा

स्वामी रामचरण द्वारा सस्थापित रामसनेही सम्प्रदाय का पीठस्थान शाहपुरा है। इस पीठ पर विराजने वाले आचार्यों की परम्परा अत्यन्त गौरवशालिनी रही है। मूलाचार्य स्वामी रामचरण के देहावसान के बाद उनके बारह शिष्यो मे से एक वीतराग स्वामी रामजन जी आचार्य पद पर विराजमान हुए। जनश्रुति है कि स्वामी रामजन के चुनाव से असतुष्ट होकर स्वामी रामचरण के वडे शिष्य श्री रामप्रताप जी शाहपुरा छोडकर माधोपुर चले गए और फिर वापस नही आए, किन्तु सम्प्रदाय मे बने रहे। आज भी माधोपुर का राम द्वारा शाहपुरा रामसनेही सम्प्रदाय का ही रामद्वारा है। इस प्रसग की चर्चा जब मैने छतरीबाग मे सत कन्हैयाराम जी से की तो उन्होने हँसते हुए बतलाया कि "भाई, रामप्रताप जी को सतमत का समर्थन नही मिल सका था, इसलिए वे चले गए और स्वामी रामजन जी गद्दी पर असीन हुए, और कोई बात नही थी।"[१] मूलाचार्य स्वामी रामचरण के बाद शाहपुरा पीठ के आचार्यों की सूची निम्नलिखित है--

१ श्री महाराज रामजन
२ श्री महाराज दुल्हैराम
३ श्री महाराज चत्रदास
४ श्री महाराज नारायणदास
५ श्री महाराज हरिदास
६ श्री महाराज हिम्मतराम
७ श्री महाराज दिलशुद्धराम
८ श्री महाराज धर्मदास
९ श्री महाराज दयाराम
१०. श्री महाराज जगरामदास
११. श्री महाराज निर्भयराम
१२. श्री महाराज दर्शनराम
१३. श्री महाराज रामकिशोर

सम्प्रदाय के प्रवेशार्थी

पथ मे हिन्दू जाति के सभी लोगो को प्रवेश की सुविधा है।[२] कैप्टेन वेस्मकट लिखते

---

१ सत श्री कन्हैया राम जी से मेरी एक वार्ता—दिनाक १५ जून, ७३, इन्दौर। टिप्पणी—सन् १९५३ मे फूलडोल के अवसर पर शाहपुरा मे मुझे तत्कालीन आचार्य निर्भयराम जी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। तभी प० रामकिशोर जी (वर्तमान आचार्य) के सपर्क मे आने का भी सुयोग मिला था—लेखक।

2 "All castes are admitted into the sect"—A History of Hindu civilization during British Rule Vol I p 129-131, P N Bose

है कि, "रामसनेही सम्प्रदाय हिन्दू की सभी जातियो से बना है उनके पूजा-स्थानो में ईसाई और मुसलमान भी जूता उतार कर आजादी से जा सकते है। किन्तु वेस्मकट को सदेह है कि वे लोग अपने साथ अन्य धर्मावलबियो को भोजन करने देगे।"[1]

अन्य धर्मावलबियो के संबध में तो वेस्मकट अपनी बात कहते है किन्तु यदि उन्हे यह विश्वास था कि रामसनेहियो के पूजा स्थानो तक वे जा सकते थे तो फिर भोजन की कोई समस्या नही।

उपासना

निर्गुण 'राम' के उपासक रामसनेही साधु एव गृहस्थ सामान्यतया प्रात एव साय उपासना हेतु उपासना-भवनो जिन्हे रामद्वारा कहते है, मे उपस्थित होते है। वेस्मकट ने तीन बार सामूहिक उपासना का आयोजन देखा है। उनके अनुसार सभी गृहस्थ अपने कार्य-व्यापारो मे व्यस्त होने के कारण एक ही समय उपासना मे नही उपस्थित हो पाते किन्तु जब आते है तो पूरे समय तक रहते है।[2] ये सामूहिक उपासनाएँ प्रात, मध्याह्न और सध्या समय होती है। प्रातकालीन उपासना अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। इसमे सभी लोग सम्मिलित होते है। सध्याकालीन उपासना मे, जो एक घण्टे की होती है, केवल पुरुष ही भाग लेते है।[3] सध्योपासना आरती पदो के गान के साथ समाप्त होती है।

फूलडोल

रामसनेही सम्प्रदाय का फूलडोल महोत्सव बसत काल मे शाहपुरा और भीलवाडा दोनो स्थानो पर आयोजित होता है।[4] यह उत्सव पहले ४० दिन तक मनाया जाता था पर अब २५ दिन ही इसकी अवधि निर्धारित कर दी गयी है—फाल्गुन सुदी ११ से चैत सुदी ५ तक।

---

1 Journal of the Asiatic Society Feb 1835.

2 Worship is performed three times a day, but the laity, busied in their wordly avocations, do not all go at one hour, though once seated, they remain in the temple till service is over

—Journal of the Asiatic Society. Feb 1835

3. The Morning service is most important being joined in by the entire congregation. . The evening service lasts for an hour and is attended only by men.—P. N Bose.

—A History of Hindu Civilization During British Rule Vol. I, p. 129-131.

४. फूलडोल होइ दोइ सथाना। भीलाडे साहिपुरे जाना।।
बरसाबरसी फागुणमास। दरसण आवे दास जग्यास।।

—गुरलीला विलास, हु० प्र०

चैत बदी १ से चैत बदी ५ तक अर्थात् ५ दिनो तक इसका रूप वृहत् होता है। फूलडोल के अवसर पर दूर-दूर के रामसनेही साधु एव गृहस्थ शाहपुरा मे एकत्र होते हैं। अन्य दर्शक गण भी आते है और एक विशाल मेला का रूप यह उत्सव ले लेता है।

नामकरण—इस महोत्सव का नाम फूलडोल क्यो पडा, यह प्रश्न अनेक विद्वानो द्वारा विचारा गया है। कैप्टेन वेस्मकट ने इसका अर्थ 'फूलो का लहराना' लिखा है और इसे श्रीमद्-भागवत पुराण से सबधित बतलाया है। वेस्मकट ने ऐसा ही एक उत्सव बगाल तथा भारत के विभिन्न भागो मे होना बतलाया है जिसमे चैत या वैशाख की पूर्णिमा की रात मे भगवान को फूलो से सजा कर झुलाते हैं। आगे वेस्मकट कहते है कि उन्हे इस बात का सदेह ही बना रहा कि रामसनेहियो ने अपने महोत्सव का यह नाम क्यो रख लिया ?[1] डॉ॰ राधिकाप्रसाद त्रिपाठी बसत ऋतु मे पुण्य सौन्दर्य के विकास को ही इस पर्व के नामकरण का कारण समझते है।[2]

इस नामकरण का कारण जानने के लिए हमे साम्प्रदायिक साक्ष्य-ग्रथो का सहारा लेना पडेगा। स्वामी रामचरण जी के जीवनीकार जगन्नाथ जी ने 'फूलडोल सवाद' नामक ग्रथ का निर्माण किया था। इस ग्रथ की रचना स० १८४० वि० मे अर्थात् स्वामी जी के जीवनकाल मे ही हो गई थी।[3] इस ग्रथ मे फूलडोल मनाने का कारण और नामकरण का कारण दोनो ही जगन्नाथ ने स्पष्ट रूप से लिखा है—

"ऋतु बसत फागुण में होई।
पूरनवांसी जानूं सोई।
सो दिन तो असुरन को होई।
ग्रह प्रह्लादजू जारे सोई।

---

1. 'The name of the festival, signifying "Flowers Swinging" is barrowed I understand from one of the eighteen Puranas called Srimath Bhagavat, A festival is annually observed in Bengal, and probably in other parts of Hindustan, by the worshippers of the God on the full moon of Chyt or Bysakh, when he is encircled with wreaths of flowers, I obtained no satisfactory reason why the Ramsanehis, who do not observe the rite attended to, should give the name of Phuldol to their great annual meeting'

—Journal of the Asiatic Society Feb 1835

२ अप्रकाशित शोधप्रबध—'रामसनेही सम्प्रदाय'—डॉ॰ राधिकाप्रसाद त्रिपाठी, (गोरखपुर विश्वविद्यालय ग्रथालय)।

३ सवत अठारा से बरस, चालीसा पर पाच।
सावण बदि पाचे मगल, इस विधि जाणो साच। [फूलडोल सवाद]
—रामचरण चरितावली, पृ० १२४

रामकृपा प्रह्लाद न जरिया।
फूलडोलता पीछे करिया।
देवन आई पोहोप बरषाये।
फूलडोल ता नाम कुहाये।"[1]

बसत ऋतु के फागुन महीने मे पूर्णमासी का दिन असुरो का दिन है। असुरो ने प्रह्लाद को जला देना चाहा था पर भक्त प्रह्लाद जलने से बच गया। इससे देवो को अपार हर्ष हुआ और उन लोगो ने आकाश से पुष्पवृष्टि की। इसी पुष्प-वर्षा को फूलडोल कहा गया है। इसी पुष्प-वर्षा से फूलडोल शब्द निकला।

फूलडोल का आरम्भ

भीलवाडा में फूलडोल—भीलवाडा मे स्वामी रामचरण के तीन प्रमुख शिष्यो देवकरण, कुशलराम और नवलराम के मन मे एक बार प्रह्लादोत्सव (होली पर्व) के दिन प्रह्लाद-कथा करने की अभिलाषा मन मे जगी।[2] कथा के बाद सहज भाव से जो प्रसाद चढा था उसे सभी मे वितरित कर दिया गया। रात की वेला आई। नगर मे ऊँचा आसन बनाया गया और स्वामी रामचरण जी से नगर मे पधारने की प्रार्थना की गई।[3] रात मे स्वामी जी नगर मे पधारे और वहाँ सत्सग हुआ। नगर के अन्य लोग होली जलाने गए थे पर सभी सत्सगी सत्सग-स्थल पर उपस्थित थे। जगन्नाथ के अनुसार रात्रि-जागरण मे कथा और नामस्मरण होता रहा।[4] इस प्रकार रतजगा के बाद प्रात काल स्वामी जी साधुओ समेत रामद्वारे चले आए और जिज्ञासु जन अपने-अपने घर गए। आगे जगन्नाथ ने भीलवाडा रामद्वारे का वर्णन किया है। इस प्रकार भीलवाडा मे फूलडोल आरभ हुआ जिसमे दूर-दूर से सत व गृहस्थ आकर सम्मिलित होते थे।

शाहपुरा में फूलडोल—स्वामी रामचरण ने शाहपुरा मे छतरी मे अपना स्थान बनाया और वही भजन करने लगे। अब स्वामी जी को शाहपुरा राज्य द्वारा राज्याश्रय प्राप्त था। राजा भीमसिह एव उनकी माता राजावत रानी दोनो ने स्वामी जी का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था। राजा भीमसिंह से एक बार फूलडोल की चर्चा हुई, राजा अति प्रसन्न हुआ और इस भक्तिपर्व के आयोजन के लिए तत्पर हुआ। उसने अपनी माता से यह सदेश सुनाया, माता

---

१. फूलडोल समाद, ह० प्र०।
२. सबही के मनि ऊपजी, आजि उच्छव प्रह्लाद।
   करो कथा प्रह्लाद की, ज्यू छूटे जग बाद। —फूलडोल समाद, ह० प्र०
३. अरज करी गुरदेव सू, रामसनेही दास।
   महाराज पधारो सहर मै, पूरो हमरी आस। —वही।
४. कर आसण बैठे सभी, भजे राम निज एक।
   जगन्नाथ जाग्रण तणो, आगे कहू विवेक। —वही।

अतीव प्रसन्न हुई और उन्होने इस पुनीत कार्य के सकल्प के लिए अपने पुत्र को धन्यवाद दिया।[1]

अब फूलडोल के समय की प्रतीक्षा उत्सुकतापूर्वक होने लगी। राजा ने अपने एक मत्री शालिग्राम व्यास को बुलाकर फूलडोल महोत्सव की व्यवस्था का भार सौपा। राजा का आदेश पाकर व्यास स्वामी रामचरण जी से मिले और तैयारी मे लग गए। तभी पूर्णमासी का शुभ दिन आ गया और हर्षित पुरवासियो को फूलडोल का उत्सव भाया। पूनम की रजनी आई और राजा भीम तथा उनकी माता ने विचार किया कि जागरण के लिए स्वामी रामचरण जी को नगर मे लाना चाहिए। शालिग्राम व्यास राजा की आज्ञानुसार छतरी मे गए, उनके साथ अन्य रामसनेही थे। स्वामी जी से निवेदन कर उन्हे नगर मे लाए। बाजार मे ऊँचे आसन पर उन्हे विराजमान किया। इस प्रकार जागरण का उत्सव सम्पन्न हुआ।[2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हुआ कि फूलडोल महोत्सव होली पर्व का परिमार्जित

---

१ फूलडोल की कथा चलानी।
जुगति जुगति जो सबै वखानी।
तबही हरप राजा मनि भयौ।
भगति उछाव करन मन दयौ।
यू मन मोद माता पै गये।
फूलडोल आगम सब कहे।
तब माता कह्यो धनि सुत मेरा।
भक्ति साजो भवसागर मेरा। —फूलडोल समाद हु० प्र०

२ पुनि राजा कै मत्री एका।
सालगराम सो व्यास ववेका।
ताकू राजा लिए बुलाई।
फूलडोल की टहल भलाई।
× × ×
तबै व्यास मिलि रामसनेही।
सारी जुगति बनावै तेही।
तबही आई पूरणवासी।
हरपमान हुआ पुरवासी।
फूलडोल सब के मन भावै।
कोई अधम की कही न जावै।
दिन बीते ऐसे बिध माही।
पून्यू की अब रजनी आही।
× × ×
मात-पुत्र दोउ करे बिचारा।
जाग्रण ह्वै है नगर मझारा।

रूप है। इसे प्रह्लाद भक्त के उद्धार पर देवो द्वारा अभिव्यक्त उल्लास की स्मृति कहना चाहिए। रामभक्त प्रह्लाद रामधर्म के पालक रामसनेही जनो द्वारा आदर्श रूप मे ग्रहण किये गये। इस अवसर पर प्रह्लाद-कथा के साथ-साथ 'नाम प्रताप' एव 'अणभैवाणी' के अशो का पाठ भी किया जाता है।

स्वामी रामचरण 'रामधर्म' के प्रचारक थे, वे समाज की विरूपताओ से परिचित थे। अत यदि उन्होने होली पर्व को परिमार्जित करने का प्रयास किया तो यह विस्मय की बात नही। कैप्टेन वेस्मकट को यदि 'फूलडोल सगाद' ग्रथ की सामग्री प्राप्त हो गई होती तो उन्हे भागवतपुराण आदि की चर्चा करने की आवश्यकता नही पडती।

स्वामी रामचरण के समय से ही भीलवाडा और शाहपुरा दोनो स्थानो पर फूलडोल होता है। स्वामी रामचरण के शाहपुरा आ जाने के बाद शाहपुरा की प्रमुखता हो गई। स्वामी रामचरण जहाँ रहते वही का फूलडोल महत्वपूर्ण हो जाता। धीरे-धीरे शाहपुरा का फूलडोल प्रधान हो गया। आज भी शाहपुरा मे ही यह उत्सव प्रधान रूप से मनाया जाता है। स्वामी रामचरण जी के बाद के आचार्यो मे महंत दुल्हेराम और महत हिम्मतराम जी ने उदयपुर के महाराणा के अनुरोध पर उदयपुर मे फूलडोल का उत्सव मनाया था।[1]

आज भी फूलडोल पूर्व परपरा के अनुसार शाहपुरा मे मनाया जाता है। इस अवसर पर रामसनेही साधुओ एव गृहस्थो की बडी भीड होती है। अनेक अन्य मतानुयायी एव धर्मावलम्बी भी प्रेक्षक के रूप म उपस्थित होते है। पाँच दिनो तक अच्छा खासा मेला रहता है। जागरण, वाणी-पाठ, नाम-प्रताप का पाठ आदि सभी कुछ पहले जैसा ही होता है। इसी अवसर पर अपराधी साधुओ के मामलो पर विचार होता है और अपराध सिद्ध होने पर

जाग्रण माहि पधारै स्वामी।
रामचरण जी सदा विष्यामी।
जाइ आग्या दीन्ही तबही।
जावो व्यास जी छतर्या अबही।
× × ×
आग्या पाइ व्यास जब चलिया।
ता सग रामसनेही मिलिया।
आये तब बाजार ज माही।
बोहो विधि की बछवाति छाई।
जा बिचि ऊँचे आराण साजै।
याहा आइ माहाराज बिराजै। —फूलडोल सगाद, ह० प्र०

१. "विक्रमी फाल्गुन शुक्ल ७ (हि० १२९१ ता० ५ मुहर्रम, ई० १८७४ ता० २३ फेब्रुअरी) को शाहपुरा के रामसनेही महत हिम्मतराम अपने सम्प्रदाय की रीति का फूलडोल करने के लिए उदयपुर आए।" —वीर विनोद, पृ० २११७।

उन्हे महत द्वारा निष्कासित कर दिया जाता है। साधुवेश धारण करने वालो की दीक्षा भी फूलडोल के अवसर पर ही होती है।

चौमासा

रामसनेही साधु आसाढ सुदी ११ से कुवार सुदी १० तक एक ही स्थान पर निवास करते है। इसे चौमासा या चातुर्मास कहा जाता है। सम्प्रदाय के आचार्य का चातुर्मास कहाँ व्यतीत होगा, इसका निर्णय भी फूलडोल के अवसर पर होता है। भिन्न-भिन्न स्थानो के गृहस्थ रामसनेही अपने स्थान की ओर से आचार्य को आमन्त्रित करते है। साधु एव गृहस्थ परस्पर विचार-विमर्श करके आचार्य के चातुर्मास का निर्णय करते है। इसके लिए एक होड-सी लग जाती है। यह निर्णय चैत बदी ५ को सुना दिया जाता है। जिस स्थान पर चौमासा बिताने का निर्णय होता है, उस स्थान के गृहस्थो को वाणी गुटका-पोथी दे दी जाती है। यह इस बात का द्योतक है कि चौमासा गुटका प्राप्त लोगो के स्थान पर होगा।

रामनिवास धाम

स्वामी रामचरण ने शाहपुरा मे आकर छतरी मे निवास किया था। यह स्थान शाहपुरा के राज परिवार की श्मशान-भूमि रही है। रामचरण जी के देहावसान के बाद उनका दाह-सस्कार भी यही हुआ। इसी स्थान पर 'रामनिवास धाम' आज खडा है। यह 'रामनिवास धाम' श्वेत पत्थर की विशाल इमारत है। इसके प्रमुख द्वार को 'सूरज पोल' कहा जाता है। सीढियो के ऊपर जाने पर बारहदरी की शोभा है। इसके बाद आचार्य-निवास कक्ष, भण्डार, हरि-निवास, हिम्मत-निवास, जग निवास, हवामहल आदि स्थान है।

'रामनिवास धाम' का प्रबन्ध भण्डारी की ओर रहता है। वस्तुत भण्डारी को सम्प्रदाय का सचिव समझा जाना चाहिए। आचार्य की ओर से पत्र-व्यवहारादि जितने भी कार्य होते है, वे सभी भण्डारी ही करता है। मैं समझता हूँ सम्प्रदाय मे आचार्य के बाद दूसरा महत्वपूर्ण स्थान भण्डारी का ही होता है।[1]

स्वामी रामचरण का कम्बल

शाहपुरा के रामनिवास धाम मे तोशनीवाल द्वारा स्वामी रामचरण जी को भेट

---

१ जब मै सन् ५३ मे शाहपुरा गया था, श्री नानूराम जी महाराज भण्डारी पद पर कार्य कर रहे थे और आचार्य पद पर स्वर्गीय निर्भयराम जी थे। पूज्य भण्डारी जी अब इस ससार मे नही है। मैने उनके दर्शन किये थे। शाहपुरा आवास के समय मुझे उनसे जो स्नेह एव सहयोग मिला, वह कभी भुलाया नही जा सकता। वह एक कुशल भण्डारी थे। उनकी ही कृपा से मैने रामनिवास स्थित 'वाणी' की प्राचीनतम उपलब्ध हस्तलिखित प्रति का अवलोकन किया था जिसे स्वरूपाबाई की पुस्तक कहते है। कनवाई की पुस्तक भी यही देखने को मिली थी। —लेखक।

किया हुआ कम्बल आज भी रखा हुआ है। मुझे वह कम्बल प० रामकिशोर जी (अब आचार्य) ने दिखलाया था। इन्दौर मे सन्मुखराम जी ने मुझे बतलाया कि तोशनीवाल ने १२ कम्बल स्वामी जी समेत अन्य सतो को भी दिये थे, जिनमे से अब तक नौ कम्बलो की खोज हो चुकी है।

रामसनेही साहित्य

रामसनेही सम्प्रदाय के पास विशाल साहित्य भण्डार है। स्वामी रामचरण जी की अणभैवाणी के अतिरिक्त श्री रामजन जी की अणभैवाणी, श्री दुल्हैराम जी की अणभैवाणी, श्री हरिदास महाराज की अणभैवाणी, श्री वल्लभराम जी की अणभैवाणी, श्री चेतनदास जी की अणभैवाणी, श्री रामसेवक जी की स्तुति-साखी, श्री रामप्रताप जी की अणभैवाणी, श्री कान्हडदास जी की अणभैवाणी, श्री द्वारकादास जी की अणभैवाणी, श्री भगवानदास की अणभैवाणी, श्री देवादास जी की अणभैवाणी, श्री मुरलीराम जी की अणभैवाणी श्री तुलसीदास की अणभैवाणी, श्री नवलराम जी की अणभैवाणी, स्वरूपा बाई के पद, श्री मुक्तराम जी की अणभैवाणी और श्री सग्रामदास जी के कुण्डलिये उपलब्ध है। इन सभी के अध्ययन और सम्पादन की आवश्यकता अपरिहार्य है।

चतुर्थ अध्याय

स्वामी रामचरण : रचनाएँ

अणभैवाणी : मुद्रित प्रति

स्वामी रामचरण की सम्पूर्ण रचनाओ का विशाल सग्रह 'स्वामी जी श्री रामचरण जी महाराज की अणभैवाणी' नाम से सवत् १९८१ तदनुसार सन् १९२५ ई० मे सम्प्रदाय के तत्कालीन आचार्य श्री निर्भयराम जी महाराज की आज्ञा से साधु नैनूराम जी ने बडौदा प्रिटिंग प्रेस मे मुद्रित कराकर प्रकाशित कराया। प्रस्तावनाकार साधु श्री कार्यराम जी के अनुसार भक्तजनो एव जिज्ञासुओ के अनेक आग्रहो के फलस्वरूप ही महत निर्भयराम जी ने ग्रथ-प्रकाशन की अनुमति दी थी।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि पुरातनवादी सत 'अणभैवाणी' के प्रकाशन को उचित नही समझते थे क्योकि पूजा की वस्तु 'वाणी' को वे किसी ऐसे व्यक्ति तक नही जाने देना चाहते थे जो उसका सम्मान न कर सके। इसी कारण जब 'वाणी' के प्रकाशन की योजना बनी तो 'रूढिवादी सतो ने इसका घोर विरोध किया था। ऐसी स्थिति मे वाणी प्रकाशन की एक क्षीण परपरा तो चली किन्तु प्रकाशित ग्रथ सामान्य रूप से बाजारो मे नही उपलब्ध हो सके इसी का परिणाम है कि प्राय सम्पूर्ण साहित्य साम्प्रदायिक केन्द्रो पर कपडे की सात-सात, आठ-आठ तहो मे बधा हुआ आज तक पडा रह गया।'[2]

इसमे सदेह नही कि सम्प्रदाय मे 'अणभैवाणी' का बडा सम्मान है और वह साधु एव गृहस्थ सभी के लिए पूज्य ग्रथ है। इसलिए जैसा कि डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी ने कहा है प्रकाशन का विरोध असभव नही किन्तु सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार को ध्यान मे रखकर पथ-प्रवर्तक की रचनाओ का प्रकाशन आवश्यक समझा गया। इसलिए 'अणभैवाणी' के प्रकाशन की अनुमति आचार्य निर्भयराम जी ने दी और बडे परिश्रमपूर्वक साधु श्री नैनूराम जी आदि ने इस महाग्रथ का मुद्रण कराकर वर्तमान रूप मे उपलब्ध किया। एक बात और भी—स्वामी रामचरण तथा अन्य आचार्यों की वाणी लोगो तक पहुँचे, इसके लिए राम सनेही साधु प्रयत्नशील रहते थे। वे चौमासे के अवसर पर अथवा अन्य अवकाश के समय मे 'वाणी' के अशो को गुटका-पोथी के रूप मे हाथ से लिखकर तैयार करते थे। अन्य साम्प्रदायिक ग्रथो—'गुरलीला विलास', 'फूलडोल समाद', 'श्री रामचरण महाराज की

---

१. 'अणभैवाणी' की प्रस्तावना, पृ० ३।

२ डॉक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी—रामसनेही सम्प्रदाय, प्रथम अध्याय, (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर)।

परची'—के सग्रह भी गुटका-पोथी के रूप मे मैंने स्वय देखे है। ऐसे गुटका-ग्रथ साधुओ से गृहस्थ-जन भी प्राप्त कर उनका पूजा-पाठ करते थे। अत 'वाणी' को लोगो तक पहुँचाने का भाव तो सम्प्रदाय के सतो मे भी था पर वे अधिकारी जन तक ही इसे पहुँचाना चाहते थे।

प्रकाशित 'अणभैवाणी' के प्रारभ एव अत मे स्वामी रामचरण की रचनाओ के अतिरिक्त अन्य सतो की रचनाएँ भी सगृहीत हैं। इस महाग्रथ के आरम्भिक ६३ पृष्ठो मे स्वामी रामचरण के दादागुरु स्वामी सन्तदास जी की 'अणभैवाणी' अगबद्ध रूप मे सम्बद्ध है। इसमे विभिन्न अगो का वर्णन साखी एव रेखता छन्दो मे हुआ है। अन्त मे दो ग्रथ—'ब्रह्मध्यान' और 'भ्रमतोड' के साथ राग-आसा और आरती भी है। इसी प्रकार पुस्तक के अन्त मे स्वामी रामजन रचित 'रामपद्धति', जगन्नाथ रचित 'ब्रह्मसमाधि-लीन जोग' और जनगोपाल रचित 'प्रह्लाद चरित' नामक छोटे-छोटे ग्रथ जोड दिये गये है। ग्यारह-सौ पृष्ठो के इस विशाल सग्रह मे ९२ पृष्ठो मे अन्य जनो की रचनाएँ है और एक हजार पृष्ठो मे स्वामी रामचरण की 'अणभैवाणी' एव उनके छोटे-बडे ग्रथ मुद्रित है।

एक ओर साधु नैनूराम जी आदि 'वाणी' के प्रकाशन मे व्यस्त थे, दूसरी ओर प्राचीन हस्तलिखित ग्रथो की खोज के सिलसिले मे स्वामी जी की कतिपय रचनाएँ हस्त-लिखित रूप मे प्राप्त हो चुकी थी। डॉक्टर पीताम्बरदत्त बडथ्वाल लिखित नागरी प्रचारिणी पत्रिका के चौदहवें खोज विवरण (सन् १९२९-३१) मे स्वामी जी रचित निम्नलिखित पुस्तको की हस्तलिखित प्रतियो के सक्षिप्त विवरण मिलते है —

१ जिज्ञासबोध	(निर्माण काल	१८४७ वि०)
२ विश्राम बोध	(,,	१८५१ वि०)
३ समता निवास	(,,	१८५२ वि०)
४ विश्वासबोध	(,,	१८४९ वि०)
५ अमृत उपदेश	(,,	१८४८ वि०)
६ रामचरण के शब्द	(,,	—)
७ अणभै विलास	(,,	१८४५ वि०)
८ रामरसायनि	(,,	—)
९ सुखविलास	(,,	१८४६ वि०)

उपर्युक्त हस्तलिखित ग्रथो के सबध मे डॉक्टर बडथ्वाल लिखते हैं कि 'इनमे से अब तक कोई भी ग्रथ खोज मे नही मिला था।'[1] किन्तु कैप्टेन वेसकाट सन् १८३५ ई० मे ही स्वामी रामचरण लिखित ३६२५० शब्दो का पता तो लगा ही चुके

---

१ डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल : प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रथो की खोज का चौदहवाँ त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९२९-३१ ई०), पृ० १३६।

थे।[1] उनमे से कुछ का अग्रेजी अनुवाद भी उन्होने किया था। इस सदर्भ मे उनका यह कथन ध्यान देने योग्य है—

"The Mahant readily engaged to furnish me with a complete collection of their sacred writings, but as there was but one copy in the temple, I succeeded in bringing away with me only a few selections of which I subjoin a translation"[2]

लेख के अन्त मे वेसमकट ने शाहपुरा के तत्कालीन महत नारायणदास जी से प्राप्त स्वामी रामचरण की कतिपय कविताओ का अनुवाद जिसे उन्होने कलकत्ता के बाबू काशी-प्रसाद घोष की सहायता से किया था ओर जो जर्नल के पृष्ठ ७८-८२ पर छपा है, दिया है।[3] *यहाँ यह स्मरणीय है कि वेसमकट द्वारा प्राप्त सदर्भित काव्य-सग्रह की हस्तलिपि स्वामी रामचरण के जीवन-काल की है*—

"These verses are dated Tuesday, the 6th day of Cait, in the Samvat year 1855 (A D 1978) the year of Ramcharan's decease"[4]

पर वेसमकट महोदय ने यह नही बतलाया कि हस्तलेख किसका है? वेसमकट की उक्त पक्तियो से यह भी स्पष्ट होता है कि स्वामी रामचरण के देहावसान के एक महीने पहले उन्हे *दिया गया सग्रह लिपिबद्ध किया गया था। निष्कर्ष यह कि डॉक्टर बडथ्वाल दूसरे* व्यक्ति है जिन्होने स्वामी रामचरण की ९ रचनाओ की जानकारी दी, पूर्व इसके वेसमकट शाहपुरा जाकर स्वामी रामचरण जी का विशाल साहित्य देख ही नही आए थे प्रत्युत् उनमे कुछ का अनूदित अश डॉ० बडथ्वाल की खोज-रिपोर्ट के प्रकाशन से लगभग १०० वर्ष पूर्व प्रकाशित करा चुके थे। उन्होने काव्य-सग्रह के हर पृष्ठ के ऊपर 'राम' लिखा हुआ देखा है। इस सदर्भ मे वे लिखते है—

"The head of the each page is inscribed with the holy name of Ram, used by the Society as an initial title of respect, corresponding with the Alif (Allah) of Musalmans, and Sri of Hindus and signifying that an another solicits the blessing of God on commencing a work and invokes success on the undertaking"[5]

---

1 Ramcharan composed 36,250 Sabd or hymns each containing from five to eleven verses Thirty-two letters go to each Slok, which give the above total

—Journal of the Asiatic Society Feb. 1835

२ वही।

३. देखिए, जर्नल ऑव् दी एशियाटिक सोसायटी, फरवरी १८३५, पृ० ७८-८२।

४. वही, पृ० ८२।

५. वही।

आधुनिक साक्ष्यो मे राजस्थानी विद्वान् पंडित मोतीलाल मेनारिया स्वामी रामचरण की वाणी के प्रकाशन की सूचना देते हुए लिखते है कि "इसमे ८००० के लगभग छन्द है"[१] पंडित परशुराम चतुर्वेदी भी प्रकाशित वाणी मे ३६२५० बानियाँ बतलाते है और संग्रह के सभी ग्रथो के नाम भी गिनाते है।[२] इस बिन्दु पर वे वेस्मकट से सहमत दीखते है। आधुनिक साम्प्रदायिक साक्ष्य-ग्रथ 'रामस्नेही धर्मदर्पण' के लेखक साधु मनोहरदास जी लिखते है कि "आपकी समाधि स्थिति मे जो जो ब्रह्मानुभूतियें हुई वही अनुष्टुप श्लोकाक्षर सख्या प्रमाण मे सवा छत्तीस हजार सरस 'अनुभव वाणी' के नाम से प्रसिद्ध है।"[३]

प्रकाशित 'वाणी' की प्रस्तावना मे साधु कार्यराम जी लिखते है कि इस प्रकार "इस ग्रथ की सख्या ३६३९६ है।"[४] 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखको—स्वामी केवलराम आदि ने भी प्रकाशित वाणी के प्रस्तावनाकार साधु कार्यराम जी से सहमति व्यक्त की है।[५]

अणभैवाणी हस्तलिखित प्रति

'अणभैवाणी' की हस्तलिखित प्रतियाँ रामस्नेही साधुओ द्वारा लिपिबद्ध की हुई विभिन्न रामद्वारो मे पायी जा सकती है। स्वामी रामचरण ने अपनी रचनाएँ स्वय लिपिबद्ध की हो, इस बात का कोई प्रमाण नही मिलता। उनके शिष्य शीलव्रती नवलराम जी एव स्वामी जी के उत्तराधिकारी स्वामी रामजन जी ने लिखा था पर उन लोगो के हस्तलेख भी अभी तक उपलब्ध नही। वाणी की सर्वाधिक प्राचीन प्रति शाहपुरा के रामनिवास धाम मे सुरक्षित है। यह 'स्वरूपाबाई की पुस्तक' के नाम से विख्यात है। कहते है कि स्वरूपाबाई ने इसे अपनी देखरेख मे लिपिबद्ध कराया था। इस ग्रथ का पाठ वर्ष मे एक दिन चैत बदी पचमी को होता है, फिर उसी प्रकार वस्त्र की तह मे लपेटकर सुरक्षित रख दिया जाता है। इन पक्तियो के लेखक को 'स्वरूपाबाई की पुस्तक' के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। सन् १९५३ के फूलडोल के अवसर पर मै शाहपुरा गया था। मुझे स्वामी जी रचित ग्रथो की प्राचीनतम प्रतियाँ देखने का चाव था। वर्त्तमान आचार्य पंडित रामकिशोर जी के प्रयास से पूज्य भण्डारी जी स्वर्गीय श्री नैनूराम जी ने मुझे पहले 'वाणी' की एक हस्तलिखित प्रति दिखलायी। यह कनवाडे की पुस्तक थी। किन्तु तब तक मै 'स्वरूपाबाई की पुस्तक' की चर्चा प्राचीनतम प्रति के रूप मे सुन चुका था। स्नेहमय परमदयालु भण्डारी जी से मैने निवेदन किया था। मुझे यह भी बतलाया गया था कि यह पुस्तक केवल पचमी को आचार्य के समक्ष खुलती है, फिर कभी खोली नही जाती। यह

---

१. पंडित मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, पृ० ८२।
२. प० परशुराम चतुर्वेदी—उत्तरी भारत की संत परपरा, पृ० ६१८-१९।
३. साधु मनोहरदास—रामस्नेही धर्मदर्पण, भूमिका, पृ० १।
४. स्वामी जी श्री रामचरणजी महाराज की अणभैवाणी, प्रस्तावना, पृ० २।
५. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ६१।

जानते हुए भी मैंने बडे विश्वास के साथ पूज्य भण्डारी जी से निवेदन कर ही दिया। मुझे स्मरण है कि मैंने उनसे कई बार आग्रह किया था किन्तु दयालु सत ने भी नकारा नही और अन्त मे एक दिन मेरे आग्रह ने दयालु सत नैनूराम जी के स्नेहमय हृदय को स्पर्श किया। उन्होंने आचार्य स्वर्गीय निर्भयराम जी से आदेश प्राप्त कर उस ग्रथ को निकाला और मुझे एक घण्टे तक अवलोकन का अवसर दिया। सुन्दर अक्षरो मे लिपिबद्ध 'वाणी' की प्राचीनतम प्रति इस प्रकार मुझे देखने को मिली। इसके लिए मै स्वर्गीय निर्भयराम जी, स्वर्गीय भण्डारी श्री नैनूराम जी एव वर्त्तमान आचार्य प० रामकिशोर जी का आभारी हूँ।

वैसे रामसनेही सम्प्रदाय के साधुओ मे वाणी-हस्तलेखन का चाव प्रारभ से ही है। यद्यपि मैने स्वामी रामचरण, नवलराम जी या रामजन जी की हस्तलिपि मे अभी तक कोई गुटका-पोथी या अन्य कोई ग्रथ नही देखा है पर अभी इसी ग्रीष्म के इन्दौर प्रवास मे मुझे स्वामी रामचरणजी के उत्तराधिकारी स्वामी रामजन जी की 'वाणी' की वह प्रति देखने को मिली जिसे रामजन जी के उत्तराधिकारी एव सम्प्रदाय के तीसरे आचार्य स्वामी दुल्हेराम जी ने स्वय लिपिबद्ध किया था। इस ग्रथ-रत्न के अत मे लिखित पक्तियाँ इस तथ्य का उद्घाटन करती है कि आचार्य दुल्हैराम जी ने रामजन जी की वाणी का सम्पादन एव लिपिकरण दोनो ही किया था—

"राम जन्न अवधूत की वाणी सष्या येह।
लघु भ्राता दुल्है कहै तुम पद रज सिर लेह॥
साहिपुरे सानन्द सुष। छत्र्या मधि निवास॥
सतगुरु कू सिर धारि कै। कीऐ अग्र प्रकास॥
मो बड भ्राता रामजन। जाकी वाणी सार॥
दुल्हैराम अंग बांधीया। हिरदै हेत विचार॥
मुलक जहा मेवाड़ मधि। साहिपुरो असुथान॥
दुल्हैराम दिलसुध सूं। वाणी अंग बषान॥
मो तागति तो ही नहीं। हिरदै भयो हुलास॥
कारण कारिज आप होइ। कीयो दास प्रकास॥
भूल चूक कोई ना गिनौ। लघु दीरघ जो आक॥
तात मात सुत हेत को। कब न देषै बाक॥
संवत अठारा से सही। चालीसै परमान॥
सावण सुदि पून्यौ सही। वारभौमि इम जान॥
अग सपूरण हम थऐ। कहे ज दुल्है राम॥
बांच बिचारे तासकू। राम राम ही राम॥

पुसतग संपूरण॥ संवत् १८४०॥ का सावण सुदि॥ १५॥ बार मगलवार॥ पुसतग लिष्या दुल्हैराम बांच विचारै ज्यासूं राम राम॥"

उपर्युक्त उद्धरण मैंने सदर्भित ग्रथ से यथावत् उतारा है। इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि रामजन अवधूत की वाणी छोटे भाई दुल्हेराम ने शाहपुरा की छतरी मे सानद विराजते हुए सतगुरु की कृपा से अगबद्ध कर प्रकाशित की। सम्पादक ने स्पष्ट लिखा है कि मेरे बड़े भाई रामजन जिनकी वाणी का सार यह है मैंने (दुल्हेराम ने) अंगबद्ध किया है। आगे सम्पादक एवं लिपिकार लिखता है कि सवत् १८४०, पूर्णिमा मगलवार को वाणी का लिपिकरण पूर्ण हुआ था और सबसे अत मे 'पुसतग लिप्या दुल्हेराम' लिखा हुआ है।

स्मरणीय है कि दुल्हेराम जी स्वामी रामचरण जी के प्रमुख शिष्यो मे से एक एव सम्प्रदाय के तीसरे आचार्य थे। वेसमकट के अनुसार उन्होंने दस हजार शब्द और चार हजार साखियाँ लिखी थी।[1] इन्ही दुल्हेराम जी ने स्वामी रामचरण के जीवनकाल मे (स० १८४० मे) स्वामी रामचरण के ज्येष्ठ शिष्य रामजन अवधूत की वाणी को अग-बद्ध किया। इस विवेचन से मै इस निष्कर्ष पर हूँ कि रामसनेही सम्प्रदाय मे स्वामी रामचरण के जीवनकाल मे स्वामी जी के अतिरिक्त उनके शिष्यो की वाणियो का भी सम्पादन एव लिपिकरण होने लगा था। अत यह निर्विवाद है कि स्वामी रामचरण की रचनाओ का सम्पादन एव लिपिकरण उनके शिष्यो द्वारा हुआ होगा। यह भिन्न बात है कि अभी स्वामी रामचरण जी की वाणी एव अन्य ग्रथो के लिपिकारो की हस्तलिपि मे कोई रचना नही प्राप्त हो सकी है। सभव है भविष्य मे लिपिकारो द्वारा लिपिबद्ध वाणी सग्रह एव अन्य ग्रंथ उपलब्ध हो सके। फिर भी जो हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध है, वे प्रामाणिक है। प्रकाशित वाणी को देखते हुए पाठ-सम्पादन की समस्या अवश्य है, आशा है भविष्य मे सम्प्रदाय के विद्वान् सतो, गृहस्थो एव आचार्य के प्रोत्साहन से यह कार्य सम्पन्न हो सकेगा। सुना है वर्त्तमान आचार्य पडित रामकिशोर जी इस दिशा मे पर्याप्त सक्रिय है। यह शुभ लक्षण है, इससे स्वामी रामचरण के सत-कवि व्यक्तित्व पर और प्रकाश पडने की सभावना है।

स्वामी रामचरण की कृतियाँ

'अणभैवाणी' नामक प्रकाशित महाग्रंथ मे स्वामी रामचरण की निम्नलिखित कृतियाँ सगृहीत है—

---

1 "The third hierarch, Dulha Ram, become a Ramsanchi in A D. 1776 and died in 1824, he wrote ten thousand Sabd and about four
A. D 1776 and died in 1824, he wrote ten thousand Sabd and about four
thousand Saki or epic poems in praise of men eminent for virtue not only of his own faith but among Hindus, Muhammedans and others"

—Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835.

१. अणभैवाणी
२ गुरु-महिमा
३. नाम-प्रताप
४ शब्दप्रकाश
५ अणभोविलास
६. सुखविलास
७ अमृत उपदेश
८ जिज्ञासबोध
९ विश्वासबोध
१० विश्रामबोध
११ ममतानिवास
१२ रामरसायनबाव
१३ चिन्तावणी
१४ मनखण्डन
१५ गुरुशिष्य गोष्ठि
१६ ढिग पारख्या
१७ जिद पारख्या
१८ पण्डित सवाद
१९ लच्छ-अलच्छ जोग
२० वेजुक्तितिरस्कार
२१ काफरबोध
२२. शब्द
२३ गावा का पद
२४. दृष्टान्तसागर

लिपिकार एवं सम्पादक : नवलराम, रामजन

उपर्युक्त रचनाएँ प्रकाशित 'वाणी' के १००० पृष्ठो मे मुद्रित है। इस विशाल काव्य-साहित्य के रचनाकार स्वामी रामचरण जी थे किन्तु उनकी हस्तलिपि मे इनमे से कोई भी कृति उपलब्ध नही है। कहते है कि समाधि अवस्था मे जो अनुभूतियाँ स्वामी जी को हुई उनका उच्चारण करते गए और उनके शिष्य शीलव्रती नवलराम एवं अवधूत रामजन जी ने लिपिबद्ध किया। इस सदर्भ मे 'वाणी' के प्रस्तावनाकार की निम्नलिखित पक्तियाँ द्रष्टव्य है—"राम भजन पारायण निर्विकल्प समाधिस्थ निखिल शास्त्र निष्णात श्री वीतराग महाप्रभु शाहपुरा मे विराजकर तथा पर्यटनकाल मे अपने स्वय अनुभव से और सच्छास्त्रो से जो महावाक्य उच्चारण किये उनको आपके शिष्य भीलवाडा ग्राम निवासी

माहेश्वरी वंशोद्भव नवलराम जी ने लिखकर संग्रह किया जिनकी संख्या अंगबद्ध ८००० श्लोक है। तदनन्तर २८३९७ ग्रंथसंख्या श्रीमान् वीतराग के शिष्य परमपवित्र अद्वैत नैष्ठिक श्री रामजन जी महाराज ने संग्रह किया। इस प्रकार इस ग्रंथ की संख्या ३६३९७ है।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण की रचनाओं को लिपिबद्ध करने का कार्य उनके शिष्यों नवलराम एवं रामजन द्वारा सम्पन्न किया गया था। ग्रंथस्थ लिपिकारों की उक्तियों से यह भी स्पष्ट होता है कि लिपिकरण के साथ सम्पादन का गुरुकार्य भी इन्हीं दोनों शिष्यों द्वारा हुआ था।

पिछले अध्याय में 'बारह थम्बे के साध' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी रामचरण के जिन १२ प्रमुख शिष्यों की चर्चा की गई है उनमें स्वामी जी के ग्रंथों के लिपिकार एवं सम्पादक नवलराम और रामजन प्रमुख स्थान रखते हैं। नवलराम जी की चर्चा दूसरे अध्याय में भी भीलवाड़ा स्थित तीन प्रमुख शिष्यों में हो चुकी है। ये स्वरूपाबाई के पिता थे। 'नवल-सागर' ग्रंथ इनकी प्रसिद्ध रचना है जो १९०१ ई० की खोज रिपोर्ट में वर्णित है।[2] नवलराम जी के विषय में जगन्नाथ ने अपने ग्रंथों 'गुरलीला विलास' और 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' में पर्याप्त चर्चा की है किन्तु उनकी जन्मतिथि, शीलग्रहण-तिथि और मृत्यु-तिथि आदि की कोई जानकारी नहीं दी है। स्मरणीय है कि 'बारह थम्बे के साधुओं' में ग्यारह तो साधु शिष्य थे एवं एक गृहस्थ शिष्य नवलराम जी ही थे। नवलराम एवं उनकी पुत्री स्वरूपा बाई की रामसनेही-सम्प्रदाय में बड़ी महिमा है।

नवलराम जी ने स्वामी रामचरण की अणभैवाणी को अंगबद्ध किया। वे उनकी अणभैवाणी एवं फुटकर काव्यों के लिपिकार एवं सम्पादक दोनों थे। संवत् १८२० वि० में स्वामी रामचरण ने भीलवाड़ा में 'वाणी' का उच्चारण किया था और नवलराम जी ने उसे लिपिबद्ध किया था, फिर संवत् १८२७ में फाल्गुन बदी द्वादशी, सोमवार को इसका अंगबद्ध सम्पादन शाहपुरा में पूर्ण हुआ। निम्नलिखित पंक्तियाँ उपर्युक्त कथन की पुष्टि करती हैं—

"मध्य मुलक मेवाड़ नगर भीलेड़ो होई।
रामचरण जी संत तहाँ परगट भये सोई।
जगत हेतु सूं मानि राम हिरदै मुख गायो।
कनककामिणी त्याग राग मन स्वाद न भायो।
अठारा सै अरु बीश वर्ष वाणी जु उचारी।
नवलराम सब झेलि मेल्हि पुस्तक विस्तारी।

---

१. साधु कार्यराम लिखित 'अणभैवाणी' की प्रस्तावना, पृ० २।

२. प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की खोज का चौदहवां त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९२९-३१ ई०)—डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका।

शब्द सुणै ताहि भासवै भुशि कण सार असार।
नकल करै कर जोडि कै बंदन बारंबार।
संवत अठारा सै सही सताईसे जोय।
फागुन बदी दुवादशी, वार सोम ही होय।
शाहिपुरा मधि शोधिकै, सब वाणी विस्तार।
नवलराम अंग बांधिया, जन पदरज सिरधार।
शाहिपुरा मधि शुभ समय, वाणी अग बनाय।
आनन्द घन उच्छव अधिक, नवल कहत जनाय।"[1]

इसी सदर्भ मे जगन्नाथ कृत 'ब्रह्मसमाधिलीन जोग' की निम्नलिखित पक्तियाँ नवलराम रचित उपर्युक्त की पुष्टि करती हैं—

"सवत् अठारा सै अरु बीसा।
वचन अमोलक निपट वरीसा।"[2]

रामजन जी को एक ओर हम अवधूत सत और स्वामी रामचरण के उत्तराधिकारी आचार्य के रूप मे जानते है तो दूसरी ओर वे स्वामी जी रचित विभिन्न ग्रथो के शोधनकर्ता एव लिपिकार भी थे। इनका जन्म सवत् १७९५ वि० मे सिरस्यो ग्राम मे माहेश्वरी वैश्य-कुल मे हुआ था। इन्होने सवत् १८२४ मे स्वामी रामचरण जी का शिष्यत्व ग्रहण किया। शीघ्र ही स्वामी जी के द्वादश प्रमुख शिष्यो मे इनका महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया और सवत् १८५५ मे स्वामी रामचरण के देहावसान के बाद आचार्य-पद पर आसीन हो गये। इनका देहान्त सवत् १८६७, आसाढ बदी ११ बुधवार को हुआ था।[3] वेस्मकट के अनुसार उन्होने १८००० शब्दो की रचना की थी।[4]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्वामी रामजन जी, नवलराम जी के बाद स्वामी रामचरण के शिष्य हुए। सवत् १८२४ मे इन्होने दीक्षा ली और सवत् १८२० मे नवलराम भीलवाडे मे स्वामी रामचरण द्वारा उच्चरित 'वाणी' को सुनकर लिख रहे थे।

---

१ अणभैवाणी, पृ० १०१३।

२ अणभैवाणी (ब्रह्मसमाधिलीन जोग), पृ० १०७९।

३ श्री केवलराम जी वैद्य—श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ४४।

"He (Ramcharan) was succeeded in the spiritual dictatorship by Ramjan, one of his twelve chelas or disciples This person was born at the villege of Sirsin, embraced the new doctrine in 1768 and died at Shahpura in 1809, after a reign of 12 years, 2 months and 6 days."

—Journal of the Asiatic Society. Feb. 1835.

४ वही।

राम जन जी की दीक्षा के तीन वर्ष बाद स० १८२७ में 'वाणी' को उन्होंने अगबद्ध कर डाला था। रामजन जी अवधूत साधु थे। उन्होने स्वामी जी रचित विभिन्न ग्रथो का सम्पादन करके लिपिबद्ध किया था। प्रकाशित 'वाणी' मे संगुम्फित निम्नलिखित ग्रथों का लिपिकरण एव सम्पादन रामजन जी द्वारा हुआ था ——

१. अणभोविलास
२. सुख विलास
३. अमृत उपदेश
४. जिज्ञासबोध
५. विश्वासबोध
६ विश्रामबोध
७. समतानिवास
८. रामरसायन बोध
९. दृष्टान्तसागर

रचनाओं का वर्गीकरण

यो तो स्वामी रामचरण की रचनाएँ १ से २४ तक जिस क्रम मे हे, प्रकाशित है और उनका उल्लेख किया जा चुका है। पर अध्ययन मे सुविधा की दृष्टि से उन्हे निम्नलिखित वर्गों मे विभाजित कर लेना अनुपयुक्त नही है——

१. अगबद्ध वाणी
२. छोटे ग्रंथ
३. बडे ग्रंथ
४. फुटकर

१. अंगबद्ध वाणी

पीछे स्पष्ट किया जा चुका है कि वाणी को अंगबद्ध करने का कार्य स्वामी जी के प्रमुख शिष्य नवलराम जी ने शाहपुरा मे संवत् १८२७ वि० मे पूर्ण कर लिया था और वाणी की रचना संवत् १८२० वि० मे भीलवाडे मे हुई थी। मेरा अनुमान है कि संवत् १८२० वि० मे वाणी की रचना आरम्भ हुई थी और संवत् १८२७ मे जब स्वामी रामचरण जी शाहपुरा मे विधिवत् बस गए, नवलराम जी ने वाणी को छन्दानुसार अगबद्ध कर दिया। स्वामी रामचरण की वाणी 'अणभैवाणी' कहलायी और इसी नाम से स्वामी जी का सम्पूर्ण साहित्य अभिहित किया गया।

सम्पादन

विषयवस्तु

स्वामी रामचरण की 'वाणी' को नवलराम जी ने जिस प्रकार छन्दानुक्रम शैली

मे अंगबद्ध किया है, उससे 'वाणी' की विषयवस्तु का स्पष्टीकरण भी होता गया है। प्रारम्भ के पाँच कवित्त स्तुति के है, तत्पश्चात् विभिन्न छन्दो मे विषयानुक्रम से अग प्रस्तुत किए गए है।

१. **साखी**—साखी के अन्तर्गत विषयानुक्रम से ७४ अग है—१ गुरुदेव को अग, २ गुरु समर्थाई को अग, ३ सुमरण को अग, ४ शिवधर्मी को अग, ५. वीनती को अग, ६ विरह को अंग, ७ ज्ञानविरह को अग, ८ लै को अग, ९ प्रेमप्रकाश को अग, १०. पीवपिछाण को अंग, ११. प्रचा को अंग, १२ पतिव्रता को अग, १३ व्यभिचारिणी को अंग, १४ समर्थाई को अंग, १५. बीनती लिया समर्थाई को अग, १६ विश्वास को अंग, १७. विरक्त को अग, १८ निवृत्ति को अग, १९ साध को अग, २० असाध को अग, २१ साध-संगति को अंग, २२ कुसगति को अग, २३ अकल को अग, २४ बेअकल को अग, २५ विचार को अग, २६ बेविचार को अग, २७. नहचै को अग, २८ जीवन-मृतक को अंग, २९ सजीवण को अग, ३० सारग्राही को अग, ३१ अवगुणग्राही को अग, ३२ अज्ञानी को अग, ३३ रामविमुख को अंग, ३४ काल को अग, ३५ चितावणी को अग, ३६ उपदेश को अग, ३७ जिज्ञासी को अग, ३८ गुरुपारख को अग ३९ शिष्यपारख को अग, ४० गुरुशिष्यपारख को अंग, ४१ सन्मुख-बेमुख को अग, ४२ गुरुबेमुख को अंग, ४३ चितकपटी को अग, ४४ देखादेखी के अग, ४५ कायर को अग, ४६. शूरातण को अग, ४७ टेक को अग, ४८ हेतप्रीति को अग, ४९ किस्तूरियामृग को अंग, ५० मन को अग, ५१ मती को अंग, ५२ बेहद को अग, ५३ मध्य को अंग, ५४. निरपख को अंग, ५५ पंथ को अंग, ५६. रस को अंग, ५७ सुक्षम मार्ग को अंग, ५८ शुभकर्मी को अग, ५९ दया को अंग, ६० माया को अग, ६१ कामीनर को अग, ६२ जरणा को अग, ६३ रहत को अग, ६४ सहज को अग, ६५ बहुआरभी को अग, ६६. लोभी नर को अग, ६७ आशाबेली को अग, ६८ निद्रा को अग, ६९ भुरकी को अग, ७०. निन्दा को अग, ७१ साच को अग, ७२ भ्रमविध्वस को अग, ७३ भेषको अग, ७४. चाणक को अग।

२. **चन्द्रायणा**—चन्द्रायणा के अन्तर्गत निम्नलिखित २४ अग है—१ गुरुदेव को अग, २ सुमरण को अग, ३ नाम समर्थाई को अंग, ४ बीनती को अग, ५ विरह को अग, ६ प्रचा को अग, ७ साध महिमा को अग, ८. साध को अग, ९ साध संगति को अग, १० विरक्त को अग, ११ गुरुपारख को अग, १२ शिष्यपारख को अग, १३ गुरु हेरू को अग, १४. गुरुबेमुख को अग, १५ सन्मुख-बेमुख को अग, १६ मनमुखी को अग, १७ अज्ञानी को अग, १८ काल को अग, १९ चिन्तावणी को अग, २०. शूरातण को अग, २१. विचार को अग, २२ तृष्णा को अग, २३ साच को अग, २४ भेख को अग।

३. सवैया—सवैया के अन्तर्गत निम्नलिखित २६ अग है—१ गुरुदेव को अग, २. सुमरण को अग, ३. नाम महिमा को अग, ४. परचा को अग, ५. विचार को अग, ६. साध को अग, ७ साध-सगति को अंग, ८. विरक्त को अग, ९ विश्वास को अग, १०. तृष्णा को अग, ११. लोभी नर को

अग, १२ अज्ञानी को अग, १३. काल को अग, १४ चिन्तावणी को अग, १५ सन्मुख-वेमुख को अंग, १६ गुरुबेमुख को अग, १६ अवगुणग्राही को अग, १८ चितकपटी को अग, १९ व्यभिचारिणी को अग, २० कायर को अग, २१ शूरातण को अग, २२ कामी नर को अग, २३ साच को अग, २४ मर्मविध्वस को अग, २५ भेरा को अग, २६ चाणक को अग।

४. झूलणा—झूलणा के सात अंग निम्नलिखित है—१ गुरुदेव को अग, २ सुमरण को अग, ३. विचार को अग, ४ साधुसगति को अग, ५ उपदेश को अग, ६. विरक्त को अग, ७ भेख को अग।

५. कवित—कवित के अन्तर्गत ४४ अग इस प्रकार है—१ गुरुदेव को अग, २ सुमरण को अग, ३ नाम समर्थाई को अग, ४ परचा को अग, ५ पतिव्रता को अग, ६. व्यभिचारिणी को अग, ७. बीनती को अग, ७ बेविश्वास को अग, ९ तृष्णा को अग, १० निरपख को अग, ११ निर्गुण उपासना को अग, १२ साध को अग, १३ असाध को अग, १४ साधसगति को अग, १५ कुसगति को अग, १६ साधपारख को अग, १७ साध महिमा को अग, १८. वाचिक ज्ञानी को अग, १९ लछज्ञानी को अग, २० अज्ञानी को अग, २१. ब्रह्मविवेक को अग, २२ काल को अग, २३ चितावणी को अग, २४. मन को अग, २५ मनमुसामनसूब को अग, २६ कायर को अग, २७ शूरातण को अग, २८ उपदेश को अग, २९ जिज्ञासी को अग, ३० शिखपारख को अग, ३१ शिष्यनिरणा को अग, ३२ टेक को अग, ३३ विचार को अग, ३४. निरणा को अग, ३५ हठयोग को अग, ३६ भक्ति महिमा को अग, ३७. माया को अग, ३८ कामी नर को अग, ३९ रहत को अंग, ४० जरणा को अग, ४१. साच को अग, ४२ मर्म विध्वस को अग, ४३ भेख को अग, ४४. चाणक को अग।

६. कुण्डल्या—इसके ४४ अग निम्नलिखित है—१ गुरुदेव को अंग, २. गुरु-परमार्थी को अग, ३. लोभी गुरु को अग, ४ सुमरण को अग, ५. बीनती को अग, ६ प्रचा को अग, ७. पतिव्रता को अग, ८ व्यभिचारिणी को अग, ९. कायर को अंग, १० शूरातण को अग, ११ सती को अग, १२ विश्वास को अग, १३ बेविश्वास को अग, १४. निरपख को अग, १५ विरक्त को अग, १६ निर्गुण उपासना को अग, १७ साध को अग, १८ साधपारख को अग, १९ साध-संगति को अंग, २० कुसगति को अग, २१ दया को अग, २२. लच्छ को अग, २३ उपदेश को अग, २४ जिज्ञासी को अग, २५ गुरुशिष्यपारख को अग, २६ शिष्यपारख को अग, २७ गुरु-बेमुख को अग, २८ रामविमुख को अग, २९ सन्मुख-बेमुख को अग, ३०. अज्ञानी को अग, ३१ विचार को अग, ३२ निरणा को अंग, ३३ लोभी नर को अग, ३४ काल को अग, ३५ चिन्तावणी को अग, ३६ मन को अग, ३७ हठजोग को अग, ३८ माया को अग, ३९ कामी नर को अग, ४० निन्दा को अग, ४१ साच को अग, ४२ भर्मविध्वस को अग, ४३. भेष को अग, ४४. चाणक को अग।

७. रेखता—इस छन्द के अन्तर्गत स्वामी रामचरण ने १५ अगो का समावेश किया है—१ गुरुदेव को अग, २ भेषधारणा को अग, ३ सुमरण को अग, ४. नामनिरणा को अग, ५. प्रमप्रकाश को अग, ६ प्रचा को अग, ७ विचार को अग, ८. शूरातण को अग, ९ सारग्रही को

अग, १० चितावणी को अग, ११ असाधु को अग, १२ कामी नर को अग, १३ माच को अग, १४ भेप को अग, १५ चाणक को अग।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सात छन्द शीर्षको मे 'अणभैवाणी' के विभिन्न अगो का वर्णन हुआ है। कतिपय अग सभी छदो मे वर्णित है और कतिपय कुछ ही मे। यहाँ सक्षेप मे अगो की विषय वस्तु का विवरण प्रस्तुत है।

१. गुरुदेव को अग——सभी सात छन्द शीर्षको मे इस अग का वर्णन हुआ है। साखी शीर्षक के प्रारम मे स्वामी जी अपने गुरु कृपाराम की महिमा-प्रताप का वर्णन करते हुए दातडे की प्रशसा करते है। यथा——

"संत विराजै दातडै, सरणाई प्रतिपाल।
रामचरण कै उर बसै, किरपाराम दयाल"।[1]

सत्गुरु की महिमा अपार है, उसके गुण कहाँ तक कहे जायँ? सतगुरु की कृपा से 'शब्द-सतोप' मिला और जन्म-जन्म के दोष दूर हो गए।[2] इसलिए स्वामी रामचरण सत्गुरु की शरण का सुझाव देते है क्योकि वही 'सिरजनहार' है, अत उसी की शरण जाने से काम होगा।[3] इसी प्रकार सवैया, झूलणा, कवित्त आदि शीर्षको मे गुरु की महिमा का गान स्वामी रामचरण ने किया है। इन सभी शीर्षको मे उन्होने अपने गुरु स्वामी कृपाराम जी की महिमा बडी तन्मयता से कही है। उन्हे अपने गुरु के उपकार बार-बार स्मरण हो आते है।[4] इन छन्द-शीर्षको मे ऐसे अनेक स्थल है जहाँ स्वामी रामचरण की भावधारा गुरु के चरणो को पखारती हुई 'गुरुदेव को अग' को सार्थकता प्रदान करती है।

२. गुरु समर्थाई को अंग——केवल साखी शीर्षक के अन्तर्गत ११ छन्दो मे इस अग का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। सम्पादक ने इसे 'गुरुदेव को अग' शीर्षक के अन्तर्गत उपशीर्षक देकर रख दिया है। गुरु-महिमा का बखान निम्न पक्तियो मे ध्यान देने योग्य है——

---

१. अणभैवाणी, साखी, छन्द ७, पृ० ३।
२ वही, साखी, छन्द ५९, पृ० ५।
३ वही, चन्द्रायणा, छन्द १, २, पृ० ७५।
४ "सतगुरु किरपाराम जी सदा बसै उर माहि।
मो सिर ऊँधा कर धर्‌या सो सूधा वाड्या नाहि।
सो सूधा वाड्या नाहि दीन पर दया विचारी।
अरप्या धन सतोप आपदा हरी हमारी।
रामचरण दाता मिल्या दालिदर है सुकाहि।
सतगुरु किरपाराम जी सदा बसै उर माहि।"
——अणभैवाणी, कुण्डल्या, छ० ४, पृ० १३७

"सतगुरु समर्थ बहोबली, ले काढ़ै गह बांह।
सांसा सबै निवारि कै, राखै चरणकमल की छांह।"[1]

३. **सुमरण को अग**—सत साहित्य मे नाम-स्मरण का बडा महत्त्व है। 'सुमरण अग' के अन्तर्गत स्वामी जी का सदेश है—

"रामचरण का शीश पर एक निरंजण राम।
रात दिवस रटबो करै, नहीं आन सू काम।"[2]

नामस्मरण से चचल मन थिर होता है और वह सहस्रार से क्षरित अमृतरस का पान करता है।[3] नामस्मरण से ही मुक्ति मिलती है।[4] इसी प्रकार चन्द्रायणा, सवैया, झूलणा, कवित, कुडल्या और रेखता शीर्षको मे 'सुमरण को अग' के अन्तर्गत नाम-स्मरण की महत्ता प्रतिपादित करते हुए स्वामी रामचरण ने तेज स्वर मे जनमानस को इन शब्दो से स्पर्श किया—

"राम का नाम कूं जप्प रे बावरे।
राम का नाम बिना मुक्ति नाही।"[5]

४. **बीनती को अंग**—चार छन्द शीर्षको—साखी, चन्द्रायणा, कवित्त और कुण्डल्या के अन्तर्गत 'बीनती को अग' सगुफित है। इस अंश मे कवि के आत्म-निवेदन की सीमा ही 'बीनती को अग' है। कवि अपनी दीन-हीन पतितावस्था को लेकर अपने उपास्य राम के समक्ष उपस्थित होता है। वह अवगुण की खान है तथा उसका उपास्य अनेक गुणो की खान है, अत सभी अवगुणो से मुक्त करने का निवेदन है।[6] कवित्त शीर्षक मे वह कलियुग के उत्पात, परिणामतः शिष्य द्वारा गुरुधर्म का त्याग और पुत्र द्वारा पिता की अवहेलना, भक्तो की बिगडी राह पर परिताप करता है। ऐसी दशा से राम ही निर्धन के धन, निर्बल के बल और राम ही धर्म है।[7] अत. अन्त मे वह अपनी 'अरदास' निम्नलिखित पक्तियो मे प्रस्तुत करता है—

---

१. अणभैवाणी, साखी छं० ६९, पृ० ५।
२ वही, साखी, सुमरण को अग, छं० १, पृ० ६।
३. वही, छ० २६, पृ० ६।
४ वही, छ० ११३, पृ० ९।
५ वही, रेखता, छ० १, पृ० १९०।
६. "पतित निवाजण राम जी मैं जाण्या उर माहि।
रामचरण पतिता पतित, पाछा फेर्‌या नाहि।
रामचरण अवगुण भर्‌या, तुम बहो गुण की खान।
अवगुण सबही बगसियो, राम तुमारो जान।"
—अणभैवाणी, साखी बीनती को अंग, पृ० १०
७. अणभैवाणी, कवित बीनती को अग, पृ० १०८।

"सुणो एक अरदास हमारी राम निरजन देव।
रामचरण कूं दीजिये चरण कमल की सेव।
चरणकमल की सेव रिधि सिधि नहि मागं।
मुक्ति माहि मन काढि सुरति तुमही सू लागं।
भक्ति बिना कैसे लहै अलख तुम्हारा भेव।
सुणो एक अरदास हमारी राम निरंजन देव।"[1]

५. विरह को अग—साखी और चन्द्रायणा शीर्षको मे स्वामी रामचरण का विरह विकसित हुआ है। विरहावस्था मे सतो का हृदय रामरूपी प्रियतम के लिए आतुर रहता है। यथा—'रामचरण रामै जपै, तुम बिन तलफै जीव।' कवि का उसके प्रिय से बिछोह का कारण माया का पर्दा है, अत वह चाहता है कि माया का पर्दा हटे और प्रियतम का दीदार हो—

"रामनिरंजण निकट रहै, माया पटदै दूर।
बिरहिनि का पडदा मिटै, तो दरसै पीव हजूर।"[2]

६ ज्ञान विरह को अग—साखी शीर्षक से १० छदो का यह अग विरह से अलग करके कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया है। विरह की अग्नि से ही विषय-विकार जल जाता है और तब प्रियतम राम से मिलन होता है। विरह की महिमा का विवेचन कवि निम्नलिखित पक्तियो मे करता है—

"रामचरण ई विरह की, महिमा कही न जाय।
भरम करम सब दग्ध करि, दिया पीव पिछणाय।"[3]

७ लैं को अग—साखी शीर्षक के अन्तर्गत ८ छदो मे 'लैं' का स्पष्टीकरण कवि ने किया है। 'लय' पहले जिह्वा से आरभ होती है, फिर हृदय मे समा जाती है। कवि ने इसे 'अजपा जाप' की स्थिति बतलाया है।[4]

८. प्रेम प्रकास को अग—साखी और रेखता शीर्षको मे स्वामी रामचरण ने 'प्रेम प्रकास को अग' लिखा है। इस अग मे कवि आध्यात्मिक प्रेम के प्रकाश से प्रकाशित हृदय का विभिन्न रूपो मे वर्णन करता है। प्रेम की लहरे सागर की तरगो सदृश जब उठने लगे

---

१ अणभैवाणी, कुण्डल्या, बीनती को अग, छ० ७, पृ० १४१।
२ अणभैवाणी, साखी बिरह को अग, छ० १८, पृ० ११
३ अणभैवाणी, साखी, ज्ञान विरह को अग, छ० ९, पृ० ११
४ हिरदै लै लागी रहे, सोही अजप्पा जाप।
रामचरण तब ना रहै, पुण्य पाप की ताप।
—वही, साखी लै को अग, छ० २, पृ० १२

तब इसे प्रेम का उपकार समझना चाहिए। कवि के अनुसार प्रेम का प्रकाश तब समझना चाहिए जब मन का रग ऐसा पलट जाय कि काम, क्रोधादि से वह मुक्त हो जाय। गुण से निर्गुण हो जाना ही प्रेम-प्रकाश का लक्षण है। तब लोक-रीति, वेद-रीति आदि से मनुष्य परे हो जाता है। प्रेम का प्रकाश प्रियतम को मिलाता है। वियोगी भक्त निहाल हो जाता है और उसके दुःख दूर हो जाते है।[1] रेखता शीर्षक मे स्वामी रामचरण प्रेमप्रकाश का विवेचन निम्नलिखित पक्तियो मे करते है—

"राम का नाम सै प्रेम परकाशिया भर्म का तिमिर सब दूर भागा।
सुरति नहचल भई शब्द सै मिल गई करत किल्लोल सुख अधिक जागा।
दिल्ल दरम्यान इक प्रेम का खास है मन्नवा मगन होइ धसत आधा।
राम ही चरण अब सत किरपा भई ब्रह्म अत्तोल नग हाथ लागा।"[2]

९. **पीव पिछांण को अंग**—साखी के अन्तर्गत ४ छदो का यह अग प्रियतम की पहचान हो जाने पर मन स्थिति का रूपचित्र प्रस्तुत करता है।

१०. **परचा को अंग**—साखी, चन्द्रायणा, सवैया, कवित, कुण्डल्या और रेखता शीर्षको के अन्तर्गत 'परचा को अग' लिखा गया है। 'भजन प्रताप की चार चौकियो' से इस अग का प्रारभ कवि ने किया है।[3] किस प्रकार जिह्वा से शब्द सरक कर कण्ठ से होते हुए हृदय मे पहुँचता है फिर उसका तीसरा निवास 'नाभि' है, नाभि से उठकर 'गगन' पर पहुँचता है। इस प्रकार चारो चौकियों का स्पर्श करके साधक 'सहज समाधि' मे समा जाता है।[4] और तब—

"बिन रसना गुण गाइये, बिन कर बाजै तूर।
बिन श्रवणा अनहद सुणै, जहाँ ब्रह्म सभा भरपूर।

---

१ अणभैवाणी, साखी, प्रेमप्रकास को अग, छ० ८, ९, १०, पृ० १२।
२. अणभैवाणी, रेखता, प्रेमप्रकाश को अग, छ० ३, पृ० १९२।
३. चोकी भजन प्रताप की सत कहृ गये च्यार।
रामचरण या सत्य है दूजा भरम असार।
——अणभैवाणी, साखी, परचा को अंग, छ० १, पृ०
४. राम राम रसना रट्या रामचरण इक धाय।
रसना सू सरक्या शब्द कण्ठ होय हृदय ध्याय।
कंठ होय हिरदे ध्याय, तृतीये नाभि निवासा।
नाभि कमल सू उलट गगन जाय किया विलासा।
चौकी च्यारू पर्शि के सहज समाधि समाय।
राम राम रसना रट्या रामचरण इक धाय।
——अणभैवाणी, कुण्डल्या परचा को अंग, छ० १, पृ० १४

जहाँ ब्रह्म सभा भरपूर और कोई निजर न आवै।
सुरति रही मठ छाय देह तहाँ जाण न पावै।
रामचरण वा देस मे बहु परकाशे सूर।
बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजे तूर।"[1]

उस गगन मण्डल मे घना सुख होता है। माया का प्रपच वहाँ नही, मृत्यु नही। सुख-समुद्र मे लीन होकर ब्रह्म के साथ सोने मे कोई विघ्न नही।[2] कवि इस शीर्षक मे अन्त मे कहता है कि सुनी-सुनायी बात सभी कहते हैं पर उससे भ्रम नही मिटता, मैं 'अगम देश की बात' देखी हुई कहता हूँ। उसी 'अगम देश' मे सभी सन्तो का आगमन होता है और ब्रह्म से मिलन होने के बाद फिर बिछुडन नही होती। इस प्रकार 'अचल देश' मे आसन जमा लेने के बाद 'काल की घात' से मुक्ति मिल जाती है।[3]

११. पतिव्रता को अग—साखी, कवित और कुण्डल्या शीर्षको के अन्तर्गत लिखित पतिव्रता को अग' मे कवि लिखता है कि पतिव्रता पतिव्रत की टेक समझ कर धारण करती है और फिर अनेक व्यभिचारिणियो के सम्पर्क मे आकर भी उसे नही छोडती।[4] सभी सतो के स्वामी एक 'राम' है और सभी सत उनकी सहेलियाँ। इनमे जो पतिव्रत का पालन करती है उसे सुख मिलता है।[5] जैसे पत्नी अपने प्रिय को पहचान कर पतिव्रत धारण करती है, नाना धर्मो की उपासना हृदय से दूर कर देती है, वैसे ही ससार मे रह कर भक्त को एक 'राम' शब्द के अलावा और कुछ भी नही रुचता। कमल जल मे रहता है पर उसे सूरज की किरण ही सुहाती है, वैसे ही भक्त ससार मे रमण करता है किन्तु अपनी सच्ची टेक नही छोडता।[6] व्यभिचारिणी से पतिव्रता का अन्तर स्पष्ट करते हुए कवि पतिव्रता की प्रशसा मे निम्नलिखित पक्तियाँ लिखता है—

"पति की आज्ञा पग धरे सो पतिबरता जांण।
रामचरण बिभचारणी पिव सू खैंचा ताण।

---

१ अणभैवाणी, कुण्डल्या, परचा को अग, छ० २, पृ० १४१।
२. वही, छ० ४, पृ० १४२।
३. वही, छं० ८, पृ० १४२।
४ पतिबरता पतिव्रत की, समझ गही है टेक।
रामचरण छाडै नही, जो विभिचारणि मिलै अनेक।
—अणभैवाणी, साखी, पतिव्रता को अग, छ० १, पृ० १५
५ साई एको राम है, सबै सहेली सत।
रामचरण सुख सो लहै, जो पालै पतिबरत।
—वही, छ० २१, पृ० १५
६. वही, कवित, पतिव्रता को अग, छं० १, पृ० १०७।

पिव सूं खैंचा ताण शब्द कोई एक न मानै।
पति मुरजादा लोप शक हिरदै नहि आनै।
कूड़ कपट मन में रहे करै कन्त सू बांण।
पति की आज्ञा पग धरै सो पतिबरता जांण।"[१]

'पतिव्रता को अग' मे स्वामी रामचरण सामान्य लोक से ऊपर उठकर अध्यात्म-लोक मे पहुँच गए है। पतिव्रता का आदर्श सत जीवन में देखना कवि का अभीष्ट है। इसीलिए कवि के ही शब्दो मे 'पत्तीव्रत की टेक भक्त की भक्ति सम्हावै।'[२]

१२. *व्यभिचारिणी को अग*—साखी, सवैया, कवित और कुण्डल्या शीर्षको के माध्यम से स्वामी रामचरण ने 'व्यभिचारिणी को अग' प्रस्तुत किया है। व्यभिचारिणी पतिव्रता की अवहेलना करती है। वह चार दिन की जवानी मे जार का सम्मान करती है और जब वृद्धा हो जाती है तो पति को हैरान करती है।[३] व्यभिचारिणी एक प्रतीक है जिसके माध्यम से स्वामी जी राम-विमुखो को कालामुह वाला घोषित करते है—

"आन उपासे राम बिन, जाका काला मुख।
रामचरण पति परिहर्‌या, स्वप्ने नाही सुख।"[४]

कुण्डल्या तक आते-आते कवि अध्यात्म लोक की बाते करने लगता है। वह 'सुरति' को व्यभिचारिणी प्रतीक के माध्यम से समझाने का प्रयास करता है। कुण्डल्या का निम्न-लिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

"सुरति टिके नहिं शाशरै दौडी पीहर जाय।
धींगा सूं धूकल करै पति नहिं आवै दाय।
पति नहि आवै दाय कुहावै जाकी नारी।
बिना प्यार मनमोद अंत सम होसी ख्वारी।
रामचरण बिभचारिणी जब तक खोटा खाय।
सुरति टिके नहि शाशरै दौड़ी पीहर जाय।"[५]

१३. समर्थाई को अंग—साखी, चन्द्रायणा और कवित इन तीन छन्द शीर्षकों मे स्वामी रामचरण ने प्रियतम 'राम' की सामर्थ्य का वर्णन किया है। उनका साईं समर्थ है।

---

१. अ० वा०, कुण्डल्या, पतिव्रता को अग, छं० २, पृ० १४२।
२ वही, छ० १०, पृ० १४३ ।
३ वही, साखी व्यभिचारिणी को अग, छं० १, १३; पृ० १६।
४. वही, साखी व्यभिचारिणी को अग, छ० १९, पृ० १६।
५ वही, कुण्डल्या व्यभिचारिणी को अग, छ० ५, पृ० १४४।

उसके माध्यम से सब सरल है। रक, राजा और राजा, रक हो सकता है।[1] उसके नाम की बडी महिमा है, अपार सामर्थ्य है। वह एकमात्र सामर्थ्यवान है। अन्य देव याचक है, इसलिए कवि, याचको की सेवा छोडकर सामर्थ्यवान् के भजन की राय देता है।[2]

१४. **विश्वास को अंग**—स्वामी रामचरण की घोषणा है कि 'रामचरण विश्वास विन दुख पावे ससार।'[3] साखी, सवैया, कवित, कुण्डल्या शीर्षको मे कवि ने 'राम' के नामस्मरण मे अटूट विश्वास व्यक्त किया है।

> **"रामचरण भज राम कू, धर हिरदै विश्वास।**
> **रामभजन परताप सूं, अनेक उधर्या दास।"**[4]

विश्वास भाग्यवाद की आधारशिला है। स्वामी रामचरण भी विश्वास के सहारे भाग्यवादी हो गए है। दुख-सुख, सम्पत्ति-विपत्ति सभी कुछ का भोग तकदीर कराती है, इसलिए राम पर विश्वास करना चाहिए क्योंकि वह सर्वव्यापी है।[5] अविश्वासियो के विषय मे स्वामी रामचरण की धारणा बहुत स्पष्ट रही है। उनके अनुसार जिन्हे 'राम' मे विश्वास नही, वे नामोच्चारण करते है अवश्य पर खोजते कुछ और ही है। जब मन मे विश्वास नही होता, फल मिलना तो दूर, कमाई भी व्यर्थ जाती है।[6]

१५. **विरक्त को अग**—स्वामी रामचरण ने विरक्त के लिए दरवेस, फक्कर, वैरागी आदि शब्दो का भी प्रयोग किया है। साखी, झूलणा, सवैया, चन्द्रायणा और कुण्डल्या प्रकरणो मे विरक्त की विस्तृत समीक्षा स्वामी जी ने की है। विरक्त की व्याख्या मे उनकी निम्नलिखित पक्तियाँ महत्त्वपूर्ण है—

> **"विरक्त जाका नाम है, एक राम की आस।**
> **रामचरण तजि द्वैत कूं, करै ब्रह्म में बास।**

---

१. समर्थ मेरा साईया, जासू सब आसान।
रंकक रथ पै राजई, राय रक सामान।
—अ० वा०, साखी, समर्थाई को अंग, छ० १, पृ० १६

२ समर्थ एको राम है, जाचक सबही देव।
रामचरण समरथ भजो, तजि जाचक की सेव।
—वही, साखी, समर्थाई को अग, छ० ३, पृ० १६

३ वही, साखी, विश्वास को अग, छ० १, पृ० १७।

४ वही, छ० ९, पृ० १७।

५. दुख सुख सम्पत्ति आपदा परालब्ध भुगताहिं।
राम भरोसा राखिए राम सकल कै माहिं।
—वही, कुण्डल्या, विश्वास को अग, छ० १, पृ० १४६

६. वही कुण्डल्या, विश्वास को अग, छ० १ पृ० १४७।

विरक्त वाकू जाणिये, जा सूं माया दूर।
आसपासि अटकै नही, वे छै संत हजूर।"[1]

स्वामी जी के अनुसार जिसने संसार के प्रति मोह-त्यागकर दिया वह वैरागी,[2] जो किसी से राग न रखे वह दरवेश[3] और जो वासना रहित है वह फक्कर[4] है। विरक्त के लक्षण की चर्चा के संदर्भ मे 'चन्द्रायणा' की ये पंक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य है—

"कर में कमडल धार गला में मेखला।
जग सूं फिरै उदास रमै नित एकला।
रामनाम उर धार भार सब डारिया।
परिहां रामचरण की तरफ राम निहारिया।"[5]

विरक्त के लिए आवश्यक है कि वाक् सयमी हो, संसार के प्रति, उसके कार्य-व्यापारो के प्रति उदासीनता, राम नाम और संतो से प्रेमभाव उसके हृदय मे हो।[6]

१६. *निवृत्ति को अंग*—साखी के आठ छन्दो मे निवृत्ति का विवेचन एव प्रवृत्ति से उसकी भिन्नता का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। प्रारंभ मे ही राम रटन और निवृत्ति के ग्रहण की बात वे करते है, साथ ही यह भी कि प्रवृत्ति का प्रसार बन्धन है, अत उसके प्रति उदासीन हो जाना चाहिए।[7] निवृत्ति साधु का नेत्र है। उसके बिना संसार अंधा है और प्रवृत्ति के सभी साधन दुःख के रूप हैं, वह मृगतृष्णा के नीर सदृश हैं, सुरति-शब्द का मेल निवृत्ति से ही संभव है। यथा—

"सब परवरति दुःख रूप है, ज्यूं मृगतृष्णा नीर।
मेला सुरति शब्द का, ये रामचरण सुखसीर।"[8]

१७. *साध को अंग*—साखी, चन्द्रायणा, सवैया और कवित शीर्षको को मिलाकर उपर्युक्त अंग बनता है। इस अंग मे स्वामी रामचरण ने साधु के लक्षण गिनाए है और असाधु से उनकी भिन्नता भी स्पष्ट की है। साखी की निम्नलिखित पंक्तियो मे साधु के लक्षणो का स्पष्ट विवरण स्वामी जी ने प्रस्तुत किया है—

---

१. अ० वा० साखी, विरक्त को अंग, छं० ३२, ३४; पृ० १९।
२. वही, विरक्त को अंग, छं० १; पृ० १९।
३. वही, विरक्त को अंग, छं० २, पृ० १९।
४. वही, विरक्त को अंग, छं० ८, पृ० १९।
५. वही, चन्द्रायणा, विरक्त को अंग, छं० २; पृ० ७९।
६. वही, कुण्डल्या, विरक्त को अंग, छं० २, ३; पृ० १४८।
७ वही, साखी, निवृत्ति को अंग, छं० १; पृ० १९।
८. वही, छं० ८, पृ० १९।

"राम धर्म सूं सदा रजू, गुरु सेवा अधिकार।
रामचरण वै साध कही जै, करै बहोत उपगार।
ज्ञानी सो गोविंद भजै, हिसारहित उपाधि।
रामचरण इद्रया जती, सो कहिए निज साध।
बूझ्या सूं चरचा करै, छांड्या वाद-विवाद।
पक्षपात सू नी बंधे, सो कहिए निज साध।
मीठी वाणी उर दया, बकसै शब्द अगाध।
रामचरण सो जाणिये, पर उपगारी साध।
साधू सोही जाणिये, करै न काहू संग।
रामचरण इक राम बिन, लगै न दूजो रंग।"[1]

इसी प्रकार अन्य शीर्षको मे भी साधु-लक्षण स्वामी जी ने लिखे है। 'चद्रायणा' मे उन्होने बतलाया है कि साधु और ससार का सग क्यो नही हो सकता? साधु राम-भजन मे रत रहता है और विषय-स्वाद तथा अन्य ससार के इष्ट है, अत यदि कोई भक्त जगत् का साथ पकडता है, वह भ्रष्ट हो जाता है।[2]

१८. साध सगति को अंग—सत-साहित्य मे साधु सगति की बडी महिमा गायी गई है। स्वामी रामचरण कहते है कि सत्सगति सरलतम साधन है। इसे अवश्य करना चाहिए। सत्सग पद की प्राप्ति से दोनो दुख मिट जाते है। ज्ञान मे गरीब हो किन्तु नित्य नामस्मरण करे, उसके हृदय मे क्रोध का सचार नही होता।[3] इसीलिए साधु सगति करनी चाहिए। साखी, चन्द्रायणा, झूलणा, कुण्डल्या आदि सभी शीर्षको मे साधु-सगति की महत्ता स्वामी रामचरण ने प्रतिपादित की है। साखी मे स्वामी जी साधु सगति की महिमा बखानते हुए साधु सगति के लिए उपदेश देते है—

"सगति कीजै साध की, मन की दुबध्या खोय।
रामचरण इक पलक मे, लोहा कचन होय।"[4]

---

१ अ० वा०, साखी, साधु को अग, छ० ७, ८, ९, १०, ११, पृ० २०।

२ जगत भक्त के सग कहौ क्यू होय रे।
साध भजे इक राम दुबद्ध्या खोय रे।
विष-स्वाद अरु आन जगत का इष्ट रे।
परिहा रामचरण जो सग करे होइ भिष्ट रे।
—वही, चन्द्रायणा, साध को अग, छ ०१०, पृ० ७८

३ वही, चन्द्रायणा, साध सगति को अग, छ० १, पृ० ७८।

४ वही, साखी, साध सगति को अंग, छ० २, पृ० २१।

१९. **असाध को अंग**—साखी, कवित और रेखता शीर्षकों मे इस अग का वर्णन स्वामी जी ने किया है। असाधु मुख से वैराग्य की चर्चा करते है और मन मायारत रहता है। स्वामी जी ने सचेत किया है कि सत्य के बिना परमात्मा नही रीझता[1] असाधु जीव के लक्षण की निम्न-पक्तियाँ द्रष्टव्य है—

"काम क्रोध मद लोभ बुधि, राग दोष अभिमान।
हिंसा झूठ कठोरता, ए जीव लच्छ परमान।"[2]

२०. **कुसंगति को अंग**—साखी, कवित, और कुण्डल्या के माध्यम से 'कुसगति को अग' का विवरण स्वामी रामचरण ने प्रस्तुत किया है। कुसग का ही परिणाम है कि 'जीव ब्रह्म का अश है, देही सग दुख पाय।'[3] फिर भी जानबूझ कर जीव कुसगति मे पडते है और मोह के कारण भक्ति मे भग पडता है।[4] कुसगति सर्प है, उसका विष दूर नही होता। यथा—

"भवंग टिपारे सेइये तोहि मिटै नहीं निज वांण।
पय पावै शत वर्ष लूं विष की होय न हाण।
विष की होय न हाण दुष्टमति ऐसी जाणौ।
फिरफिर तजै न धूल सहु सबर कोई छाणौ।
रामचरण सग दोष है नहचै कुशल न जाण।
भवंग टिपारै सेइये तोहि मिटै नही निज वाण।"[5]

२१. **अकल को अग, बेअकल को अग**—उपर्युक्त दोनो अग साखी के अन्तर्गत है। अकल के अग मे स्वामी रामचरण कहते है कि राम की कृपा और सतगुरु की दया से भक्ति का रग चढता है, फिर भी यदि अपनी अकल हो तो व्यक्ति ससार का सग छोड दे। कर्म-भ्रमादि छोड़कर केवल राम का विश्वास करना चाहिए, इसी अकल से यम का भय दूर हो सकता है।[6]

---

१. अ० वा०, साखी, असाध को अग, छ० १२, पृ० २१।
२. वही, छ० १८, पृ० २१।
३. वही, साखी, कुसगति को अग, छ० १, पृ० २३।
४. वही, छं० ६, वही, पृ० २३।
५ वही, कुण्डल्या, कुसगति को अग, छ० १, पृ० १५३।
६ रामम्या सतगुर दया, तब लगे भक्तिरग।
कछू आपणी अकल होय, तो तज जगत को सग।
कर्म भर्म सब छाडि कै, गहै राम विश्वास।
रामचरण या अकल सू, छूटे जम की त्रास।
—वही, साखी, अकल को अग, छ० ३, ४, पृ० २४।

किन्तु ससार मे अकल का प्रवेश ही नही है। बे-अकल होने के कारण ही जन राम-स्मरण छाडकर कर्म-कष्ट भुगतते है।[1]

२२. विचार को अग, बेविचार को अग—विचार को अग का सृजन स्वामी रामचरण ने सभी सात छन्द शीर्षको मे किया है, बेविचार को अग केवल साखी मे ही वर्णित है। विचार क्या है? उसका उत्तर स्वामी जी की निम्नलिखित पक्तियाँ है—

"राम भजे माया तजै, जीतै विषै विकार।
रामचरण जग पूठ दै, यो ही बडो विचार।"[2]

रेखता मे लिखित 'विचार को अग' का एकमात्र रेखता छन्द विचार का एक लोक अपने साथ लाया है। विचार के लिए जीवन के हर व्यापार मे बारीकी की खोज कवि को है।

"भक्ति बारीक अरु भेद बारीक है समझ बारीक सै स्याल सोहै।
चाल बारीक अरु ख्याल बारीक है, होय बारीक बेहद्द जावै।
महल बारीक मे गोख बारीक है गोख की जोख ले सुरति छावै।
राम ही चरण ये इश्क बारीक है होय आशिक महबूब पावै।"[3]

'बेविचार को अग' मे अविचारी की लाचारी का वर्णन करते हुए स्वामी जी ने बेविचारी की तुलना बदर से की है जो स्वार्थ के कारण परवश होकर घर-घर नाचता फिरता है। ये मनुष्य विचारहीन मर्कट के सदृश है जो केवल रति-सुख के लिए ससार भर का दु ख भोगते है।[4] बिना विचार के मनुष्य-पशु मे कोई अन्तर नही। विचारहीनता के ही कारण ससार भ्रमित है और परमेश्वर जैसे स्वामी को छोडकर दूसरे पुरुष का अधिकार स्वीकारता है।[5]

२३. नहचै को अग—'नहचै' शब्द निश्चय का अर्थवाची है। साखी के अन्तर्गत लिखित इस अग मे कवि रामभजन के निश्चय की बात करता है। माया के रूप से विमुख हो कर नामस्मरण से आतमा का शुद्ध स्वरूप प्राप्त होता है।[6] स्वामी रामचरण इस अग के माध्यम

---

१. रामचरण ससार मै, नही अकल परवेस।
राम भजन कू छाडिकै, करि है कर्म कलेस।
—अ० वा०, बेअकल को अग, छ० १।

२ वही, साखी, विचार को अग , छ० १, पृ० २५।

३ वही, रेखता, विचार को अग, छ० १, पृ० १९३।

४ रामचरण ये मानवी मर्कट बिना विचार।
रति इक सुख कै कारणै, दुख भुगतै ससार।
—वही, साखी, बेविचार को अग, छ० ३, पृ० २६।

५. वही, छ० ११, पृ० २६।

६ अ० वा०, साखी, नहचै को अग, छ० १, पृ० २७।

से पर्व-त्यौहार, अन्य देवी-देवताओ को नकार एक राम-नाम के निश्चय का उपदेश देते है।[1]

२४ जीवतमृतग को अंग—इस अग मे स्वामी रामचरण ने बतलाया है कि मानव शरीर पाकर भी यदि मनुष्य राम को नही पहचान पाता तो वे सभी मानव मृतक के समान है।

२५. सजीवण को अंग—सजीवन सतगुरु की कृपा से प्राप्त होता है जिसे पाकर शिष्य साधना करता है ओर शरीर-गुण भूल जाता है। शरीर-गुण पर विजय पाकर राम-भजन मे रत होना ही सजीवन है, जो शरीर-गुण को महत्व देकर राम को छाड देते है, वे मृतक तुल्य है।[2]

२६. सारग्रही को अंग—साखी, रेखता, इन दो शीर्षको मे 'सारग्रही को अग' स्वामी रामचरण द्वारा लिया गया है। सार शब्द केवल 'राम' है, इसके अतिरिक्त अन्य सब तत्त्वहीन, भ्रमपूर्ण है। जो सारग्रही है वह 'शब्द' शोधन करता है, उससे तत्त्व निकालकर उसका अर्थ-ग्रहण कर लेता है ओर सभी अनर्थों का त्याग कर देता है।

२७. अवगुणग्राही को अग—इस अग के लिए स्वामी रामचरण ने सवैया ओर साखी दो शीर्षक चुने है। अवगुणग्राही आत्मा की पहचान निम्नलिखित छन्द मे द्रष्टव्य है—

"अवगुणग्राही आतमा, गुण मे समझै नांहि।
अपणै राजस कारणै, कहै कसर गुरु मांहि।"[3]

२८. अज्ञानी को अग—पाच शीर्षको—साखी, चन्द्रायणा, सवैया, कवित्त और कुण्डल्या के अन्तर्गत इस अग का उल्लेख मिलता है। स्वामी जी कहते है कि ससार अधा है, वह दुःख को ही सुख समझता है।[4] अज्ञानी की परिभाषा चन्द्रायणा की निम्नलिखित पक्तियो मे स्पष्ट है—

बहे अविद्या धार लिया शिरभार रे।
मोह भंवर मे पड़े न पावे पार रे।[5]

---

१ रामनाम की नहचै कीन्ही, नहिं मानै वार तिंवार।
आनदेव की सक न आणै, समझरु कियो विचार।
—अ० वा०, साखी, छ० ३३, पृ० २८।

२ गुण जीतै राम भजै सोहि सजीवण जानि।
गुण पोखै रामै तजै सो सब मृतक समान।
—वही, साखी सजीवण को अंग, छ० १,२, पृ० २८, २९।

३. वही, साखी, अवगुणग्राही को अंग, पृ० ३०।

४. रामचरण जग अंध है दुख को समझै सुक्ख।'
—वही, साखी, अज्ञानी को अग, छ० ६, पृ० ३०।

५. वही, चन्द्रायणा, अज्ञानी को अंग, छं० ६, पृ० ८१।

२९. रामविमुख को अंग—साखी और कुण्डल्या दो छद शीर्षकों मे 'राम-बिमुख को अग' वर्णित है। स्वामी रामचरण रामविमुख का बहिष्कार तेज स्वर मे करते है। वे उसकी बात सुनने को भी तैयार नही, क्योकि वह भ्रम की धूल झोक कर बाह्य और आभ्यन्तर दोनो चक्षुओ को फोड डालता है।[1] आगे हरिविमुख के चार चाहको की भी चर्चा निम्नलिखित पक्तियो मे करते है—

"रामचरण हरिविमुख के, च्यार चहन भा संत।
अहं, कुबुधि अरु कपटता, जन देख्या दाझत।"[2]

३०. काल को अग—साखी, चन्द्रायणा, सवैया, कवित, कुण्डल्या इन पाँच शीर्षको मे काल को अग का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। इस अग मे काल की गतिविधियो का वडा मार्मिक वर्णन हुआ है। काल से परे कोई नही। केवल 'शब्द' ही अकाल है जिसे पाकर कवि निर्भय रहता है। द्रष्टव्य पक्तियाँ निम्नलिखित है—

"काल तणा भय मिट गया, छूटा भर्म जजाल।
रामचरण निरभै भया, पाया शब्द अकाल।"[3]

इसीलिए काल सतो के पास नही फटकता, बोझिल शिर वालो की ही कमर पकडता है। रामभजन के प्रताप से सतो पर काल का घात नही चलता, वैसे जिसने शरीर धारण किया है उसका विनाश अवश्यम्भावी है—जैसे पेड का पत्ता।[4] साराश यह कि इस प्रचण्ड काल से कोई नही बच पाता, केवल राम के दास ही उससे छुटकारा पा सके है। और जो राम की आड नही लेते उन्हे काल का घात सहना ही पडेगा।[5] स्वामी रामचरण जी ने काल को महाबली, महा-

---

१ रामविमुख का रामचरण सुणिये नाही वैण।
भस्मी डारै भर्म की फोडै च्यारू नैण।
—अ० वा०, साखी, रामबिमुख को अग, छ० १, पृ० ३१।

२ वही, साखी, राम विमुख को अग, छ० २, पृ० ३२।

३ वही, साखी, काल को अग, छ० २, पृ० ३२।

४ रामचरण सता तणै, काल न लागै लार।
डाणी पकडै तासकू, जाका शिर पर भार।
रामभजन परतापसू, काल न घालै घात।
धरी देह सो विणससी, ज्यों तरुवर पाको पात।
—वही, साखी, काल को अग, छ० २५, २७, पृ० ३३।

५ काल महा परचण्ड न छोडै कोय रे।
राजा राणा देव सकल बस होय रे।
उबरै दास निराश राम की ओट रे।
परिहा रामचरण तजि ओट खाय सब चोट रे।
—वही, चन्द्रायणा, काल को अग, छ० १, पृ० ८२।

बलवन्त आदि विशेषणो से विभूषित किया है। यथा—'काल महाबलवत है, चलै न किस का जोर।'[1]

३१. चितावणी को अग—साखी, चन्द्रायणा, सवैया, कवित और कुण्डल्या, इन छह शीर्षको के अन्तर्गत 'चितावणी को अग' का विवेचन स्वामी रामचरण ने किया है। 'चितावणी' शीर्षक ही यह स्पष्ट करता है कि इस अग के माध्यम से स्वामी रामचरण अपने शिष्यो एव जनसामान्य को सजगकर रामभजन की राय देते है। रामभक्ति की ओर उन्मुख करने की दृष्टि से उनका निम्नलिखित उद्बोधन ध्यान देने योग्य है—

"अवसर बीता जाय, चेत सके तो चेत रे।
मति रीता रह जाय, भक्ति करो भगवान की।
जनम अमोलक पाय, सूता तुजकू क्यूं बणै।
बेग राम की ध्याय, राम दयाल कृपा करै।"[2]

चेतावनी तो वह बार-बार देता है पर वह अनुभव करता है कि इतने पर भी मनुष्य सजग नही होता। 'चन्द्रायणा' की ये पंक्तियाँ इस सदर्भ की साक्षी है—

"नर चेते नही अचेत कि गाफिल ह्वै रह्या।
भजै नही भगवान जगत गाढा गह्या।
सुत दारा धन धाम किया सब आपणा।
परिहां रामचरण सब छाड चल्या ज्यू पाहुणा।"[3]

अचेत मानव भगवान से विमुख होकर सासारिकता मे डूबा रहता है। पर एक दिन सभी कुछ छोड पाहुने के समान बिदा हो जाता है। ससार मे कुछ भी स्थिर नही, यह चराचर विश्व चलायमान है। सरिता, शैल, समुद्र, धरती, सूरज, चाँद सभी अस्थिर है।[4] अत मे सासारिकता मे डूबे मानव को 'अधे' शब्द से सबोधित करते हुए भजन के लिए सजग करता है—

"धन जुवती सुत देखि भूलि क्यू सोवै अंधा।
देखत जाय बिलाय काल सब रोप्या फंदा।

---

१ अ० वा०, साखी, कुण्डल्या को अग, पृ० १७०।
२ वही, साखी, चितावणी को अग, छ० २, पृ० ८२।
३ वही, चन्द्रायणा, चितावणी को अग, छ० २, पृ० ८२।
४ थिर नहिं सिलता शैल सिन्धु अवनी थिर नाही।
थिर नहिं सूरज चद इद ब्रह्मा न रहाही।
—वही, कवित, चितावणी को अग, छ० १२ पृ० ११९।

"तीन लोक फिर देखिए तेरा सगा न कोय।
रामचरण साची कहे भजन किया सुख होय।"[1]

३२. उपदेश को अग—साखी, झूलणा, कवित और कुण्डल्या शीर्षकों मे स्वामी रामचरण ने 'उपदेश को अग' लिखा है। इस अग मे स्वामी जी ने माया की चचलता, देह की क्षणभगुरता, ब्रह्म की थिरता आदि की चर्चा करते हुए ब्रह्मज्ञानोपदेश की बात कही है। मनुष्य शरीर बडी कठिनाई से मिलता है और उसमे भी सत्सग तो भाग्य से मिलता है, अत इस सुअवसर को छोडकर जीवन नष्ट करना उचित नही।[2] मदिर, मढी, वन और गिरि-गुफा आदि मे व्यर्थ समय न गँवाकर राम का पुनीत स्मरण करना ही मनुष्य-शरीर धारण करने का लाभ है। 'झूलणा मे कवि तीर्थ-स्थलो, मदिर-मस्जिदो, वेद-कुरान आदि मर्मो को भ्रममूलक कहकर गुरु द्वारा उपदेश को ही महत्त्वमय कहता है। यथा—

"भरपूर अकल्ल सकल्ल है रे गुरपीर बिना नहिं पावता है।
हिन्दु होय हैरान तीरत्थ फिर मीया मान मकै चलि जावता है।
कोइ देवल बास मसीत मही कोइ वेद कतेब में गावता है।
कह रामचरण्ण भरम्म परें सब भावना माँहि भुलावता है।"[3]

गुरु के उपदेश से ही कल्याण सभव है। योग्य गुरु शिष्य को उपदेश रूपी हाथ से पकडकर ससार-सागर मे डूबने से बचा लेता है। एक उदाहरण जिसकी पक्तियाँ नीचे उद्धृत हैं—

"नगर बलख का मीर कू मिलिया गोरखनाथ।
भवसागर मे बूडता गहकर काढ्या हाथ।
गहकर काढ्या हाथ जोग कै मारग लाया।
हिरदा का पट खोल नाम का भेव बताया।
रामचरण पूरा परश भरी अगह की बाथ।
नगर बलख का मीर कू, मिलिया गोरखनाथ।"[4]

---

१ अ० वा०, कवित चितावणी को अग, छं० १३, पृ० ११९।
२ मानव तन दुर्लभ मिल्यो, अरु भाग मिल्यो सत्सग।
समझ पाय सतगुरु कहै, अब जनम न कीजै भग।
कहा मंदिर मढ़िया कहा, कहा वन गिरि गुफा।
रामचरण भज राम कू, ये नर तन तणा नफा।
—वही, साखी, उपदेश को अग, छ० २८, ३०, पृ० ३७।
३ वही, झूलणा, उपदेश को अग, छ० २, पृ० १०३।
४. वही, कुण्डल्या, उपदेश को अग, छ० २०, पृ० १५६।

३३ जिज्ञासी को अग—साखी, कवित और कुण्डल्या छन्द शीर्षको मे 'जिज्ञासी को अग' वर्णित है। जिज्ञासी कौन का उत्तर निम्नलिखित पक्तियाँ है—

"सोही जिग्यासी जाणीसे, जाग अमीरस खाय।
रामचरण जाग्या पिछे, कबहूं सोय न जाय।"[1]

जिज्ञासी ज्ञान प्राप्त कर लेने पर फिर मोह मे नही लिपटता, वह ईश्वर के मार्ग पर चलने लगता है। रामसनेही जिज्ञासी 'रमताराम' का सदैव स्मरण करते है, अन्य का स्मरण नही करते और ससार के लिए अजेय रहते है।[2] इसलिए—

एक भरोसो राम को, त्यागो आन उपाय।
रामचरण जग सू तरक, रामसनेही वास।"[3]

कवित शीर्षक मे रामसनेही जिज्ञासी के लक्षणो का वर्णन बहुत स्पष्ट हुआ है। कवि के शब्दो पर ध्यान देना समीचीन होगा—

"इष्ट राम रमतीत आन कूं पूठ दई है।
पग नंगे गुरुवर्त, दया की मूंठ गही है।
विषय त्याग विषवचन हांसि खिलवत नहि जाणै।
हाणि वृद्धि की बार भरोसो हरि को आणै।
जूवा चोरी परलुब्धि झंठ कपटा नहि राखै।
भांग तमाखू अमल अखज मद पान न चाखै।
पानी बरतै छाणि कै निरख पांव धरणी धरै।
वै रामसनेही जाणिये सो कारज अपणो करै।"[4]

'कुण्डल्या' मे जिज्ञासी का एक और पक्ष स्वामी जी की दृष्टि मे आया है। वह सदैव राम का स्मरण करने वाला होना चाहिए, सत्सग मे अत्यन्त विनम्र लजवती लता सदृश होना चाहिए, उसे स्थिर मति वाला होना भी चाहिए।[5]

---

१ अ० वा०, साखी, जिज्ञासी को अग, छ० ६, पृ० २७।
२. वही, छ० १०, पृ० २७।
३. वही, साखी, जिज्ञासी को अंग, छं० ११, पृ० २७।
४ वही, कवित, जिज्ञासी को अग, छ० १, पृ० १२२।
५ राम कहै सकुच्या रहै, सत्सगति कै माहि।
लता लजालू ज्यू डरै, तनमन फैलै नाहि।
तनमन फैलै नांहि धीरमति सो ही जिज्ञासी।
—वही, कुण्डल्या, जिज्ञासी को अग, छ० १, पृ० १५७।

३४. गुरु पारख को अंग, शिख पारख को अंग, गुरु शिख पारख को अग—ये तीनो अग क्रमश 'गुरुपारख को अग' दो अर्थात् साखी, चन्द्रायणा शीर्षका मे, 'शिखपारख को अग' चार शीर्षको साखी, चन्द्रायणा, कवित और कुण्डल्या मे और 'गुरुशिख पारख को अग' साखी और कुण्डल्या मे वर्णित हैं। स्वामी जी के अनुसार गुरु दीर्घचित्त—शिष्य का रामनाम की प्रेरणा देने वाला, उदारचित्त—जिसकी शरण मे इस ससार के प्रति माह नही रह जाये, आनन्दचित्त–जिसके स्पर्शमात्र से दुख द्वन्द्व से मुक्ति मिल जावे, जो पर्वत जैसा अतोल और सागर जैसा अथाह, चन्द्रमा सदृश शीतल और पृथ्वी सदृश धैर्यशील हो।[1] विना परखे गुरु नही करना चाहिए। यदि गुरु ससारी है तो शिष्य को भी उसी मे खो देगा। गुणातीत, इन्द्रियजित्, निरतर राम का नाम रटनेवाला गुरु शिष्य के सब कार्य सिद्ध करने वाला होता है। यदि एक तराजू पर गुरु और राम के गुण को रखा जाय तो राम को बताने के कारण गुरु विशेष हो जायगा।[2] 'शिख पारख को अग' मे शिष्य का लक्षण इस प्रकार वर्णित है—

"शिख शरणागति होय कै धारै मन परतीति।
रामचरण निशिदिन रटै तो जम द सकै न भीति।
रामभजन का भेद समझ सतगुरु सू पावै।
शिख बड भागी होय भेद सुण मन ठहरावै।
अंतर क्षुधा जगाय नाम का करै अहारा।
भजन भाव भरपूरि आन रस लागै खारा।
पाच तत्वगुण तीन कं जीति अमीरस खाय।
रामचरण शिख शूर वा जो शब्दमयी होय जाय।"[3]

---

१. सतगुरु ऐसा कीजिए, जाका दीरघ चित्त।
रामचरण दे शिष्य कू, रामनाम निज तत्त।
सतगुरु ऐसा कीजिए, जाका चित्त उदार।
रामचरण वाकी शरण, छूटे यो ससार।
सतगुरु ऐसा कीजिए, जाके उर आनन्द।
रामचरण ताहि परस्ता, छूट जाय दुख द्वन्द।
गिरिवर जिसा अतोल है, सागर जिसा अथाह।
शशि समान शीतल सदा, धीरज ज्यू वसुधाह।
—अ० वा०, साखी, गुरुपारख को अग, छ० १-४, पृ० ३८।

२. रामचरण पारख बिना, गुरु किया क्या होय।
गुरु बध्या ससार सू, तो शिख कुण देवै खोय।
रामचरण गुरु राम गुण, घालि तराजू देख।
राम बतावै रामजन, तातै गुरु विशेख।
—वही, छ० १३, १५, पृ० ३८।

३. वही, कवित, शिखपारख को अग, छ० ३, पृ० १२२-२३।

'गुरु शिख पारख को अंग' मे स्वामी रामचरण ने साखी, कुण्डल्या शीर्षकों के अन्तर्गत गुरु-शिष्य की तुलनात्मक समीक्षा की है। गुरु-शिष्य के एक भाव का वर्णन उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियों मे किया है—

"रामचरण भृंगी भलो, गुरुशिख एकै भाय।
कीट भृंग करि लेत है, अपणो मंत्र पढ़ाय।"[1]

गुरु-शिष्य की अनुकूलता-प्रतिकूलता भी इस अंग का वर्ण्य-विषय है। इस दोहे मे उपर्युक्त भाव भलीभाँति स्पष्ट हुआ है—

"गुरु पुरा शिख सूर था, जाका सीझे काज।
गुरु लोभी शिख लालची, तो उलटा होय अकाज।"[2]

स्वामी रामचरण की दृष्टि मे गुरु-शिष्य का आदर्श रूप निम्नलिखित पंक्तियों मे है—

"रामचरण सतगुरु सोही, शिष्य उतारै पार।
शिख अज्ञा लोपै नही, तो बहै न भव की धार।
सतगुरु देखै ब्रह्म सम, आप होय रह दास।
रामचरण वा शिष्य को, सतगुरु पद मे बास।"[3]

इसी संदर्भ मे कवि दत्तात्रेय-जदु, कृष्ण-उद्धव, शुकदेव-परीक्षित, गोरख-भरथरी, रामानन्द-कबीर, दादू-रज्जब सदृश आदर्श गुरु-शिष्यों की चर्चा करते हुए ऐसे गुरु-शिष्यों की प्रशंसा करता है।

३५. सन्मुख-बेमुख को अंग—साखी, चन्द्रायणा, सवैया और कुण्डल्या शीर्षकों मे उपर्युक्त अंग का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। सन्मुख आस्तिक भक्त, नाम-स्मरण मे लीन रहने वाला और बेमुख केवल मुख मे राम का नाम और मन मे माया का ध्यान रखने वाला है। वह सुख मे भगवान को नही याद करता और दुख मे उन्हे गाली देता है।[4]

---

१ अ० वा०, साखी, गुरुशिख पारख को अंग, छ० ३, पृ० ३९।

२. वही, छ० ७, पृ० ३९।

३. वही, छ० १५, १६, पृ० ३९।

४. मुख सू तो सतगुरु कहै, ले चरणामृत सीत।
कर जोड़े डंडवत करै, साधैं धर्म अतीत।
रामनाम मुख सू कहै, उर माया का ध्यान।
रामचरण ऐसी भक्ति, क्यू रीझै भगवान।
सुख मे साहिब ना भजै, दुख मे देवै गार।
रामचरण वा अन्ध कै, दिन दिन दूणी मार।
—वही, साखी, सन्मुख-बेमुख को अंग, छ० १, १८, २४, पृ० ४१।

३६. गुरुबेमुख को अग—साखी, चन्द्रायणा, सवैया और कुण्डल्या शीर्षको के अन्तर्गत 'गुरुबेमुख को अग' का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। 'कुण्डल्या' शीर्षक मे गुरु-बेमुख का वर्णन स्वामी जी इस प्रकार करते है—

"मन माने सो ही करै गुरु आज्ञा भय नाहि।
रामचरण वै प्राणिया बूडि जाय भव माहि।
बूडि जाय भव माहि करै शत्रु का भाया।
गुरु मित्र महाराज तास का शब्द लुपाया।
जन्म जन्म दुख भोगवै चौरासी मे जाहि।
मनमाने सो ही करै गुरु आज्ञा भय नाहि।"[1]

३७. चितकपटी को अग—इस अग मे स्वामी जी ने कपटी की पहचान बतलायी है। कपटी बाहर से अत्यन्त दीन किन्तु उसका अन्तर मोटा होता है, वह मुख का मधुर होता है किन्तु उसका हृदय खोटा होता है।[2] साखी मे विभिन्न उपमानो से कपटी की तुलना कर के स्वामी जी 'सवैया' शीर्षक मे निम्नलिखित सदेश देते है—

"अन्तर शुद्ध नहीं जिनको दिल जासकी संग करो मति जाई।
बाहिर हेत दिखावत चौगुणो माहि तकै जैसे मूस बिलाई।
दाव पडयां मिल जाय सपूंछोही तासकी संगति नांहि भलाई।
रामचरण्ण हिये अति कालम्यां कपट की गांठ रही उरझाई।"[3]

३८. कायर को अंग—साखी, सवैया, कवित और कुण्डल्या शीर्षको मे 'कायर को अग' कवि ने लिखा है। कायर मूर्ख होता है, वह अपने हृदयगत विचारो पर विजय नही पा सकता, नाम-स्मरण छोड कर यत्र-तत्र भरमता फिरता है। यही उसका ढग है।[4] इसलिए स्वामी जी ने भजन का रहस्य कायर को देने के लिए मना किया है। यथा—

---

१ अ० वा०, कुण्डल्या, गुरुबेमुख को अग, छ० २, पृ० १६०।

२. बाहर तो बहुदीनता मन माही मोटा।
रामचरण मुख मीठडा, अंतर का खोटा।
—वही, साखी, चितकपटी को अग, छ० ३, पृ० ४२।

३. वही, सवैया, चितकपटी को अग, छ० १, पृ० ९३।

४. रामचरण मन का मता कायर सकै न जीत।
भजन छाडि भरमत फिरै, ए कायर की रीत।
—वही, साखी, कायर को अग, छ० १, पृ० ४४।

"राम भजन का भेव भूल कायर नहि दीजै।
जो कायर करै विवाद समझ के चुप्प रहीजे।"[1]

फिर यदि कायर त्याग या विराग की बात करता है तो उसे रेत का चबूतरा या रेड का बाग समझना चाहिए।[2] इस सदर्भ मे स्वामी जी की निम्नलिखित कुण्डलिया भी ध्यान देने योग्य है—

"ज्यू त्रीया को रूसणो त्यूं कायर को त्याग।
तन विरक्त अरु रक्त मन लिष्ट-पिष्ट वैराग।
लिष्ट पिष्ट वैराग सुरति को साशो खावै।
नहीं भजन सू भाव याद पिछला दिन आवै।
रामचरण दोन्यू गई प्रगट्यो परम अभाग।
ज्यूं त्रीया को रूसणों त्यू कायर को त्याग।"[3]

३९. शूरातण को अंग—साखी, चन्द्रायणा, सवैया, कवित, कुण्डल्या और रेखता, इन छह छन्द शीर्षको मे यह अग विभाजित किया गया है। स्वामी रामचरण की दृष्टि मे शूर वह है जो बलवान मन को जीत सके। ऐसे शूर का दर्शन राम-कृपा से ही सभव है। 'कुण्डल्या' शीर्षक का यह छद इस कथन के अनुरूप ही है—

"राम कृपा सू पाइये शूरा का दीदार।
रामचरण जाकी सगति कायर होय हुसियार।
कायर होय हुंसियार शूर की छाया बरतै।
पकड उठै समशेर कछू सरते अण सरतै।
कायर कूं रणखेत मै शूर लघावै पार।
रामकृपा सू पाइये शूरा का दीदार।"[4]

४० टेक को अंग—साखी और कवित शीर्षको मे रचित 'टेक को अग' मे स्वामी जी ने पशु-पक्षियो की टेक की ओर सकेत कर मानव को दृढनिश्चयी बनने की प्रेरणा दी है। सिंह भूखा रहता है पर तृण का आहार नही करता, हस मोती के बिना चोंच नही खोलता

---

१. अ० वा०, कवित, कायर को अग, छ० १, पृ० १२०।
२ कहा रेत को चूतरो, कहा इरड को बाग।
दिना च्यार मै खाराफूसी, ज्यू कायर को बैराग।
—वही, छं० १०, पृ० ४४।
३. वही, कुण्डल्या, कायर को अग, छं० १४, पृ० १४५।
४. वही, शूरातण, कुण्डल्या को अग, छं० ३, पृ० १४६।

चकोर पावक का आहार करता है और चातक भूमि-जल नही पीता।[1] पशु-पक्षी तो अपने निश्चय पर दृढ रह कर टेक की मर्यादा निभाते है पर स्वार्थी मनुष्य भिन्न मतो वाला होता है। मानवो मे भी प्रह्लाद और कबीर ने टेक का निर्वाह किया। स्वामी रामचरण टेक की मर्यादा-निर्वाह के लिए राम का अवलब ग्रहण करने की बात कहते है। उन्हे विश्वास है कि राम सहारे के लिए खडे है। यदि सच्चे प्रेम से राम को पुकारा जाय तो राम अवश्य ही टेक की मर्यादा रखेगे।[2]

४१. **मन को अग**—साखी, कवित और कुण्डल्या शीर्षको मे 'मन को अग' का वर्णन मिलता है। 'साखी' मे स्वामी रामचरण ने मन को मसखरा कहा है। यह मन अपने वश मे नही रहता, यह राम मे नही लगता ओर विकारो मे विचरता है।[3] स्वामी जी की दृष्टि मे मन के रूप अनन्त है। इसी आशय से पूर्ण यह साखी प्रस्तुत है—

> "मन का रूप अनत है, तु मति बहकै वीर।
> सबही हूर्षा छाडिकै, होय शब्द मे थीर।"[4]

स्वामी रामचरण मन पर विश्वास न करने की बात भी करते है,[5] क्योकि मन भोदू और सागर की तरगो के सदृश भरमता है ओर माया के रग मे रगकर रामनाम से विमुख हो जाता है।[6]

४२. **सती को अंग**—साखी और कुण्डल्या छन्दो के माध्यम से 'सती को अग' स्वामी जी ने लिखा है। स्वामी जी सती-प्रथा के विरोध मे थे। उनकी निम्नलिखित कुण्डलियाँ मेरे कथन की पुष्टि मे सहायक है—

> "मिनष जनम कू पाय के जीवत जालै देह।
> रामचरण विषिया लगन मुर्दा सेती नेह।

---

१ अ० वा०, साखी, टेक को अग, छ० १, २, ३, ४, ५, पृ० ४६।

२ अतर साची प्रीति सू, जे कोइ लेवै नाम।
तो रामचरण साची कहै, टेक निभावै राम॥
—वही, साखी, टेक को अग, छ० २२, पृ० ४६।

३ रामचरण मन मस्करा, कदेन आवै हाथ।
रामनाम लागै नही, रमै बिकारा साथ।
—वही, साखी, मन को अग, छ० १, पृ० ४८।

४. वही, छ० ५, पृ० ४८।

५. वही, छ० १५, पृ० ४८।

६. वही, कुण्डल्या, मन को अग, छ० १, पृ० १७३।

मुर्दा सेती नेह धरै नहि हरिपद मन कूं।
मिथ्या मांही मेल खाख करि डारै तनकूं।
आशवास गुण रामसग जल्या अभयपद लेह।
मिनख जनम कूं पाय कै जीवत जालै देह।"[1]

४३. **निरपख को अग**—साखी, कवित और कुण्डल्या शीर्षकों मे 'निरपख को अग' वर्णित है। स्वामी जी कहते हैं कि पक्षपात से निर्बन्ध होकर सत्य की पहचान कीजिए, पक्ष मे खीचतान है अत. सुख के लिए निष्पक्ष होना आवश्यक है। सतो के मत से राम शब्द 'निर्पक्ख' है, यही मत सत्य है।[2]

४४. **दया को अग**—साखी और कुण्डल्या मे रचित इस अग मे स्वामी जी सम्पूर्ण प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखने का उपदेश देते हैं। जिसके हृदय मे दया, सतोष है उस व्यक्ति का मानव-जीवन सफल है।[3] इस अग के माध्यम से स्वामी रामचरण अहिंसा की ओर भी उन्मुख करते है। अहिंसावृत्ति दया के मूल मे है। फल-फूल मे भी जीवो का वास रहता है किन्तु मनुष्य जिह्वा-स्वाद के वश हो कर पशुवत् उसे खाता है, दया की उसे सुधि ही नही रहती। इसी प्रकार जल को बिना छाने-पीने से असख्य जीवो को मनुष्य पी लेता है।[4] जीवमात्र पर दया के लिए आवश्यक है कि अहिंसाव्रत का पालन करे।

४५. **माया को अग**—साखी, कवित और कुण्डल्या शीर्षकों मे माया का वर्णन स्वामी रामचरण ने विस्तारपूर्वक किया है। स्वामी जी ने माया को पापणी, भक्ति की बैरिन, काली नागिन और कीचड आदि नामो से अभिहित किया है। दृष्टि की सीमा मे जो कुछ आ रहा है सभी माया का रूप है, जो मिला उसी को इसने निगल लिया फिर वह चाहे नरेश हो या

---

१. अ० वा०, कुण्डल्या, सती को अंग, छ० १, पृ० १४६।

२. पक्खपात सू मति बधे कीजै साच पिछाण।
निरपख होय सुख लीजिए पख मै खैंचाताण।
पख मै खैंचाताण इष्ट नाना ठहरावै।
राम शब्द निर्वाण साध निर्पक्ख बतावै।
रामचरण तजि झूठ कू सत्यमता कू जांण।
पक्खपात सू मति बधै कीजै साच पिछाण।
—वही, कुण्डल्या, निरपख को अग, छ० १४७, पृ० १४७।

३. हृदय दया संतोष धन, अरु राम भजन अधिकार।
रामचरण जाका सुफल, मनुष जन्म अवतार।
—वही, साखी, दया को अग, छं० २, पृ० ५३।

४. वही, कुण्डल्या, दया को अग, छं० १, २; पृ० १५४।

सुरेश।[1] माया से मुक्त होने का उपाय प्रभु का नाम स्मरण है किन्तु जीव माया से अलिप्त नही होना चाहता। खीझकर कवि जीव को ही दोष देने लगता है। यथा—

"माया विचारी क्या करै, बड़ा हरामी जीव।
जहां-तहा हेरत फिरै, यावि करै नहि पीव।"[2]

माया और जीव का सबध 'कवित' शीर्षक की इन पक्तियो द्वारा कवि ने कमल और मधुकर के रूपक द्वारा स्पष्ट किया है—

"माया कमल स्वरूप जीव मधुकर सब झूले।
विषिया रस मोहीत होय निज घर कू भूले।
पहर च्यार गये बीति प्रीति सू नहीं अघाने।
उडि न सकै मतिहीण माहि मरि खरे खिसाने।
रामचरण गुरु ज्ञान बिन नर तनु चाले हाल।
चौराशी की जलणि मे दुख पावै जुग च्यार।"[3]

माया मिथ्या है पर राम द्वारा निर्मित होने के कारण सच्ची जैसी दीखती है। सत्य-पुरुष का सृजन होने के कारण वह वैसी नही दीख पडती। माया के विकास से हर्ष और विनाश से शोक उत्पन्न होता है। मनुष्य पछताता है, दुखी होता है। इसलिए स्वामी जी सभी साधन से विमुख हो राम-स्मरण की ओर उन्मुख होने का सकेत देते है।[4]

४६ **कामीनर को अंग**—साखी, सवैया, कवित, कुण्डल्या और रेखता—इन पाँच छन्द शीर्षको मे 'कामीनर को अग' वर्णित है। कामी नर के प्रति स्वामी जी की सहज घृणा-भावना इस अग मे व्यक्त हुई है। कामी नर उनकी दृष्टि मे अत्यत पतित, पशु से भी गया-बीता है। यथा—

---

१. जेता आवै दृष्टि मे सब माया का रूप।
यासू मित्या स ग्रासिया कहा सुरपति कहा भूप।
—अ० वा०, साखी, माया को अग, छ० २२, पृ० ५४।

२ वही, साखी, माया को अग, छ० २८, पृ० ५४।

३. वही, कवित, माया को अग, छ० १, पृ० १२६।

४. माया झूठी राम की साची सी दर्शाय।
रचना साचा पुरुष की तातै लखी न जाय।
तातै लखी न जाय उपजता हर्ष बधावै।
बिन मत उपजै शोक मीडकर शीश धुणावै।
रामचरण भज राम कू तज सब आन उपाय।
माया झूठी राम की साची सी दर्शाय।
—वही, कुण्डल्या, माया को अग, छ० ५, पृ० १७५।

"कामी सूं कुत्ता भला, सत कहे सब साच।
रामचरण अज्ञान नर, रह्या नारि सूं राच।"[1]

अत: स्वामी रामचरण कामी और कामिनी दोनो से विरत होने की बात कहते है।

४७. **जरणा को अंग**—साखी और कवित मे लिखित 'जरणा को अग' मे जरण का भाव जलने या तपस्या करने से है। रामचरण जी के अनुसार बिना जरणा (तपस्या) के कोई साधु नही कहा जा सकता। जिसके शरीर म जरणा नही वह स्वय ससार मे जलता है। स्त्री छोडना सरल है पर जलना कठिन है, जिसके शरीर मे कदर्प जलता है उसका मन विश्राम करता है।[2]

४८. **रहत को अंग**—साखी एव कवित मे 'रहत को अग' पूर्णता पा गया है। 'रहत' शब्द का प्रयोग स्वामी रामचरण ने दृढता के अर्थ मे किया है। साखी मे मन की दृढता या थिरता पर बल देते हुए उन्होने कहा है कि चचल मन पाँचो इद्रियो को नियन्त्रित करके थिर होता है तो इस 'रहत' से नरक का दर्शन नही होता। ससार मे इस 'रहत' की बडी महिमा है। इससे युक्त मनुष्य पर यम का जोर नही लगता और वह परमात्मा के दरबार मे पहुँच जाता है।[3]

४९. **लोभी नर को अंग**—साखी, सवैया और कुण्डल्या शीर्षको मे यह अग लिखा गया है। एक रत्ती लोभ का मूल्य स्वामी जी के शब्दो मे ही देखिए—

"मान गयो सन्मान गयो गुरुधर्म गयो रु संतोष न्हसायो।
ज्ञान गयो अरु ध्यान गयो सत साच गयो बैराग उडायो।
खेम गयो नित नेम गयो रसप्रेम गयो गुण नेह गुमायो।
रामचरण्ण गये इतना सब एक रती जब लोभ उपायो।"[4]

स्वामी जी ने लोभी की तुलना मोठे म लिपटी उस मक्खी से की है जो उससे न तो छूट पाती है और न मरती ही है, जैसा दु ख उसे मिलता है वैसा ही लोभी को भी।[5] स्वामी रामचरण

---

१ अ० वा०, साखी, कामीनर को अंग, छ० ३, पृ० ३।

२. त्रीया तजिबो सहल है, दुर्लभ जरणा काम।
जाके घट कदरफ जरै, ताके मन विश्राम।
—वही, साखी, जरणा को अग, छ० १२, पृ० ५८।

३ मन बहता रहता भया, पांच पकडि कर माहि।
रामचरण या रहत सूं, दोजख दीसै नाहि।
रामचरण या रहत की, महिमा जगत मझारि।
जम का जोरा ना लगै, पहुंचै हरि दरबार।
—वही, साखी, रहत को अग, छ० २, ३; पृ० ५८।

४. वही, सवैया, लोभी नर को अग, छं० १, पृ० ९०।

५ वही, साखी, लोभ को अंग, छ० १८, पृ० ६०।

ने लोभ को पाप का वृक्ष कहा है और पापो को उसके फल-फूल के रूप मे देखा है।[1] इसी सदर्भ मे स्वामी जी भक्ति लोभी की प्रशसा भी करते हैं। यथा—

"कष्ट सह्यो छाड्यो नहीं, भक्ति लोभ प्रहलाद।
रामचरण या लोभ सू, अनेक उधर्‌या साध।"[2]

लोभ एक दुर्गुण है पर यदि इस विकार का उपयोग कोई भगवान की भक्ति के लिए करता है तो वही गुण बन जाता है। उपर्युक्त उद्धरण मे प्रह्लाद को उस लोभी के रूप मे चित्रित किया गया है जो भक्ति का लोभी है। भक्ति का लोभ जिस हृदय मे उत्पन्न हो जाय वह तर जायगा।

५०. **निन्दा को अग**—साखी और कुण्डल्या शीर्षको मे 'निन्दा को अग' का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। 'कुण्डल्या' मे स्वामी जी ने बतलाया है कि निन्दा अपने पास वैसे ही आती है जैसे सूरज की ओर फेकी गई धूल अपने पर ही पडती है यथा—

"धूल उछाले भानु दिश तो पडै तास कै शीश।
सूरज लग पहुंचै नही वो करै कूण सू रीश।
वो करै कूंण सू रीश भाव जैसा फल पावै।
जगत भक्त को नीद आप शिर कर्म चढ़ावै।
रामचरण मोटो कलक टल न विश्वाबीश।
धूल उछालै भानु दिश तो पडै तास कै शीश।"[3]

निन्दा के प्रसग मे भी स्वामी जी एक विशेष बात कह जाते है। कवि कहता है कि निन्दा तो सभी करते है पर साधु और ससार द्वारा की गई निन्दा म अन्तर है। साधु घास की निन्दा करता है और ससारी जन अनाज की ही निन्दा करते है। अन्न की निन्दा से खेत खाली रह जाता है पर जो घास की निन्दा कर अन्न की रक्षा कर लेते है उन्हे ही लाभ होता है।[4] इसी सदर्भ मे

---

१. अ० वा०, साखी, लोभ को अग, छ० २३, पृ० ६०।
२. वही, साखी, लोभ को अग, छ० २६, पृ० ६०।
३. वही, कुण्डल्या, निंदा को अग, छ० १, पृ० १७७।
४. निन्दा सब कोई करते है, तामै एक विचार।
साधु निन्दै घास कू, कण निन्दै ससार।
रामचरण कण निंदता खाली रह जाय खेत।
घास नीद कण राख ले, सोही लाह्वा लेत।
—वही, साखी, निन्दा को अग, छ० ५, ६, पृ० ६३।

उन्होने अपने द्वारा प्रचारित धर्म जिसे उन्होने रामधर्म कहा है, को अन्न और अन्य धर्मो को खर-पात कहा है।[1]

५१. **साच को अंग**—साखी, चन्द्रायणा, रावैया और कुण्डलगा, इन चार शीर्षको म स्वामी रामचरण ने 'साच को अग' का वर्णन किया है। इस अग को स्वामी ने अच्छा विस्तार दिया है। पॉच तत्व एव तीन गुणो पर आधारित जीव का आधार चेतन है। यह चेतन शक्ति चिदानद है।[2] सभी चर-अचर मे यह व्याप्त है, जीव खाता-पीता-बोलता-विचरता है उस जीव को हथियार से मारकर आनन्दपूर्वक जो भी हिन्दू या मुसलमान खाता है, वह अवश्य ही नरक (दोजख) मे जायगा।[3]

'साच को अग' मे स्वामी रामचरण ने जीव हिंसको को अच्छी फटकार बताई है। उनका कथन है कि जीव-हत्या घोर जुर्म है, जीव हत्यारे पर परमात्मा कोप करता है और एक जीव की हत्या का हजार बार बदला लेता है। मनुष्य का आहार अन्न जल है पर वह उसे छोडकर 'माटी' खाता है। तृण-जल पर जीवन बसर करने वाले वन्य पशु की हत्या का बोझ भारी होता है।[4] वे शालिग्राम के पूजको, गीतापाठियो, चरणामृत ग्रहण करने वाले हिन्दुओ, एव कलमापाक के उपदेशक काजियो की भी हिंसा करने के लिए खबर लेते है।[5]

---

१ राम धर्म निज कण सही, आन धर्म खड जाण।
राम नीदवे आन पख, ता घट मोटी हाण।
—अ० वा०, साखी, निन्दा को अग, छ० ७, पृ० ६३।

२. पाच तत्व गुण तीन का, सब जीवा आधार।
रामचरण ये रहत है, चेतन के आधार।
रामचरण चेतन शक्ति, चिदानन्द की जाण।
स्वारथहित अज्ञान नर, करै हता की हाण।
—वही, साखी, साच को अग, छ० १, ३, पृ० ६४।

३. वही, छ० ५, पृ० ६४।

४ बडा जुलम जिव मारता, कोपै सिरजणहार।
रामचरण ले जीव का, बदला बार हजार।
रामचरण नर देह का अन पाणी है खज्ज।
ताहि छाडि माटी भखै, मूरख खाय अज्ज।
निरदावै वन मै रहै, तृण जल करै अहार।
रामचरण ताकू हत्या, बहुत चढै शिर भार।
—वही, साखी, साच को अग, छ० ११, १२, १३; पृ० ६४।

५ सेवा सालिग्राम की मुख गीता का पाठ करै।
जीव मार भक्षण करै, साई सू न डरै।

रामधर्म तो सांच है

स्वामी रामचरण ने अपने द्वारा प्रचारित धर्म को 'रामधर्म' कहा हे। 'साच को अग' मे उन्होने हिन्दू-मुसलमान दोनो को उनके द्वारा गृहीत धर्म की असारता से अवगत कराते हुए 'रामधर्म' की सत्यता बतलायी हे। यथा—

"माला का चाला करै मुख सू कहै न राम।
रामचरण दे भजन शिर, ये ठिगबाजी का काम।
मीया मुकरबा क्यू चुणै, चूना पथर लगाय।
आख मूदि दम साधि कै, राम नाम जिव लाय।
रामधर्म तो साच है, आन धर्म सब झूठ।
रामचरण साचा रहै, झूठा जावै ऊठ।"[1]

स्वामी रामचरण ने रामनाम ओर राम धर्म को सत्य घोषित किया, साथ ही देवल-मस्जिद, द्वारका-मक्का, रोजा-एकादशी, ईद-बकरीद सभी को व्यर्थ बतलाया हे—

"क्या देवल क्या द्वारका, क्या मक्का महजीद।
क्या रोजा एकादशी, क्या कर्म ईद बकरीद।
क्या कर्म ईद बकरीद, भर्म मे भूल्या सोई।
अलह इल्फ भरपूर राम सुमर्‌या सुख होई।
दुबध्या दोजिग जाइये क्या मुसलमान क्या हींद।
क्या देवल क्या द्वारका, क्या मक्का महजीद।"[2]

५२. भर्म विध्वंस को अग—साखी, कवित और कुण्डल्या शीर्षको मे 'भर्म-विध्वस को अग' वर्णित है। स्वामी रामचरण धार्मिक पाखण्ड, कर्मकाण्ड, मदिर-मस्जिद आदि सभी की भर्त्सना करते है और एक राम का नाम-स्मरण ही श्रेयस्कर मानते है। उनके अनुसार उपर्युक्त सभी मे विश्वास भ्रमवश है।अत. उन्होने सबकी असारता सिद्ध कर नाम-स्मरण की महिमा गाई है। राम तो प्रत्येक घट का वासी है पर मानव भ्रमवश उसे तीर्थादि मे खोजता हैं, अपना अन्तर नही देखता। 'कुण्डल्या' शीर्षक की निम्नलिखित पक्तियाँ इस आशय की पुष्टि करती हैं—

काजी कलमा पाक हैं, तो खडी पछाडै काहिं।
हिंसा नर नापाक है, कह कुरान के माहि।
अ० वा०, साखी, साच को अग, छद १५, १९. पृ० ६४।

१. वही, साखी, साच को अग, छ० २५, २६, २९, , पृ० ६५।
२. वही, कुण्डल्या, साच को अग, छ० ११, पृ० १७८।

"भूल भर्म में पड़ि गया, बाहिर ढूंढै राम।
घट मांहि खोजै नहीं, हेरै तीर्थ धाम।
हेरै तीरथ धाम, राम स्वप्ने नहिं पावै।
घट घट व्यापक जांण, रटूया तत्काल मिलावै।
रामचरण इक राम बिन दूजा धर्म निकाम।
भूल भर्म मे पड़ि गया, बाहिर ढूंढै राम।"[1]

मूर्तिपूजा, व्रत-त्यौहार, तीर्थ-यात्रा, लीला आदि सभी का कारण भ्रम ही है। स्वामी रामचरण ने इन सभी क्रियाओ का खण्डन जोरदार शब्दो मे किया और इसके अतिरिक्त उन्होने भ्रमात्मक प्रक्रियाओ का मार्ग छोडकर नाम-स्मरण के पुनीत पथ पर चलने का उपदेश दिया। श्रीकृष्ण और राधा की बडी महिमा है, सुर-नर- मुनि सभी जिनका स्मरण करते है, भाँड लोग उनकी भी नकल उतारकर उनकी फजीहत करते है।[2] मूर्तिपूजा का खण्डन करते हुए लिखते हैं—

"इसी प्रीति पाषाण सूं, जिसी राम सूं होय।
तो रामचरण रामैं मिलै, बहुर न जन्मैं कोय।"[3]

गौरी पूजन और तीज व्रत आदि के लिए स्त्रियो को भी उन्होंने मतिहीना कहा है।[4] अत जो लोग मूल मे विश्वास न कर डाल-पात की पूजा करते है,[5] भगवान से उदास रहते है उन्हे स्वामी रामचरण यह संदेश देते है—

"रामचरण भज राम कूं सबका कर्ता सोय।
कर्ता तज कर्त्रिम भजै, तो सबकी निवा होय।"[6]

५३. भेख को अंग

स्वामी रामचरण ने भेख का अर्थ साधु-भेष से लिया है। साखी, चन्द्रायणा, सवैया,

---

१. अ० वा०, कुण्डल्या, भर्मविध्वंस को अग, छं० २, पृ० १७९।

२. जाकू सुर-नर-मुनि रटै, असुरा रिरै अजीत।
ताकू भाड बिगोवा नकलकर, भंडवा करै फजीत।
वही,साखी, भर्म विध्वंस को अग, छं० ३, पृ० ६५।

३ वही, छं० ५१, पृ० ६७।

४. गौरिपूज अरु तीज मनावै, खोड्यो साझा गावै।
रामचरण नारी मतिहीणी, नारायण नहिं भावै।
वही, साखी, विध्वंस को अंग, छं० १७; पृ० ६६।

५. वही, छं० १८, पृ० ६६।

६. वही, छं० ३१, पृ० ६६।

कवित, कुण्डल्या और रेखता इन छ. छंद शीर्षको मे 'भेप को अग' की चर्चा उन्होंने की है। भेषधारी साधुओं की भी बड़ी तीखी आलोचना स्वामी जी ने की है। यथा—

"माथै तिलक बणाइ कै, कठा कठी धार।
रामचरण माया तकै, भटके घरघर बार।"[1]

वस्तुत. भेप वह स्वाग है जिसे मायारत व्यक्ति भगवान से मिलने के लिए रचता है, किन्तु वह भगवान से विमुख होता है।[2] कलियुग के भेप की लज्जा के लिए वे भगवान की दुहाई देते है—

"कलिजुग केरा भेख सूं साहिब राखै लाज।
रामचरण समझै नही फद पडै बेकाज।"[3]

'कुण्डल्या' की निम्नलिखित पक्तियो मे स्वामी रामचरण ने साधु बाना (भेप) का 'विरद' वर्णन किया है—

"बाना को यह विड़द है त्यागै दास रु बाम।
समता सू सुमरण करै नहीं लोभ अरु काम।
नही लोभ अरु काम जाम अठ रहै सुचेता।
बिचरै सहज सुभाय ज्ञान वैराग्य सहेता।
रामचरण तब पाइये शोभा, सुख, विश्राम।
बाना को यह बिडद है त्यागै दाम रु बाम।"[4]

५४. तृष्णा को अग-चन्द्रायणा, सवैया और कवित के अन्तर्गत 'तृष्णा को अग' मे स्वामी रामचरण ने मानव को सासारिक तृष्णा से तृषित देखा है। यथा—

"तृष्णा अजन आज भया नर अध रे
परिहा रामचरण गृह जाल लिया गलफंद रे।"[5]

इस तृष्णा को आशा से जीवन मिलता है। मनुष्य आशा-तृष्णा के बीच पडकर

१ अ० वा०, साखी, भेख को अग, छ० १३, पृ० ६८।
२ वही, छ० १४, पृ० ६८।
३ वही, छ० १८, पृ० ६८।
४. वही, कुण्डल्या, भेख को अग, छ० ६३, पृ० १८६।
५. वही, चन्द्रायणा, तृष्णा को अग, छ० १, पृ० ८४।

अनेक दुख भोगता है। इससे मुक्ति पाने के लिए गुरुज्ञान अपेक्षित है। इस सागर से पार होने के लिए हरिनाम का जहाज और हरिजन रूपी केवट की आवश्यकता है।[1]

५५. निर्गुण उपासना को अग—कवित और कुण्डल्या शीर्षको मे 'निर्गुण उपासना को अग' का उल्लेख स्वामी जी ने किया है। स्वामी रामचरण सगुण छोडकर निर्गुण पथ के पथिक बने थे। अत भक्ति के इन दोनो—निर्गुण और सगुण—रूपो को भलीप्रकार उन्होने समझ लिया था। निर्गुण और सगुण दोनो की तुलनात्मक विवेचना 'कवित' की निम्नलिखित पक्तियो मे स्वामी रामचरण ने की है—

"निर्गुण सर्गुण भक्ति उभै मधि अतर जानो।
सर्गुण रूप विनाश अकल निर्गुण नित मानो।
सर्गुण गाय शिगार धार विषिया मन भूलै।
निर्गुण नाम अधार भोग राजसगुण भूलै।
सर्गुण शोभा जगत मै उरै रहै उरझाय।
रामचरण महिमा सहित निर्गुण निज घर जाय।"[2]

५६. चाणक को अग—"सासारिक व्यवहारो के मूल मे रहनेवाली मूल भावनाओ और प्रयोजनो को समझने वाला ही 'चाणक' होता है, वह नीतिकुशल है।"[3] साखी, सवैया, कवित, कुण्डल्या और रेखता शीर्षको मे 'चाणक को अग' स्वामी जी ने लिखा है। इस अग मे स्वामी रामचरण ने योगी-यती, ब्राह्मण, भट्टारक आदि विभिन्न वेशियो की सासारिकता मे लीन रहने की चर्चा करते हुए रामभजन की महत्ता प्रतिपादित की है। यथा—

'जोगी जोग कुमाईया, खाखी, तपसी शेख।
रामभजन बिन रामचरण, मिटै न मन की रेख।
जती कहावै जगत मै, पाचू जीती नाहि।
झीणा कपडा पहर कै, पान-सुपारी खाहि।
साँई कूं भेट्या नही, कह भट्टारक जैन।
तन पर काथ्या कप्पडा, मन माया का फैन।"[4]

---

१. आशा नदी असगल बहै मधि मोह सनेह का भवर परै।
तृष्णा दैव दाझ विचार बिना अगिलोभ बधै बटवृक्षि मरै।
कह रामचरण्ण बिना गुरुज्ञानहि पाय नरातन कैरो तिरै।
हरिनाम जिहाज हरीजन केवट आय चढै ताहि पार करै।
अ० वा०, सवैया, तृष्णा को अग, छ० २, पृ० ९०।
२. वही, कवित, निर्गुण उपासना को अग, छ० २, पृ० ११०।
३ डॉक्टर भागवतस्वरूप मिश्र—कबीर ग्रथावली, परिशिष्ट, पृ० ११।
४. अ० वा०, साखी, चाणक को अग, छ० ५, ६, १५, पृ० ७१।

स्वामी रामचरण की दृष्टि मे सब पापो की जड लोभ, अभिमान है। लोभ के वशीभूत ब्राह्मण आपस मे कार्तिक के कुत्तो सदृश लडते है।[1] पण्डित वही है जिसका चित्त लोभरहित है और सदैव ईश्वर की इच्छा करता है। किन्तु इस कलियुग मे सारा ससार लोभी है, कोई कार्याकार्य नही देखता। इसी सदर्भ मे स्वामी जी ब्राह्मण और सन्यासियो की खबर लेते हुए लिखते है—

"गले जनेऊ विप्र कहावै, मूंछ मूंडाया स्वामी
ठिग बाजी कर पेट भरत है, भूल्या अन्तरजामी।"[2]

मायारत ससार लोभ-अभिमान और भोग-भ्रम मे भूले पडे साधु वेशियो और ब्राह्मणो को देखकर स्वामी जी कहते है कि गीता, भागवत, चारो वेद, अठारहो पुराणादि का पठन सभी एक राम के बिना व्यर्थ है।[3] शील और वैराग्य के नाम पर ढोग करके जीने वालो के विषय मे स्वामी जी का मत निम्नलिखित साखियो मे स्पष्ट हुआ है—

"शब्द बणावै शील का, चुगतै विषय विकार
रामचरण वै पावसी, जम कै द्वारै मार।
शब्द कहै वैराग्य का, माया मिल्या खुस्याल
रामचरण साची कहै, ये कपट्या की चाल।"[4]

इसलिए स्वामी रामचरण का निश्चित मत है कि कोरा ज्ञान व्यर्थ है यदि ज्ञानी मे त्याग-वैराग्य न हो। वाणी और व्यवहार मे अन्तर रखने वाले ज्ञानी के सबध मे उनकी धारणा इस प्रकार है—

"त्याग बैराग बिना नहि सोहत ज्ञानी को ज्ञान अलूंणो सो लागै
ज्यू कोइ भाड करी भडवा बिधि साग शाहू शठ गाजर मागै।
ज्यू चल मूद दडायल होय कै स्वाद बध्यो मुढ टेर्यो न जागै।
ऐसो अभागी पड्यो इन्द्रया बस रामचरण्ण तासू मन भागै"[5]

---

१ रामचरण सब पाप का मूल लोभ अभिमान।
लोभ लडावै विप्र कू, ज्यू काती मे स्वान।
अ० वा०, साखी चाणक को अग, पृ० ७२।

२ वही, छ० ५४, पृ० ७२।

३. वही, छ० ७०, पृ० ७३।

४. वही, छ० ७६, ७७, पृ० ७३।

५. वही, सवैया, चाणक को अग, छ० ५, पृ० १००।

कतिपय अन्य अंग

इस शीर्षक के अन्तर्गत उन अंगों की चर्चा होगी जिन्हें स्वामी रामचरण ने अधिक विस्तार नहीं दिया है, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि ये अंग महत्त्वहीन हैं। सन्त-साहित्य में इन अंगों की विधिवत् चर्चा हुई है और स्वामी जी ने भी अपनी 'अणभैवाणी' में इन्हें महत्त्व दिया है। ये अंग निम्नलिखित हैं—

१ शिवधर्मी को अंग, २ देखादेखी को अंग, ३. हेतप्रीति को अंग, ४. कस्तूरिया मृग को अंग, ५. बेहद को अंग, ६. मध्य को अंग, ७. पथ को अंग, ८ रस को अंग, ९ सूक्षम मार्ग को अंग, १०. सुमकर्मी को अंग, ११. सहज को अंग, १२ बहुआरंभी को अंग, १३ आशाबेलि को अंग, १४ निद्रा को अंग, १५ मुरकी को अंग, १६ गुरु हेरू को अंग, १७ मनमुखी को अंग, १८. साधपारख को अंग, १९. साधमहिमा को अंग, २०. वाचिक ज्ञानी को अंग, लछज्ञानी को अंग, २१ ब्रह्मविवेक को अंग, २२. मनमूसा मनसूबा को अंग २३. शिष्य निरणैं को अंग, २४ निरणैं को अंग, २५. हठजोग को अंग, २६ भक्ति महिमा को अंग, २७. गुरुपरमार्थी को अंग, २८. लोभी गुरु को अंग, २९. लच्छ को अंग, ३० भेष-धारणा को अंग, ३१. नाम निरणैं को अंग।

१. शिवधर्मी को अंग—'साखी सुमरण को अंग' शीर्षक के अन्तर्गत इस अंग की आठ साखियाँ हैं। स्वामी जी के अनुसार शिव जिसका सुमिरन करते हैं उनका जो स्मरण करता है, वह शिवधर्मी है।[1] शिव राम का अनवरत सुमिरन करते हैं। यथा—

"राम राम शंकर भजैं एक अखण्डित धार।"[2]

२. देखादेखी को अंग—१९ साखियों के इस अंग में स्वामी रामचरण देखादेखी कार्य करने की समीक्षा करते हैं। उनके अनुसार कोई काम देखादेखी नहीं समझबूझ कर करना चाहिए। मुख्यतया भगवान का नामस्मरण या भक्ति विचारपूर्वक करनी चाहिए, देखादेखी भक्ति करने वाला ठहर ही नहीं सकता। यथा—

"देखादेखी भक्ति करैं, रामचरण भल नांहि
भीड़ पड़्या नांहि ठाहरै, मिले जगत कै मांहि।"[3]

'देखादेखी' को स्वामी जी एक अन्य पहलू से भी देखते हैं। उनकी दृष्टि में सांसारिक व्यवहार, कुकर्म तो सभी लोग देखादेखी करते हैं किन्तु देखादेखी 'राम भक्ति विस्तार' कोई विरला ही करता है। यथा—

---

१ रामचरण शिव धर्म कूं, जाणंत नाही कोय।
शिवसुमरे ताकूं भजे, सो शिवधर्मी होय।
अ० वा०, साखी, शिवधर्मी को अंग, छं० ११५, पृ० ९।

२ वही, छं० ११६ पृ० ९।

३. वही, साखी, देखादेखी को अंग, छं० ५, पृ० ४३।

"देखादेखी सब करै, कुकरम जगत विह्वार।
रामचरण विरला करै, कोई राम भक्ति विस्तार।"[1]

३. हेतप्रीति को अग—इस अग मे १४ साखियाँ है। 'भक्ति की रीति' यह है कि मेरा-तेरा का भेद छोडकर सभी से समभाव की प्रीति करे। यथा—

"मेरा तेरा ना गिणै, सबसू एक परीति।
रामचरण तब जाणिये, यह भक्ति की रीति।"[2]

इस संदर्भ मे स्वामी जी की चेतावनी ध्यान देने योग्य है—

"परमेश्वर सूं प्रीति करि, करि साधां सूं हेत।
माया मोह संग काल है, चेत सकै तो चेत।"[3]

आदर्श प्रीति मे अतर की कोई भूमिका नही होती। दिनकर-अम्बुज एव कुमुद-चन्द्र का दृष्टान्त देकर स्वामी जी ने इसे स्पष्ट किया है।[4] 'हेतप्रीति' की निम्नलिखित पक्तियाँ बडी मार्मिक है—

"सतगुरु सेती हेत करि, रामभजन सूं प्रीति।
परिहरि विषय विकार कूं मना मनोरथ जीति।"[5]

४. कस्तूरीया मृग को अग—१२ साखियो के इस अग मे स्वामी रामचरण मनुष्य की अज्ञानता की तुलना मृग से करते है। यथा—

"कस्तूरी कुंडल बसै, मृग न पावै भेद।
रामचरण घट राम है, भूला हेरै बेद।"[6]

५. बेहद को अंग—२३ साखियो के इस अग मे स्वामी रामचरण ने हद और बेहद का आशय असीम और ससीम से लिया है। 'राम' शब्द बेहद है, उसे रटनेवाला व्यक्ति भी बेहद होता है, वे ससीम भक्ति को उचित नही समझते। यथा—

"रामचरण हद की भक्ति, कहो कियां क्या होय।
रामनाम बेहद शब्द, रटैस बेहद जोय।"[7]

---

१. अ० वा०; साखी, देखादेखी को अग, छं० १०, पृ० ४४।
२. वही, साखी, हेतप्रीति को अंग, छ० २, पृ० ४७।
३. वही, छं० ३; पृ० ४७।
४. वही, छं० ८, पृ० ४७।
५. वही, छं० १३, पृ० ४७।
६. वही, साखी, कस्तूरीयामृग को अग, छं० १, पृ० ४७।
७. वही, साखी, बेहद को अंग, छ० १, पृ० ४९।

इस असीम शब्द 'राम' के दो अक्षरों में सभी कुछ आ जाता है। 'र' चेतनशक्ति का प्रतीक है और 'म' माया का। यथा—

"चेतन शक्ति रकार की, म माया विस्तार।
रामचरण सब आईया, अक्षर दोय मझार।"[1]

इस बेहद 'राम' के सभी अवतार अंश हैं। स्वामी जी के शब्दों में—

"रामचरण यूं राम का सब अवतारा अंश।
देह छोड़ि गया धाम कूं, मिल्या आपणै वंश।"[2]

६. मध्य को अंग—'मध्य को अंग' में स्वामी रामचरण ने १२ साखियाँ लिखी हैं। इस अंग में स्वामी जी ने 'संतजन' को मध्यमार्गी कहा है। मध्य मार्ग पर चलने से साधु को सुख मिलता है क्योंकि वे योग और भोग दोनों को रोग मानते हैं—

"जोग भोग दोइ रोग है, रामचरण तजि दूर।
मधि मारग साधू चल्या, माया सुख भरपूर।"[3]

मध्य मार्ग को कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में परिभाषित किया है—

"मधि मारग है राम नाम, सुमरण भरिये भीख।
रामचरण हम क्या कहैं, या अनंत कोटि की सीख।"[4]

७. पंथ को अंग—७ साखियों के इस अंग में स्वामी रामचरण ने मत-पंथों के बंधन से मुक्त होकर केवल एक राम-पंथ के अनुगमन की बात कही है। संतों के लिए केवल एक ही पंथ है, वह है 'रामपंथ'। यथा—

"रामचरण संतां तणां, रामनाम पंथ एक
अबै भर्म की भूलि सैं, मत का बन्ध अनेक।"[5]

इसलिए संत 'प्रवृत्ति पसारा' छोड़कर रामपंथ का पंथी बन जाता है—

"पंथी चाले रामपंथ मत सूं बंधै नांहि।
प्रवृत्ति पसारा छांड़िकै, मिलै संत पव मांहि।"[6]

---

१. अ० वा०; साखी, बेहद को अंग छं० ११; पृ० ५०।
२. वही, छं० १४, पृ० ५०।
३. वही, साखी; मध्य को अंग, छं० ४; पृ० ५०।
४. वही, छं० ९; पृ० ५०।
५. वही, साखी; पंथ को अंग, छं० २; पृ० ५१।
६. वही, छं० ३; पृ० ५१।

८ रस को अंग—११ छन्दों के इस साखी अंग में स्वामी रामचरण 'रामरस' की महिमा बखानते है। स्वामी जी कहते हैं कि रस तो सभी चाहते है पर वह रस कौन-सा है जिसे पान कर मन मतवाला हो जाता है ?[1] कवि के अनुसार 'राम रटन' से रसना रस-वती हो जाती है, उस रस का पानकर रसिक युग-युगों तक जीता है। रसना षट्रस का स्वाद लेती है, किन्तु 'रामरस' चख लेने के बाद मन में विकार नहीं रह जाता।[2] उस रस का अधि-कारी 'सतगुरु' है और उनकी कृपा से शिष्य भी होता है—

"रामचरण वा रस का सतगुरु पिवणँहार।
गुरु किरपा सू शिख पिवै, तो भूलै तन की सार।"[3]

९. सुक्षम मार्ग को अंग—इस अंग की रचना स्वामी जी ने १४ साखियों में की है। स्वामी जी का कथन है कि भगवान की भक्ति के लिए सूक्ष्म मार्ग पर चलना अपेक्षित है। स्थूल मन से भक्ति संभव नहीं। सूक्ष्मधर्मी का लक्षण स्वामी जी ने निम्नलिखित पंक्तियों में बतलाया है—

"सब सू नान्हा होय रहे, अहंमान कू मार।
रामचरण यू चालिये, सुक्षम राह विचार।"[4]

स्वामी रामचरण के अनुसार मुक्ति का मार्ग सूक्ष्म होता है, इसलिए सूक्ष्म पथ पर चलकर सूक्ष्म होना चाहिए। जो सूक्ष्म है वही सुखी है, दुखी नहीं। यथा—

"सुक्षम मारग सोधि कै, चालै सुक्षम होय।
रामचरण सुक्षम सुखी, दुखी न देख्या कोय।"[5]

१० शुभकर्मी को अंग—११ साखियों का यह छोटा-सा अंग है। इसमें स्वामी रामचरण ने शुभकर्मी के लक्षण बतलाये है। जिसमें हिंसा का भाव न जगे, वह शुभकर्मी है। हिंसा से शुभ अशुभ में परिवर्तित हो जाता है।[6] आत्मनियंत्रण शुभ है और अन्य की आत्मा का हनन अशुभ कर्म है। संयम, शील, संतोष, दया, धर्म ये सब शुभ है, अलावा इसके अन्य अशुभ है।[7] शुभकर्मी के लिए अहिंसक होना आवश्यक है। यथा—

---

१ अ० वा०, साखी, रस को अंग, छ० १, पृ० ५१।
२ वही, छ० २, ३; पृ० ५२।
३ वही, छ० ९, पृ० ५२।
४ वही, साखी, सुक्षम मार्ग को अंग, छ० ३, पृ० ५१।
५ वही, छ० १२, पृ० ५२।
६ वही, साखी, शुभकर्मी को अंग, छ०, १, पृ० ५३।
७ वही, छ० ३, ८, पृ० ५३।

"साहिब की या सृष्टि है, सुक्ष्म स्थूल सब जीव।
रामचरण ताकूं हत्यां, शुभ न मानैं पीव।"[1]

११ सहज को अंग—आठ साखियों के इस अंग में स्वामी रामचरण ने 'सहज' को परिभाषित किया है। सभी सहज-सहज कहते हैं पर 'सहज' का भेद नहीं जानते। जिसमें खेद नहीं वही 'सहज' है।[2] इस 'सहज' प्राप्ति का साधन 'सुमिरन' है, अन्य सभी साधन खेदपूर्ण हैं, इस 'सहज' द्वारा 'अगम का भेद' जाना जा सकता है। यथा—

"रामचरण हम सोधिया, सब साधन मैं खेद।
सुमरण पैंडा सहज का, लहै अगम का भेद।"[3]

१२. बहुआरंभी को अंग—इस अंग में स्वामी जी ने १० साखियाँ लिखी हैं। बहु-आरम्भी व्यक्ति अनेक भौतिक धंधों में लीन तो रहता ही है, परासी का बोझा भी वहन करता है। इस प्रकार वह नाना भौतिक व्यापारों में व्यस्त होकर धन की चिंता में रत होता है और रात दिन उदास फिरता है। माया के चक्कर में पड़कर वह नर-योनि नष्ट करता है। यथा—

"एती है एती करूं, हुवा न तृप्ती होय।
माया हित बहुआरंभी, जासी नरतनु खोय।"[4]

१३ आशाबेलि को अंग—इस अंग में २९ साखियां हैं। डॉक्टर भागवतस्वरूप मिश्र के अनुसार "वासना और मोह रूप माया ही को 'बेली' कहा गया है।"[5] स्वामी राम-चरण ने आशा को दुख की बेलि माना है जिससे विष रूपी फल उत्पन्न होते हैं, जिसके कारण राजा-प्रजा सभी दुख भोगते हैं। यथा—

"आशा दुख की बेलि है, फल प्रगट विष रूप।
रामचरण आशा दुखी, क्या परजा क्या भूप।"[6]

---

१. अ० वा०, साखी, शुभकर्मी को अंग छं० ६, , पृ० ५३।
२. सहज सहज सब कहत है, नही सहज का भेद।
   रामचरण कहिये सहज, जामैं नाही खेद।
   वही, साखी, सहज को अंग, छं० १, पृ० ५९।
३. वही, साखी, सहज को अंग, छं० २, पृ० ५९।
४. वही, साखी, बहुआरभी को अंग, छं० १०, पृ० ५९।
५. डॉ० भागवतस्वरूप मिश्र—कबीर ग्रंथावली, परिशिष्ट, पृ० १६।
६. अ० वा०, साखी, आशाबेलि को अंग, छं० २३, पृ० ६१।

मानव मन 'आशाबेलि' में बँधे उस कुत्ते के सदृश है जो स्वार्थवश घर-घर दौड़ता है। वह मानव गुरु-आदर्श की अवहेलना स्वार्थवश ही करता है और इस प्रकार हरिभजन के अभाव में सुअर-कुत्ते की जिंदगी जीता है।[1]

१४ निद्रा को अंग—२४ साखियों के इस अंग से स्वामी रामचरण ने निद्रा को 'पापणी',[2] 'जम की दासी',[3] 'नाहरी'[4] आदि लिखा है। यथा—

"ऐसी निद्रा पापणी, माथै बैठे आय।
भजन भुलावै राम को, सब सुधबीसर जाय।"[5]

निद्रा सारे संसार को खा जाती है, उसमें उन्हीं लोगों का उद्धार होता है जो भक्त हैं और जिनकी राम में लगन है।[6] निद्रा को मारने में केवल संत ही सक्षम है। यथा—

"निद्रा मारै संत जन, आसन सजम साधि।
राम भजन लागा रहे तो लगै न निद्राव्याधि।"[7]

१५ भुरकी को अंग—इस अंग में केवल ७ साखियाँ हैं। स्वामी जी के अनुसार 'भुरकी सतगुरु शब्द है'[8] भुरकी से भ्रम दूर होते हैं, मनुष्य निर्विकार होता है और 'निजनूर' का दर्शन होता है।

१६. गुरु हेरू को अंग—केवल एक चन्द्रायणा में इस अंग की चर्चा हुई है। स्वामी जी कहते हैं कि ऐसा गुरु खोजना चाहिए जो भ्रमनाश करे और माया से मन को दूर कर वैराग्य की ओर उन्मुख करे।

१७. मनमुखी को अंग—तीन चन्द्रायणा के इस अंग में स्वामी जी ने बतलाया है कि सतगुरु की शिक्षा माया-मद के कारण मनमुखी हुआ शिष्य नहीं मानता। ऐसे मनमुखी जनों के लिए गुरु क्या करे? ऐसे मूर्ख से बात न करने में ही सुख है। यथा—

"मूरख सेती वाद कहो क्यूं कीजिए।
मानै नहीं लगार ताहि तजि दीजिए।

---

१. अ० वा०, साखी, आशाबेलि को अंग, छ० २५, २७, पृ० ६१।
२. वही, साखी, निद्रा को अंग, छ० ३, पृ० ६२।
३. वही, छं० ६, पृ० ६२।
४. वही, छं० १२, पृ० ६२।
५. वही, छ० ३, पृ० ६२।
६. वही, छ० १७, पृ० ६२।
७. वही, छ० १३, पृ० ६२।
८. वही, साखी, भुरकी को अंग, छ० ४, अ० वा०, पृ० ६२।

सो बाता इक बात न मानै कोय रे।
परिहा रामचरण रहो चुप सुखो सब होय रे।"[1]

१८. साधपारख को अंग—कवित और कुण्डल्या शीर्षक में इस अंग की रचना हुई है। साधु की पहचान के संदर्भ में उनका कथन है कि परमहंस की वृत्ति एकरसता की होती है। वह हीरे के सदृश सदैव प्रकाशित रहता है।

१९. साध महिमा को अंग—'कवित साध पारख' के अन्तर्गत ही 'साध महिमा' की चर्चा भी स्वामी जी ने कर दी है। केवल तीन कवित ही इस संदर्भ के हैं। साधु-महिमा का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि—

"धन ठिगिया संसार रामजन मन ठिगिया रे।
प्रेम पासि गल घालि जगत सूं करै निनारे।
हरिसुख भुकी डार स्वाद विषिया बिसरावै।
कामापुर सूं काढ़ि देश अपणै ले आवै।
रामचरण जन सबल ठिग ओर न ऐसा कोय।
नर निर्बला की कहा चली जम जालिम रहे रोय।"[2]

२०. वाचिक ज्ञानी को अंग, लछ ज्ञानी को अंग—दस कवित छंदों में उपर्युक्त दोनों अंग संयुक्त रूप से रचे गए हैं। जिनके ज्ञान की सीमा वाणी तक है, वह 'वाचिक ज्ञानी' और जो लक्ष्य के प्रति समर्पित है वह 'लच्छ ज्ञानी' है। वाचिक ज्ञानी इन्द्रिय-स्वार्थ के लिए भजन से विमुख हो जाता है। वह उदर के लिए नाना उद्यम करता है और जब असफल होता है तो 'प्रारब्ध' को दोष देता है।[3] स्वामी जी कहते हैं कि ऐसे लोग जो अपना कथन स्वयं नहीं समझ पाते और दूसरे की बात मानते ही नहीं, नानाविधि कर्म करते हैं, कलियुग में 'अणमी साध' कहलाते हैं।[4] 'लच्छ ज्ञानी' का लक्षण निम्नलिखित कवित में स्वामी जी बतलाते हैं—

"राम राम मुख गाय ओर सब तजै उपाधी।
चित की चितवन जाय लगै तब सहज समाधी।
सुभ असुभ जाय ऊठि काय की किरिया भूलै।
रामचरण रस पीय सुखमई सार मैं झूलै।

---

१ अ० वा०, साखी, मनमुखी का अंग, छं० ३, पृ० ८१।
२. वही, कवित, साध महिमा को अंग, छं० ८, पृ० ११४।
३. वही, कवित, वाचिक ज्ञानी को अंग, छं० ३, पृ० ११४।
४. वही, छं० ५, पृ० ११५।

उदय अस्त की गम नहिं ब्रह्म आनंद गलतान।
आतम मिलि परमातमा ताके यह सहनान।"[1]

२१. ब्रह्म विवेक को अंग—केवल एक कवित के इस अंग में कवि का कथन है कि हर्ष-शोक, रोग-भोग-संशय, सुत-वनिता-परिवार, मान-ममता के बन्धन में पड़े मानव को ब्रह्मज्ञानी सतगुरु मिल जाये तो बन्धन काटकर संसार-सागर को पार कर जाय।

२२. मनमूसा मनसूर को अंग—'मन को अंग' के अन्तर्गत एक कवित के इस अंग में सिंह, चूहा और बिल्ली के रूपक द्वारा वैराग्य, चंचलपन और माया की चर्चा हुई है।

२३. शिष्य निरणां को अंग—'कवित शिखपारख को अंग' के अन्तर्गत तीन छंदों का यह अंग है।[2]

२४. निरणाँ को अंग—'विचार को अंग' के अन्तर्गत कवित और कुण्डल्या शीर्षकों में इस अंग का विवेचन स्वामी रामचरण ने किया है। इसमें स्वामी जी ने बतलाया है कि सम्पूर्ण सृष्टि का विस्तार एक 'शब्द' से हुआ है।[3]

२५. हठजोग को अंग—कवित और कुण्डलिया छन्दों में इस अंग का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। यद्यपि स्वामी जी ने विभिन्न योगों की साधना की थी पर अन्त में योगादि को व्यर्थ समझने लगे थे। वे कहते हैं—

"योगी पवन चढ़ाय काल सूं दाव चुकावै।
निशि दिन पवन उपाय राम कबहूँ नहिं गावै।"[4]

साधना से स्वस्थता आती है पर मुक्ति नहीं, उसका आधार तो केवल 'राम' है।[5]

२६. भक्ति महिमा को अंग—इस अंग में ६ कवित हैं। इसमें भक्ति-महिमा का गान किया गया है। बिना हरिभक्ति के कोई ऊँचा नहीं। यथा—

"ऊंचनीच हरि कूं भजै सोही उत्तम जान।
रामचरण हरिभजन बिन, ऊंचहि श्वपच समान।"[6]

२७. गुरुपरमार्थी को अंग, लोभी गुरु को अंग—'कुण्डल्या गुरुदेव को अंग' के अन्तर्गत

---

१ अ० वा०, कवित, लछज्ञानी को अंग, छ० १०, पृ० ११५।
२ देखिए 'शिखपारख को अंग'—लेखक।
३. रामचरण सारी सृष्टि एक शब्द विस्तार।
जैसे पतवा वृच्छ मैं निकसै झडै अपार।
अ० वा०, निरणाँ को अंग, पृ० १२५।
४ वही, कवित हठजोग को अंग, छ० १, पृ० १२५।
५ वही, कुण्डल्या, हठजोग को अंग, छं० १, पृ० १७४।
६ वही, कवित, भक्ति महिमा को अंग, छ० ६, पृ० १२६।

'गुरुपरमार्थी' और 'लोभी गुरु' भी सयुक्त है। स्वामी जी के अनुसार 'सतगुरु राम परमार्थी और न दीसै कोय।'[1]

२८. लच्छ को अंग—कुण्डल्या शीर्षक के दो छन्दों में यह अंग साधु के लक्षणों का वर्णन करता है। यथा—

"जल गाटै पट छाँणि के धरा निरख पग धार।
चित्त मैली चितवन तजै बोलै बचन विचार।"[2]

२९. भेषधारणा को अंग—रेखता शीर्षक के अन्तर्गत इस अंग में मन की भेष धारणा के लिए आत्मा के भेष का वर्णन स्वामी जी करते हैं। यथा—

"तत्त्व सो तिलक पतिव्रत की छाप है सतगुरु वस्त का दीप राजै।
राम गुण श्रवण जो श्रवण श्रवण मुक्तिमणि भजन दया विराजै।
मेखला शील संतोष सब मात राम मेहर के मुकुर दिखाय सारा।
राम ही वरण ये भेष हमकू दिया सोही निज सत है रहत हमारा।"[3]

३०. नाम निरणा को अंग—'रेखता सुमरण को अंग' के अन्तर्गत 'नाम निरणा को अंग' का वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है। सभी नाम-स्मरण की बात कहते हैं पर नाम का रहस्य क्या है? कौन-सा नाम है जिसके रटने से 'सोर सुखमणि' खुल जाता है और उसे पीते-पीते मन स्थायी रूप से 'मगन' हो जाता है। इस संदर्भ में स्वामी जी कहते हैं—

"नाम का भेद अब शब्द में कहत हूँ सुरति दे साभलो सर्व कोई।
और सब नाम लिपती कहे ब्रह्म का राम निज बीज शिव कहत सोई।
शेष अरु जनक शुकदेव नारद कहै तीन ही लोक ध्वनि अनिल होई।
और सब नाम जुग जुग उपजै खपै एक रंकार रहे अखण्ड जोई।"[4]

अतः निर्णय हुआ कि अन्य नाम उपजते और नष्ट हो जाते हैं पर 'रंकार' अर्थात् 'राम' का नाम अखण्ड है। स्वामी रामचरण ने अपनी 'अणभैवाणी' में संतों द्वारा वर्णित सभी अंगों की चर्चा की है। मैं समझता हूँ जितने भी संभव अंग हो सकते हैं सभी का विस्तार या संक्षेप में वर्णन स्वामी रामचरण ने किया है।

---

१. अ० वा०, गुरु परमार्थी को अंग, छं० १९, पृ० १३९।
२. वही, कुण्डल्या, लच्छ को अंग, छं० ३, पृ० १५४।
३. वही, रेखता, भेष धारणा को अंग, छं० ३, पृ० १९०।
४. वही, रेखता, नाम निरणाँ को अंग, छं० १०, पृ० १९१।

२. छोटे ग्रथ

स्वामी रामचरण के संग्रह ग्रथ 'स्वामी जी श्री रामचरण जी महाराज की अणभै-वाणी' मे अगवद्ध वाणी के बाद छोटे ग्रथ आते है। इन ग्रथो की सख्या १३ है जिनके नाम निम्नलिखित है—

१ गुरु महिमा
२. नाम प्रताप
३. शब्द प्रकाश
४. चिन्तावणी
५ मन खण्डन
६. गुरुशिष्य गोष्ठि
७ ठिग पारख्या
८ जिद पारख्या
९ पण्डित सवाद
१० लच्छ अलच्छ जोग
११ वेजुक्ति तिरस्कार
१२ काफर बोध
१३ शब्द

इस सूची के प्रारम्भ के तीन ग्रथ 'गुरु महिमा', 'नाम प्रताप' और 'शब्द प्रकाश' वाणी अगो के बाद सगृहीत है, शेष दस ग्रथ आठ बडे ग्रथो के बाद मुद्रित है। पीछे यह लिखा जा चुका है कि इन लघु काव्यो के लिपिकार एव सग्रहकर्त्ता भी नवलराम जी ही थे। यद्यपि सम्पादक ने प्रत्येक ग्रथ की समाप्ति पर रचना-काल, स्थान आदि का या स्वय अपने विषय मे उल्लेख नही किया है, किन्तु प्रकाशित वाणी के पृष्ठ १०१३ पर जो उल्लेख उसने किया है उससे भी यह स्पष्ट नही होता कि इन ग्रथो के सम्पादक नवलराम जी ही थे। किन्तु इस आधार पर कि स्वामी रामजन ने अपने द्वारा सम्पादित ग्रथो के अन्त मे अपने द्वारा सम्पादित होने का उल्लेख कर दिया है और नवलराम जी ने केवल एक स्थान पर अत मे किया है। इसलिए यह अनुमान उचित ही है कि उपर्युक्त सभी ग्रथो का सम्पादन भी 'वाणी' एव फुटकर पदो के साथ नवलराम जी ने ही किया था।

डॉक्टर आगरचन्द नर्मा ने उपर्युक्त ग्रथो को अलग वर्गीकृत न करके 'वाणी साहित्य' के अन्तर्गत ही रखा है। उनके वर्गीकरण के अनुसार 'ग्रथ साहित्य' मे केवल वे ही नौ ग्रथ आते है जिन्हे प्रकरण या प्रकाशो मे बाँधा गया है। अपने वर्गीकरण की पुष्टि मे वे लिखते है कि 'इनमे से किसी भी कृति की रचना न तो प्रकरण शैली मे हुई है और न उनका विस्तार

ही इतना है कि इन्हे एक ग्रथ कहा जा सके। अत इन्हे वाणी साहित्य की सज्ञा देना ही उपयुक्त होगा।''[1]

डॉक्टर वर्मा के उपर्युक्त मत के सन्दर्भ मे मेरा निवेदन है कि किसी भी कृति का प्रकरण मे विभाजन या उसका विस्तृत होना उसके ग्रथ कहे जाने का मापदण्ड नही हो सकता। फिर स्वामी रामचरण का विशाल साहित्य सुसम्पादित है। उनकी 'अणभैवाणी' को उनके शिष्य नवलराम जी ने उनके जीवन काल मे ही अगबद्ध कर दिया था। तात्पर्य यह कि नवलराम जी ने स्वामी रामचरण की रचनाओ के सम्पादन मे उनसे परामर्श अवश्य किया होगा। फिर तो हम निरसन्देह यह भी कह सकते है कि ग्रथो का नामकरण भी स्वामी रामचरण ने स्वय ही किया होगा। ऐसी स्थिति मे उन ग्रथो को, जो लघुकाय होने के कारण प्रकरण या प्रसगो मे विभाजित नही किये जा सके, ग्रथ न मानकर अगबद्ध वाणी के अन्तर्गत घसीटना समीचीन नही। वे सभी रचनाऐं कवि की प्रारम्भिक कृतियाँ है जिन्हे कवि ने ग्रथ रूप मे नामाकित किया है। फिर किसी का उन्हे ग्रथ न मानना कोई अर्थ नही रखता। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से मैने उन्हे एक अलग वर्ग मे ही रख दिया है, साथ ही यह भी कि इन ग्रथो के लिपिकार, सम्पादनकर्त्ता भी एक ही व्यक्ति है। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखको ने भी इन रचनाओ को 'ग्रथो की विवरणी' शीर्षक मे स्वतत्र ग्रथो मे गिना है।[2] यह मत समीचीन है। इन ग्रथो का सक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

१ गुरु महिमा

प्रकाशित 'वाणी' के दो पृष्ठो मे मुद्रित यह रचना स्वामी रामचरण की कृतियो मे तो महत्त्वपूर्ण है ही, रामसनेही सम्प्रदाय के साधु एव गृहस्थो मे भी बडी लोकप्रिय है। सत-सम्प्रदायो मे गुरु की बडी महिमा रही है, अत यदि रामसनेही सम्प्रदाय मे मूलाचार्य का यह लघु ग्रथ महत्त्वपूर्ण है तो विस्मय का विषय नही। सम्प्रदाय के विरक्त एव गृहस्थो द्वारा इस ग्रथ का व्यक्तिगत एव सामूहिक पाठ होता है।

विषयवस्तु—गुरु की महत्ता प्रतिपादित करते हुए स्वामी रामचरण लिखते है कि गुरु की सेवा पहले करनी चाहिए। गुरु-सेवा के साथ ही ईश्वर की प्राप्ति होती है। गुरु की कृपा से ही बुद्धि स्थिर होती है एव सासारिक 'तृष्णा-ताप' से मुक्ति मिलती है। गुरु की कृपा से सासारिक भ्रम, कर्म और सशय से छुटकारा मिल सकता है। इसलिए गुरु की पूजा 'तन-मन' से करने का उपदेश स्वामी जी देते है। उनके अनुसार गुरु तो अनन्य है, उसके द्वारा शरीर और मन दोनो निर्मल होते है।[3]

गुरु ज्ञानदाता है, उसके बिना ज्ञानोपलब्धि सम्भव नही, गुरु ही भक्ति-मुक्ति का दाता है, जो गुरु नही करते उन्हे नरक मे जाना पडता है। इसलिए 'नुगरा' का सग नही

---

१. डॉक्टर अमरचन्द्र वर्मा—स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, पृ० १०५।
२. श्री केवलराम स्वामी—श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ६६।
३ अ० भा०, गुरु महिमा, छ० १, २, ३, पृ० २०१।

करना चाहिए। सच्चा गुरु 'शील' से पहचान कराता है और काम-क्रोधादि विकारो से रहित करता है।[1] इसलिए स्वामी जी की मान्यता है कि—

"गुरु गोविन्द सूं अधिका होई।
या सुन रीश करो मति कोई।
प्रथम गुरु सूं भाव बधावै।
गु मिलिया गोविंद कूं पावै।"[2]

स्वामी जी आगे कहते है कि ऐसे व्यक्ति को देखना भी नही चाहिए जो त्यागी, विरागी, सिद्धान्तवादी, इन्द्रियजित् होने के साथ गुरुद्रोही हो। ऐसे व्यक्ति के दर्शन से बुद्धि, नष्ट होती है और ज्ञानहीनता की वृद्धि होती है।[3] विपरीत इसके गुरु-भक्त गुरु को पूर्ण आदर-सम्मान देते है, उनका वचन कभी नही टालते। ऐसे गुरु-भक्त की सगति मे सदैव रहना चाहिए और उसे तन-मन अर्पित कर 'राम-रस' का पान करना चाहिए। सतगुरु के मिलन से मोक्ष की प्राप्ति होती है एव अनन्त जन उसकी महिमा के गीत गाते हैं। इसलिए सब सतो की 'साख' ध्यान मे रखकर गुरु से कपट नही करना चाहिए। उसे 'ब्रह्मरूप' समझना चाहिए।[4] यथा—

"गुरु को ब्रह्म रूप करि जानै।
ताकी बुद्धि चढ़ै परमानै।"[5]

स्वामी रामचरण गुरु-महिमा के गान मे डूबते हुए भी नेत्रो को उन्मीलित रखते हैं। वे गुरु-अवगुण की ओर भी अगुलि-निर्देश कर उससे विरत होने की बात कह जाते है। अत मे वे अपनी निम्नलिखित मान्यता द्वारा गुरु-यश का बखान कर 'गुरुमहिमा' ग्रथ को समाप्त करते हैं—

"सत गुरु कूं मस्तक धरै, रामभजन सूं प्रीति।
रामचरण वै प्राणियां, गया जमारो जीति।"[6]

अभिव्यक्ति पक्ष—दोहा-चौपाई शैली मे लिखी गई इस रचना मे ४ दोहे और २० चौपाइयाँ है। काव्य की भाषा राजस्थानी हिन्दी है। अभिव्यक्ति के लिये उपदेशप्रधान

---

१. अ० वा०, गुरु महिमा, छं० ५, ६, ७; पृ० २०१।
२. वही; छ० ८, पृ० २०१।
३. वही, छ० १३, १४; पृ० २०१।
४. वही, छ० १३, १४, १५; पृ० २०२।
५. वही, छं० १९; पृ० २०२।
६. वही, छ० [दोहा] १; पृ० २०२।

शैली अपनायी गयी है। नारद, दत्त दिगबर, शुकदेव, व्यास और जनकादि की चर्चा से हमारा ध्यान उनसे सबंधित अन्तर्कथाओ की ओर भी जाता है।

२. नाम प्रताप

स्वामी रामचरण के लघु ग्रथो मे यह दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रथ है। प्रकाशित 'वाणी' के छः पृष्ठो मे मुद्रित यह ग्रथ भी रामसनेही जनो मे बडा लोकप्रिय है। फूलडोल के अवसर पर इस ग्रथ का पाठ जनसभा मे होता है। उस अवसर पर होने वाले अन्य कार्यक्रमों की भाँति इसका पाठ भी एक कार्यक्रम है और प्रमुख कार्यक्रम है। यह कार्यक्रम बहुत पहले से होता चला आ रहा है।

विषयवस्तु—निर्गुण उपासना मे नामस्मरण की बडी महत्ता है। निर्गुण सत-साधको ने नाम-सुमिरन को मोक्ष का एकमात्र साधन माना है और उनकी सम्पूर्ण साधना-प्रक्रिया का यह मेरुदण्ड है। यही वह तरी है जिसके सहारे सभी पार हो जाते है और जो इसे भूल जाता है उसकी उपस्थिति यमराज के द्वारे अवश्य होती है।

"जिन-जिन सुमर्‌यां नाम कूं, सो सब उतर्‌या पार।
रामचरण जो बीसर्‌या, सो ही जम के द्वार।"[1]

ग्रथ का पूर्वार्द्ध विभिन्न देवी-देवताओ, पुराण-पुरुषो, एव आचार्य-सतो की एक लम्बी सूची प्रस्तुत करता है। नाम-स्मरण के प्रताप से इन लोगो का जीवन अवश्य प्रभावित हुआ है और आज भी उनकी भगवद्भक्ति आदर्श मानी जाती है। इन नामोपासको मे शिव, पार्वती, शुकदेव, रम्भा, नारद, ब्रह्मापुत्र सनकादि, शेष, ध्रुव, प्रह्लाद, अजामिल, गणिका, हनुमान, वाल्मीकि, गज, जनक, परीक्षित, नामदेव, रामानन्द, कबीर, कृष्णदास पयहारी, अग्रदास, तुलसी, परशुराम, सतदास और अपने गुरु कृपाराम जी की गणना की है। उप-र्युक्त सभी ने निर्मल चित्त से नाम स्मरण किया और राम ने सभी को सद्गति दी। ग्रथ का यह अंश कथा-रस की अनुभूति कराता है क्योकि प्रत्येक नाम के पीछे एक अन्तर्कथा अवश्य है।

ग्रथ का उत्तरार्द्ध 'सुरति शब्द योग' की साधना के विभिन्न सोपानो की स्थितियो से अवगत कराता हुआ जीव-ब्रह्म का 'ब्रह्मदेश' मे मिलन कराता है। इस प्रक्रिया का आरभ रसना द्वारा रामरटन से होता है। फिर मन को एकाग्र करना पड़ता है। रामरटन से रसना के अग्रभाग से पीयूष की अखडित धार प्रवाहित होने लगती है। इस अमृतरस के पान से जलपान की इच्छा समाप्त हो जाती है, अमृत रस से विरत होने को बिल्कुल जी नही करता, भूख भी नही लगती।[2] साधना की इस अवस्था मे शरीर का हर अग सुख की धारा से स्नात रहता है। कवि के शब्दो मे इस अवस्था का वर्णन ध्यान देने योग्य है—

१. अ० वा०, नाम प्रताप, छं० २, पृ० २०३।
२. वही, छं० ४४, ४५; पृ० २०६।

"रस पीवत क्षुधा सब भागी।
कंठा शब्द टगटगी लागी।
नाड़ि नाडि में चले गिलगिली।
सुखधारा अति बहै सिलसिली।
मुख सू कछू न उचरै बैना।
लग्या कपाट खुलै नहि नैना।
श्रवणा चर्चा सुणै न कोई।
कण्ठ ध्यान यह लक्षण होई।
कण्ठ ध्यान कंमकंमी जागै।
रोम रोम सीतंग सो लागै।
हियो गद्‌गदे श्वास न आवै।
नैणा नीर प्रवाह् चलावै।"[1]

इस साधना प्रक्रिया की दूसरी स्थिति तब आती है जब 'शब्दब्रह्म' हृदयस्थ होता है। तब हृदय आलोकित हो उठता है जैसे अँधेरी रात मे चन्द्रमा प्रकाशित हो। उस सुख की महिमा वर्णनातीत है।[2] तृतीयावस्था मे ध्यान-ध्वनि हृदय से चलकर नाभिकमल को चेतना प्रदान करती है। उस ध्वनि से सभी नाडियाँ चैतन्य हो उठती है और रोम-रोम से राग सुनाई पडने लगते है। नौ सौ नाडियो के मगलगीत से मन-भँवर अतिसुख पाता है। शब्द ब्रह्म के अमृतरस से शरीर शीतल हो जाता है।[3] चतुर्थ अवस्था कुण्डलिनी के सहारे शब्द का 'गगन' मे चढने से आरम होती है। 'गगन' तक पहुँचने के विभिन्न सोपान की चर्चा के साथ साधना की चरम सीमा हो जाती है। अनहद नाद की गर्जना, परमज्योति का प्रकाश, सुषमण नीर की झडी मे सुरति का भीगना आदि का वर्णन करते हुए कवि 'ब्रह्म स्पर्श' की स्थिति मे पहुँच जाता है[4] और तब—

"जाके अन्दर ब्रह्मरस बूठा।
सकल विह्‌वार होइ गया झूठा।
कनक कामिनी करै न नेहा।
छक्या ब्रह्मरस रहै विदेहा।
जैसे बूँद मिली सायर मे।
कैसे पकड़ि सकै कोई कर मे।

---

१. अ० वा०, नाम प्रताप, छ० ४६, ४७, ४८, पृ० २०६।
२. वही, छं० ४९, ५०, पृ० २०६।
३. वही, छ० ५१, ५२, ५३, पृ० २०७।
४. वही, छ० १, २, पृ० २०७।

जीव ब्रह्म मिली भया समाना।
ब्रह्म मिल्यां कर्म करै न आना।"[1]

अभिव्यक्ति पक्ष—यह ग्रंथ भी दोहा-चौपाई की शैली मे लिखा गया है। ८ दोहे और ७२ चौपाइयो की यह लघु रचना है। इस काव्यकृति की भाषा राजस्थानी हिन्दी है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से काव्य के पूर्वार्द्ध मे कथाप्रधान और उत्तरार्द्ध मे अध्यात्मप्रधान शैली के दर्शन होते है।

३. शब्द प्रकाश

स्वामी रामचरण रचित छोटे ग्रंथो मे तीसरा ग्रथ 'शब्द प्रकाश' है। प्रकाशित 'वाणी' के ढाई पृष्ठो मे इस ग्रथ का विस्तार है।

विषयवस्तु—राम-नाम-स्मरण की महत्ता का जिस प्रकार प्रतिपादन 'नाम प्रताप' मे हुआ है, वैसा पूरा तो नही किन्तु उसके उत्तरार्द्ध जैसा ही वर्णन इस ग्रथ मे हुआ है। विषय-वस्तु मे कोई नूतनता नही मिलती। रामनाम तारक मंत्र है जिसे गुरु से प्राप्त कर शिष्य विश्वासपूर्वक अहर्निश जपे तो निश्चय उसे ज्ञान का प्रकाश मिलेगा।[2] नाम-स्मरण से शनैः शनैः 'सुरति शब्द योग' की स्थिति तक पहुँचने का वर्णन तो हुआ ही है, साधनावस्था मे शरीर की क्या दशा हो जाती है, इसका चित्र भी कवि ने प्रस्तुत किया है—

"क्षीण शरीर त्वचा सकुचानी।
नीली नस दीसै झलकानी।
पीरो वदन नेतरा लाली।
मुकुर ज्योति ज्यूं दिपै कपाली।"[3]

किन्तु साधना के बाद साधक को 'ब्रह्मपद' की प्राप्ति हो जाती है—

"राम रट्यां का यह प्रकाशा।
मिल्या ब्रह्मपद भवभय नाशा।"[4]

'शब्द प्रकाश' का संदेश निम्नलिखित पंक्तियो में कवि ने स्पष्ट किया है—

"रामचरण कोई राम रटेगा।
सो जन एही धाम लहेगा।

---

१. अ० वा०, नाम प्रताप, छं० ३, ४, पृ० २०८।
२. वही, शब्द प्रकाश, छ० १, २, पृ० २०८।
३. वही, शब्द प्रकाश, छं० ६, पृ० २०९।
४. वही, छं० २१, पृ० २१०।

राम राम निशि वासर गासी।
सो नर भवसागर तिर जासी।"[1]

अभिव्यक्ति पक्ष—दोहा-चौपाई छन्दो मे रचित इस ग्रथ मे ४ दोहे और २४ चौपाइयाँ है। भाषा राजस्थानी हिन्दी है। सतो की उपदेशपरक शैली मे पूरा ग्रथ अभिव्यक्त हुआ है।

४. चिन्तावणी

प्रकाशित 'वाणी' के साढे चार पृष्ठो मे 'चिन्तावणी' ग्रथ का विस्तार है। इस ग्रथ-लेखन का उद्देश्य स्वामी जी ने निम्नलिखित पक्तियो मे व्यक्त किया है—

"बंधे स्वाद रसभोग सैं, इंद्रधा तणें अरत्थ।
उन जीवन कै चेतवे, करूं चिन्तावणि ग्रथ।
रामचरण उपदेशहित, कहूं ग्रंथ विस्तार।
पर्‌यो प्राणि भव कूप मैं, सो निकसै अर्थ विचार।"[2]

उपर्युक्त पक्तियो से स्पष्ट है कि स्वामी जी ने इस ग्रथ की रचना उन लोगो को चेतावनी देने के लिये की थी जो इन्द्रियो को तृप्त करने मे लीन भौतिक रस का भोग करते हैं। इस रचना का उद्देश्य ही सासारिकता मे पडे लोगो को उद्धार का उपदेश देना है।

विषयवस्तु—ग्रथारम्भ मे स्वामी रामचरण मानवमात्र को उसकी दीवानगी देखकर चेतावनी देते हैं—

"दिवाना, चेत रे भाई, तुज सिर गजब चलि आई।
जरा की फोज अति भारी, करै तन लूटि कै ख्वारी।
... .
बहुत कष्ट करि पाईयो, मिनख जन्म अवतार।
ताहि सुफल करि लीजिए, भजकै सिरजनहार।"[3]

आगे के आठ खण्डों मे गर्भावस्था से लेकर बालपन, तरुणाई, वार्द्धक्य, मृत्यु, यम-यातना का वर्णन करके संसार की असारता और मिथ्यात्व की चर्चा करते है। अत मे

१. अ० वा०, शब्द प्रकाश, छ० २२, पृ० २१०।
२. वही, चिन्तावणी, छ० २; ३, पृ० ९७७।
३. वही, चिन्तावणी, पृ० ९७७।

उपदेश करते है कि बार-बार जन्म ग्रहण करने का कारण वासना मे जीव का बँधा रहना है। अहर्निश राम का नाम-स्मरण करने से जन्म-मृत्यु से मुक्ति मिल सकती है। अतिम छद मे अपनी चेतावनी स्वामी जी बडे मार्मिक शब्दो मे दुहराते हैं—

"चौरासी की मार, भजन बिना छूटै नहीं।
तातैं होइ हुंसियार, यहै सीख सतगुरु कही।"[1]

अभिव्यक्ति पक्ष—इस ग्रंथ की रचना दोहा, चामर और सोरठा छन्दो मे हुई है। छन्द संख्या इस प्रकार है—दोहा २५, चामर १००, सोरठा २। १२७ छन्दो की यह रचना आठ खण्डो मे है। पहले खण्ड मे सामान्य चेतावनी, दूसरे मे गर्भावस्था, तीसरे खण्ड मे जन्म और शैशव, चौथे मे यौवन पूर्वार्द्ध, पाँचवें मे यौवन उत्तरार्द्ध, छठें मे वार्द्धक्य, सातवें में मृत्यु, आठवे मे नरक-यातना और अतिम खण्ड मे सासारिकता से मुक्ति के लिये हरि-भजन की युक्तियों का वर्णन है। अभिव्यक्ति के लिये राजस्थानी हिन्दी को स्वामी जी ने अपनाया है किन्तु अनेक विदेशी मूल के शब्दो का भी धडल्ले से प्रयोग करने मे वे चूके नही है। यथा—गाफिल, दीदार, निजर आदि। किन्तु ये शब्द हिन्दी भाषा में पर्याप्त समय से प्रयोग मे आने के कारण हिन्दी के ही हो गये है। अत: इनका प्रयोग अस्वाभाविक नही लगता। यह ग्रथ उपदेशपरक शैली मे लिखा गया है।

५. मन खण्डन

'मन खण्डन' शब्द का अर्थ मन मारना है। इस ग्रथ मे स्वामी जी मन खण्डन का उपाय ढूंढ़ते है। यद्यपि यह ग्रंथ अत्यन्त लघुकाय है, फिर भी मन खण्डन जैसे महत्त्वपूर्ण विषय की चर्चा के कारण महत्त्वपूर्ण हो गया है।

विषयवस्तु—सप्तधातु निर्मित काया मे चेतन राजा है और मन प्रधान है। इस मन के तीन प्रबल योद्धा सत्, रज, तम है और पॉच पियादे [शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध] इसके साथ हैं। फिर इन पाँचो के पाँच-पाँच घर है। ये सभी अपना-अपना भोग इस काया नगरी से चाहते है। प्रधान मन की निरकुशता देखकर राजा चेतन ने मन को नियन्त्रित करने के लिये 'निजमन' की कल्पना की है। यह 'निजमन' मन की चोरी पकडकर राजा चेतन को बता देता है। 'निजमन' अपने राजा का सेवक है।[2] स्वामी जी ने मन को 'परकृति मन' की सज्ञा से अभिहित किया है। 'निजमन' 'परकृति मन' से कहता है—

"मैं तो हुकम राय को करि हूं।
तेरी चोरी कागद धरि हूं।
तेरैं भोग राय दुख पावै।
बारबार भ्रम मांही आवै।"[3]

---

१. अ० वा०, चिन्तावणी पृ० ९८१।
२. वही, मनखण्डन, चौपाई १, २, ३, पृ० ९८१।
३. वही, चौ० ४, ५; पृ ९८१।

यह 'निजमन' मन के साथ हो गया है और बराबर लगा रहता है। वह पुन 'परकृति मन' से कहता है—

"मेरें धणी विदा कियो मोहि।
चोरी करता पकड़ूं तोहि।
तेरा पांच पयादा मारूं।
रज, तम दोय टूक करि डारूं।
सात्विक कूं मैं लेहूं फेर।
काढूं नगर पचीशूं हेर।"[1]

स्वामी जी के अनुसार विषयवासना मन का भोग है पर यह 'निजमन' के लिये रोग है।[2] चेतन राजा का सेवक 'निजमन' 'परकृति मन' को हर क्षण नियत्रित करने के लिये उसके सिर पर सवार रहता है। मन सासारिकता की ओर जाता है किन्तु 'निजमन' वैराग्य की ओर उन्मुख करता है। मन का दॉव तनिक भी नही लगता क्योकि 'निजमन' उसकी छाती पर पॉव रखे रहता है। मन को 'निजमन' द्वारा नियत्रित कराने के अतिरिक्त मनखण्डन का अन्य उपाय नही। जो मनुष्य मन के मारे है उन्हें चौरासी लाख योनियो मे विचरना पडता है और जिन्होने मन को मार लिया है वे 'परम धाम' के वासी हुए है। इसलिए इस सदर्भ मे स्वामी जी उपदेश देते हैं कि—

"मन खण्डै रामै भजै, तजै जगत गृह कूप।
रामचरण तब परसिये, आतम शुद्ध स्वरूप।"[3]

अभिव्यक्ति पक्ष—इस ग्रथ मे दोहा, चौपाई और सोरठा छन्दो का प्रयोग हुआ है। छन्दो की सख्या इस प्रकार है—दोहा ४, चौपाई २९ और सोरठा १। भाषा राजस्थानी हैं एव प्रतीक शैली का सहारा लिया गया है। यद्यपि ग्रथ की रचना सवाद शैली मे नही हुई है फिर भी 'निजमन' के कथन 'मन' को सबोधित है। साम्प्रदायिक दृष्टि से यह लघु रचना बडी महत्त्वपूर्ण।

६. गुरुशिष्य गोष्ठि

यह लघु रचना प्रकाशित 'वाणी' मे आधे पृष्ठ की है। ग्रथ के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमे गुरु-शिष्य का पारस्परिक विचार-विनिमय हुआ है।

---

१. अ० वा०, मन खण्डन, चौ० ६, ७, पृ० ९८१।
२ विषय वासना मन का रोग।
निजमन इनकू जाणै रोग।
—वही, छं० १०, पृ० ९८१।
३. वही, मन खण्डन, दो० १, पृ० ९८२।

विषयवस्तु—संसार वृक्ष यद्यपि निराधार है फिर भी माया ने इसे मोह की डोर से तृष्णा के खूँटे मे बांध रखा है। इस मायात्मक जगत् के आकर्षण से बचने के लिये रामरटन ही एकमात्र विकल्प है। शिष्य गुरु से कहता है कि माया कुटनी है, वह मन को नहीं छोडती, तृष्णा को बढ़ाती है, वह मोह बधन से बाँधती है, फिर कैसे मुक्ति मिले ? गुरु ने समाधान किया कि वीर की भाँति वैराग्य की तलवार से सभी बधन काट डालो।[1] अंत मे स्वामी जी कहते है कि "ज्ञान भक्ति बैराग बिन, कोइ न उतर्‌यो पार।"[2]

अभिव्यक्ति शैली—इस ग्रथ मे झपाल और दोहा छन्दो का प्रयोग स्वामी जी ने किया है। छन्दो की सख्या इस प्रकार है—झपाल १२, दोहा २। भाषा राजस्थानी है। उपदेशपरक सवाद शैली मे इस ग्रथ की रचना हुई है।

७. ठिग पारख्या

'ठिग पारख्या' प्रकाशित 'वाणी' मे कुछ पक्तियो की रचना है। ठिग पारख्या का अर्थ है ठग परीक्षा।

विषयवस्तु—कुछ पक्तियो की इस रचना मे स्वामी रामचरण ने स्वय को ठग की संज्ञा दी है। उनका कथन है कि ससार उन्हे ठग कहता है। इस कथन को वे स्वीकार करते हुए कहते है कि पहले मैंने माता-पिता, भाई-बहन, सगे-सबंधी, पत्नी, कुल-परिवार आदि को ठगा। वे लोग मुझसे ससार चलाने की आशा करते थे, पर मैने सभी को त्याग कर अपना कार्य किया अर्थात् भगवद्‌भजन मे लीन हो गया। इन सब को ठगने के बाद मैने अपने मन को ही ठगा और उसे बरबस पकड़कर अपने वश मे किया। मन इतना अधिक नियन्त्रित हुआ कि वह हरि के चरण मे लीन हो गया और पुन: वह नही जिया। संसार मुझे उचक्का कहता है, यह भी सत्य है क्योकि मैंने उचक कर 'सत्य शब्द' को पकड लिया। गुरुमुख से जो ज्ञान की वाणी निकली उसे मैंने उचकाकर हृदय मे धारण कर लिया। अंत मे कहते है कि मैं ऐसा ठग उचक्का हूँ जिसे यमराज का धक्का नहीं लगता।[3]

अभिव्यक्ति पक्ष—इस रचना मे चौपाई और दोहा छन्दो का प्रयोग स्वामी जी ने किया है जिनकी सख्या इस प्रकार है—चौपाई १४, दोहा १। भाषा राजस्थानी हिन्दी है। उत्तम पुरुष मे अभिव्यक्त होने के कारण आत्मकथन शैली कही जायगी। वैसे ठग, उचक्का कहकर उन्होंने अपने ऊपर ही सही, व्यग्य किया है। अत: इसे व्यंग्य प्रधान आत्म-कथन शैली कहना समीचीन होगा।

---

१. अ० वा०, गुरुशिष्य गोष्ठि, पृ० ९८२।
२. वही, पृ० ९८३।
३. वही, ठिग पारख्या, पृ० ९८३।

८. जिंद पारख्या

विषयवस्तु—जिंद शब्द का अर्थ है भूत। तात्पर्य यह कि जो सासारिक जीवन के लिए भूत बन चुके है अर्थात् साधुजन, उनकी परख का भाव इस लघुतम कृति मे स्वामी जी ने व्यक्त किया है। केवल सिर मुँडाने, भीख माँगने और लकडी लेकर धुनी रमाने से कोई साधु नही हो सकता। सच्चा साधु वह है जो बुद्धि के छुरे से मन को मूँडे, जो अपने विवेक की झोली मे तत्त्व सग्रह करे। सदा जागृत होकर प्रेम जगावै, जो हर्ष-शोक की धुनी रमाये और उसमे 'मैं तै' की लकडी का ईंधन लगावे।[1] सच्चा साधु मत, पथ, जाति आदि से ऊपर होता है। कवि की निम्नलिखित पक्तियाँ इस कथन की पुष्टि मे सहायक है—

"हिन्दू तुरक दोऊ सीं न्यारा।
निर्पख रहै रब्बदा प्यारा।
कोई न मत का पकड़ै बन्ध।
तत कूं ताय भया निर्बन्ध।"[2]

अभिव्यक्ति पक्ष—केवल चौपाई छन्द का प्रयोग हुआ है जिसकी सख्या ९ है। भाषा राजस्थानी हिन्दी है, पर अन्य मूल की भाषा के कतिपय शब्दो का प्रयोग भी हुआ है। जैसे—जिंद, उस्तरा, गाफिल, रब्बदा। अभिव्यक्ति के लिये तथ्यनिरूपण की शैली अपनायी गयी है।

९. पण्डित संवाद

यह भी स्वामी रामचरण की एक लघु रचना है। कबीर आदि अन्य सत कवियो की भाँति स्वामी रामचरण भी समाज के ठेकेदारो, पाखण्डप्रिय ढोंगियो को खरी-खोटी सुनाने मे पीछे नही रहे। स्मरणीय है कि अपने भीलवाडा के जीवन मे उन्हे इन तत्त्वो से बडा सघर्ष करना पडा था। यद्यपि 'पडित सवाद' मे समाज के सभी वर्गो की चर्चा नही है, किन्तु समाज के अभिजात-वर्ग पर उनकी दृष्टि सीधे पडी है। समाज का अगुवा-वर्ग समाज-जीवन को प्रभावित करता है। समाज के सृजन, विकास और पतन—सभी मे उसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। अपने जीवन की कुरूपताओ से इन लोगो ने समाज-जीवन को भी कुरूप कर रखा था और स्वामी रामचरण द्वारा प्रचारित 'राम धर्म' को वे अपने मार्ग की बहुत बडी बाधा समझ बैठे थे। स्वामी रामचरण फकीर थे, उन्हे किसी की प्रसन्नता या अप्रसन्नता की परवाह नही थी। अत' यथार्थ के धरातल पर अपनी वाग्देवी को चलने के लिये विवश किया।

---

१ अ० वा०, जिंद पारख्या, पृ० ९८३।
२. वही, जिंद पारख्या, पृ० ९८४।

विषयवस्तु—ग्रंथ के आरम्भ में ही स्वामी जी ब्राह्मणों को उनके कुकर्मों के लिये फटकारते हैं और बकवाद करने से रोकते हैं—

"ब्राह्मण बाद न कीजिये, तेरी लच्छ विचार।
कर्म छाड़ि कुकर्म करै, तो धका खाय दरबार।"[१]

वस्तुत स्वामी रामचरण एक तो वैश्य-कुल के थे, दूसरे समाज को सदाचार, शील और नामोपासना की शिक्षा देते थे, सामाजिक रूढियो एव पाखण्डो से विरत होने की बात भी करते थे। राजस्थान की हिन्दू प्रजा और वहाँ के राव-राजा पण्डितो की जागीर थे, उनका स्वामी जी के बढते प्रभाव से आतंकित होना स्वाभाविक ही था। इसलिये उन्होने स्वामी जी का विरोध किया, पर स्वामी जी निश्चिन्त भाव से सामाजिक रूढ़ियो एवं पाखण्डो पर प्रहार करते रहे और उसके लिये उत्तरदायी पण्डितो की खबर लेते रहे। 'पण्डित संवाद' थोडे म इन परिस्थितियो का सम्यक् चित्राधार है।

पण्डित समाज का एक चित्र स्वामी जी की दृष्टि मे इस प्रकार है :—

"कलियुग के पंडित पाखण्डी।
घर में कुबुधि करकसा रण्डी।
न्हाय धोय अपरस ह्वै बैठा।
मन मे मैलि चाहि का पैठा।"[२]

इसलिये उन्होने तत्काल सुझाया कि शरीर धोने से कोई उत्तम नही होता, उत्तम मन नामस्मरण से होता है।[३] किन्तु पण्डित करते क्या हैं? उनके कार्य-व्यापार का एक सक्षिप्त ब्यौरा स्वामी जी के शब्दो म ध्यान देने योग्य है—

"पापी कूं धर्मी कह भाखै।
रामजनां सूं द्रोहता राखै।
माथे शिव का तिलक लगावै।
शिव सुमरै सो भेव न पावै।
... .
कामणि संग कूकर ज्यूं लागै।
विष की लहरि सुमति नहिं जागै।"[४]

१. अ० वा०, पंडित संवाद, पृ० ९८४।
२. वही, पृ० ९८४।
३. 'तन धोया उत्तम नहिं कोई। उत्तम नाम लियां मन होई'—वही।
४. वही।

वे पण्डितो को ललकारते हैं इस प्रश्न के साथ—

"तन मन मैल्यो मूत विकारा।
मोहि बताय कहाँ आचारा।
जाँ द्वारैं होइ कै तूं आया।
सोई फिर भुगतण कूं ध्याया।"[1]

निरुत्तर पडित को वे उसकी खीझ पर ध्यान न देते हुए उपदेश देते है।—

"द्वारा दोन्यूं एक कहीजे।
पंडित होइ ये काम न कीजे।
रह्या मास दस प्रभ के माही।
काया रस सू रुचि उपजाहीं।
. . . .
बहुर्‌यूं फिर वाही मनमानी।
सैंधी ठाम सूं रुचि उपजानी।
कैसे तुम कूं सुच्चि कहीजे।
उत्तम होई ये कृत्य न कीजे।"[2]

आदर्श पण्डित के लक्षणो की चर्चा वे निम्नलिखित पंक्तियो मे करते है—

"पण्डित सोही पिंड कूं शोधै।
महा अपरबल मन कू बोधै।
काम क्रोध का संग निवारै।
आशा छाड़ि निराश विचारै।
ईश्वर इच्छा रहै उदास।
भिक्षा भोजन परम निवास।
माया का संग्रह नहि करै।
निशि दिन ध्यान ब्रह्म को धरै।"[3]

स्वामी रामचरण की दृष्टि मे कोई ऊँच या नीच नही है। चारो वर्ण राम द्वारा निर्मित है, इसमे कोई उत्तम-मध्यम नही। हाँ, मध्यम वही है जो राम-विमुख है। पण्डितो को वे बार-बार राम-भजन के लिये प्रेरित करते है और विश्वास के लिये वेद की साक्षी भी देते है—

---

१. अ० वा०, पण्डित संवाद, पृ० ९८४।
२. वही।
३. वही।

"मेरी बात नहीं पतियाना।
तो वेद मांहि फिर देख सयाना।
वेद बतावै सो अब कीजै।
रामचरण कूं दोष न दीजै।
हम तेरा कारज की भाखी।
तूं हम सूं दुबध्या जनि राखी।"[१]

अभिव्यक्ति पक्ष—दोहा, सोरठा और चौपाई छन्दो मे यह ग्रथ रचा गया है। छन्द सख्या इस प्रकार है—दोहा २, सोरठा २, चौपाई २२। भाषा राजस्थानी हिन्दी है। उपदेशपरक तथ्य-निरूपण शैली मे 'पण्डित सवाद' अभिव्यक्त है।

१०. लच्छ अलच्छ जोग

प्रकाशित 'वाणी' के दो पृष्ठो मे इस रचना का विस्तार है। जहाँ 'पण्डित सवाद' मे स्वामी रामचरण ने समाज के अगुवा किन्तु ढोगी ब्राह्मणो, पण्डितो की खबर ली है और आदर्श पण्डित के लक्षण गिनाकर उन्हे नाम-स्मरण करने की सीख दी है, वही उन्होने 'लच्छ अलच्छ जोग' मे साधु वेशधारी पाखण्डियो की भी खबर ली है और सच्चे साधु के लक्षण गिना कर उनकी महिमा कही है। यह ग्रथ भी उनकी निर्भीक प्रवृत्ति का परिचायक है।

विषयवस्तु—ग्रथारम्भ मे स्वामी रामचरण अपनी बात कहने से पूर्व सभी साधुओ से विनय करते है कि उनकी बात सभी साधु सुनें, पहले ही भडकें नही। यथा—

"सब साधां सूं बीनती, कीज्यौ बांच विचार।
पहले ही मति भिड़कज्यो, मैं खानाजाद तुम्हार ॥"[२]

इस निवेदन के साथ उन्होने साधुवेशी असाधुओ की कडी आलोचना आरम्भ की। उनके अनुसार कलियुग मे नागा साधु एक विपत्ति है। यदि कही यज्ञमहोत्सव हो रहा है तो ये उसे विध्वस करने का प्रयास अवश्य करते हैं, इन नागाओ की फौज से 'नगरी दुनिया' आतकित हो उठती है। निर्वाणी, निर्मोही, गूदडधारी, विरक्त, खाकी, निम्बावत, मध्वाचार्य के अनुयायी, विष्णुस्वामी के अनुयायी, निरजनी, दादू पथी, आदि अनेक मत पथो के वेश धारणकर लोग घूमते है पर साधु-मत को कोई नही समझता। साधुओ की वेश-भूषा, बोलचाल, अस्त्र-शस्त्रो आदि की विस्तार से चर्चा इस ग्रथ मे हुई है। उनके धूनी लेना, आसन जमाना आदि के सबध मे भी अपना मत देते है। ये लोग वसूली करते फिरते

---

१. अ० वा०, पण्डित संवाद, पृ० ९८४।
२. वही, लच्छ अलच्छ जोग, पृ० ९८६।

है और लोग इनसे डरकर विरत होते है। उनके अनेक दुर्गुणो की चर्चा करते हुए वे उन्हें 'रण्डीदास' भी कह देते है और अन्त मे कहते है—

"मैं कहा लगि करूं बडाई।
ये नागा की ठकुराई।

रामचरण नागा नगन, प्रत्यग काल स्वरूप।
जगत विचारो क्या करै, धड़कौ मानै भूप।"[1]

'साध लच्छ वर्णन' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी रामचरण सच्चे साधु की पहचान बताते है। साधु भगवान के चरण सेवक होते है। जब इन साधुओ की मण्डली पधारती है तो नगर भर मे प्रसन्नता व्याप्त हो जाती है। ये गरीबनिवाज होते है। सभी लोग इनके दर्शन हेतु जाते है। ये मधुरभाषी होते है। ये विभिन्न मत-पथो के झमेले से दूर रहकर एक 'राम' का ध्यान करते है। कवि के शब्दो मे उनके कुछ लक्षण इस प्रकार है—

"ये लोभ मोह बैरागी।
यां रीति जगत की त्यागी।
ये हर्ष शोक सूं न्यारा।
माया का तज्या पसारा।
या काम क्रोध रिपु मार्‌या।
या शांसा सकल से हार्‌या।
ये निर्द्वन्दी निरवादी।
ये नहसगी नहस्वादी।
या सार पचीशूं मारी।
ये ऐसा बड़ा खिलारी।"[2]

सच्चे साधु भाँग, तम्बाकू, गाँजा आदि अमलो से दूर रहते है। कवि के शब्दो मे ये—"अमल रामरस खावै, निशिवासर नीद न आवै।"[3]

ग्रथ के अतिम खण्ड मे इन्होने साधुओ के जो लक्षण गिनाये है, वे सभी रामसनेही साधुओ मे पाये जाते है अर्थात् रामसनेही साधु के लक्षण आदर्श है। कवि के शब्दो मे कुछ इस प्रकार है—

---

१ अ० वा०, लच्छ अलच्छ जोग, पृ० ९८७।
२. वही, लच्छ अलच्छ जोग, पृ० ९८७।
३. वही।

"सब राम राम की वाणी।
ये साधां की निशाणी।
कोइ बैठा बाणी बांचै।
ये मतं लग्या है सांचै।
कोइ निर्गुण सापद गावै।
सब साधां के मन भावै।
... .
ये मुख सूं झूठ न भाखै।
ये इष्ट सांच को राखै।
ये परधन सूं रह रूठा।
ये कूड कपट सूं पूठा।
सतगुरु की सेवा शूरा।
ये साधमता में पूरा।
ये पाणी पीवै छाण्यो।
या सब घट आतम जाण्यो।
ये हिंसा सूं रह डरता।
ये निरखि निरखि पग धरता।
ये नांही दुख का दाता।
ये चाहू वै सब कुसलाता।
श्रद्धा को भोजन पावै।
कै भिक्षा करिकै खावै।
ये निर्मल बुद्धि शरीरा।
ये जैसो शीतल नीरा।
ऐसी मति कै साधू।
ये दूजा सकल उपाधू।"[1]

अभिव्यक्ति पक्ष—ग्रंथ 'लच्छ अलच्छ जोग' मे दोहा, चौपाई और चम्पक छन्दो का प्रयोग हुआ है जिनकी सख्या इस प्रकार है—दोहा ५, चौपाई ४ और चम्पक ६३। इस ग्रंथ मे स्पष्टतया तीन खण्ड है। प्रथम खण्ड मे नागा साधुओ की आलोचना, दूसरे मे सच्चे साधुओ के लक्षण और तीसरे मे रामसनेही साधुओ की पहचान दी हुई है। इसकी भाषा सरल, बोलचाल की राजस्थानी हिन्दी है। तथ्यनिरूपण की निवेदन शैली मे इस ग्रथ की रचना हुई है।

---

१. अ० वा०, लच्छ अलच्छ जोग, पृ० ९८८

११. बेजुक्ति तिरस्कार

तीखी आलोचना, अतियथार्थ से भरपूर यह ग्रथ स्वामी रामचरण के निर्भीक एव स्पष्टवादी व्यक्तित्व का परिचायक है। प्रकाशित 'वाणी' मे लगभग एक पृष्ठ मे ही इसका विस्तार है।

ग्रथारम्भ मे ही स्वामी रामचरण तारस्वर मे घोषित करते है कि इस कलियुग मे कोई विरला ही विरक्त होगा अन्यथा सभी 'कनक कामिनी' मे बुरी तरह लिप्त होकर साधुमत खो चुके है।[1] उन्होने कनक कामिनी मे रत रहने वाले काम-दाम की चिंता करने वाले, रामभजन से विरत होकर वन-बस्ती मे माँगने वालो को बार-बार धिक्कारा है। अपनी खीझ मे वे विभिन्न वेषधारियो की निन्दा तो करते ही है, व्यग्यक्ति करने से भी नही चूकते। मुण्डित विरक्तो पर वे किस प्रकार टूटते है, ध्यान देने योग्य है—

"भद्र भेष नारी सू सग।
बिना मूंछ दोन्यू इक रंग।
मूंछा बिना पुरष नहि दीसै।
जैसे रांड रांड मिल पीसै।
बार-बार वाकू धिरकार।
विरक्त होइ भुगते भगद्वार।"[2]

इसी प्रकार केशधारी सन्यासियो का पर्दाफाश निम्नलिखित पक्तियो मे करते है—

"माथै बाल रखै सन्यासी।
केश कस्या कामणि संग वासी।
वाकी जटाए वाका पटा।
उलझ पुलझ दोन्यां का लटा।
बारबार वाकूं धिरकार।
खाख चढाय चढै भगद्वार।"[3]

स्वामी रामचरण ने ऐसे ही कनफट्टा योगियो, भगवाधारियो, जैन यतियो, दिगम्बरो तथा विभिन्न वेशियों की खबर तो ली ही है कलमापाठी, रोजा-नमाज के विश्वासी मुल्लाओ को भी नही छोडा है। यथा—

---

१. रामचरण कलु काल मे, बिरकत बिरल कोय।
कनक कामणी रत घणा, बैठा जतमत खोय॥
—अ० वा०, लच्छ अलच्छ जोग, पृ० ९८८

२. वही, पृ० ९८८।

३. वही, पृ० ९८८-८९।

"जिंदा होय जिंद नहिं खोजा।
कलमा बाग निवाजा रोजा।
स्याह सब्ज नीला पट रंग।
नकटी नारि निसरड़ी संग।
बारबार वाकूं धिरकार।
भेख पहर भुगतै भगद्वार।"[१]

सभी वेशधारियों को धिक्कार कर अंत में स्वामी रामचरण जी इस निष्कर्ष पर पहुँचते है—

"बेजुक्ति जुक्ति करि मान ली, हरि हरिजन सूं तोड़।
सतगुरु सूं मुख मोड़ कै, फिरै जु मनसा मोड़।
रामचरण ऐसे घणे, कनक कामणी रत्त।
उभय जीत रत राम सूं, बिरला जन बिरक्त।"[२]

अभिव्यक्ति पक्ष—स्वामी रामचरण ने इस ग्रंथ मे दोहा, चौपाई और सोरठा छन्दों का प्रयोग किया है, जिनकी संख्या इस प्रकार है—दोहा ३, चौपाई १४, और सोरठा १। भाषा बोलचाल की राजस्थानी हिन्दी है। ग्रंथ में व्यंग्यात्मक तथ्य निरूपण शैली के दर्शन होते है।

१२. काफर बोध

अति लघुकाय होने के बाद भी 'काफर बोध' महत्त्वपूर्ण रचना है। स्वामी रामचरण का समय उत्तर मुगलों का समय है। यद्यपि मुगल शासन पतनोन्मुख था फिर भी मुसलमान अपने को शासक जाति का समझ कर हिन्दू जाति को हेय दृष्टि से देखते थे और हिन्दुओं को 'काफिर' कहते थे। इस काफिर शब्द से प्रेरित होकर स्वामी जी ने यह रचना की है।

ग्रंथ के आरंभ मे ही 'काफिर' किसे कहते है, इस प्रश्न का उत्तर स्वामी रामचरण ने देना प्रारम्भ किया है और तेज स्वर में उन्होंने मुसलमानों का प्रत्याख्यान भी किया है। काफिर वह है जिसे मियाँ कहते है, जिसके हृदय मे जीवहत्या का भाव रहता है। काफिर की कहानी स्वामी रामचरण के शब्दों मे सुनिए—

"गले विराणै करद चलावै।
काफर मांस पराया खावै।
काफर हरै दुनी का माल।
काफर चलै काफरी चाल।

१. अ० वा०, लच्छ अलच्छ जोग, पृ० ९८९।
२. वही, पृ० ९८८।

काफर माडे झूठाबाद।
इन्द्रया हेत करै अपराध।"[1]

काफिर विषय-वासना मे लीन रहता है, वह धर्म छोडकर ससार मे मस्त रहता है। उसकी कथनी और करनी मे अन्तर होता है। स्वामी रामचरण हिन्दुओ को काफिर कहने वाले मुसलमानो को सबोधित करते है—

"कहर करद कूं दूरि निवारो।
महर मया हिरदा मै धारो।
राम रहीम एक ही जाणो।
दुबध्या दिल सू दूरि उठाणो।"[2]

राम-रहीम की एकता का प्रतिपादक कवि मन से सदेह दूर करने की बात इसलिए भी करता है क्योकि 'दुबध्या सूं साहिब है दूरा।'[3] अन्त मे काफर की परिभाषा करते हुए वे कहते है—

"काफर हिन्दू तुरक न होई।
काफर गुन्हीं खुदाय का सोई।
हम तुम काफर नाही दोय।
कियां बंदगी बंदा होय।
बिना बंदगी काफर होई।
मुख सू कह्या न बदा होई।"[4]

स्वामी जी इसी सदर्भ मे कहते है कि ये मुसलमान ज्ञान के अभाव मे हैरान होते है। अन्य लोगो को काफिर कहते है किन्तु स्वय शुद्ध न होने के कारण काफिर की कोटि मे आते है। वस्तुतः कोई भी काफिर नही जो लोकोत्तर मार्ग का राही है।[5]

अभिव्यक्ति पक्ष—केवल चौपाई छन्द का प्रयोग इस रचना मे हुआ है जिनकी सख्या १२ है। बोलचाल की सामान्य राजस्थानी भाषा है किन्तु प्रत्याख्यान होने के कारण भाषा मे तेजी है।

---

१ अ० वा०, काफर बोध, पृ० ९८८।
२ वही, पृ० ९९०।
३ वही, पृ० ९९०।
४. वही, पृ० ९९०।
५ वही, पृ० ९९०।

१३. शब्द

स्वामी रामचरण रचित छोटे ग्रथो मे यह अंतिम रचना है। छः शब्दो की इस रचना मे स्वामी जी ने नाम-महिमा के साथ-साथ कलियुगी ढोंगियो का तिरस्कार भी किया है।

विषयवस्तु—यह ससार तीन गुणो वाला है, स्वामी जी इन तीनों से परे चौथे मे रत होने की बात कहते है। इस सदर्भ की ये पक्तियाँ उल्लेखनीय हैं—

"तीनां सेती तर्क करि चित चौथे राता।
जिन ये भेद बताईया सो सतगुरु दाता।
ओसां आरत ना बुझै बिन पावस पाणी।
रामचरण ई शब्द की संधि साधां जाणी।"[1]

यह चौथा 'शब्द' 'राम' है जिसकी सधि साधु ही जानते है। यह तीनो गुणो से परे है। इसका रहस्य बतलाने वाला सतगुरु ही है।

कलियुगी योगियो और ब्राह्मणों से स्वामी जी को स्वाभाविक अरुचि है। मुद्रा-भगवाधारी को ससार योगी कहता है किन्तु वह सच्चे अर्थों मे योगी नही है क्योकि वह आदि-पुरुष का रहस्य नही जानता, 'सुरति शब्द का योग' उसे नही मिला। वह भीख माँगता है, नाना प्रकार के भोग-विलासो मे लिप्त रहता है, योगिनी के साथ निकल जाता है। जीवित अवस्था मे वे इतना कर्म कमाते है और मरने के बाद 'पीर' की सज्ञा से अभिहित होते है। ये पचरस भोगी कलियुग के योगी है। इसी प्रकार ब्राह्मणों की खबर लेने मे भी वे नही चूकते हैं। ब्राह्मण अपनी स्थिति से गिर चुका है और साधुओ से व्यर्थ 'कुवाद' करता है।

अभिव्यक्ति पक्ष—निशाणी, चौपाई और दोहा छन्दो मे लिखित इस रचना मे ६ शब्द हैं। ढोंगी ब्राह्मणो और योगियो का पर्दाफाश करते समय कवि का स्वर तीव्र हो उठा है। भाषा बोलचाल की राजस्थानी हिन्दी है। तथ्य-निरूपण की वर्णनात्मक शैली मे इस ग्रंथ की रचना हुई है।

३. बड़े ग्रंथ

स्वामी रामचरण ने अगबद्ध वाणी एव छोटे ग्रथो के अतिरिक्त नौ बडे ग्रथ भी लिखे हैं, जिनके नाम निम्नलिखित है—

१. अणभो विलास
२. सुख विलास
३. अमृत उपदेश
४. जिज्ञास बोध

---

१. अ० वा०, शब्द, पृ० ९९०।

५ विश्वास बोध
६. विश्राम बोध
७. समता निवास
८. रामरसायण बोध
९ दृष्टान्तसागर

उपर्युक्त नौ ग्रथ स्वामी जी के महा सग्रह ग्रथ 'स्वामी जी श्री रामचरण जी महाराज की अणभै वाणी' के मुख्याश का निर्माण करते है। इन रचनाओ का विस्तार महाग्रथ के ८०० से ऊपर पृष्ठो मे हुआ है। इन सभी ग्रथो के सम्पादक एव लिपिकार स्वामी रामचरण के अवधूत शिष्य एव उनके आचार्य पद के उत्तराधिकारी स्वामी रामजन है। यहाँ इन सभी का सामान्य परिचय एव सक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत है।

१. अणभो विलास

सम्पादन—स्वामी रामचरण रचित इस महत्त्वपूर्ण ग्रथ का सम्पादन स्वामी रामजन द्वारा माघ सुदी पूर्णिमा, मगलवार सवत् १८४५ वि० को पूर्ण हुआ। शुभस्थान शाहपुरा मे सतो के सत्सग मे इस 'अणभो विलास' नामक ग्रथ को यह स्वरूप दिया गया।[१]

"रामचरण महराजि के, अणभो छोल अनूप।
ताकी जोड बणाय येह, कीन्हो ग्रंथस्वरूप।"[२]

इसी संदर्भ मे सग्रहकार रामजन जी द्वारा रचित ग्रथ-महिमा की निम्नलिखित पक्तियाँ महत्त्वपूर्ण है—

याको सवाद मीठो बीठो हम चाखियेह,
फीको लगै काम दाम रामजी सू राग है।
उत्तम शबद सत्य नित जाकी शोभ भारी,
उचारी है गिरा ज्ञान अज्ञता को त्याग है।
भगती भजन मन जीतिबे की गति कही,
गही जो विचारवान वोही बड़भागी है।

---

१. सवत सख्या सार, अट्ठारा सै पैंताल जू।
माघ सुदी भूबार, पूनूँ पूरण ग्रथ है।
शाहिपुरै शुभ धाम, सत्सगति सताशरण।
ग्रथ वर्ण्यो येह नाम, निज अणभोज विलास जू॥
—अ० वा०, अणभो विलास के अन्तर्गत रामजन का वक्तव्य, पृ० ३२४

२. वही।

अणभै बिलास महासुख को निवास जानूं,
बखानू जो कहा येह परम वैराग है।"[1]

ग्रथ के अन्त मे रामजन जी ने उपर्युक्त पक्तियो मे स्पष्ट कहा है कि स्वामी रामचरण महाराज के अनुपम अनुभवो को जोडकर ग्रथ का रूप दिया। इस पूरे ग्रथ को २१ प्रकरणो मे विभक्त किया गया है। इसको सम्पादक 'अणभो विलास आनंद निवास' नाम देता है।

विषयवस्तु—इक्कीस प्रकरणो मे विभक्त इस ग्रथ के प्रत्येक प्रकरण का नामकरण उसकी विषय वस्तु को ध्यान मे रखकर किया गया है। यहाँ प्रत्येक प्रकरण के नाम एव उसके अन्तर्गत आये विषयो की सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत है—

प्रकरण सख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
१	अणभो समोध गुरुशिष्यपारख निरूपणम्	त्रिधास्तुति, गुरुसमर्था, गुरुदातार, लोभी गुरु, शिष्यगुरुमुखी-मनमुखी।
२.	दुनियागति अपारख निरूपणम्	शिष्यपारख शिष्यप्रतापी, गुरुशिष्य पारख, नृदेह दुर्लभता, अज्ञानि, दुनिया गति।
३.	भक्ति विधान टेक प्रतीति निरूपणम्	निष्काम भक्ति, कन्या विक्रेनिषेध, तृष्णा लोभ, सरल भक्ति निन्दा, नहचो प्रतीति, टेक-नकल निन्दा।
४	दास भाव इकतार निरूपणम्	अर्चन भक्ति, दासलछ, भक्त रक्षा, सतसेवा, प्रणाम महात्म्य, सकाम निन्दा।
५	मनोगति पथ क्रिया निरूपणम्	सुमरण विशेषता, मन विकलता, मन उपदेश, पारपद, पथक्रिया, नाम माहात्म्य।
६	स्वार्थ निषेध निरूपणम्	कलिसमय धर्म, स्वार्थनिषेध।
७	नाम समर्था बीनती विरह निरूपणम्	नाम समर्था, बीनती, विरह प्रेम।
८.	घट परचै एकता निरूपणम्	परचय, कारज-कारण, एकता, देवासुर लक्षण, बाजी विस्तार।
९.	ज्ञान स्वरूप दृढवैराग्य निरूपणम्	ज्ञानस्वरूप, ज्ञानी अलिप्त, जीवन्मुक्ति, महावैराग्य।
१०.	उत्तम वैराग्य अजाचिन शोभ निरूपणम्	आशा निन्दा, ससार रागबर्ज, शुक्ल भिक्षा, याचना निषेध।

१. अ० वा०, अणभोविलास, पृ० ३२३-२४।

११	निवृत्ति प्रवृत्ति भेद फकीरी निरूपणम्	उत्तम विरक्त, प्रवृत्तिनिन्दा, मिलाप अण मिलाप।
१२	वाचक कुसग निरूपणम्	कुसगत्याग, वाचक निन्दा।
१३	रामविमुख ससारगति निरूपणम्	ज्ञानदग्ध, रामविमुख असाधु, आन देव खण्डन।
१४	विश्वास पतिव्रत निरूपणम्	विश्वास, व्यभिचार, पतिव्रत।
१५	साच असाच कपट अदया निरूपणम्	सत्य-असत्य, व्यमन-विधि धर्म, स्वभाव वर्णन, निंदन विदन, हिंसक वर्णन।
१६	मायागति निरूपणम्	माया-सूक्ष्म माया।
१७	भेख पारख निरूपणम्	कुवेष निन्दा, स्त्री सन्यास निन्दा, पारख-अपारख।
१८	कामखण्डन शूर कायर निरूपणम्	काम-नारी निन्दा, परस्त्रीत्याग, विषयगीत निन्दा, शूरता-कायर।
१९	काल चितावणी पाप-पुण्य फल निरूपणम्	काल-चितावणी, शुक्ल-कृष्ण कर्म।
२०	सत्सगपारख साधलच्छ निरूपणम्	सत्सग महिमा, सग पारख, मुक्त-लक्षण, जिज्ञासीलक्षण, साधलक्षण, जगत धर्म्म।
२१	गुरुमहिमा उपदेश निरूपणम्	सत महिमा, उपदेश, निर्गविता, गुरुमिलाप महिमा, गुरुस्तुति।

ऊपर प्रकरण क्रम के अनुसार विषयो की सूची से स्पष्ट है कि सम्पादक या सग्रहकार ने कितने परिश्रम से ग्रथ को विषयवद्धता दी थी। विस्तार भय से केवल प्रकरण एव उसके अन्तर्गत आये विषयो की रूपरेखा भर दी गयी है। स्वामी रामचरण ने पूरे ग्रथ की विषयवस्तु का सार-रूप विवेचन निम्नलिखित पक्तियो मे किया है—

"ये परकाश परम गुरु किरपा,
अणभै तणो विलासम्।
सुणें सुबुद्धी अति सुख पावै,
कुबुधी होय उदासम्।
यामैं ज्ञान भक्ति वैराग,
सार ही सार बखाने।
अणभो शूप लिया कर सतगुरु,
भर्म सबै फटिकाने।
कर्मकाण्ड पाखण्ड मान मद,
कूर कपट चतुराई।

ओर अलछि अपराध अजुगी,
सब निर्मूल कराई।
भय भंचक यह सबै बिहंडन,
मण्डन अणभौ ज्ञान।
मम्मोखी सुणि सुमरण करि है,
उपजावै उर ध्यानं।
राम राम आनद सू गावें,
पावै परम निवासम्।
रामचरण गुरुचरणारत्ता,
ये अणभोज विलासम्।"[१]

स्वामी रामचरण ने ग्रथ के अन्त मे गुरु महिमा का सन्दर्भ उपस्थित कर अपने गुरु स्वामी कृपाराम जी का गौरव गान किया है। यो तो सम्पूर्ण सत-साहित्य गुरु-महिमा का अपरिमित भण्डार है किन्तु स्वामी रामचरण अपने गुरु स्वामी कृपाराम की कृपालुता का वर्णन करते जैसे अघाते ही नही—

"सतगुरु संत जी किरपाल।
जीते जगत मायाजाल।
न्यारे निरजूं अम्भोज।
पाया जाण अणभौ मोज।

महिमा करत नांही पार।
सतगुरु नमो जी निरकार।
उपजैं उमंग ज्यूं ज्यूं बोल।
आवे नांहि महिमा तोल।
किरपाराम जी किरपाल।
मो परि भये है दय्याल।
बोले राम ही चरणा।
मैं नित गुरां की शरणा।"[२]

ग्रथारम्भ मे ही स्वामी जी गुरु का अवलम्ब ग्रहण करते है। सहस्रो सूर्य और चन्द्रमा के विकास से हृदय मे ज्ञान का आलोक नही होता, हृदय नयनो मे ज्योति तभी आती है जब उसे गुरु ज्ञान का आलोक प्रदान करता है। यथा—

---

१. अ० वा०, अणभौ विलास, एकविंशमो प्रकरण, पृ० ३२३।
२. वही, अणभौ विलास, एकविंशमो प्रकरण, पृ० ३२३।

"सहँस सूर शशि कै उदै हीये न होय उजास।
सतगुरु ज्ञान उद्योत सैं हिर्दय होत प्रकास।
हिर्दय होत प्रकास भर्म अंधियारो भागे।
स्वप्नावत संसार जाण सोवत सो जागे।
परख भजै परमातमा रखै न मैली आस।
सहँस सूर शशि कै उदै हीये न होय उजास।"[1]

इसी प्रकार सत्सग, सत्पुरुष, जिज्ञासु, भक्तजन-महिमा आदि विभिन्न विषयो पर बडे मार्मिक वचनो से पूर्ण यह ग्रथ है। कतिपय उदाहरण देखना अनुचित न होगा। सत्संग-रहस्य पर प्रकाश डालनेवाली निम्नलिखित पक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—

"रामबाग है सत्संग।
जामैं बैठ कीजे रंग।
प्याला रामरस पीवो।
जासूं जुगे जुग जीवो।
जहाँ अतिज्ञान डमरी फूल।
भागे भर्मना सब भूल।
जहाँ निज तरू उत्तम ध्यान।
जाकै लगै फल विज्ञान।
ताको नाँहि कबहूं भंग।
ऐसो बाग है सत्सग।"[2]

'राम' और 'सत' के सम्बन्ध का यह रूपक भी बडा मार्मिक है—

"खान स्वरूपी संत है, हीरा रूपी राम।
रामचरण जन देत हैं, लेत होय आराम॥"

इसी प्रकार विभिन्न विषयो पर बडे मार्मिक एव रसयुक्त छन्दों से भरपूर इक्कीस प्रकरणो का यह ग्रथ 'अणभो विलास' स्वामी जी के अनुभवो की खान है जिसके अनुभव रूपी हीरो के आलोक से भक्तजनो का मानस जगमगा उठता है।

कला पक्ष

अणभो विलास २१ प्रकरणो मे विभक्त विभिन्न छन्दो मे रचित स्वामी रामचरण की एक सशक्त रचना है। प्रत्येक प्रकरण के अन्त मे प्रकरणगत विषयो के उल्लेख के साथ आगे वाले प्रकरण का विषय-सकेत भी है। यथा, सोलहवें प्रकरण के अत का निम्नलिखित

---

१. अ० वा०, अणभो विलास, प्रथमो प्रकरण, पृ० २११।

२. वही, अणभो विलास, विंशमो प्रकरण, पृ० ३१०।

३. वही, अणभो विलास, एकविंशमो प्रकरण, पृ० ३१६।

दोहा प्रकरणगत विषय का उल्लेख तो करता ही है सत्रहवें प्रकरण के विषय का भी संकेत करता है—

"यह माया विपरीत गति, कह समझाई तोहि।
भेष धार मायारता, जे भाखूं सोहि।"[1]

इस ग्रंथ मे दोहा, साखी, कवित्त, पद, सोरठा, चौपाई, कुण्डलिया, रेखता, झूलणा, अरेल, इदव, मनहर, शिखरणी, निराज, त्रोटक, बेताल, चामर, त्रिभगी, निशाणी, झपाल, जुगती, पद्धरी नामक छन्दो का प्रयोग कवि ने किया है। सम्पादक ने अन्त मे उपर्युक्त छन्दो की सख्या का विवरण भी दिया है जो इस प्रकार है—दोहा ३०, साखी २४३, कवित ३३, पद ११, सोरठा ५०, चौपाई ३३, कुण्डलिया ६५६, रेखता ३०, झूलणा ७, अरेल ३४, इदव १०, मनहर २७, शिखरणी १, निराज ५, त्रोटक ५, बेताल ५, चामर २, त्रिभगी ३३, निशाणी ३, झपाल ६२, जुगती १, पद्धरी ११।

पूरे ग्रथ मे अभिव्यक्ति के लिए प्रश्नोत्तर शैली का सहारा कवि ने लिया है। यथास्थान शिष्य-गुरु मे हुए प्रश्नोत्तर सवाद का रूप ले लेते है। गुरु द्वारा शिष्य को उपदेश देने की शैली मे स्वामी जी ने अपने अनुभवो से जन-सामान्य को परिचित कराया है। 'अणभो विलास' की भाषा राजस्थानी हिन्दी है, जिसमे यत्र-तत्र विदेशी मूल के शब्दो का भी प्रयोग कवि ने किया है। यथा—गजल, फजल, फजीता आदि।

२. सुख विलास

सम्पादन—स्वामी रामचरण की बडी रचनाओ में दूसरी रचना 'सुख विलास' है। तेरह प्रकरणो की इस कृति का सम्पादन एव सग्रह स्वामी रामजन जी ने किया था। ग्रंथ के अन्त मे सम्पादन सबधी टिप्पणी मे स्वामी रामजन ने लिखा है कि कलिजीवन के लिये दयापूर्वक स्वामी रामचरण जी महाराज ने 'सुख विलास' के वचन कहे।[2] इसी सदर्भ मे सग्रहकार आगे लिखता है—

"रामचरण जी सतगुरु मेरा दया करी है भारी।
जिन ये अणभै बैन उचारे शब्द कहे सुखकारी।
रत्न अमोलक सतगुरु बायक जाकी जोति अनूपा।
ताको जोड़ ग्रंथ ये कीन्हो सुखविलास सुखरूपा।
यह गुरु महर भई मो ऊपर तब ये जोड़ बणाई।
रामजन शरणागत तुम्हरी सतगुरु रखो सदाई।

१. अ० वा०, अणभो विलास, पष्ठदशमो प्रकरण, पृ० २९०।
२. "रामचरण महाराज सुख विलास बायक कहे।
कलि जीवन के काज, दया विचारी उर मही॥'
—वही, 'सुखविलास' के अन्तर्गत स्वामी रामजन का सम्पादकीय, पृ० ४३०

क्षुद्र बुद्धि शुद्धि नहि मेरै ये किरपा गुरु कीन्हीं।
जातैं भेद पाय बुद्धि परगट ग्रंथ जोड़ यह चीन्हीं।"[1]

इस ग्रथ का सकलन एव सपादन स्वामी रामजन ने शाहपुरा मे सवत् १८४६ अगहन सुदी ३, गुरुवार को पूर्ण किया। सम्पादक ग्रथ के अन्त मे स्वय इस सूचना का उल्लेख इस प्रकार करता है—

"नगर साहापुरो जान, शुभ सत्संगति धाम है।
ग्रंथ वण्यो परमाण, सुख विलास सुखरूपजू।
अठारा सै छीयाल, ये सवत सख्या कही।
मिगसिर सुद्धि बिसाल, तीज तिथी गुरुवार है।
भयो सपूर्ण ग्रथ ये, अर्थ भर्‌यो रस राम।
कहै सुणै धारण करै, जो पावै सुखधाम।"[2]

इतने स्पष्ट उल्लेख के बाद सम्पादन या सकलन के सबध मे किसी प्रकार के सदेह की गुजाइश नही। सम्पादक ने वडे परिश्रम से सग्रह ओर सम्पादन किया है। इसे 'सुख विलास परम निवास' नाम से अभिहित किया हे।

विषयवस्तु

'अणभो विलास' की भाँति 'सुख विलास' भी प्रकरण शैली का तेरह प्रकरणो वाला वडा ग्रथ है। इसमे भी हर प्रकरण का नाम प्रकरण के वर्ण्य विषय को ध्यान मे रखकर रखा गया है। नीचे प्रकरण-क्रम से विषय-तालिका प्रस्तुत हे—

प्रकरण सख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
१.	उत्तम ज्ञान रचना निरूपण	स्तुति-रचना, वर्ण अभिमान निषेध आपो निषेध-मोह वासना, कारण-कारज-सर्वगता, उत्तमता—राम विमुख, पामर, राजनीति-कपटी, निंदक।
२.	गुरुशिखपारख निरूपण	कुबुद्धि, ज्ञानदग्ध, गुरुपारख, विवेक कसोटी, भूमि-विशेषता-वाट, कृतघ्नी, मूर्ख-मुर्जाद, इकतार।

---

१ अ० वा०, पृ० ४३०।
२ वही।

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
३.	मन तिरस्कार नाम उच्चारण निरूपण	दासआशय, मनोगति, हरसा, भटकण निषेध, द्विविधमत, स्वार्थ, जिह्वा उपदेश, नाम महिमा, राम नाम विशेषता।
४.	टेक पतिव्रत-नाम निरूपण	राम नाम प्रभाव, समय धर्म, मूलधर्म-अस्ति-नास्ति, अकलबेअकल, बीनती, पतिव्रत, व्यभिचार, टेक भक्तद्रोही।
५.	आन धर्म माया खण्डन निरूपण	कपूत-आनदान, निबल-सबल शरण, असल-नकल निर्णय, अज्ञान, लोभमाया, अहिंसा धर्म, जलक्रिया।
६.	साधलच्छ सतसग पारख निरूपण	सत्सग महिमा, साधलक्षण, सग्रहत्याग, मलादि दोष, नकल-भक्तिनिंदा।
७.	साध पारख निरूपण	प्रवृत्तिनिन्दा, निर्गुणक्रिया-गर्वापण, आरभ तिरस्कार, साधु-असाधु।
८.	भेषलछ वाचक कहणी निरूपण	साधारण धर्म-वर्णाश्रम धर्म, निगुणा-सुगुणा, विनय विवेक, अविनय विवेक, ग्रही गुरु निषेध वचक निषेध।
९.	मिलाप अण मिलाप निरूपण	आशय मिलाप, सज्जन मिलाप—व्यवहार परीक्षा, धर्माधर्म परीक्षा, विवाद निंदा, साध-पारख, असत्य भाषण, सत्यमित्र।
१०.	कामखण्डन जिज्ञास निरूपण	काम व्यभिचार निन्दा, गाली गाणो निषेध, लग्न जिज्ञासु, पाक नापाक।
११.	उपदेश सूरापण निरूपण	असाध्यरोग- मित्रकपट, उपदेश, श्रद्धा भक्ति धर्मशूर।
१२.	चितावणी विरक्तपणो निरूपण	चिन्तावणी, नरदेह दुर्लभता, काल, ज्ञान-भक्ति-वैराग्य।
१३.	ग्रथ सख्या निरूपण	ग्रह दु.ख, आशा खण्डन, भजनानंद, शरण प्रभाव, गुरु-स्तुति, शिष्य दीनता।

स्वामी रामचरण ने सुख विलास के आरम्भ मे गुरु की वदना 'दातार' के रूप मे की है। उस जैसा दाता ससार मे दूसरा नही। राम शब्द की प्राप्ति उसी से होती है। राम-

नाम का स्मरण सुख का कारण है। सुख क्या है? वह कैसे प्राप्त होता है? शिष्य के इन प्रश्नो का उत्तर स्वामी जी ने सरलतम शब्दो मे दिया है—

"सुण अर्ज गर्ज कर कहै आप।
सुख रूप जान शिख राम जाप।
जप राम जाप सुख धाम जाहु।
जहाँ अमित सुख्ख आनद पाहु।
तहाँ मिलै अनत साधू सुछद।
ते बहुरि आय धारे न जिद।
करि भजन सजन या विधि समाहु।
कहू सहित रख्या उपाउ।
प्रथम हेतु ये सुख विलास।
नित रहो शिष्य रचना उदास।"[1]

राम का जाप सुख रूप है, अत उसकी प्राप्ति भजन है। 'सुख विलास' के उद्देश्य पर भी यहाँ प्रकाश पडता है। 'सुख विलास' लिखने का प्रथम कारण यही है, वह शिष्य को 'रचना' से निर्लिप्त रहने का उपदेश देता है। 'रचना' (कर्त्ता की सृष्टि) से सम्बन्धित कवि की निम्नलिखित पक्तियाँ बडी मार्मिक हैं—

"रामचरण करतार की रचना धरणि अकास।
जाकै भीतर बण रह्यो सब जीवा को बास।
सब जीवां को बास किते दुख सुख बरता ही।
केइ करता सूं विमुख केई सन्मुखगुणगाही।
केई जगत् रत ह्वै रह्या केई मत्त उदास।
रामचरण करतार की रचना धरणि अकास।"[2]

वह कर्त्ता की सृष्टि को देखकर आश्चर्यान्वित है—

"नारायण का नगर को, इचरज कह्यो न जाय।
केई हर्ष आनंद करै, केई करै हाय हाय।"[3]

सृष्टिकर्ता के कर्त्तव्य अनुल्लेख्य है, कवि उन कर्त्तव्यो से निर्बन्ध रहने एव राम से बँधने का सदेश देता है। इसी प्रकार विभिन्न विषयो की चर्चा अलग-अलग प्रकरणो मे स्वामी

१ अ० वा०, सुख विलास, प्रथम प्रकरण, पृ० ३२५।
२ वही।
३. वही, पृ० ३२६।

जी ने का है। ग्रथ के अन्तिम प्रकरण के अन्त मे 'अणभो विलास' की भाँति ही अपनी दीन-हीन अवस्था और गुरु महिमा का वर्णन कवि ने किया है। यह सुख विलास गुरु कृपा से विलसित हुआ है। गुरु-वदना के निम्नलिखित छदो के साथ इस ग्रथ को स्वामी रामचरण ने पूर्ण किया है—

परम सुक्ख दातार सतगुरु किरपाराम जी।
कीन्हो मोर उधार, महाकाल कलिजुग महीं।
यह निज सुक्ख विलास, रामचरण पायो खरो।
होय नहीं अब नाश, अविनाशी गुरु पद लह्यो।"[1]

कला पक्ष

सुख विलास ग्रथ की विषयवस्तु को सपादक एव सग्रहकार स्वामी रामजन ने तेरह प्रकरणो मे प्रकरणबद्ध किया है। ग्रथ के अत मे सम्पादक ने ग्रथ मे प्रयुक्त छदो की सख्या भी गिना दी है। ग्रथ मे प्रयुक्त छन्द एव उनकी सख्या इस पकार है—

दोहा १८, साखी ३३१, कवित २८, सोरठा ४०, कुण्डलिया ३९५, पद १०, चौपाई ३३, रेखता १५, झूलणा ८, सवैया १५, अरेल २३, मनहर ८, तोटक ६, निसाणी २, झपाल २४, उद्धोर १, गीतक १, पद्धरी ९, भुजगी १, बेताल ८, मोतीदाम १ और त्रिभगी २०।

'अणभो विलास' की भाँति इस ग्रथ मे भी स्वामी रामचरण ने प्रश्नोत्तर शैली अपनायी है। विषय-निरूपण से ही प्रश्न निकालकर उसके उत्तर मे सविस्तार व्याख्या द्वारा कवि एक विषय से दूसरे विषय पर पहुँचता है और अन्त मे पूरे प्रकरण का सक्षेप एक पक्ति मे बतलाकर दूसरी पक्ति द्वारा अगले प्रकरण का विषय निदेश भी कर देता है। जैसे छठे प्रकरण के अत मे उल्लिखित निम्नलिखित दोहा प्रकरण गत विषयो की चर्चा के साथ ही अगले सातवे प्रकरण के विषय का भी निदेश करता है।

"साधू लछ संगति परख, कही सकल ये जांन।
प्रवृत्ति लछ जन पारख्या, आगे कहूं बखान।"[2]

इस ग्रथ की भाषा भी राजस्थानी हिन्दी है। स्थानीय शब्दो, मुहावरो, कहावतो एव विदेशी मूल के शब्दो का धडल्ले से प्रयोग करने मे स्वामी रामचरण ने पटुता दिखलायी है। प्रयोग के दो-एक उदाहरण द्रष्टव्य है। यथा—ऊभा उभ मिलाप, जाके पील्यो नेतरा ताकू सब पीला दर्शन्त, जे बहुतो मेलप वणै सो खडभड बधि जाय, आदि।

३. अमृत उपदेश

सम्पादन—स्वामी रामचरण के बडे ग्रथो मे तीसरी एव महत्त्वपूर्ण कृति 'अमृत उपदेश' का सपादन भीलवाडा रामद्वारे मे रामजन जी द्वारा सवत् १८४४, माघ बदी द्वादशी

१. अ० वा०, सुख विलास, त्रयोदश प्रकरण, पृ० ४२९।
२. वही, सुख विलास, षष्ठ प्रकरण, पृ० ३७७।

को पूर्ण हुआ। सम्पादक ने ग्रथ के अन्त मे 'ग्रथ उपमा' शीर्षक के अन्तर्गत इस आशय का उल्लेख निम्नलिखित पक्तियो मे किया है—

"राम दवारे धाम, भीलाडो निज नगर जू।
कहै राम ही राम, ये अमृत उपदेश जू।
अणभै छोल अगाध, रामचरण महाराज की।
सतगुरु के परसाद, ग्रंथ जोड कहि रामजन।
अठारा से चम्माल, संवत सख्या ये कही।
वण्योज ग्रंथ रसाल, मकर मास बिद द्वादशी।"[1]

इसी सदर्भ मे सकलनकर्त्ता गुरु कृपा से अमृत उपदेश के १५ प्रकाशो के जोडने का उल्लेख करता है—

"ये अमृत उपदेश के, पंचदश परकास।
रामजन्न गुरु महरसूं, जोड करी निजदास।"[2]

इस ग्रथ को कवि ने 'अमृत उपदेश आनन्द प्रवेश' नाम से अभिहित किया है।

विषयवस्तु

अमृत उपदेश की विषयवस्तु का आरम्भ कवि गुरु-वदना से करता है। वह गुरु और राम का अन्तर समाप्त कर उन्हे सर्वव्यापी देखता है—

"राम मई गुरु जाणिये गुरु मई जाणों राम।
गुरु मूरति को ध्यान उर रसना उचरै राम।
रसना उचरै राम भर्मना उर मै नाही।
गुरु गोविन्द तन एक देख व्यापक सब माही।
रामचरण कहाँ जाइये घट वध कोइ न ठाम।
राम मई गुरु जाणिये गुरु मई जाणो राम।"[3]

---

१ अ० वा०, अमृत उपदेश के अन्तर्गत रामजन रचित 'ग्रथउपमा', पृ० ५०९।
२ वही, पृ० ५०९।
३ वही, अमृत उपदेश, प्रथम प्रकाश, पृ० ४३१।

पन्द्रह प्रकाश के इस ग्रंथ में प्रकाशों के अनुसार निरूपित विषयों की तालिका नीचे प्रस्तुत है—

प्रकाश संख्या	प्रकाश का नाम	प्रकाश निहित विषय
१.	काज अकाज भेद निरूपण	त्रिधा-स्तुति, गुरु-ब्रह्म एकता, अमृत निरूपण, त्रिगुण रचना, काज अकाज भेद।
२.	गुरुशिष्यपारख निरूपण	लोभी गुरु, शिष्यविश्वास, आज्ञाकारी मनमुखी, शिष्य परीक्षा।
३.	दास कुदास भेद निरूपण	भक्ति माहात्म्य-त्रिविध भक्ति, ब्रह्म निरूपण, देवलक (कुदास) निन्दा, अज्ञान निन्दा।
४.	संग कुसंग साध लछ निरूपण	संत लक्षण—निरारंभ भिक्षा, संतदर्श महात्म्य, साध परमार्थी-संतमहिमा, सत्संग महिमा, तन कुसंग।
५.	मनोगति धर्म उपासना निरूपण	दृढ़ उपासना, मन की बांण, विरह, प्रेम।
६.	त्रिधा भक्ति	सर्वगता भावना प्रतीति, बीनती, भजन दुर्लभता, भक्ति सिद्धान्त।
७.	विरक्त वैराग्य निरूपण	तीव्र वैराग्य महात्म्य, निर्ममत्व, वासना त्याग—ज्ञानतृप्ति, माया त्याग।
८-	स्वार्थ काम खण्डन निरूपण	सरक्त विरक्त भेद, स्त्री त्याग, स्वार्थ काम गति, गणिका निषेध, यति लक्षण।
९.	माया तृष्णा गति निरूपण	माया चरित्र—मद्यपान निषेध, उत्तम माता, तृष्णा लोभ, चौर-जूप निन्दा।
१०.	विधि निषेध निरूपण	संतोष-शांति, पशु बुद्धि, पारधी निंदा, अवगुणी, जगत कुचाल।
११.	पुण्य पाप विश्वास बेविश्वास निरूपण	पाप पुण्य भोग, जीवत साफल संत वृत्ति, आपारहित, निराश वृत्ति, उदरदूषण।
१२.	पारख साध असाध गति निरूपण	गुण वस्तु अधिकार, कपट निन्दा, शून्य हृदय, संत असंत लक्षण, ज्ञानी के पाप जाय नहिं, मर्यादा वर्णन।
१३.	निबलसबल करणीअकरणी निरूपण	कुकवि कहणीरहणी, आनदेव खंडन, दुर्जन मित्रता।
१४.	कायरशूर हंसबुग भेख निरूपण	हंसबुगवेष, काम, कायर, लज्जा, यति-शूर।
१५.	गुरुस्तुति संख्या निरूपण	सत्यप्रशंसा, निन्दक, शिष्यदीनता, गुरुस्तुति।

उपर्युक्त पन्द्रह प्रकाशो मे विभिन्न विषयो का समावेश स्वामी जी ने किया है। आध्यात्मिकता एव लौकिकतापरक विषयो पर विचार कर अत मे नाम-स्मरण की महत्ता एव गुरु-महिमा का प्रतिपादन वे करते हैं। लौकिकता के जहर से बचने के लिए अखण्ड नामोच्चारण का अमृत ग्रहण करने की बात वे बतलाते है। यथा—

"अब सुन शिष अमृत की बाता।
जातैं मिटै जहर की धाता।
अमृत नाम अखण्ड उचारा।
जन पीवे अमृत की धारा।"[1]

इस अमृत का स्राव रसना मे ही होता है जब उससे राम का नाम अखण्ड गति से लिया जाता है—

"रामहि राम अखण्ड उचरही।
तब ही रसना अमृत झरही।"[2]

राम और ससार का सम्बन्ध अग्नि और धूम जैसा है। जैसे अग्नि से धुवाँ उत्पन्न होता है, उसी प्रकार राम से सृष्टि हुई है, सृष्टि से राम नही—

"धोम अग्नि सूं प्रगटै अग्नि धोम सूं नांहि।
रामचरण यूं राम जी समझ देखि मन माहि।
. .
ऐसें जगत राम तैं होई।
राम जगत तैं होइ न कोई।"[3]

तीसरे प्रकाश मे स्वामी रामचरण भक्ति, भक्ति-महिमा, भक्ति के भेद आदि विषयो की विशद चर्चा करते है। निम्नलिखित कुण्डलिया मे वे गगा-गया के स्थान पर भक्ति-गगा की महिमा बखानते है—

"रामचरण गंगा गया निर्मल करै न कोय।
राम भक्ति भागीरथी करैस निर्मल होय।

---

१ अ० वा०, अमृत उपदेश, प्रथम प्रकाश, पृ० ४३२।
२ वही, पृ० ४३२।
३. वही, पृ० ४३३।

करैस निर्मल होय सबै विख्यात बखांणै।
गंगा गया स्नान किया ताहि कोइ न जांणै।
ऊच-नीच कुल का करम भक्ती डारै धोय।
रामचरण गंगा गया निर्मल करै न कोय।"[१]

स्वामी जी की दृष्टि मे सुखी वही है जिसकी वासना समाप्त हो गई है। सप्तम प्रकाश की ये पक्तियाँ इस सदर्भ मे देखिए—

"जिनकी उठ गई वासना सो सदा सुखी दर्वेश।
भल एकै आसण रहो भल विचरो चहुँ देश।
भल विचरो चहुँ देश कियो जिव को निस्तारो।
कै जागो कै सोय कामना नहीं पसारो।"[२]

इसी प्रकार अष्टम प्रकाश मे सरक्त विरक्त की गति की चर्चा स्वामी जी करते हैं। कवि सरक्त की तुलना चन्द्रमा से करता है क्योकि उसमे घटने-बढने का दोष है और विरक्त की सूर्य से क्योकि वह सदा एकरसता के गुण से भरपूर है। यथा—

"रवि कै आथ्यां रैण होइ उवै भया दिन होय।
शशि ऊग्या नांही दिवस आथ्या निशा न कोय।
आथ्या निशा न कोय साध यू चाहि अचाही।
चाही शशि समान अचाही अर्क सदा ही।
रामचरण लछ अलछ कूं लखै विचक्षण सोय।
रवि कै आथ्या रैण होइ उवै भया दिन होय।"[३]

इस प्रकार विभिन्न विषयो का निरूपण करते हुए स्वामी रामचरण पन्द्रहवे प्रकाश मे आकर एक अन्त.साक्ष्य की पुष्टि करते है। अब तक के ग्रथो मे इन्होंने अपने गुरु कृपाराम जी का गौरव-गान किया है। पर इस 'अमृत उपदेश' मे अपने दादा गुरु सतदास जी की गरिमा का वर्णन करते हुए अपने गुरु कृपाराम जी को उनका पुत्र बतलाते है। यथा—

"संतदास अवतार जू, उचरे नाम रसाल।
ता प्रजजन प्रगट भये, कृपासिंधु किरपाल।

---

१ अ० वा०, अमृत उपदेश, तृतीय प्रकाश, पृ० ४४३।
२. वही, सप्तम प्रकाश, पृ० ४६७।
३. वही, अष्टम प्रकाश, पृ० ४६७।

कृपासिंधु किरपाल को कृपाराम जी नाम।
रामचरण पर करि कृपा सही करायो राम।"[1]

कला पक्ष

'अमृत उपदेश' ग्रथ को सम्पादक ने प्रकाशो मे बाँधा है। रचना के १५ प्रकाश निम्न-लिखित छदो मे अभिव्यक्त हुए है—पद, साखी, त्रिभगी, मनहर, कवित कुण्डलिया, दोहा, मोतीदाम, भुजगी, पद्धरी, झपाल, निसाणी, रेखता, सोरठा, सवैया, चौपाई, अरेल, झूलणा। 'ग्रथ उपमा' मे सपादक ने छन्दो की सख्या भी गिनायी है। पद ४, साखी १८५, त्रिभगी १४, मनहर २२, कवित २७, कुण्डल्या ५४२, दूहा ३६, मोतीदाम १, भुज्गी ६, पद्धरी १ झपाल १९, निसाणी ५, रेखता १०, सोरठा १३, सवैया ६, चौपाई २१, अरेल ११, झूलणा १।

इन विभिन्न छदो मे वर्णित 'अमृत उपदेश' का वर्ण्य विषय उपदेशपरक शैली मे लिखा गया है। शिष्य-गुरु वाली प्रश्नोत्तरी शैली के भी दर्शन होते है, जिसमे उपदेशात्मकता का प्राधान्य है। ग्रथ की भाषा राजस्थानी हिन्दी है। बोलचाल मे प्रयुक्त होने वाले विदेशी मूल के शब्दो का प्रयोग कवि ने बेहिचक किया है। प्रकाशित वाणी के ७८ पृष्ठो मे इस ग्रथ का विस्तार है।

डॉक्टर अमरचन्द वर्मा इसे स्वामी रामचरण की एक महत्त्वपूर्ण कृति घोषित करते हुए कवि के विषय प्रस्तुतीकरण की सराहना करते है—"यद्यपि विवेचित विषयो के चुनाव मे कोई नवीनता नही है, तथापि प्रस्तुतीकरण की विविधता मे नवीनता अवश्य है।"[2]

४. जिज्ञास बोध

सम्पादन—स्वामी रामचरण की चौथी बडी कृति 'जिज्ञास बोध' के शोधनकर्ता के रूप मे स्वामी रामजन का नाम 'ग्रथ उपमा' शीर्षक मे आया है। स्वामी रामजन ने अपने द्वारा सम्पादित ग्रथो के अत मे उक्त शीर्षक के अन्तर्गत ग्रथ की विषयवस्तु की सक्षिप्त चर्चा, सम्पादन का समय एव स्थानादि का उल्लेख किया है। यह 'जिज्ञास बोध' स्वामी रामचरण के शब्दामृत का सार है जिसे रामजन जी ने प्रकरणबद्ध रूप मे सम्पादित किया। इस ग्रथ का नाम जिज्ञास बोध है।[3] इस ग्रथ का निर्माण (सपादन) शाहपुरा मे हुआ जिसकी निर्माण तिथि कार्तिक बदी २, सोमवार सवत् १८४७ विक्रमी है। यथा—

---

१ अ० वा०, अमृत उपदेश, पचदश प्रकाश, पृ० ५०८।
२ डॉक्टर अमरचन्द वर्मा—स्वामी रामचरण . एक अनुशीलन, पृ० ११६-१७।
३. "रामचरण महाराज का शब्द सुधा मइ सार।
रामजन ताहि सोधि कै कीन्हो ग्रथ विचार।

"शाहिपुरे सानंद सूं, संतां शरण निवास।
सतगुरु किरपा सूं बण्यो, ग्रंथ बोध जिज्ञास।
अठारा से संतालि के, संवत कातिक मास।
बदी दोज सोमवार दिन, पूर्ण ग्रंथ जिज्ञास।"[1]

स्वामी रामजन द्वारा इक्कीस प्रकरणों मे विभाजन का स्पष्ट संकेत भी उनकी निम्नलिखित पंक्तियों मे मिलता है—

"जिज्ञास बोध उर सोधि करि, राम गुरू मम शीश।
जोड़ बणाई रामजन, ये प्रकरण इकीश।"[2]

प्रकाशित वाणी के १३३ पृष्ठो मे इस ग्रंथ का विस्तार है। इसे कवि 'जिज्ञास बोध आत्म प्रबोध' नाम देता है या सम्पादक इसी नाम से अभिहित करता है।

विषयवस्तु

जहां तक विषयवस्तु का प्रश्न है 'जिज्ञास बोध' मे कवि ने अन्य ग्रंथों मे आये पुराने विषयों को ही लिया है। प्रकरणगत विषय-विस्तार की तालिका प्रत्येक प्रकरण के नाम के समक्ष अंकित है—

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
१.	जिज्ञासजोग गुरु पारख निरूपण	गुरुवदन, जिज्ञास साधन, संत चरणरज महात्म्य, गुरुपारख, गर्वालक्षण-गुरु भेद।
२.	शिख पारख शरण वीनती निरूपण	शिष्य लक्षण, आज्ञाकारी, आज्ञाभ्रष्ट, शरण-प्रभाव, विनय।
३.	भक्ति नहचो वंदगी निरूपण	भक्ति महात्म्य, भक्तिविमुख निंदा, संतसेवा भजन, बन्दगी, नहचै, इकतार, मन्दभाग।

कीन्हों ग्रंथ विचार जोड़ परकरण बणाया।
न्यारे न्यारे भेद देश का देश मिलाया।
ग्रंथ नाम जिज्ञास ये शुद्ध बोध सुख धाम।
याहि विचारे दास होइ सो पावै पद राम।"
—अ० वा०, जिज्ञास बोध के अन्तर्गत रामजन रचित 'ग्रंथ उपमा', पृ० ६४३-४४।

१. वही, पृ० ६४४।

२. वही, पृ० ६४४।

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
४.	नाम महिमा सुमरण	मन चचलता-रसना, मन उपदेश, भजन विशेषता, सुमरण विधि, नाम महात्म्य, राम शब्द विशेषता, परचय
५.	ज्ञानस्वरूप वैराग्य बिरक्तपणो निरूपण	ब्रह्मज्ञान, ज्ञान-वैराग्य मिश्रित उत्तम आतुर-विरक्तता, विश्वासघात।
६.	असल फकीरी लोभ संतोष निरूपण	जगत शत्रु, असल फकीरी, चाहि तिरस्कार, सतोष।
७.	तृष्णा जाचना तिरस्कार प्रवत्ति निरूपण	प्रवत्ति, निवत्ति दृष्टान्त, उच्चवृत्ति, याचा निन्दा, तृष्णा-समता, अविद्या वर्णन।
८.	आशा स्वारथ मतलब प्रहार निरूपण	आशा नदी, दासदृढता, मतलब, कलिजुग, वरदान शापदान
९.	बहुलगति फोकट सिद्ध तिरस्कार-निरूपण	आरूढ पतित (बेषत्याग) विकल्पन मर्मफोकट सिद्धि।
१०.	लच्छ करणी रामदया निरूपण	वक्ताश्रोता लक्षण, शुद्धकरणी, सतवाणी महिमा, गुणी-अवगुणी।
११.	सूर कायर लच्छ निरूपण	शूरातण, मनदल, कायरता।
१२.	रामविमुख सबलनिबल धर्म निरूपण	राम विमुख, दान दढता, सबल निबल धर्म, संसारी सशय रूप।
१३.	मायागति भेष निरूपण	माया की सबलता, पराधीनता-स्वाधीनता, काषाय धारण भजन सिद्धान्त, उतनत्यागदृष्टान्त
१४.	साधलच्छ निरूपण	संतलक्षण, अलिप्तता, सतदातार, सतनिर्दोषता।
१५.	आशैमिलाप कुबुद्धिगति निरूपण	आशय मिलाप, कपटी, कुबुद्धि, भाग्यहीणता।
१६	सत्सग पारख कुसग त्याग निरूपण	सत्सग प्रभाव, मत महत्त्व, जाणपणो विवेक, कुसगति।
१७.	काम कुसग खण्डन शील निरूपण	कामी निन्दा, परस्त्रीत्याग, कुगीत निन्दा, नारी चरित्र, ब्रह्मचर्य।
१८.	निंदक विदक कर्म साच झूठ-निरूपण	निन्दक, सत्यअसत्य, पचविवेक।
१९.	जतमत दया अदया निरूपण	सग्रही निग्रही भेद, यति सती, हीन विवेक, दया निरूपण, माम निंदा।
२०.	चिंतावणी जोग निरूपण	चिंतावणी, देह मलिनता।
२१.	गुरुस्तुति ग्रंथ सख्या निरूपण	न्याव निसाफी-स्वामि धर्म, राजनीति, उपदेश, गुरुदातार, गुरुभक्ति प्रस्तुति।

एक विषय को नवीन ढंग से कहने मे स्वामी रामचरण पटु हैं। 'जिज्ञास बोध' मे यद्यपि उन्होने पीछे विवेचित विषयो को ही पुन लिया है पर कथन की नवीनता के कारण विषय भी नया होता गया है। कवि इस ग्रंथ का आरम्भ भी गुरु-महिमा मे ही करता है। स्वामी जी गुरु की समता भादो की घटा से करते हुए कहते हैं—

"रामचरण भादू घटा वर्ष करै दह चाल।
यूं सतगुरु दाता ज्ञानधन शिक्षा करै सुकाल।"[1]

गुरु की गरिमा उन्होने गुरु को गोविन्द मे गुरु बता कर की है—

"गुरु गोविन्द सूं अधिक है गुरु मिल गोविन्द पाय।
रामचरण भारी वस्तु हल्की कही न जाय।"[2]

दूसरे प्रकरण मे स्वामी जी ने दो प्रकार के गुरु का निदेश किया है—१ मैला, २ उज्ज्वल। यथा—

"गुरु कहावै जगत मैं पै मैला उज्ज्वल होय
मैला गुरु मैला करै लोक बिगाड़ै दोय।
लोक बिगाडै दोय, ऊजला ऊजल करि है।
सुजश होय संसार बहुरि परलोक सुधरि है।"[3]

किन्तु उज्ज्वल गुरु बिरला होता है—

"उज्ज्वल तो बिरला गुरू, कोई कोई साजन्न।
मैला मंगता मोकला, जाका फूटा मन्न।"[4]

तृतीय प्रकरण मे स्वामी रामचरण भक्ति-महिमा का उल्लेख करते हैं। भक्ति को उन्होने भवजल पार करने के लिए पोत कहा है।[5] जो भक्ति मे तन्मय हो गए उन्हे परमात्म-पद की प्राप्ति हो गई।[6] चतुर्थ प्रकरण मे स्वामी जी मन की समीक्षा करते हैं। उनके अनुसार विचलित मन की तृप्ति कही सभव नही।

---

१. अ० वा० जिज्ञास बोध, प्रथम प्रकरण, पृ० ५१५।
२ वही।
३. वही, द्वितीय प्रकरण, पृ० ५१८।
४ वही।
५ "भक्ति भवनीर पर जान मे पोत है बहुत नर-नारि चढि पार हूवा।" वही, जिज्ञास बोध, तृतीय प्रकरण, पृ० ५२५।
६. "भक्ति माँहि जो मिले चले परमातम पद कूं।"
—वही।

"बिचल्या मन की बिचलता कहीं न तिरपति होय।
जो देखे जापर चलै थिरता गहै न कोय।"[1]

उनकी दृष्टि मे भागवत-गीता-श्रवण, नित्य नेम, स्नानादि सभी व्यर्थ है यदि मन का मल कामना नही मिटती।[2] इसके लिए वे सत्संग की आवश्यकता समझते हैं। संसार का कच्चा मन सत्संग मे ही पकता है—

"काचो मन संसार को सो पाकै सत्संग मांहि।"[3]

इसी प्रकरण के अन्त मे नाम-स्मरण का चमत्कार बतलाते हुए कहते हैं कि 'राम-रटन' मे मरण का भय दूर हो जाता है और 'अनहद' की सद् ज्योति जागृत होती है।[4] और तब—

"जागी जोति जगत गुरुदर्या, परश्या अगम सयाना वे।
रसना बिना रामधुनि लागी, जानै सत सुजाना वे।
गगन मण्डल में गाजै अनहद सुणि है बिन ही काना वे।
चरण बिना जहाँ नृत्य करत है, देखत है ब्रह्म दाना वे।
भाँति भाँति सुखदाई नाटक प्रेममग्न गलताना वे।
रीझ रमइया मोजां बकसी, जामण मरण मिटाना वे।"[5]

इसीलिए कवि कहता है—

"रामरसायण अजब सार का सार रे।
पीया प्रेम उपाय गया जग पार रे।
नित्य निरंजन राम मिल्या जाइ रास है।
परिहा रामचरण निज ज्ञान भयो परकाश है।"[6]

---

१. अ० वा०, जिज्ञास बोध, चतुर्थ प्रकरण, पृ० ५३२।

२ भागवत सुणै गीता गुणै, नित नेम करै सनान।
मन मल मिटै न कामना, तो मण सुण रहे अज्ञान।"—वही पृ० ५३३।

३. वही, पृ० ५३३।

४. "सकल सुखधाम आरामकर राम है अष्ट ही जाम धुनि एक लागी।
राम हो चरण अब मरण का भय मिट्या सुरत अनहद सद जोति जागी।"
—वही पृ० ५४०।

५. वही, पृ० ५४०।

६. वही, पृ० ५४०।

इसी प्रकार कवि विभिन्न लौकिक एव आध्यात्मिक विषयो का स्पर्श करता हुआ इक्की-सवे प्रकरण मे समर्थ गुरु की समर्थाई की प्रशसा मे रत हो जाता है—

"मुरसद का दीदार के, सदकै करू शरीर।
दे अलह इलफ की बंदगी, जिन काटया भ्रम जंजीर।"[१]

कला पक्ष

'जिज्ञास बोध' को ग्रथ के सम्पादक ने इक्कीस प्रकरणो मे विभक्त किया है। इसकी पुष्टि वे स्वय स्वकथन मे करते है—'राम जन गुरु शरण जोडे, ये प्रकरण इकबीस है।'[२] इस ग्रथ मे आये छन्द एव उनकी सख्या भी इसी मे उन्होंने गिनायी है। दोहा २९, साखी ३६८, कवित ५४, पद ६, सवैया ६, मनहर २६, कुण्डलिया १०३७, रेखता ८, झूलणा ७, त्रिभगी १४, अरैल ३७, पद्धरी २, चौपाई ५, झपाल १२, भुजगी १, सोरठा १४ और बेताल ५।

स्वामी रामचरण के इस ग्रन्थ मे तथ्य निरूपण शैली की गम्भीरता दृष्टिगोचर होती है। गम्भीर आध्यात्मिक विषयो के विवेचन मे आत्मानुभूति का प्राधान्य हो गया है। यत्र तत्र प्रश्नोत्तर के माध्यम से भी विषय की विवेचना कवि ने की है। 'जिज्ञास बोध' की भाषा राजस्थानी हिन्दी है पर बोलचाल के विदेशी मूल के शब्द भी प्रचुरता से प्रयुक्त हुए है। दीदार, मुरीद, मुरसद, आशिकी, अलह, इलफ, आशिक, दरिया आदि अनेक शब्दो का नि सकोच भाव से समावेश करने मे कवि चूका नही है।

विश्वास बोध

सम्पादन—'अणभो विलास' और 'जिज्ञास बोध' के बाद 'विश्वास बोध' स्वामी राम-चरण की अत्यधिक प्रकरणो वाली तीसरी एव नौ बडी कृतियो मे पाँचवी कृति है। 'ग्रन्थ उपमा' के अन्तर्गत स्वामी रामजन इस ग्रन्थ की सम्पादन तिथि, स्थान और ग्रन्थ-गरिमा का उल्लेख करते है। ग्रन्थ सम्पादन के सन्दर्भ मे उनकी ये पक्तियाँ ध्यान देने योग्य है—

"रामचरण महाराज रूप।
जिन कहे ग्रह्म बायक अनूप।
ताहि जोड़ कियो निज ग्रंथ येह।
विश्वासबोध अति सुधा गेह।

---

१ अ० वा०, जिज्ञास बोध, एकविंशोप्रकरण, पृ० ६४२।

२. वही, जिज्ञास बोध के अन्तर्गत रामजन रचित 'ग्रन्थसंख्या' शीर्षक, पृ० ६४४।

गुरुदेव भेव दाख्यो दयाल।
महाराज मोहि कीन्हों निहाल।
तब वई बुद्धि साराग सार।
जब ग्रंथ जोड कीन्हो विचार।
परकरण प्रगट जानो इकीस।
मधि रामभजन कारण बरीस।
गुरु रामचरण जी कृपा कीन।
ताहि चरण चित मोर लीन।
कर जोडि जोड़ि कह रामजन्न।
विश्वास बोध सुख परमधन्न।
कोइ घाट बाध जो जोड़ होय।
सब क्षमा कीजियो संत सोय।
गुरु शरण लह्यो निजनाम धन्न।
दासानुदास कह रामजन्न।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण द्वारा उच्चरित अनुपम ब्रह्म-वाणी को स्वामी रामजन जी ने ग्रन्थ रूप दिया जिसमे उन्होंने २१ प्रकरण बनाये। ग्रन्थ-सग्रह मे यदि कही घटबढ की त्रुटि हुई हो तो उसके लिए सग्रहकार सभी सन्तो से क्षमाप्रार्थी भी है।

इस ग्रन्थ का सम्पादन स्वामी रामजन ने भाद्रपद सुदी १४, गुरुवार सम्वत् १८४९ वि० को भीलवाडा नगर के रामद्वारा धाम मे पूर्ण किया—

"अठारा सै गुणचास, सवत भाद्रप मास सुदि।
पूर्ण ग्रंथ प्रकाश, चतुर्दशी गुरुवार है।
रामद्रुवारो धाम, भीलेड़ो निज नगर जू।
पाय परम आराम, ग्रंथ जोड़ कहि रामजन।"[2]

प्रकाशित वाणी के १२८ पृष्ठों मे यह ग्रन्थ पूर्ण मुद्रित है। इसे 'विश्वास बोध आत्म-बोध' नाम दिया गया है।

विषयवस्तु

विश्वास बोध मे यद्यपि अधिकांशत पूर्व निरूपित ग्रन्थों के विषयों की चर्चा ग्रन्थकार ने की है फिर भी 'साकार निराकार निर्णय', 'इस्क इमतार', 'गुद्ध निर्वेद',

१. अ० वा०, विश्वास बोध की 'ग्रन्थ उपमा', पृ० ७७२।
२ वही, विश्वास बोध की 'ग्रंथ उपमा', पृ० ७७२।

'शृंगार गायन निन्दा' जैसे नये शीर्षकों का समावेश भी दीख पड़ता है। प्रकरणबद्ध विषय तालिका नीचे प्रस्तुत है—

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
१.	ह्रौतव विश्वास निरूपण	त्रिधा स्तुति, गुरु विशेषता, गुरु मिलाप-महिमा, विश्वास-विधि-ह्रौतव, धर्म-प्रशंसा।
२	गुरु शिष्य लक्षण पारख निरूपण	गुरुकल्पवृक्ष, गुरुसमर्था, कुगुरु-लोभीगुरु लक्षण, शिष्य लक्षण, कृतघ्नी।
३.	सुमरण नाम विरह प्रचड निरूपण	रामनाम महात्म्य, भजन अधिकार, साकार निराकार निर्णय, रामनाम विशेषता, विरह वीनती, तत्व-परिचय।
४	भक्ति वीनती शरणा निरूपण	अद्वैतज्ञान-कर्मजाति, उत्तमचलण-देहातमभिन्नता, ग्रही भक्तिकठणता, भक्ति अधिकार-आपो अर्पण, शरण-वीनती, शरण प्रताप।
५.	पतिव्रत इकतार नहचै निरूपण	इस्क इकतार, व्यभिचार निन्दा, पतिव्रत महात्म्य, मनस्विता, निश्चय।
६.	ज्ञान-वैराग्य निरूपण	अद्वैतज्ञान महात्म्य, ज्ञानी अलिप्त, समता दृष्टान्त, ज्ञानरक्षा, शुद्ध निर्वेद, वावै दुख।
७.	अजाची वैराग्य जगत तिरस्कार निरूपण	गर्वापण, अयाची वैराग्य, ज्ञान वैराग्य अनुक्रम, शृंगार गायन निन्दा, जगत् संगवर्ज्य, परधन निन्दा।
८.	आशा तृष्णा लोभ खण्डन निरूपण	आशा प्रबल, तृष्णा, सन्तोष-लोभ-तिरस्कार।
९.	मायानारी जोग तिरस्कार निरूपण	माया विचलता, त्याग सैं सुख, काम-कामणि निन्दा, पत्र स्त्री त्याग।
१०.	मनोगति कुसंगत्याग निरूपण	मनोगति मन उपदेश, भ्रमभटकण, आचार स्नेहता निषेध, शान्तितृप्ति, आशय मिलाप, अज्ञानी-पाखण्डी-दुर्जन, कुसंग त्याग।

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
११	साधलच्छ निरूपण	साधलक्षण, हरसनिंदा, हीणलक्षण को दृष्टान्त, त्याग महिमा, सत महिमा।
१२	सत्संगमहिमा पारख निरूपण	सत्संग महिमा, सत्संगपारख, आशय-पिछाण, संगभेद।
१३	साच शूरापण निरूपण	सत्यभाषण, शूरापण, कायर, सात्यापण-निषेध।
१४	वाचक ज्ञानदग्ध तिरस्कार निरूपण	ज्ञानदग्ध, वाचक तिरस्कार।
१५.	रामविमुख फोकटसिद्ध तिरस्कार निरूपण	रामविमुख, फोकटसिद्ध तिरस्कार।
१६	भेपलच्छ अलच्छ निरूपण	कुवेषनिंदा, प्रतिग्रह निन्दा।
१७	आन अधिकार खण्डन निरूपण	आनदान, अन्यदेव खण्डन, प्रभुसमर्था, मासांनन्दा।
१८	मर्म कर्म खण्डन निरूपण	भ्रमविध्वस, देहमलिनता, सावधानी।
१९	अकल महिमा जगतरीति निरूपण	बेअकल, अकल प्रशसा, उत्तमचलण, वचन विवेक, अशकर्तव।
२०	कालचितावणी निरूपण	काल चितावणी निरूपण, उपदेश।
२१	गुरुमहिमा ग्रन्थ सख्या	समयधर्म, जिज्ञासा, गुरु की बकशीश मततत्व वर्णन, गुरु महिमा।

'विश्वास बोध' के द्वारा विभिन्न लौकिक एव आध्यात्मिक विषयो का स्पर्श तो कवि ने किया ही है, राम के प्रति विश्वास-भाव का जागरण भी किया है। मन को स्थिर करने वाला तारक नाम 'राम' है। कवि के अनुसार कार्य-सिद्धि का मूल विश्वास-भाव ही है। विश्वास की महिमा कवि द्वारा निम्नलिखित पक्तियो मे वर्णित है—

"सुनो शिख मन थीर कारक, एक तारक नाम है।
राखिए विश्वास याको, नाम जाको राम है।
बिना एक विश्वास भाई, कार्य-सिद्धि न जानिए।
जहां तहां विश्वास आदर, सर्वथा ही मानिए।
विश्वास तै विधि जुक्ति सारी, क्रिया को फल पावहीं।
विश्वास सूं निज मिंत मानो, लोक वेद स गावहीं।"[1]

१ अ० वा०, विश्वास बोध, प्रकरण १, पृ० ६४६।

नाम-स्मरण की महत्ता के सन्दर्भ में कवि रामनाम को सभी ग्रन्थों का सारतत्त्व घोषित करता है। उसके अनुसार नाम महिमा के समक्ष ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं, सभी नाम-स्मरण के समान अधिकारी है—

"सब ग्रंथन को अर्थ है राम नाम ततसार।
ऊँच नीच कोई भजो यो सबही कूं अधिकार।"[१]

स्वामी रामचरण साकार और निराकार, दोनों ही उपासना विधियों में नाम-स्मरण की महत्ता स्वीकारते हैं—

"कोई सेवै आकार कू कोइ ज्ञान कथै निरकार।
रामचरण निज नाम ल्यो ये उभै नाम की लार।"[२]

सन्तों की दुनिया में विरह की दशा भी लोकोत्तर होती है। प्रियतम 'राम' के लिए भक्त विरहिणी-सदृश आतुर रहता है, वह प्रिय के दर्शन द्वारा सांसारिक कर्मों से मुक्त भी हो सकता है। स्वामी रामचरण विरहिणी का हृदय लिये प्रियतम राम की किस औत्सुक्य से प्रतीक्षा करते है। यथा—

"आज राम बर आवही बिरहनि जोवै बाट।
रामनिरंजन नाथ जी दर्श हरो कर्म काट।
दर्श हरो कर्म काट घाट हरि आप सुधारो।
खानपान सुख सेज्ञ आप बिन सबही खारो।
रामचरण अब बीनती सुण हो रामनिराट।
आज राम बर आवहीं विरहनि जोवैं बाट।"[३]

स्वामी रामचरण जहाँ निर्गुण का आदर्श मानते है, वहीं सगुण को श्रृंगारपरक। फलस्वरूप उसे कामोद्रेक का कारण कहते है। आदर्श की पंक्तियाँ निम्नलिखित है—

"रहणी करणी एक रस निर्गुण नाम उपास।
असन बसन काया कसन जग सैं रहै उदास।"[४]

और सगुण की रसात्मकता से जगनेवाला प्रेम संयोग जिससे मनुष्य नाद-प्रेमी भुजग के समान विभोर होकर कामुकता मे गोते लगाता है—

---

१ अ० वा०, विश्वास बोध, तृतीय प्रकरण, पृ० ६६१।
२ वही, पृ० ६६३।
३ वही, पृ० ६६६।
४ वही, सप्तम प्रकरण, पृ० ६९२।

"रस रसि गावै सरगुणी, सरगुण राजस भोग।
जासूं मन विपरीति होइ, उपजै प्रीति सजोग।
ज्यूं पूगी को राग सुणि, आवै भवग चलाय।
यूं शब्द सिंगारू गायकैं, देवैं काम जगाय।"[1]

इसी प्रकार सूचीबद्ध विषयों पर स्वामी रामचरण ने संक्षेप या विस्तार में प्रकाश डाला है। 'विश्वास बोध' स्वामी रामचरण के गम्भीर चिन्तन एवं सूक्ष्म भाव-दृष्टि की अनेक झाँकियाँ प्रस्तुत करता है।

कला पक्ष

इक्कीस प्रकरणों में बद्ध 'विश्वास बोध' ग्रन्थ में गम्भीर तथ्य निरूपण, उपदेशपरक एवं आत्माभिव्यंजक शैलियों के दर्शन होते हैं। गुरु-शिष्य प्रश्नोत्तर पद्धति का भी अनुगमन कवि ने किया है। काव्य की भाषा राजस्थानी हिन्दी है किन्तु स्थान-स्थान पर विदेशी मूल के शब्द भी निःसंकोच आए हैं। नीचे एक कुण्डलिया उद्धृत है जिसमें ऐसे शब्दों की भरमार है—

"मुरसद मोजा महर की क्या करिये तारीफ।
मुरीद मुलासी पाक दिल सो झेलै बड हारीफ।
सो झेलै बड़ हारीफ इस्क इकतार सम्हाया।
रजू बदगी माहि रिदगी फैन गुमाया।
रामचरण आसिक सोही सरु स्याम सामीप।
मुरसद मोजा महर की क्या करिये तारीफ।"[2]

स्वामी रामचरण ने इस ग्रन्थ में जिन विभिन्न छन्दों के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त किया है उनके नाम एवं उनकी संख्या नीचे दी जाती है—दोहा २५, सोरठा १२, चौपाई ५, साखी २८१, पद २, झपाल १४, कवित्त ३४, कुण्डलिया ९५९ रेखता २८, छन्द मनहर ४९, बेताल ४, सवैया ३, तोटक २, पद्धरी २, त्रिभंगी ४, अरेल ३०, झूलणा २।

६. विश्राम बोध

सम्पादन—स्वामी रामचरण रचित 'विश्राम बोध' प्रकाशित 'वाणी' के ८५ पृष्ठों में मुद्रित रचना है। ग्रंथ के सम्पादक रामजन जी ने 'ग्रन्थ उपमा' के अन्तर्गत निम्नलिखित पंक्तियों में अपना सम्पादन वक्तव्य दिया है—

---

१ अ० वा०, विश्वास बोध, सप्तम प्रकरण, पृ० ६९२।
२ वही, एकविंशप्रकरण, पृ० ७७१।

"रामचरण महाराज मुख भाखे शब्द अनूप।
जोड़ बणाई रामजन कीनो ग्रंथ स्वरूप।
कीनो ग्रंथ स्वरूप, अंग विश्राम बनाये।
अणभो बायक अगम छोल मैं सतां गाये।
ताको शोध विचारकै रचे ठाम के ठांम।
ग्रंथ नाम ये जानिये प्रगट बोध विश्राम।"[१]

इस उद्धरण मे पाँचवी पंक्ति ध्यान देने योग्य है जिसमे सम्पादक 'रचे ठाम के ठाम' लिखकर स्पष्ट करता है कि स्वामी रामचरण द्वारा कथित काव्य-पंक्तियों को तत्काल ही रामजन जी ने लिख लिया था और ग्रन्थ का स्वरूप विश्राम अंगो मे विभाजित कर निर्मित किया था। इसे 'विश्राम बोध सुख समोध' नाम दिया गया है।

ग्रन्थ-स्वरूप को पूर्णता सम्वत् १८५१, कुवार सुदी २, गुरुवार को शाहपुरा नगर में रामजन जी ने स्वामी रामचरण की उपस्थिति मे दी।

"साहिपुरो निज नगर जू सतसंगति सुख धाम।
संत विराजै सुभ समै, जहाँ बण्यो बोध विश्राम।
अठारा सो इक्यावना, आसोज शुक्ल पख होय।
बीज तिथी गुरुवार को, ग्रंथज पूरण सोय।"[२]

विषयवस्तु—'विश्राम बोध' मे कवि पुराने विषयो एवं नये शीर्षकों के संगम पर जैसे आकर रुक गया है। गुरु विशेषता, शिष्य-दैन्य, कुवेषनिन्दा, सत्संगपारख, साधलक्षण, विश्वास आदि पहले निरूपित विषयो की चर्चा तो करता ही है, उसके ज्ञान-आलोक की सीमा मे वासना, प्रतीति भावना, दास भाव, संपत्तिविपत्ति, प्रीति लक्षण आदि अनेक नये शीर्षकों के द्वारा भी अपना सन्देश हम सभी को प्रेषित करता है। नीचे विश्रामानुसार विषय-तालिका प्रस्तुत की जाती है—

विश्राम संख्या	विश्राम का नाम	विश्राम-निहित विषय
१	विधिगुरुशिख पारख निरूपण	गुरुस्तुति, गुरु विशेषता, विश्राम-विधि, ज्ञानवर्णन, वासना, गुरुशिष्य मिश्रित धर्म, मतलब तिरस्कार, शिष्य दीनता।

१. अ० वा०, विश्राम बोध की 'ग्रन्थ उपमा', पृ० ८५७।
२. वही।

विश्राम संख्या	विश्राम का नाम	विश्राम-निहित विषय
२.	सुमरण समाधान निरूपण	दास भाव, सबलनिर्बल शरण, बीनती, ममता, सपति, विपत्ति, भावी-मन चचल, मनसापाप, मन वसिकरण, मूलभक्ति।
३.	वैराग्यलछ सरक्त विरक्त भेद निरूपण	वैराग्य ह्लाग्य, शुधभिक्षा-यति सती-धर्म, निर्दवै, प्रवृत्ति-तिरस्कार—महित प्रशसा, आशानिषेध, माया नारीत्याग।
४	सत्सग पारख उत्तम लच्छण निरूपण	सत्सग-पारस, श्रद्धाभक्ति, हसवृत्ति, सार असार पारख, ऊचवृत्ति, वर्ण धर्म्म अधिकार।
५.	साध लक्षण निरूपण	साधलक्षण, विश्वास, चाहि तिरस्कार प्रीति लक्षण, द्विविधसृष्टि, सत जाति अच्युत, भ्रान्ति निषेध, सन्तवचन प्रमाण, सन्त परमार्थी।
६.	फोकट सिद्धवाचक तिरस्कार निरूपण	सेवक स्वामी लालची, दवावेदवा, वाचक, पण्डित लक्षण।
७	काम भ्रम कुबुधि तिरस्कार निरूपण	युद्धशूर, भूदूनर, झूठ-साच, विषय गीत निन्दा, भोग निन्दा, कपट, कुबुद्धि सुबुद्धि, नकल भ्रम तिरस्कार।
८.	भेष दर्शण लच्छअलच्छ निरूपण	कुवेष निन्दा, नागी सेना, कलि-युग, लच्छ अलच्छ।
९.	काल चिंतावणी निरूपण	काल, चिंतावणी, वृद्धावस्था।
१०.	माया लोभ तृष्णा खण्डन निरूपण	माया गति, आशा-तृष्णा, लोभ, सन्तोष।
११.	उपदेश गुरुमहिमा ग्रथ सख्या निरूपण	स्वार्थ खण्डन, उपदेश, जशजीवन, आतुरदान, गुरुमहिमा।

अन्य ग्रन्थो की भाँति इस ग्रन्थ के आरम्भ मे भी गुरु-स्तवन है, फिर कवि विषय-वैविध्य के बीच 'विश्राम' प्राप्ति का साधन खोजता है—

"कहो विश्राम किसी विधि पावै।
सतगुरु पूछ्या भेद बतावै।"[1]

उसे तत्काल विश्राम-प्राप्ति का साधन विदित हो जाता है—

"चाहवै विसराम तो बताऊँ तोहि ठीक ठाम,
भरम करम काम कामनानि वारिये।
आन मान खोय चित्त पोय परब्रह्म पद,
सहु ये सदीव सदा नाम कूं उचारिये।"[2]

नाम-स्मरण ज्ञान का कारण है। ज्ञानी नाम-स्मरण से सुखी होता है—

"राम भजन परताप तैं ज्ञानी सुखिया होय।"[3]

ज्ञान विश्राम रूप है, इस विश्राम की प्राप्ति के बाद घर वन सदृश लगता है। ज्ञानप्राप्ति के पश्चात् जो घर मे रहते है उनके निवास की स्थिति जल मे कमल की होती है—

"जे ज्ञान पाय गृह मैं रहै ज्यूं कमला जल माहिं।
लेय जीविका तास मधि जग सुख लिपैंज नांहिं।"[4]

द्वितीय विश्राम का आरम्भ कवि 'सुमरण'–महत्ता से करता है। स्वामी रामचरण 'सुमिरन' को सभी धर्मों का सिरताज और सभी साधनों का तिलक कहते है। सुमिरन बिना सभी कार्य-कलाप फीके लगते है, इसी से हृदय मे प्रेम का विकास होता है और भक्ति तत्त्व की प्राप्ति होती है—

"सुमरण धर्म सकल शिरताजा, सब साधन को टीको।
सुमरण बिना करो कोइ किरिया, किरतब लागै फीको।
सुमरण सै उर प्रेम बढ़ावै, भक्ती को तत लहिये।
रामहि राम उचारै रसना, आन बाद नहि बहिये।"[5]

कवि का जोर इकतार पर किस प्रकार है, देखिए—

"इकतार लियां सो आसिकी, महर करै महबूब।
बिन इकतार हुलास करि, महर न पावै खूब।"[6]

---

१ अ० वा०, विश्राम बोध, प्रथम विश्राम, पृ० ७७४।
२. वही।
३ वही।
४ वही, विश्राम बोध, प्रथम विश्राम, पृ० ७७५।
५ वही, द्वितीय विश्राम, पृ० ७८०-८१।
६ वही, पृ० ७८३।

और अब 'स्वार्थ'—जिसके कारण प्रीति बेप्रीति और बेप्रीति प्रीति बन जाती है। स्वामी रामचरण इससे विरत होने की बात इसी विश्राम मे करते है—

"प्रीति पलटि बेप्रीति होइ बेप्रीति पलटि होय प्रीति।
सब कोइ देखो निजर करि ये स्वारथ की रीति।
ये स्वारथ की रीति जगत गति ऐसी जानो।
सत सबा रस एक जहा परमारथ मानो।
रामचरण भज राम कू तजि स्वार्थ सर्क अनीति।
प्रीति पलटि बेप्रीति होइ, बेप्रीति पलटि होइ प्रीति।"[1]

चतुर्थ विश्राम मे कवि इकतार लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सत्सग की ओर उन्मुख होने का परामर्श देता है—

"सत्संगति मिल पाइयें उत्तम लछ इकतार।
ताते सगति कीजिये ज्यू मन का हरै विकार।"[2]

पचम विश्राम म 'साध लक्षण' की चर्चा के सन्दर्भ मे कवि दीनता का परित्याग कर राम मे विश्वास करने का उपदेश देता है, क्योकि राम तो गगनवासी अनल पख का भी प्रतिपाल करता है। यथा—

"अनिल पंख आकाश उडै धरणी नहि बैसै।
जिनकी आदू रीति अडिग मत रहै जु ऐसै।
राम करै प्रतिपाल चूण उनही कू देवै।
तो हरिजन भूपर बसै फिरै क्यू धन्ध करेवै।
वृत्ति अजगरी भवर तजि करि करसण सचै धरै।
रामचरण विश्वास बिन दिवस रैण बूभर भरै।"[3]

इसी सन्दर्भ मे स्वामी रामचरण सन्तो को 'अविगत का अवतार' भक्ति प्रसारण का देवदूत आदि कहते हैं। ऐसा आदर्श सन्त कलियुग मे कबीर हो गया है। यथा—

"भ्राति न कीजै साध सूं ये अविगत अवतार।
भक्ति चलावण आईया पठिया हरि करतार।
पठिया हरि करतार जुगे जुग जन प्रगटाना।
रामचरण निज धर्म तास का करत बखांना।

---

१. अ० वा०, विश्राम बोध, द्वितीय विश्राम, पृ० ७८४।
२. वही, चतुर्थ विश्राम, पृ० ७९६।
३. वही, पचम विश्राम, पृ० ८०६।

आन भर्म कूं छेक राम ही राम उचारन।
कलिजुग संत कबीर भये बहु जीव उधारन।"[1]

स्वामी रामचरण कबीर के प्रशसक हैं। यहाँ वे कबीर जी के समय, स्थान, गुरु आदि का उल्लेख करते हैं। निम्नलिखित पंक्तियाँ कबीर के जीवनवृत्त से संबंधित साक्ष्य हैं—

"साहा सिकंदर की समै अरु काशी भवन सथीर।
गुरु रामानन्द प्रताप तै प्रगटे दास कबीर।
प्रगटे दास कबीर भक्ति कारज अवतारा।
रमता राम अराध भर्म भेंचक सैं न्यारा।
रामचरण बंदन करै ब्रह्मवेत्ता संत सधीर।
साहा सिकंदर के समै अरु काशी भवन सथीर।"[2]

इसी प्रकार काम, भ्रम, कुबुद्धि, भेष दर्शन, माया, तृष्णा, काल, चेतावनी आदि विभिन्न विषयों का निरूपण करते हुए अंत में गुरु महिमा के गान में लीन होकर स्वामी जी ग्रन्थ की समाप्ति करते हैं—

"ये विश्राम विधी गुरु दाखी, भाखी भिनभिन जुगती।
रामचरण गुरु महिमा भारी, जिनू किये मोहि मुक्ती।"[3]

कला पक्ष—स्वामी रामचरण का यह ग्रन्थ ग्यारह विश्रामों में विभक्त है। ग्रन्थ में प्रश्नोत्तर शैली द्वारा तथ्यों का निरूपण कवि ने किया है। 'विश्राम बोध' में कवि अपने को अधिक प्रभावशाली शैली में व्यक्त करने में सफल हुआ है। 'ग्रन्थ संख्या' शीर्षक में प्रयुक्त छन्द, सख्या समेत सम्पादक ने लिख दिया है जो निम्नलिखित है—दोहा २२, साखी १६६, सोरठा ९, चौपाई २, चन्द्रायणा ३४, स्वैया ३, मनहर १५, पद २, त्रिभंगी ३, झपाल ७, पद्धरी ३, रेखता ५, कुण्डलिया ७१४, कवित्त १६, हंसाल १, बेताल २।

'विश्राम बोध' की भाषा अन्य ग्रन्थों जैसी राजस्थानी हिन्दी है जिसमें विदेशी मूल के शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग हुआ है। ये शब्द हिन्दी में सामान्य बोलचाल की भाषा में व्यवहृत होते हैं। यथा—मुलक, अरदास, गाफिल, महबूब, आशिकी आदि। अनेक शब्दों का हिन्दीकरण भी उन्होंने किया है। जैसे—गाफिल से गाफिलाई आदि।

---

१. अ० वा०, विश्राम बोध, पंचम विश्राम, पृ० ८१०।
२ वही, पृ० ८१०-११।
३ वही, एकादश विश्राम, पृ० ८५६।

७. समता निवास

सम्पादन—स्वामी रामचरण रचित बड़े ग्रन्थों में सातवाँ किन्तु विवेचित छः ग्रन्थों से आकार में अपेक्षाकृत छोटा ग्रन्थ 'समता निवास' प्रकाशित वाणी के ७० पृष्ठों में मुद्रित है। इस ग्रन्थ के सम्पादक रामजन जी ने 'ग्रन्थ उपमा' नामक सम्पादकीय शीर्षक के अन्तर्गत 'समता निवास' के उद्देश्य की चर्चा की है। वे कहते है—

"समता काज कहे सुखवानी, ये समताज निवास।
कहे सुनै अरु धारै याकूं, सो पावै सुख बास।"[1]

इसी सन्दर्भ में सम्पादक ग्रन्थ पूर्णता की तिथि, स्थान भी घोषित करता है। यह ग्रन्थ संवत् १८५२, पौष सुदी १, सोमवार को शाहपुरा में स्वामी रामचरण के सत्संग में पूर्ण हुआ—

"संवत अष्टादश पोष सुदि बावना।
एकै सोम सु ग्रंथ सम्पूरण भावना।
साहिपुरै सुखधाम राम सत्संग है।
परिहाँ वास रामजन जोड़ बणाया ग्रंथ है।"[2]

'ग्रन्थ संख्या' शीर्षक की अन्तिम पंक्ति में स्वामी रामजन जी यह स्पष्ट करते हैं कि ग्रन्थ-रचना के साथ ही साथ वे इसका संग्रह, सम्पादन, लेखन सभी कुछ करते गए—

"अंग जोड़ परकरण ठाम की ठामज वूहा।"[3]

यहाँ 'ठाम की ठाम' से यह ध्वनि निकलती है। पुनश्च 'ग्रन्थ उपमा' की ऊपर उद्धृत पंक्ति 'साहिपुरै सुखधाम राम सत्संग है' से भी इस कथन की पुष्टि होती है। इस ग्रन्थ को 'समता निवास शाला प्रकाश' नाम से अभिहित किया गया है। सम्पादक ने अपने सम्पादकीय का निचोड़ निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकट कर दिया है—

---

१ अ० वा०, समता निवास की 'ग्रन्थ उपमा', पृ० ९२८।

२. वही।

३ वही, समता निवास की 'ग्रन्थ संख्या, पृ० ९२८।

"जिज्ञासा चितावणी, गुरु उपदेशज सार।
गुरु महिमा ग्रंथ ओपमा, संख्या शब्द विचार।"[1]

विषयवस्तु—'ग्रन्थ उपमा' के अन्तर्गत सम्पादक रामजन जी ने 'समता निवास' ग्रन्थ की विषयवस्तु की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। इस सन्दर्भ की कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"ये तो जुक्ति भक्ति के कारण, कही अमोलिक गाथा।
समता शाता धीरज पावन, बोले सतगुरु दाता।
भक्ति भजन ज्ञान निर्वेद, कारण कारज भाखे।
कारज अनित्त नित्य सोहि कारण, सो कारण दृढ़ राखे।
बहुर्यू निरणा साच झूठ का, तदाकार दर्शाये।
जाके हिरदै होय सचेती, भेव जिनो ये पाये।"[2]

'समता निवास' के सभी ९ प्रकरणो की प्रकरणबद्ध विषयतालिका इस प्रकार है—

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
१	गुरुशिष्य लक्षण समता ज्ञान निरूपण	गुरुवदन, समता भजन सनातन धर्म, जीवन्मुक्ति, अलिप्तता, होतव-विश्वास, मनोरथ-त्याग, गुरुपारख, गुरुभेद-शिष्यभेद।
२.	दासशरणो भक्ति भजन पतिव्रत निरूपण	रामदास, गुरुशरण, प्रतीति भक्ति, नवधा भक्ति, भजन प्रताप, अभ्यास-भक्तवत्सलता, अवतार पतिव्रत।
३	रामविमुख झूठसाच पारख निरूपण	रामविमुख, असत्य, अवगुणग्राही, पारख अपारख, सिद्ध साधु भेद, संसारगति।
४.	संग पारख निरूपण	सत्संग, संगपारख, मंदभाग, स्वकर्म से जाति, उत्तमकनिष्ट चलण, साल्यापण, कुबुद्धि-उत्तमबुद्धि।

१. अ० वा०, पृ० ९२८।
२ वही।

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
५	साधवृत्ति वैरागलच्छ निरूपण	साधुलक्षण, साधभेद, अनिकेत, याचा तिरस्कार, संसार संग त्याग।
६	प्रवृत्ति माया आशैकाम खंडनो निरूपण	प्रवृत्तित्याग, संताप, तृष्णा, आशा, मन्द आशयमिलाप, कामी कुसंग।
७	मनविकल्प श्रोतावक्ता वाचक निरूपण	मनहरस, शृंगार निन्दा, श्रोतावक्ता लक्षण, वाचक तिरस्कार।
८	भ्रमभेप रीति जानबो निरूपण	भ्रम रीति, नकल भक्ति, विचलवैरागी, साध असाध पारख।
९	गुरुमहिमा ग्रंथ संख्या निरूपण	चिंतावणी, अस्ति-नास्ति-मोहमहिमा, पितृभक्ति, गर्व निन्दा, सबल वैर, काल, रुदन-निषेध, जिज्ञासा, उपदेश, समय लाभ, गुरुगुण, शिष्य-दीनता।

'समता निवास' के पहले प्रकरण मे 'गुरुवदन' के अन्तर्गत स्वामी रामचरण अपने गुरु की प्रशंसा मे रत है। वे उनकी तुलना कबीर से करते हैं—

"काशी भया कबीर जी ज्यूंही भया दांतड़े संत।
भवसागर की धार से ज्यां तार्‌या जीव अनंत।
ज्यां तार्‌या जीव अनन्त राम कै भजन लगाया।
कूकस भर्म उडाय कृपा करि कण पकड़ाया।
रामचरण वंदन करै सो मेरे उर बरतन्त।
काशी भया कबीर जी ज्यूंही भया दांतड़े संत।"[1]

द्वितीय प्रकरण मे प्रतीति-भक्ति का सन्देश देते है और नवधा, दशधा भक्ति की चर्चा करते है। वे नवधा के ऊपर दशधा भक्ति की महत्ता प्रतिपादित करते है। नवधा भक्ति मे भक्त के उलझाव की बात निम्नलिखित पंक्तियो मे देखिए--

"कर करि नवधा भक्ति भक्त उरझात है।
झांसो सिंह संताप सर्क उपजात है।"[2]

---

१. अ० वा०, समता निवास, प्रथम प्रकरण, पृ० ८५९।
२. वही, द्वितीय प्रकरण, पृ० ८६९।

इसीलिए दशधा भक्ति की प्राप्ति की महत्ता बखानते हैं—

"नव अंग नवधा भक्ति के जापर दशधा सार।
जे दशधा प्रापति नहीं तो सबही जांण असार।
तो सबही जांण असार सार बिन कर्तव फीको।
देखो हिये विचार नाम नवधा शिर टीको।
रामचरण भज राम कूं धार्‌या दृढ़ इकतार।
नव अंग नवधा भक्ति के जापर दशधा सार।"[1]

यह दशधा भक्ति नामोच्चारण है। यो तो राम का नाम युग-युगो मे प्रकट है पर कलियुग मे इसका विशेष महत्त्व है—

"रामनाम जुग जुग प्रगट पै कलियुग अति अधिकार।
और धर्म लागत लियां, सो सधै नहीं इकतार।"[2]

तीसरे प्रकरण मे 'रामविमुख' की सविस्तार चर्चा स्वामी ने की है। राम-विमुख खर, शूकर और श्वान के सदृश है—

"खर शूकर अरु श्वान कै, उर ओखर को भाव।
यू रामविमुख जे विकर्मी, ज्यां अशुभ किरत परभाव।"[3]

उच्चकुल का अभिमान करने वाले रामविमुखो की स्थिति तो कुत्ते की पूंछ जैसी होती है—

"श्वान पूंछ करड़ी रहै, निज कारज हेत निकाम।
ऊँचा कुल अभिमान तै, हरि सूं होय हराम।"[4]

नवम् प्रकरण मे स्वामी जी ससार की असारता की ओर ध्यान आकृष्ट करते है। अन्तिम समय मे स्वार्थी ससार केवल रोना और तोबा करना जानता है, पर हित कोई नहीं, हितैषी तो केवल 'रामजी' है—

"हाय बहारां हिन्दू रोवै, भी तोबा तुर्क पुकारै।
ये करामात कोइ अलिभ केरी, कोइ विरला राम सम्हारै।

---

१ अ० वा०, समता निवास, द्वितीय प्रकरण, पृ० ८७०।
२. वही।
३ वही, तृतीय प्रकरण, पृ० ८७५।
४. वही, पृ० ८७६।

राम सम्हारै बिरला कोई, तोबा हाय न रोवै।
रोयां सूं नहि पाछो आवै, ज्ञान गाठ की खोवै।"[1]

अंतिम समय मे राम का स्मरण न कराकर जो कुटुम्बी जनों के प्रति हृदय मे मोह उत्पन्न करते है उन्हे हितैषी नही द्रोही समझना चाहिए। अंतिम समय का हितैषी राम है या जो राम का स्मरण कराता है। यथा--

"अंत समय परिवार का, जो मोह उपावै रोय।
तो उनकू हितु न जांणिये, वे सबही द्रोही जोय।
अंत समय हरिजी हितु, कै राम कहावै सोय।
रामचरण वै बखत मे, और हितु नहिं कोय।"[2]

ऐसे ही विभिन्न विषयों का निरूपण करते हुए स्वामी जी अन्त मे गुरुमहिमा मे लीन होकर 'समता निवास' पूर्ण करते हैं।

कला पक्ष—नौ प्रकरणों मे बद्ध 'समता निवास' ग्रन्थ मे तथ्य निरूपण भली प्रकार हुआ है। विषयों को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न प्रतीको का सहारा लिया गया है। भाषा राजस्थानी हिन्दी है जिसमे तत्कालीन बोलचाल के विदेशी मूल के शब्दो का भी प्रयोग हुआ है। जैसे—नापाक, फतूर, ख्वार, जाहिर, दिलबरी आदि।

'समता निवास' मे कवि ने निम्नलिखित छन्दो का प्रयोग किया है। दोहा, सोरठा, चोपाई, साखी, सवैया, कवित, कुण्डलिया, रेखता, पद्धरी, उद्धोर, झपाल, चन्द्रायणा। इन बारह छन्दो की संख्या सम्पादक ने 'ग्रन्थ संख्या' शीर्षक के अन्तर्गत इस प्रकार दी है—दोहा १२, सोरठा १८, चोपाई ३, साखी २६४, सवैया १, कवित ४, कुण्डल्या ५७४, रेखता २, पद्धरी ३, उद्धोर १, झपाल २, चन्द्रायणा ४६।

८. रामरसायण बोध

सम्पादन—स्वामी रामचरण जी के बडे ग्रन्थो मे आठवाँ किन्तु उन सभी मे छोटा ग्रन्थ 'रामरसायण बोध' स्वामी जी की अन्तिम रचना है। इस ग्रन्थ के निर्माण के पश्चात् उन्होने कोई ग्रन्थ रचना नहीं की और उनका देहावसान हो गया। ग्रन्थ-सम्पादक इस ग्रन्थ के अन्त मे अपने सम्पादकीय वक्तव्य मे इस ओर संकेत करता है—

"ये वायक फुरमाय पधारे धाम कूं।
ररंकार मे लीन उचारे राम कूं।

---

१ अ० वा०, समता निवास, नवमो प्रकरण, पृ० ९२४।
२. वही।

अठारा सै पचपन्न वदी पाँचै खरी।
परिहा बैसाख गुरुवार देह त्यागनकरी।"[1]

ऊपर उल्लिखित पंक्तियाँ यह स्पष्ट करती है कि 'रामरसायण बोध' की वाणी उच्चारण के तत्काल बाद स्वामी जी का स्वर्गवास हो गया और निधन-तिथि के ठीक पाँच महीने बाद कुवार बदी ५, शनिवार को इस ग्रन्थ का सम्पादन पूर्ण हो गया। स्वामी रामजन ने लिखा है—

"संवत अष्टादश पचावन जांनिये।
आशोज पंचमी वदी सनीसर मांनिये।
महाराज कहे जो शब्द बणायो ग्रंथ है।
परिहा सबके काज अनूप न अर्थ है।"[2]

ग्रन्थ का सम्पादन-स्थान शाहपुरा है। इस सन्दर्भ में स्वामी रामजन पुनः लिखते हैं—

"ग्रंथ बणायो शोध, निज वायक महाराज का।
राम रसायण बोध, साहिपुरै सत्संग में।"[3]

ग्रन्थ सम्पादक ने इस ग्रन्थ की बड़ी प्रशंसा की है और इसके शब्दों को अमृततुल्य कहा है। स्वामी रामचरण के ये शब्द मोती-नग हैं—

"ये रामरसायण वरणियो, ग्रंथ सुधामइ सार।
महाराज अमी बिरषा करी, जा सै यहै विचार।
रामचरण महाराज मुख, अमृत बिरखा कीन।
पी पी जीवै दास जो, आश उनों पदलीन।
शब्द यह महाराज का, नग मोताहल जोय।
ग्रंथ जोड कहि रामजन, खानाजाद जु होय।"[4]

विषयवस्तु—'रामरसायण बोध' के सम्पादक ने ग्रन्थ की विषयवस्तु की भूरि भूरि प्रशंसा की है। स्वामी रामजन ने 'रामरसायण बोध' के इन वचनों को रामचरण जी द्वारा मुक्ति हेतु कथित कहा है। यह रामरसायण रस से पूर्ण है—

---

१. अ० वा०, रामरसायण बोध में स्वामी रामजन का कथन, पृ० ९७५।
२. वही।
३. वही।
४. वही।

"ये बायक उद्धार करन कूं, रामचरण जी भाखे।
रामरसायण रस का भरिया, आप सबन कूं दाखे।
ताकी जोड ग्रंथ ये परगट रामजन्न बणवायो।
ज्ञान भक्ति वैरागरु जुक्ती, मुक्ती पंथ बतायो।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में ग्रन्थ-प्रशंसा के साथ ही सम्पादक ग्रन्थ में आये प्रमुख विषयों की ओर भी सकेत करता है। नीचे पाँचो प्रकरणो की विषय सूची दी जाती है—

प्रकरण संख्या	प्रकरण का नाम	प्रकरण-निहित विषय
१	गुरुशिष्य पारख निरूपण	गुरुलक्षण रस-रसायण, गुरुशिरोमणि, गुरुमुख सिद्धान्त को दृष्टान्त, गुरुपारख, शिष्यमनमुखी, शिष्य गुरुमुखी, शिष्य मर्जादीक।
२	शरणासुमरण ज्ञानधारणा निरूपण	गुरुशरण महिमा, कामना-रहितविनय, गुरुसमर्था-सुमरण धर्म, रकार मकार सिद्धान्त, भजनमहिमा, प्रेम-प्रतीति, अध्यात्मज्ञान, ज्ञानक्रिया, चलाचल भेद, भोग-तिरस्कार।
३	अकलधार कुलच्छ तिरस्कार आशौ-मिलाप निरूपण	अकल विचार, चचलतातिरस्कार, माल्यापण निषेध, वाचक तिरस्कार, असलाकी आशामुखी, श्रद्धाभवित-दासधर्म, कुदासनिंदा, आशय अण मिलाप, एकता वृथा भेष, षट्दर्शण गति।
४	माया मतलब हिंसा लोभ खण्डन उपदेश चितावणी निरूपण	मायारग, लोभ, तृष्णा-सताप, मतलब-तिरस्कार, हिंसा-तिरस्कार, दया, उपदेश, चिन्तावणी।
५	कामखण्डन उत्तमसग शूरापण गुरुमहिमा ग्रन्थसख्या निरूपण	कामनिरूपण, निष्कामता, साधन-सिरै सत्सग, पतिव्रत-शूरापण, निवृत्तिधर्म, भजन सिद्धान्त, गुरुविनय।

१. अ० वा० रामरसायण बोध मे स्वामी रामजन का कथन, पृ० ९७५।

प्रथम प्रकरण मे विषयवस्तु का आरंभ गुरुवदन से कवि ने किया है। स्वामी रामचरण जिस गुरु की वन्दना करते हैं वह परमनिधान ब्रह्मरूप है।[1] वह गुरु ताप मिटावन, शांतकर, आनन्दकार, उदार, दुख-द्वन्द्व से दूर, ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मभजन में लीन, तीन गुणों से परे है। ये अध्यात्म। उपकार सतगुरु से ही सम्भव है।[2] 'राम-रसायण बोध' मे वर्णित रस 'राम रस' है जिसका पानकर्त्ता पुनः जन्म नहीं लेता--

"जननी कबहूं ना जणं जो पीवै राम रसांण।
राम रसायण पीवता मिटै जीव की बांण।
मिटै जीव की बांण हाणि विखिया सब जावै।
निर्विष निर्मल अग अभंगी पद सम्हावै।
ये गुरु वायक मैं कही हिये अकल कर छांण।
जननी कबहूं ना जणै जो पीबै राम रसांण।"[3]

यह राम-नाम का रसायन भी मोक्ष प्रदाता है। पर यह उसे ही प्राप्त होता है जिस पर भगवान की कृपा होती है। इसकी समता अन्य रस नहीं कर सकते। यह महा मधुर रस है जिसका पान भक्तजन करते हैं। इस रस का पान जो भी ऊँच-नीच करता है अनुपम हो जाता है—

"पीवै राम रसाण राम किरपा ये जानो।
या कै तुल्य न ओर किते रस करो वखांनो।
महा मधुर जन पिवै शेष शकर से सारा।
वेद पुराणा साखि पतित बहु किये उधारा।

---

१ "सतगुरु परम निधान पद, हृदसू वन्दन जाय।
रामचरण वदन करै, ब्रह्म रूप नित सोय।"
—अ० वा०, रामरसायण बोध, प्रथम प्रकरण, पृ० ९२९।

२ "ताप मिटावन गुरु शांतिकर आप सदाई।
आनदकार उदार भार समता सुखदाई।
दुख द्वन्द रता दूर पूर इक ब्रह्म बतावै।
ब्रह्म भजन मैं लीन तीन गुण मैं नहिं आवै।
ये उपकार अध्यातमी सतगुरु जी सूंही वणै।
रामचरण पी रामरस बहुरयू जननी ना जणै।"
—वही।

३. वही।

ऊंच नीच कोइ बरण पिवै स होय अनूप।
मन तन तावो पलटि वे रामचरण रसकूप।"[1]

तीसरे प्रकरण मे 'भेख दर्शण' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी राम भजन स विमुख साधु-वेशियों की उपमा उस नदी या सागर से देते है जो जलहीन है—

"सरिता सायर जल बिना यू राम भजन बिन भेख।
वहा वझाली तप्त अति याकै तृष्णा रेख।
याकै तृष्णा रेख अलेखी राम बिसार्या।
आशा लोभरु काम दाम संग माम जु हार्या।
शाता समता ना भई करै जहा तहा धेक।
सरिता सायर जल बिनां यू राम भजन बिन भेख।"[2]

चतुर्थ प्रकरण का 'माया रग' शीर्षक मे कवि आरभ करता है। माया अनन्त रगी है, उसका पार पाना सहज नही। माया के छल-छन्द और रस-रग मे जीव भूला रहता है। सच्चे जन वही है जो माया को देखकर भी अपना मन विचलित नही करते।[3] इसी प्रकार तृष्णा, मतलब तिरस्कार, हिंसा तिरस्कार, दया, कामगति आदि विषयो का परसन करता हुआ कवि अन्तिम प्रकरण मे सत्सग पर आ जाता है। वह कहता है—

"उत्तम जन को सग रग है राम को।
जाकै सग प्रताप लहै सुखधाम को।"[4]

और अन्त मे अध्यात्म ज्ञान के दाता गुरु से अपनी दीनता का निवेदन कर वे शब्द मे समा जाते है। इस दृष्टिकोण से ग्रन्थ-सम्पादक रामजन जी का यह कथन महत्त्व रखता है—

"यूं तरुवर को स्वाद बीच रसफल मे जाना।
रामचरण महाराज शब्द के बीच समांना।"[5]

---

१ अ० वा०, रामरसायण बोध, प्रथम प्रकरण, पृ० ९३२।
२ वही, रामरसायण बोध, प्रथम प्रकरण, पृ० ९५३।
३. "माया के रग अनन्त प्यारे ताको पार कहो कुण पाय है जी।
छल छद अनेक दिखाय भारे रस-रग मै जीव भुलाय है जी।
कहु आय रहै कहु जाय रहै अधबीच मैं बहुत झुलाय है जी।
जन रामचरण्ण वे जन्न सही माया देखि न चित्त चलाय है जी।"
वही, रामरसायण बोध, चतुर्थ प्रकरण, पृ० ९५५।
४ वही, पचम प्रकरण, पृ० ९६७।
५ वही, रामरसायण बोध मे स्वामी रामजन का कथन, पृ० ९७५।

कला पक्ष—पाँच प्रकरणो मे समाप्त ग्रन्थ 'रामरसायण बोध' स्वामी जी द्वारा निर्मित अन्तिम रचना है, जिसका सम्पादन उनके निधन के ठीक पाँच महीने बाद पूर्ण हो गया। इस ग्रन्थ के अलावा सभी का सम्पादन एव सग्रह स्वामी रामचरण के जीवन काल मे ही पूर्ण हो गया था। राम-नाम के रसायण मे डूबे वचनों को रामजन ने प्रकरणबद्ध कर दिया और विभिन्न विषयो का निरूपण तथ्य निरूपण की गम्भीर शैली मे कवि ने किया है। प्रारम्भ मे शिष्य-गुरु वचन द्वारा सवाद शैली का प्रवेश भी ग्रन्थ मे हो गया है। अन्य ग्रन्थो के समान ही इसकी भाषा भी बोलचाल की राजस्थानी हिन्दी है और दीदार, महबूब, आशिक आदि विदेशी मूल के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। 'ग्रथसख्या' के अन्तर्गत सम्पादक ने ग्रन्थ मे प्रयुक्त छन्द एव उनकी सख्या का उल्लेख किया है जिनका विवरण नीचे दिया जाता है।

साखी ४४, दोहा १८, सोरठा ६, मनहर ९, चन्द्रायणा १६, छपाल ७, झूलणा ९, पद्धरी २, कवित ४२, कुण्डलिया ३००, रेखता १८ और पद २।

प्रकाशित वाणी के ४८ पृष्ठो मे इस ग्रन्थ का विस्तार हुआ है। इसे 'राम-रसायण बोध आनन्द प्रमोध' नाम से अभिहित किया है।

९. दृष्टान्त सागर

सम्पादन एवं टीका—स्वामी रामचरण द्वारा रचित ९ बडे ग्रन्थो मे अन्तिम 'दृष्टात सागर' कूट ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का सम्पादन एव उसकी टीका स्वामी रामजन जी ने की है।[1] 'दृष्टान्त सागर' की महिमा का वर्णन करते हुए सम्पादक एव टीकाकार रामजन कहते है—

"यह ग्रथ सागर सुधा, भरिया गहर गभीर।
पीवै सो जीवै सही, राम नाम सुखसीर।"[2]

इसी सन्दर्भ मे टीकाकार ग्रन्थ-टीका का समय एव स्थान भी घोषित करता है। गुरु की कृपा से रामजन ने इस ग्रन्थ की टीका शाहपुरा के सत्सगति धाम मे सवत् १८४९ अगहन शुक्लपक्ष मे पूर्ण की—

"शाहपुरा मधि येह सिधि, सत्संगति शुभधाम।
टीका कृत भये रामजन, गुरु किरपा सुख राम।

---

१ "दृष्टान्तज सागर ग्रन्थ यह, जामै बहु दृष्टात।
बुधि अनुमारै रामजन, टीका विधि भाखंत।"
—अ० वा०, पृ० १०६७।

२ वही, पृ० १०६७।

अठारा सै गुणताल, मे संवत सख्या कही।
मगसर सुदी विशाल, टीका पूर्ण रामजन।"[1]

इस ग्रंथ की स्वामी रामजन कृत टीका की भाषा गद्य है।

विक्रम की १९वीं शती के राजस्थानी गद्य का यह भाष्य अच्छा उदाहरण है। टीका-कार अपने वक्तव्य का अन्त गुरुवन्दना से करता है—

"करगह काढ्यो कूप तें, रामचरण जी आप।
रामजन के उर सदा, एक तुम्हारो जाप।"[2]

इस ग्रन्थ को टीकाकार 'दृष्टान्त सागर सुधा आगर' नाम से अभिहित करता है।

विषयवस्तु—'दृष्टान्त सागर' ग्रन्थ स्वामी रामचरण के पाण्डित्य एवं कवि-कौशल का परिचायक है। इस ग्रन्थ में स्वामी जी ने विषयवस्तु में कोई परिवर्तन कर नूतनता का समावेश तो नहीं किया है किन्तु 'स्वामी जी ने जीव, ब्रह्म, सृष्टि आदि के रहस्यों का छिपाकर प्रकट किया है।'[3] 'इस ग्रन्थ में स्वामी जी ने अपने पाडित्य-प्रदर्शन करने के साथ-साथ आध्यात्मिक जगत की बातों की गम्भीरता को प्रकट किया है।'[4] नीचे एक दृष्टान्त उद्धृत है जिसमें वासना के स्वरूप को ककड़ी बीज के माध्यम से स्पष्ट किया गया है—

"सात हाथ की काकड़ी, बीज बध्यो नव हाथ।
आठ फाड़ अरु तीन रस, माली संग सनाथ।"[5]

इसकी टीका पर भी एक दृष्टि अपेक्षित होगी—

'सात हाथ की काकडी, सोही देह सात धातु की भई, नव हाथ बीज साही नव तत्व, पच तो विषय, शब्द-१, स्पर्श-२, रूप-३, रस-४, गंध-५, इति विषय अरु च्यार अंतःकरण, मन-१, बुद्धि-२, चित्त-३, अहंकार-४, ये नवतत्व रूपी वासना बीज बधे, सो बारबार या वासना का सबध सू उगे है, सोही जन्म मरण पावैं, आठ फाड सो, पृथ्वी-१, जल-२, तेज-३, पवन-४, आकाश-५, इति तत्व, तीन गुण—सत्व-१, रज-२, तम-३, इति गुण तत्व आठ फाड कहिये है, तीन रस, वायु-१, कफ-२, पित्त-३, इति रस, ऐसी ककडी काया, सो माली कै सग सनाथ, सो माली प्राण रामजी के आधीन, त्या प्राणा बिना देह स्याल कूकरा को खाण है जैसे माली काकडी रूखालै नहीं, तो स्याल खा जाय, तासू माली कै सग सनाथ कहिये, पै जो यूं जीव

१ अ० वा०, पृ० १०६७।

२ वही, पृ० १०६७।

३. केवलराम स्वामी : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ७१।

४ डॉ० अमरचन्द वर्मा स्वामी रामचरण एक अनुशीलन, पृ० १२६।

५. अ० वा०, दृष्टान्त सागर, पृ० १०१५।

मे वासना है, तो लूं माली ब्रह्म कूं पिछाणै नही, ब्रह्म पिछाण्या बिना जीव ससार मैं भरमत है, वासना कै मग सो कहिये है।"[1]

बाला पक्ष—प्रकाशित वाणी के ५१ पृष्ठो मे मुद्रित यह रचना प्रकरण, विश्राम या प्रकाशो से बद्ध नही। इसे रामजन जी ने टीकाबद्ध करके छोड दिया है। 'इसमे भावों का प्रवाह नही है। कोरा पाडित्य और वाग्वैदग्ध्य है। टीका वचनिका न हो तो इस ग्रन्थ का समझना मुश्किल हो जाय।'[2] कूट शैली मे लिखे गये इस ग्रन्थ मे 'ग्रन्थ सख्या' शीर्षक के अन्तर्गत छन्दो एव उनकी सख्या का विवरण स्वामी रामजन ने प्रस्तुत किया है—

"दोहा पचासरु एक शत, तीन सोरठा जान।
कुण्डलिया षट् रामजन, ग्रंथ मूल परमान।
तापर टीका वचनका, चौगांनी यह सार।
गोप्यज्ञान चौगांन में, रामजन्न विस्तार।"[3]

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि १५० दोहा, ३ सोरठा, ६ कुण्डलिया और रामजन रचित टीका वचनिका के गद्य मे यह रचना सजी हुई है। प्रतीको एव रूपको का बाहुल्य है। दृष्टान्त सागर की भाषा राजस्थानी हिन्दी है जिसमे तत्सम शब्द अधिक आये है। टीका का गद्य सरल राजस्थानी गद्य है। टीकाकार ने प्रतीको को स्पष्ट करने का उत्तम प्रयास किया है।

४. फुटकर

गावा का पद

सम्पादन—यों तो स्वामी रामचरण के विभिन्न ग्रन्थो मे छन्दो के बीच-बीच मे पद भी आये है किन्तु १०५ फुटकर पदो का सकलन सवत् १८२० वि० मे वाणी सग्रह करते समय श्री नवलराम जी ने 'गावा का पद' नाम से किया था। इस आशय की सूचना सग्रहकार ने पद-सग्रह क अन्त मे दी है जिसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। प्रकाशित वाणी के २२ पृष्ठो मे इस सग्रह का विस्तार हुआ है। ये पद विभिन्न रागो मे लिखे गये हैं।

विषयवस्तु—विषय की दृष्टि से इन पदो मे पीछे निरूपित विषय ही आए है। ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, चेतावनी आदि विभिन्न विषयो को कवि ने अपने इस गीत काव्य का विषय बनाया है। 'कही विरहिणी आत्मा की पुकार है तो कही पिया के दिव्य सौन्दर्य की

---

१. अ० वा०; दृष्टान्त सागर, पृ० १०१५-१६।
२. केवलराम स्वामी : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ७१।
३. अ० वा०, ग्रन्थ सख्या, पृ० १०६७।

बाँकी झाँकी, कहीं नाम महिमा की रट है तो कहीं आत्म-दैन्य का सुष्ठु वर्णन।"[1] नाम महिमा का महत्त्व समझकर ही वह राम-नाम पर न्यौछावर है--

"राम तुम्हारे नाम की मैं बलिबलि हारी।
जीव तिरत कहा देर है सायर शिलतारी।"[2]

राम सर्वव्यापी है। वह कहाँ है और कहाँ नहीं, कहा नहीं जा सकता। अगम अगोचर राम निकट नहीं दीखते किन्तु स्मरण करने से वह हृदय में ही भासित होने लगते हैं—

"रमईयो सब में रमि रह्यो हो।
हा हो कहुं नाहि कह्यो नहि जाय।
अवनी उदक दारु में हुतभुक, पुष्पगध तिल तेल।
पय में घिरत परशि परिपूरण, ऐसें हो मिल्यो है सुमेल।
अगम अगोचर निकट न दर्शें, विन करणी सुक्ष दूर।
भजन किया उर अन्दर भासै, आपा पर में भरपूर।"[3]

कवि अपने रूठे राम को रिझाकर मनाने के लिए नट सदृश नाटक कर उसे मोहना चाहता है—

"रूठा राम रिझाय मनाऊँ, निसिवासर गुण गाऊं हो।
नटवा ज्यूं नाटक करि मोहू, सिन्धू राग सुणाऊ हो।
शील सतोष दया आभूषण खम्याभाव बधाऊ हो।
सुरति निरति सांई में राखूं, आन दिशा नहि जाऊं हो।
. . . . . .
इस विधि करिकै राम रिझाऊ, प्रेम प्रीति उपजाऊं हो।
अनंत जन्म को अतर भागा, रामचरण हरि भाऊ हो।"[4]

ररंकार पति और सुदरी सुरति के होली खेलने का दृश्य भी कितना महिमामय है—

"ररकार पति सुरति सुदरी अर्श पर्श रमैं होरी हो।
वर अविगत नहचल अविनाशी, सुदरि नवलकिशोरी हो।

---

१. स्वामी केवलराम : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ७०-७१।
२. अ० वा०, गावा का पद, पृ० १०००।
३. वही, पृ० १०००।
४. वही, पृ० १००१।

पचरंग पीस गुलाल उडाई, तिरगुण केसर गारी हो।
अर्म अबीर साच करि सूधो, भरत प्रेम पिचकारी हो।
शील सिंगार नेह अति नौतम, खेलत पिया पियारी हो।
अनहद नाद बैन धुनि ऊठै, गरजत गगन मझारी हो।
फागुन फाग रमत भयो भादू, अबर बरसै भारी हो।
भीजत सुरति गरक भई सुख मैं, निरखत रूप मुरारी हो।
जीवन सफल भयो नागरि को, लागो रंग करारी हो।
रामचरण पिव फगवा बकस्या पूरी आश हमारी हो।"[1]

केवल राम कवि का जीवन प्राणाधार है—

"रमइयो मेरो जीवन प्राण अधारो रे।
सतगुरु शरण परम निधि पाई जाको वार न पारो रे।
रामरसायण भरि भरि पीऊं माया को रस खारो रे।
आदि न अंत मरै नहिं जामै सोही इष्ट हमारो रे।
जल मे लहरि लहरि में जल है यू सब पूर पसारो रे।"[2]

राम रसायन का स्वाद उन्हें बरबस उससे दूर नहीं होने देता—

"रामरस पलक न कीजे न्यारो।
ऐसो सूंज बहुरि नहिं आवै नर तन को अवतारो।"[3]

स्वामी रामचरण का कवि व्यक्तित्व गावा के पदों में खूब निखरा है। कबीर की भाँति वे भी राम की विरहिणी हैं। साँई से 'महर' (कृपा) के लिए वे कितनी उत्कण्ठा से निवेदन करते हैं—

"सांईया अरज हमारी हो।
बिरहिनि ऊपर कीजिये, टुक महर तुम्हारी हो।"[4]

पर नीचे की पंक्तियों में तो मीरा की बेचैनी स्वामी जी के हृदय को मथ रही है, पथ निहारते आँखें थक जाती हैं, रात-दिन नाम लेकर पुकारती है रसना रस की आशा में—

---

१. अ० वा०, गावा को पद, पृ० १००१।
२. वही, पृ० १००४।
३. वही।
४. वही, पृ० १००६।

"रमईया मेरी पलक न लागे हो।
दरश तुम्हारे कारणै, निशि वासर जागै हो।
दशूं दिशा आतर करूं, तेरो पंथ निहारूं हो।
राम राम की टेर दे, दिन रैण पुकारूं हो।
नैन दुखी दीदार बिन रसना रस आशै हो।
हिरदो हुलसै हेत कूं, हरि कब परकाशे हो।
स्वाति बूंद चातक रटै जल और न पीवै हो।
घन आशा पूरै नहीं तो कैसें जीवै हो।
दास की अरदास सुण पिया दरशण दीजै हो।
रामचरण बिरहनि कहै, अब बिलम न कीजै हो।"[1]

विरहिणी की 'अरदास' प्रियतम ने सुन ली और तभी फाग खेलने में ही उसे सुहागिन बना दिया। विरहिणी सनाथ हो गई, उसके मन का भ्रम दूर हो गया। यथा—

"खेलत फाग री, मोहि बकस्यो राम सुहाग।
पकर्यो हाथ नाथ अबला को, अंतर भरम बिलायो।
जाग्यो भाग राग बंध्यो पिव सूं, शरणा को फल पायो।
भरि पिचकारी प्रेम पियारी, सन्मुख श्याम चलाई।
अवत हुबस लई पति हित सू, सुदरि अंग लगाई।
अपणो अंग दियो गुण सागर, चचल अचल कराई।
जैसे नीर बहै सरिता को, समद समंद होइ जाई।
अरस परस अंतर नहि दर्शे, परसे प्रीतम प्यारी।
जैसे डरी गरी सरबस को, कूण करै जल न्यारी।"[2]

शरीर की नश्वरता एवं क्षणभंगुरता पर भी कवि की दृष्टि है। वह शरीर को उस पाहुने के समान समझता है जो आज या कल में उठकर चल दे—

"यो तन पाहू्णो रे, मति कोइ करो गुमान।
पिरसूं काल्ह कि आज में रे, उठ चलै मिजमान।"[3]

उसे मृगजल की ओर आकर्षित भ्रमित मन पर दया आती है। वह मन को सजग होने की चेतावनी भी देता है—

१. अ० वा०, गावा का पद, पृ० १००६।
२. वही, पृ० १००९।
३. वही, पृ० १००९।

"मन तू भरम भूल्यो बीर।
मृगतृष्णा जल देखि ध्यायो, परिहरि परगट नीर।
साचा प्रीतम परिहर्‌या रे, कोइ न बंधावै धीर।
मात पिता सुत भामिनी रे, इन संग पायै पीर।
धन जोबन मति देख भूलै, ये सब नांही थीर।
जगत धार्‌यो राम बिसार्‌यो, गह कौड़ी तज हीर।"[1]

सम्पादक ने उस सग्रह के अन्त मे स्वामी रामचरण के तीन आरती के पद रखे हैं। आरती के तीसरे पद मे आरती की पाँच स्थितियो के वर्णन द्वारा 'सुरति शब्द योग' अर्थात् जाव और ब्रह्म के मिलन का सुदर चित्र प्रस्तुत करता है—

"आरति अचल पुरुष अविनाशी।
घट घट व्यापक सकल प्रकाशी।
परथम आरति मदिर बुहार्‌या।
राम राम रटि कर्म निकार्‌या।
दूसरी आरति दीपक जोया।
हिरदै प्रेम चांवणा होया।
तीसरी आरति कुम्भ भराया।
नाभि कमल सूं गगन चढ़ाया।
चौथी आरति चौकि बिराजै।
जहा अनहद का बाजा बाजै।
पांचइ आरति पूरण कामा।
सुरति परसिया केवल रामा।
सेवक स्वामी भया समाना।
रामहि राम और नहि आंना।
रामचरण ऐसी आरति कीजै।
परसि अमर बर जुग जुग जीजै।"[2]

कला पक्ष—'गावा का पद' स्वामी रामचरण का पद-शैली मे रचित एक मधुर एव गेय पदो का सग्रह है। इन पदो को कबीर आदि सत कवियो द्वारा रचित पदो के समकक्ष समझा जाना चाहिए। पदो मे स्वामी जी विनिवत् स्पष्ट हुए हैं। विभिन्न रागो मे निर्मित इन

१. अ० वा०, गावा का पद पृ० १०१०।
२. वही, गावा का पद, पृ० १०१३।

पदो मे स्वामी रामचरण का कवि गम्भीर से गम्भीरतर और गम्भीरतम विषयो को सरल ढग से अभिव्यक्त करने मे सफल हुआ है। 'काव्य सरल होना चाहिए' मिल्टन की यह भाव-धारा स्वामी जी के पदो पर भलीभाँति चरितार्थ होती है। १०५ पदो के इस सग्रह मे २५ रागो का प्रयोग हुआ है। २५ विभिन्न रागो मे रचित पदो की सख्या हर राग के समक्ष यहाँ दी जाती है—१ राग भैरव ३, २. राग ललित ५, ३ राग विभास १, ४. राग विलावल ६, ५ राग जंजैवती ५, ६ राग आसा २, ७. राग गाड ६, ८ राग सारग ५, ९ राग गौड़ी २, १० राग वसत, ५, ११ राग काफी ४, १२ राग आसासिंधू ४, १३ राग कल्याण ३, १४ राग कनडो २, १५ राग कनडो ४, १६ राग विहाग ३, १७ राग मगल २, १८ राग पजाब ८, १९ राग सोरठ ९ २० राग मारू १, २१ राग जैतश्री ५, २२ राग धनाश्री ५, २३. राग केदारो ६, २४ राग जोग धनाश्री ६, २५ राग आरती ३।

स्वामी रामचरण का यह पद-सग्रह विभिन्न रागो मे लिखा होने के कारण स्वामी जी के सगीत प्रेम का परिचायक सिद्ध होता है। सत कवि फक्कड एव मस्तमौला होते थे। उनका सगीत प्रेमी होना अस्वाभाविक नहीं। इस रचना के माध्यम से कवि पाठक को गम्भीर विषयो की निकटता प्राप्त कराने मे सफल हुआ है। सगीत की स्वर लहरियो मे डूबा स्वामी रामचरण का कवि, दार्शनिक, भक्त एव साधक का व्यक्तित्व इन पदो के माध्यम से एक साथ लोकप्रिय हो उठा है। दास्य और माधुर्य भावो के अनुपम सगम की लहरे सत रामचरण के इन निर्गुण पदो मे तरगायित दृष्टिगोचर हो रही है। भाषा राजस्थानी हिन्दी है पर इसमे विदेशी मूल के शब्दो को स्वामी जी ने उदार होकर स्नेह दिया है। वस्तुत यह उन पर सूफी प्रभाव की ओर निर्देश करता है। दरवेश, खलक, औलिया, पीर, फकीर, अलमस्ताना, खवदा, दोजख, भिस्त (बहिश्त), अदल, फदल, आव, गुसल, ओजूद, दीदार, मुरसद (मुर्शिद) आदि बहुत से शब्द, जो हैं तो विदेशी मूल के पर हमारे जीवन मे ये समरस हो गए हैं और अब अपनी भाषा के बाहर इनका अस्तित्व मात्र ऐतिहासिक रह गया है।

स्वामी रामचरण का विशाल साहित्य जिसे उनके शीलव्रती गृहस्थ शिष्य श्री नवलराम एव अवधूत वैरागी शिष्य स्वामी रामजन ने परिश्रमपूर्वक सगृहीत करके स्वामी जी के जीवन-काल मे ही सम्पादित कर दिया था, वह अभी साहित्य के अनुरागियो एव खोजकर्त्ताओ की दृष्टि आकृष्ट करने मे सफल है।

द्वितीय खण्ड : विचारधारा

पंचम अध्याय : अध्यात्म-पक्ष

षष्ठ अध्याय : लोक-पक्ष

पंचम अध्याय

स्वामी रामचरण की विचारधारा : अध्यात्म-पक्ष

स्वामी रामचरण रचित एक हजार पृष्ठों का विशाल वाणी एवं ग्रन्थसाहित्य उनके विचारों का अतुल भण्डार है। स्वामी रामचरण सन्त थे। उन्होंने उच्च वैश्य कुल में जन्म लेकर यौवन के आरम्भिक कई वर्ष जयपुर-राज्य के उच्चपदस्थ कर्मचारी के रूप में व्यतीत करने के उपरान्त सन्त जीवन ग्रहण किया था। 'प्रवृत्ति घाट' छोड़कर निवृत्ति की ओर उन्मुख होना उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटना थी। उन्होंने अपने सन्त जीवन में व्यक्तिगत साधना के अनेक प्रयोग किये और उन अनुभवों को लेकर समाज की ओर तीव्रगति से मुड़े। समाज के पाखण्डप्रिय एवं ढोंगी ठेकेदारों के कुचक्रों से संघर्ष कर 'राम धर्म' की विजय पताका उन्होंने राजस्थानी भूमि पर फहरायी और लोकमंगल करने का यश अर्जित कर काशी के कबीर सदृश 'राजस्थान के रामचरण' हुए।

स्वामी रामचरण विचारक थे। उनकी विचारसरणि जीवन के विभिन्न अनुभवों से सम्पोषित होकर अध्यात्म एवं लोक दोनों पक्षों का विधान करने में सफल हुई है। जीवन और जगत के नाना व्यापारों पर उनकी दृष्टि था। साथ ही लोक-परलोक, ईश्वर जीव, आदि के सम्बन्ध की जिज्ञासाएँ भी उनके साहित्य का शृंगार बनकर आई हैं। स्वामी जी ने अनेक दर्शनोत्पन्न विचारों का मथन भली प्रकार किया था और 'सार सार को गहि रहै' का सिद्धान्त अपनाकर 'राम-धर्म' एवं रामसनेही पंथ को उन्होंने प्रतिष्ठित किया। जहाँ वे अपने पीछे साधुओं एवं गृहस्थों का एक सुव्यवस्थित संगठन छोड़ गए वही उन्होंने समाज को एक सुचिन्तित विचार-दर्शन भी दिया। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से उसे हम दो पक्षों में विभाजित कर सकते हैं—

१. अध्यात्म पक्ष
२. लोक पक्ष

१. अध्यात्म-पक्ष

डॉक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के अनुसार 'निर्गुण सम्प्रदाय के अन्तर्गत प्राय. उन सभी बातों का सुंदर समावेश पाया जाता है जो भारतीय आध्यात्मिक विचारों में मूल्यवान समझी जाती है। अपने सारग्राही स्वभाव के ही कारण इसने भारत की आध्यात्मिक पद्ध-

तियों के सारतत्व को अपना लिया है। भारत के विभिन्न आन्दोलनों ने समय-समय पर जाग्रत होकर, संस्कृति के क्षेत्र में जो कुछ भी उसे प्रदान किया है वह कबीर के आविर्भाव के पहले से ही, निर्गुण विचारधारा में सम्मिलित हो चुका था। अजपाजाप के साथ-साथ योगाभ्यास, तंत्रों से उधार ली गई उसकी रहस्यमयी शरीर-रचना प्रणाली, उसके द्वारा प्राण आदि का उपयोग, शंकराचार्य का अद्वैतवाद, भक्ति की साधना-पद्धति और तत्रवाद में दीख पड़ने वाले उपासनात्मक भावों की इन्द्रियस्पर्शिनी तीव्रता जिसमें विरागी जीवन के उस घृणास्पद अंश का अभाव रहा करता है जो तान्त्रिक साधना का अभिशाप है, ये सभी यहाँ आकर एक सुसंगत व्यापक रूप में संश्लिष्ट हो गए हैं।"[1]

डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल द्वारा प्रस्तुत सन्त मत की आध्यात्मिक विचारधारा की यह समीक्षा युक्तियुक्त है। वस्तुतः सन्त स्वानुभूति को प्रमुखता देते थे। इसीलिए कबीर आदि विभिन्न सन्तों को तत्कालीन भक्ति या योग सम्प्रदायों की विचार सीमा में बाँधा नहीं जा सका। वे प्रचलित विचार-धाराओं एवं उपासना पद्धतियों पर सीधी नजर डालते थे और बुद्धि की कसौटी पर उसकी परख करते थे, सत्संगों में खण्डन-मण्डन एवं तर्क-वितर्क द्वारा भी उसे जाँचते थे और इस प्रकार उनके आदर्श के धरातल पर खरे उतरे सिद्धान्त उनके अपने हो जाते थे। फिर चाहे वे किसी पंथ या मत के हों किन्तु जो विचार या पद्धति उनके मापदण्ड नहीं सम्हाल पाती उसकी तीखी आलोचना करने में भी वे नहीं चूकते थे। इसलिए सन्तों की वाणी विभिन्न विचारधाराओं की संगमस्थली है। 'इसी से सतवाणी कोमल और मधुर है, साथ ही प्रचण्ड और उग्र'[2] और यही कारण है कि सन्त मध्यमार्गी कहे जाते हैं।

स्वामी रामचरण का मध्यमार्ग

स्वामी रामचरण ने 'मध्य को अंग', 'निरपख को अंग' और 'पंथ को अंग' में मध्यमार्ग का निरूपण किया है। अतिवादी छोरों को छोड़कर मध्यमार्ग के ग्रहण की बड़ी स्पष्ट भावना स्वामी जी की वाणी में दृष्टिगोचर होती है। स्वामी जी गृहत्यागी एवं गृहवासी दोनों से अलग पर बीच के राही—समन्वय मार्गी—को सन्त कहते हैं। सन्त जन घर छोड़कर वन में निवास करने वाले या गृह प्रपंचों में लिप्त रहने वालों से पर मध्यमार्ग के अनुगामी होते हैं—

> "कोई गृह तजि बन गया, कोई रहै गृह माहिं।
> रामचरण वै संतजन, मधि के मारग जांहि।"[3]

सन्तों को प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के बीच का पथ ही सहज प्रतीत हुआ क्योंकि प्रवृत्ति में मनुष्य संशयों के बीच जलता है और निवृत्ति में उसे अभिमान जलाता है। इन दोनों

१. डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० ८-९।
२. वैद्य केवलराम स्वामी : श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ७२।
३. अ० वा०, साखी, मध्य को अंग, पृ० ५०।

अतिवादों के दुःख से परे होकर सत 'भजन' मे रत होता है। यह भजन ही मध्यमार्ग है जिस पर चलने का संदेश स्वामी रामचरण देते हैं—

"गृह में तो सांसो वहै, वन मांही अभिमान।
रामचरण दोन्यूं तजै, संत भजन गलतान।"[1]

कोई योग साधना मे रत है तो कोई भोग-कामना मे। स्वामी रामचरण योग-भोग दोनो को रोग समझकर उनसे दूर रहने का विचार व्यक्त करते है और राम-भजन के मध्यमार्ग पर चलने की बात कहते है, जो इस मध्यमार्ग पर चलते है वही साधु है। उन्हे भरपूर सुख मिलता है। योगी और भोगी दोनों ही अतिवादी है पर साधु मध्यमार्गी है।

"कोई साधै जोग कूं कोई बंछै भोग।
रामभजन मधि मारिगा, चालै हरि का लोग।
जोग भोग दोइ रोग है, रामचरण तजि दूर।
मधि मारग साधू चल्या, पाया सुख भरपूर।"[2]

स्वामी रामचरण लोक-परलोक दोनों के सुख को दुःख ही समझते है—

"कोई आश परलोक की, कोई लोक का सुक्ख।
रामचरण संत राम का, देखैं दोन्यू दुःख।"[3]

कोई आकार की सेवा करता है तो कोई निराकार का भाव। पर सन्त जन मध्यमार्ग की साधना करते हैं—

"कोई सेवै आकार को, कोई निराकार का भाव।
रामचरण वै संत जन, मधि का करै उपाव।"[4]

निर्गुण और सगुण, भक्ति के दोनों प्रकारो मे 'नाम' ही साक्षी होता है। यह 'नामस्मरण' ही मध्यमार्ग है।

"कहिबे आया सो सगुन, निर्गुण पुद्गल नांहि।
यूं नाम सूं साखी रामचरण, उभै भक्ति के मांहि।

---

१. अ० वा०, साखी, मध्य को अंग, पृ० ५०।
२. वही।
३. वही।
४. वही।

मधि मारग है रामनाम, सुमरण भरिये भीख।
रामचरण हम क्या कहै, या अनंत कोटि की सीख।"[1]

निष्कर्ष यह कि स्वामी रामचरण गृहवास-गृहत्याग, योग-साधना-भोग-कामना, लोक-सुख-परलोक आशा, आकार सेवा-निराकार भाव, सगुण-निर्गुण आदि अतिवादी छोरों से दूर हटकर निष्काम भाव से 'राम भजन' रूपी मध्यमार्ग पर चलने का उपदेश देते हैं। निष्काम भाव से नामोपासना करने वाला ब्रह्मस्वरूप हो जाता है—

"मधि कै मारग चालता, पला न पकडै कोय।
राम भजै आशा तजै, तो ब्रह्म स्वरूपी होय।"[2]

स्वामी रामचरण द्वारा निर्दिष्ट 'राम भजन' का मध्यमार्ग स्वर-बन्धन, जल-पान और सूर्याहार की क्रियाओं से परे सहज पथ है। यह हद-बेहद से न्यारा मार्ग है।[3] यह योग-भोग, साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण आदि विभिन्न पक्षों से परे निष्पक्ष पथ है। जहाँ मत-पक्ष है वहाँ हरि नहीं। 'हरि' तो उनके निकट होता है जो 'निरपख' (निष्पक्ष) होते हैं—

"मत की पख हरि दूरि है, निरपख राम नजीक।
रामचरण निरपख भया, जिनहीं पाई ठीक।"[4]

स्वामी जी मत-पक्षों को खींचतान से पूर्ण और झगड़ों से युक्त मानते हैं तथा सुखी उसे मानते हैं जो 'निरपख' है—

"पखा पखी उलझाड़ है खेंचाताणी होय।
रामचरण निरपख बिना, सुखी न देख्या कोय।"[5]

निष्पक्ष का प्रतीक 'राम' शब्द है। वह तीनों लोकों में ध्वनित हो रहा है—

"राम शब्द निरपख है, तीन लोक धुनि होय।"[6]

---

१. अ० वा०, साखी, मध्य को अंग पृ० ५०। २. वही।
३. "बाँधै स्वर कोई जल पिवै, सूरज करै अहार।
रामचरण तू राम कह, मधि का पथ बिचार।
कोई सुमरै हद्द मैं कोई बेहद जाय।
रामचरण जन राम का मधि मे रहै समाय।"
वही, साखी, मध्य को अंग, पृ० ५१।
४. वही, साखी, निरपख को अंग, पृ० ५१।
५. वही। ६. वही।

भक्त उसी रामनाम का स्मरण कर मन का विश्राम स्थल पा लेता है—

"जगत गहै मत आन को, भक्त भजै इक राम।
रामचरण फल पाईये, मन की मजल मुकाम।"[1]

'मन की मजल मुकाम' तक पहुँचने के लिये स्वामी जी एक ही पन्थ का निर्देश करते हैं—

"रामचरण सता तणा, रामनाम पँथ एक।
अबै भर्म की भूलि सै, मत का बन्ध अनेक।"[2]

यही एक पन्थ (मध्यमार्ग) सभी समझदारों का पन्थ है। जो नासमझ है, उनके मार्गों की गणना नहीं की जा सकती—

"समझ्या समझ्या एक पथ, पहुचै निज घर माहि।
रामचरण अणसमझ का, गैला गिण्या न जाहि।"[3]

मार्ग की सूक्ष्मता

स्वामी रामचरण ने 'मध्य को अग' मे जिस मध्यमार्ग या राम पन्थ के अनुगमन की बात कही है, उस पन्थ से सम्बन्धित सूक्ष्मता की चर्चा वे 'सुक्षम मार्ग को अग' शीर्षक के अन्तर्गत करते है। स्वामी जी के अनुसार 'हरि मारग' अत्यन्त सूक्ष्म है, उस मार्ग से किसी भारवाही को पहुँचते नहीं सुना गया है।[4] वे हरिभक्ति के लिये मन की स्थूलता का निषेध करते हैं और सूक्ष्म मार्ग पर चलने का निर्देश देते है जिसमे लघुता की अति है। इसमे अभिमान को मार कर सबसे छोटा होना पडता है, तभी इस राह पर चला जा सकता है—

"रामचरण हरि की भगति, मोटे मन नही होय।
सुक्षम मारग चालतां, अति लघुताई जोय।
सब सूं नान्हा होय रहे, अहंमान कूं मार।
रामचरण यू चालिये, सुक्षम राह विचार।"[5]

---

१. अ० वा०, साखी निरपख को अग, पृ० ५१।
२ वही।
३ वही, साखी, पथ को अग, पृ० ५१।
४. "हरि मारग बहु सूक्ष्म है, पैसै फोरा होय।
रामचरण शिर भार ले, पहुता सुण्या न कोय।"
—वही, साखी, सुक्षम मार्ग को अग, पृ० ५२।
५. वही।

यही सूक्ष्म मार्ग 'अगम घर' का मार्ग है जिस पर रात भर तो चला नहीं जा सकता, हाँ, दिन रहते वेग से दौड़ना पड़ता है। स्वामी रामचरण 'लख चौरासी' को रात और 'नरदेह' को दिन तथा 'राम भजन' को पथ का रूपक देते है—

"सुक्षम पैंडा अगम घर, निश भर चल्या न जाय।
रामचरण दिन कै छतां, वेगाबेगी ध्याय।
लख चोराशी रातडी, तामैं कछू न होय।
रामचरण नर देह बिन, रामभजन करि सोय।"[१]

स्वामी रामचरण के अनुसार सूक्ष्म मार्ग मुक्ति का मार्ग है जिस पर साधु चलता है। 'चाडा पथ' (स्थूल मार्ग) 'अधोगति' का मार्ग है जिस पर सारा संसार चलता है। इसलिए सूक्ष्म मार्ग को शोध कर जो उस पर चलता है, वह 'सूक्ष्म' होता है, वह सदा सुखी रहता है, उसे दुखी नहीं देखा गया—

"सुक्षम मारग मुक्ति का, सुक्षम साधू माय।
चोडा पंथ अधोगति, सब जग चाल्या जाय।
सुक्षम मारग सोधि कै, चालै सुक्षम होय।
रामचरण सुक्षम सुखी, दुखी न देख्या कोय।"[२]

स्वामी रामचरण इस सूक्ष्म और स्थूल को कितने सामान्य ढङ्ग से समझाते हैं, ध्यान देने योग्य है—

"सुक्षम मार्‌या नां सुण्यां, मोटा मार्‌या जोय।
सुक्षम बूडा ना कह्या, बूडा भारी होय।"[३]

स्वामी रामचरण के राम : रमतीत राम

रामावत सम्प्रदाय मे दीक्षित स्वामी रामचरण रामोपासक थे, किन्तु इनके राम विष्णु के अवतार दशरथ के पुत्र नहीं। ये 'रमतीत राम' है, जो ब्रह्म के पर्याय हैं, 'अणभैवाणी' का आरम्भ ही 'रमतीत राम' की स्तुति से होता है—

"नमो राम रमतीत नमो गुरुदेव स्वामी।
नमो नमो सब संत नाम रटि भये जु नामी।"[४]

---

१ अ० वा०; साखी, सुक्षम मार्ग को अंग, पृ० ५२।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ३।

इन्हीं 'राम' के समक्ष नतमस्तक कवि तन, मन, धन, प्राण सभी कुछ न्यौछावर करने को तत्पर दीखता है—

"जिनके चरणों हेठि रहो नित शीश हमारा।
तन मन धन अरु प्राण करु नवछावर सारा।"[1]

यह 'राम' सर्वव्यापी, ख्यातनामा, करुणामय, करतार, भक्तवत्सल, सर्वेश, जगपालक, जगत्गुरु, आनन्दघन, सुखराशि, चिदानन्द, निरालम्ब, निर्लेप, अन्तर्यामी है—

"नमो राम रमतीत सकल व्यापक घणनामी।
सब पोषै प्रतिपाल सबन का सेवक स्वामी।
करुणामय करतार करम सब दूरि निवारै।
भक्त विछलता विरद भक्त तत्काल उधारै।
रामचरण वंदन करै सब ईशन के ईश।
जगपालक तुम जगतगुरु जग जीवन जगदीश।
आनदघन सुखराशि चिदानन्द कहिए स्वामी।
निरालंब निरलेप अकल हरि अन्तर्यामी।
वारपार मधि नांहि कूण विधि करिये सेवा।
नहि निराकार आकार अजन्मा अविगत देवा।
रामचरण वदन करै अलह अखडित नूर।
सूक्ष्म स्थूल खाली नहीं रह्या सकल भरपूर।"[2]

ऊपर की पक्तियो से यह भी स्पष्ट है कि उसका ओर-छोर नही, वह न निराकार है न साकार, वह अजन्मा है, अविगत है, वह अखण्डालोकपूर्ण है, सूक्ष्म-स्थूल सभी उससे पूर्ण है। स्वामी जी ने उसे कैवल्य से परे साक्षात् परब्रह्म कहा है, वह परब्रह्म अभङ्ग, असङ्ग, अलेख, अक्षेप है, वह आवागमन से रहित कर्म, काया से परे है, वह अमाप है, अथाप है और अनन्त है। शेष, सनकादि, शिव आदि भी जिसका अन्त नही पाते, ऐसा है वह 'निरजण कन।'

"नमो नमो परब्रह्म नमो नहकेवल राया।
नमो अभंग असग नहीं कछु गया न आया।
नमो अलेख, अछेप नहीं कोई कर्म न काया।
नमो अमाप अथाप नहीं कोई पार न पाया।

---

१. अ० वा०, पृ० ३।
२. वही।

शिव सनकादिक शेष लूं रटत न पावै अन्त।
रामचरण वंदन करै नमो निरंजण कंत।"[1]

'यह निरंजण कन्त' ही 'निरंजण राम' है—

"रामचरण मा शीश पर एक निरंजण राम।"[2]

वह राम चिदानन्द चिरञ्जीव होता तो है ही, सुख का सागर भी है, उसी में सभी सुख है—

"चिदानंद चिरंजीव है, है सुखसागर राम।
रामचरण सुख राम में, और सबै बेकाम।"[3]

सब तत्वों का सार 'राम' का नाम है—

"राम नाम ततसार है, या बिन और कछु नाहि।"[4]

वह रूप-वर्ण से रहित, 'सकल सृष्टि को मूल करतार'—राम है—

"रूप वरण सूं रहित है, धरै नहीं अस्थूल।
रामचरण तो सुमरिये, सकल सृष्टि को मूल।
सब देवों सिर देव है, सृष्टि तणो करतार।
रामचरण ताके परै, सोही देव हमार।"[5]

'राम' अकेला सामर्थ्यवान् है, अन्य सभी देव उसके समक्ष याचक है—

"समर्थ एको राम है, जाचक सबही देव।"[6]

'रकार' ही ब्रह्म है—

"ब्रह्म शब्द ररकार है।"[7]

---

१. अ० वा०, पृ० ३।
२. वही, पृ० ६।
३. वही।
४. वही।
५. वही, पृ० ९।
६. वही, पृ० १६।
७. वही, पृ० २९।

वह आतमपति परमात्मा देश-काल, शुभ-अशुभ और भेदाभेद से परे सर्वत्र व्याप्त है—

"देश काल पुनि शुभ अशुभ, भेदाभेद सु नाहिं।
आतमपति परमात्मा, बरत रह्यो सब ठाहिं।"[1]

उस घट-घट व्यापी राम को मनुष्य मृग-बुद्धि के कारण प्राप्त नहीं कर पाता—

"ऐसे घटघट राम हैं, सतगुरु सूं गम होय।
रामचरण नर मृग बुधी, तातें लहै न कोय।"[2]

'नाम समर्थाई को अंग' में स्वामी रामचरण के 'राम' निरधारों के आधार, 'सकल सिरताज', 'गरीब निवाज', भक्तवत्सल विरदधारी रूप में वर्णित हैं—

"निरधारां आधार सकल शिरताज है।
अनाथूं के नाथ गरीब निवाज है।"

अनाथू के नाथ निरञ्जन राम जी हैं।

"भक्त बिछलता बिड़द भक्त पछ सोयरे।
परिहां रामचरण यह साखि भरै सब कोय रे।"[3]

'चन्द्रायणा विचार को अंग' में स्वामी जी ने एक राम को ही सृष्टि का आधार माना है—

"परिहां रामचरण इक राम सृष्टि आधार है।"[4]

वह राम ही सबका 'सिरजणहार' है—

"यूं सबको सिरजणहार एक है राम रे।"[5]

वह राम न श्वेत है, न जर्द, न रक्त है, न सब्ज, और न श्याम ही है अर्थात् अवर्ण है। वह सत् रज, तम के तिरगुन फाँस की सीमा से परे है। वह 'रमैया' न तो दृष्टिगोचर होता है और न मुष्टि में ही आता है। उसका नाम ही सब कामनाओं की तृप्ति करने में समर्थ है—

---

१. अ० वा०, पृ० २७।
२. वही, पृ० ४७।
३. वही, पृ० ७६।
४. वही, पृ० ८३।
५. वही।

"स्वेत जर्द अरु रक्त सब्ज नहि स्याम रे।
सत रज तम त्रिय पास नही किस जाम रे।
दृष्टि मुष्टि नही परै रमैया राम रे।
परिहा रामचरण तिस नाम तृप्ति सब काम रे।"[1]

'अचित विचार को अंग' में स्वामी जी उस राम की चर्चा 'अचित पुरुष' और 'अगम शब्द' कहकर करते हैं—

"गगन मण्डल मे रमि रह्या ऐसा पुरुष अचित।
अगम शब्द कू लखत है कोइ कोइ बिरला संत।"[2]

यह सम्पूर्ण सृष्टि राममय है, जैसे काष्ठ में अग्नि, दुग्ध मे घृत, पुष्प में गन्ध, तिल में तेल और धरती मे नीर का वास है, वैसे ही सम्पूर्ण विश्व मे राम रम रहा है—

"राम सृष्टि आधार राम का सकल पसारा।
ओत पोत मिल रह्या राम कहूं नाही न्यारा।
ज्यूं काष्ठ मे अनल खीर मे घृत मिलाया।
पुष्प गंध तिल तेल धरणि मधि नीर समाया।
रामचरण भरिपूर हे कहु खाली दीसै नाहि।
राम विश्व मे रमि रह्या विश्व राम कै माहि।"[3]

पर 'कुण्डल्या सुमरण को अंग' में कवि का राम गरीब निवाज का विरुद धारण कर 'गरीब निवाज' होगया है, दास्य-भाव से उसे स्मरण करने पर सारे कार्य सिद्ध हो जाते हैं—

"राम गरीब निवाज का बिड़द गरीब निवाज।
दीन होय सुमरण करै जाका सरि है काज।"[4]

स्वामी रामचरण के राम निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार से भिन्न हैं। वस्तुत इस 'राम' शब्द में दोनों समाहित है। चौबीस अवतारों का तत्त्व इन्ही दोनो अक्षरो में समाया हुआ है। ब्रह्म और माया के साक्षी भी क्रमश यही दोनों अक्षर है।[5] राम नाम के सहारे अगुण-सगुण सभी सिद्ध होगये—

---

१ अ० वा०; पृ० ८०।
२. वही, पृ० १२३।
३. वही।
४. वही, पृ० १३९।
५. "ब्रह्म शब्द रक्कार है, माया रूप मकार।
रामचरण यह युगल है, निराकार आकार"—अ० वा०, पृ० २९।

"सर्गुण कहबे आईया निर्गुण नहि आकार।
रामचरण अक्षर उभय चोवीशां का सार।
चोबीशां का सार ब्रह्म माया का साखी।
कहै वेद अरु पुराण सुमरि सतां यू भाखी।
अगुण सगुण सबही सध्या रामनाम की लार।
सर्गुण कहबे आईया निर्गुण नहि आकार।"[1]

स्वामी जी का 'राम' इतना व्यापक है कि उसमें साकार-निराकार दोनों के अर्थ आ जाते हैं। विश्व के सभी आकारों का आधार निराकार है। निराकार का ध्यान करने से साकार दोषरहित हो जाता है। निराकार-साकार की समन्वित साधना इसी प्रकार से साधु करता है, वह निर्गुण और सगुण का भेद त्याग कर एक राम की आराधना करता है—

"रामचरण आकार सब निराकार आधार।
निराकार का ध्यान धरि दोषरहित आकार।
दोष रहित आकार इसी विधि साधू साधै।
निर्गुण सर्गुण भेद दोय तजि एक अराधै।
राम नाम मैं आईया सबही अथ विचार।
रामचरण आकार सब निराकार आधार।"[2]

कवि निराकार और साकार को क्रमशः आत्मा और देह रूप में स्वीकार कर 'राम' नाम को दोनों के साक्षी रूप में प्रस्तुत करता है—

"निराकार निज आतमा देहाविक आकार।
रामचरण इन दोय को साखी नाम विचार।"[3]

'साच को अंग' में रामनाम की सत्यता बताते हुए स्वामी जी अन्य सभी को असत्य एवं व्यर्थ घोषित करते हैं—

"साच राम को नाम है दूजा असत निकाम।"[4]

१. अ० वा०, पृ० १६६।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० १७७।

इसी अंग में सत्य राम की एक कल्पना निम्नलिखित पंक्तियों में ध्यान देने योग्य है—

"निस्प्रेही निर्वेरता निराधार निरकार।
सकल सृष्टि में रम रह्यो सबको सिरजनहार।
सबको सिरजनहार राम सो ताहि भणीजे।
दृष्टि मुष्टि आकार रूप माया जगिणीजे।
रामचरण व्यापक व्योम ज्यूं ताको सुमरणसार।
निस्प्रेही निर्वेरता निराधार निरकार।"[1]

यह राम अचल है, 'सदा सजीवन मूरि' है, रमतीत है—

"अचल राम रमतीत है सदा सजीवन मूरि।
आभा उपजे विनशि है नम्म नह्नं है दूरि।"[2]

स्वामी जी ने राम को गरीब निवाज, विरुदधारी, अनाथों का नाथ आदि तो कहा ही है, 'ग्रंथ नाम प्रताप' में आकर वे राम के विभिन्न रूप में अवतरण की प्रशंसा भी करने लगते हैं। भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिये खम्भे से प्रकट हुए भगवान् राम के सन्दर्भ की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है—

"राम राम प्रह्लाद पुकार्‌यो।
ताको पिता बहुत पचि हार्‌यो।
संकट सह्यो पण राम न छाड्यो।
राम भरोसे मरणांहिं मांड्यो।
अग्निधार पर्वत सूं राख्यो।
सिंह सर्प गज परि हरि माख्यो।
अन्धकूप में राम बचायो।
जन को जश हरि जग विखरायो।
कोप्यो असुर खड्ग लियो कर में।
जन के हित प्रगट्यो हरि खंभ में।
मार्‌यो असुर भक्ति विस्तारी।
जन प्रह्लाद की भीड़ निवारी।"[3]

---

१ अ० वा०, पृ० १७७।
२, वही।
३. वही, पृ० २०३।

'अणभो विलास' के पञ्चम प्रकरण में स्वामी रामचरण ने 'राम' को अजन्मा, (क्योंकि जो जन्म लेता है, मरता है, वह भ्रम है) निराधार, सकल सृष्टि का कर्त्ता कहा है। वह 'राम' अनित्य और नित्य का एकमेव कर्त्ता है। सूक्ष्म और स्थूल से भरा यह सृजन उस राम का ही है—

"उपजै खपेस मर्म सब बिन उपज्या निरधार।
रामचरण वो राम है सब ही को करतार।
कर्तार एक करुणा निधान।
किये कृत्य विधि विधि विधान।
. .
परमाण किये सब ठाम ठाम।
किया अनित्य नित एक राम।
किया सबै ही राम का सुखम थूल भरपूर।
सोवै आपन होय है आपस कल तें दूर।"[1]

'सुख विलास' में आकर कवि राम को 'साईया', 'पति','भर्तार' और 'पीव' रूप में देखने लगता है। अपने 'परम स्नेही राम' के लिये स्वयं 'पतिव्रता' नाम धारण करता है। उसे ही तन-मन अर्पण है। अन्य के लिये हृदय में ठौर नहीं—

"मेरा शिर पर साईया, रखूं रमइया एक।
तन मन अर्प्या तास कू अब दूजा फिरो अनेक।
अब दूजा फिरो अनेक ठोर मेरै घर नाही।
मो सिर समर्थ पीव सबै देखूं उन मांही।
रामचरण नहचै करी ये निज सतां की टेक।
मेरा शिर पर साईया रखू रमइया एक।"[2]

'पतिव्रता' नाम की सार्थकता 'परम स्नेही राम' को 'एकरस' होकर भजने में है—

"मै मुख सुमरूं एक रस, परमस्नेही राम।
दूजा दृष्टि न देखि हूँ, तो पतिव्रता नाम।"[3]

वह 'राम भर्तार' के लिये मन को 'इकतार' धारण करने की सीख देता है, क्योंकि बिना इकतार के कर्तार का स्पर्श सम्भव नही। वह राम अन्तर्यामी है, वह 'साच अतर' को देख लेता है—

---

१. अ० बा०, पृ० २३३।
२. वही, पृ० ३५६।
३. वही।

"एक राम भर्तार को मना धार इकतार।
मना एक इकतार बिन नहि परसन कर्तार।
नहि परसन कर्तार शोभली सबै अलेखै।
अन्तरजामी राम साच अंतर को देखै।
रामचरण तातै कहू नहचो राख करार।
एक राम भर्तार को मनाधार इकतार।"[1]

'अमृत उपदेश' में स्वामी जी राम को सर्वज्ञ, पूर्ण, सर्वव्यापी तो कहते ही हैं, कञ्चन-भूषण के प्रतीक द्वारा राम एव विभिन्न अवतारों की स्थिति स्पष्ट कर उसे अभेद कहते हैं—

"सर्वंग पूर्ण रामजी, व्यापक सबही जान।
रामचरण भरपूर है, भूषण कनक समान।
कंचन तो सर्वंग है, भूषण भेदाभेद।
काज नाम भूषण धरे, कारण राम अभेद।"[2]

और भी—

"सतजुग त्रेता द्वापरा कलि समै समै अवतार।
राम अखण्डित अजन्मा धरै न को आकार।"[3]

राम 'शब्द स्वरूपी' है, सम्पूर्ण सृष्टि उसी में है और वह सम्पूर्ण सृष्टि में समाया हुआ है, जैसे 'घटपूर्ण आकाश' में सभी घट उत्पन्न होते हे और नष्ट भी होते हैं, किन्तु आकाश स्थिर रहता है, वह न कर्त्ता है, न अकर्त्ता, न उसका कोई आधार है—

"शब्द स्वरूपी राम, उपज बिनशैऊ नांही।
सकल सृष्टि ता माहि, सृष्टि में आप समाही।
ज्यूं घट पूर्ण आकाश, सर्व घट तामें जानो।
घट उपजै विनशाहि, नभ थिर नहचल मानो।
ना कर्ता नां अकर्ता, नहि किरकै आधार।
रामचरण ता राम को, निशिदिन नाम उचार।"[4]

---

१ अ० वा०, पृ० ३५६।
२. वही, पृ० ४६२।
३. वही।
४. वही।

'जिज्ञास बोध' के चतुर्थ प्रकरण में स्वामी रामचरण 'राम' के दोनों वर्ण 'र' और 'म' का रहस्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जैसे सूर्य और चन्द्र ब्रह्माण्ड के दो नेत्र हैं, वैसे ही वेद (ज्ञान) के 'रकार' और 'मकार' दो नेत्र हैं—

"उभय नैन ब्रह्मण्ड के रवि शशि कहिए सोय।
ऐसें नेतर वेद के रकार मकार ज दोय।"[1]

इन दोनों नेत्रों से ही ज्ञान का प्रकाश मिलता है। इनके बिना क्रिया-कर्म, साधन-धर्म सब अन्धे हैं, इस गति को 'साईं का बंदा' ही जानता है। इसलिए बन्दा 'निज बंदगी' में लीन होकर 'ब्रह्म शब्द इकराम' का उच्चारण करता है—

"रवि स्वरूप रक्कार मकार ज चंद कही जे।
उभे नैन ये जान ज्ञान परकाश लही जे।
या बिन किरिया कर्म धम्म साधन सब अंधा।
ये गति जाने संत जिके साईं का बंदा।
बंदा रत निज बंदगी सुमरण आठू जाम।
रामचरण उचरै सदा ब्रह्म शब्द इकराम।"[2]

स्वामी जी ने राम और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित करते हुए भी यह बतलाया है कि ब्रह्म शब्द की सार्थकता भी 'रकार' 'मकार' के बिना सम्भव नहीं—

"राम कहै सो ब्रह्म है ब्रह्म कहे सो राम।
ये भिन्न भया एको सरू दूजो रहै निकाम।
. .
ब्रह्म शब्द तबही बचै, मिले रकार मकार।
रकार मकार मिलाप बिन, वह बाचै बांचणहार।
राम बिना वह शब्द है, ब्रह्म न कहिए ताहि।
रकार मकार ज ब्रह्म हैं, रामचरण सुमराहि।"[3]

'विश्वास बोध' के तृतीय प्रकरण में स्वामी जी दोनों वर्ण 'रकार' और 'मकार' के अन्तर्गत 'निराकार-आकार', 'माया-ब्रह्म', 'स्थूल-सूक्ष्म' और 'जड़-चेतन' सभी को समाहित कर लेते हैं। यह ऐसा तत्त्व है जिससे अलग कोई भी नहीं। वही लोग अलग समझते हैं जो अज्ञानी हैं—

---

१ अ० वा०, पृ० ५३८।
२. वही।
३. वही।

"उभै अखर बिच आईया, निराकार-आकार।
रामचरण माया ब्रह्म, भजो रकार मकार।
. . . .
माया ब्रह्म स्वरूप है, जांण रकार मकार।
जुगल बरण जपि लीजिये, सब सारां का सार।
ये सब सारां का सार रह्या कोई न्यारा नाही।
न्यारा जो कोई कहै जिनू ये समझ न पांही।
. . . .
कह्या स्थूल सूक्षम कह्या, जड चेतन इस मांहि।
रामचरण भज राम कू, ज्यूं उलझण रहै न जांहि।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण के इस विशाल सग्रह महाग्रन्थ मे 'राम' के उन सभी रूपो का वर्णन है जिसका सन्त-साहित्य ऋणी है और स्पष्ट यो कि स्वामी जी की सम्पूर्ण वाणी ही राममय है। स्वामी जी द्वारा राम के विशद विवेचन का ही प्रभाव है कि रामसनेही सम्प्रदाय मे 'राम' शब्द बडा लोकप्रिय है। रामसनेही सम्प्रदाय के साधु, गृहस्थ, नर-नारी, बाल-वृद्ध सभी एक-दूसरे से मिलने पर 'रामजी राम' कहकर अभिवादन करते हैं। वृद्धजन या साधु जन 'राम' कहकर ही आशीर्वाद भी देते हैं। वस्तुत: राम नाम तारक मन्त्र है।[2] ब्रह्म भी यदि राममय है तभी उसकी सार्थकता है। सम्पूर्ण सृष्टि-रचना राम का कार्य है। राम स्वय कारण है। यह 'राम' शब्द स्वामी रामचरण के सम्प्रदाय के सम्पूर्ण जीवन-दर्शन का आधार है। स्वामी जी ने अपने पन्थ को रामसनेही नाम दिया था और धर्म को राम धर्म कहा था। उनके पथ एव धर्म की आधारशिला यह 'राम' ही है। कैप्टेन वेस्मकट ने भी महत नारायण दास जी से प्राप्त 'वाणी' के कुछ सकलित हस्तलिखित अश के हर पृष्ठ पर राम शब्द लिखा देखकर सम्प्रदाय मे राम शब्द की महत्ता का अनुमान अपने ढङ्ग से लगाया है। वेस्मकट लिखते है—

The head of each page is inscribed with the holy name of Ram, used by the society as an initial title of respect, corresponding with the Alif (Allah) of Musalmans and Sri of the Hindus and signifying, that an author solicits the blessing of God on commencing a work, and invokes success on the undertaking."[3]

---

१. अ० वा०, पृ० ६६४।
२. "राम नाम तारक मंत्र है, सुमिरै शंकर शेष।
रामचरण साचा गुरु, देवै यो उपदेश।"
—वही, पृ० २०८।
3. Journal of the Asiatic Society, Feb. 1835.

स्वामी जी के सम्पूर्ण साहित्य मे 'रमतीत राम' का इतना महत्त्व है कि अंगवद्ध वाणी के प्रत्येक अग का आरम्भ वे निम्नलिखित दोहे से करते है—

"रमतीत राम गुरुदेव जी, पुनि तिहुं काल के सत।
जिनकूं रामचरण की, बंदन वार अनन्त।"

यह दोहा उनके छोटे-बड़े ग्रन्थो मे प्रत्येक प्रकरण, प्रकाश और विश्राम के आरम्भ मे तथा फुटकर पदो के सग्रह के पहले उल्लिखित है। स्वामी रामचरण के अनुसार जैसे सम्पूर्ण सृष्टि का आधार राम है, वैसे ही स्वामी जी के सम्पूर्ण साहित्य की प्रेरणा 'रमतीत राम' है।

जीवात्मा

"सन्त-साहित्य मे भी ब्रह्म और जीव की एकता स्वीकार की गयी है। पर इस एकत्व की स्थिति मे व्यवधान उत्पन्न करने वाली माया को माना गया है।"[1] रामसनेही सतो ने जीव और ब्रह्म को तत्त्वत एक माना है।[2] अणभैवाणी मे जीव व शीव के एक होने की बात जगह-जगह पर प्रतिपादित है।[3] स्वामी रामचरण ने जीव को ब्रह्म का अश कहा है पर उसी अर्थ मे जिस अर्थ मे सूर्य का अश उसका प्रतिबिम्ब होता है। सूर्य से पृथक् उसके प्रतिबिम्ब का अस्तित्व नही, वैसे ही जीव, ब्रह्म का अश है। शरीर, जीव और ब्रह्म के बीच माया का आवरण है। उस आवरण के हटते ही जीव और ब्रह्म की अद्वैतता परिलक्षित होने लगती है—

"जीव ब्रह्म का अंश है, ज्यूं रवि का प्रतिबिम्ब होय।
घट पडदा दूरा भया, जीव ब्रह्म नहिं दोय।"[4]

'सन्त-साहित्य मे 'जलतरग न्यायवत्' ब्रह्म और जीव के स्वरूप का विवेचन हुआ है।'[5] स्वामी जी भी 'रामरसायण बोध' के द्वितीय प्रकरण मे इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए 'नीर-तरग', 'अग्नि झाल', 'कनक-भूषण' सदृश जीव-जगदीश की अभेदता का वर्णन करते हैं—

"रामचरण चित लीन करि, उर धर ध्यान सदीव।
रोम रोम में राम जी, सदा निरंतर शीव।

---

१. डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल · सन्त साहित्य, पृ० १०५।
२. डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी . रामसनेही-सम्प्रदाय (अप्रकाशित शोधप्रबन्ध)
३. केवलराम स्वामी : रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ९३।
४. अ० वा०, पृ० ८।
५. डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल : संत-साहित्य, पृ० १०५।

सदा निरंतर शीव नही जाम अंतराई।
नीर तरंग न दोय जोय जल एक सदाई।
अग्नि झाल नही भिन्न मन्न नहचै करि आंनो।
भूषण-कनक न भेद जीव जगदीश बखानो।
रामचरण दुतिया नहीं मही बाझ इक राम है।
जाकू परगट दर्श है जे जन नित नहकाम है।"[१]

'कुण्डल्या विचार को अंग' में जीव की ब्रह्म से अभिन्नता सिद्ध करने के लिये कवि ने विभिन्न प्रतीकों का सहारा लिया है। जैसे खांड और उससे निर्मित छोटे-बड़े खिलौने, काष्ठ और उससे निर्मित पुतली, पत्थर और उससे निर्मित प्रतिमा, पाला-ओला-बुद्बुदा और जल अभिन्न हैं, वैसे ही ऊंचे-नीचे सभी आकार में स्थित जीवात्मा ब्रह्म से अभिन्न है—

"किया खिलौना खांड का नाना विधी अनेक।
ज्ञान दृष्टि करि देखिये तो खांड एक ही एक।
तो खांड एक ही एक दोय बुधि धरिये नाही।
ऊंच-नीच आकार ब्रह्म व्यापक सब माही।
रामचरण कासूं करै घट बिध अंतर रेख।
किया खिलौना खांड का नाना विधी अनेक।"[२]

और भी—

"काष्ट केरी पूतली काष्ट न्यारी नाहि।
ज्यू पाहण की प्रतिमा पाहण कै ही माहि।
पाहण कै ही माहि राम रटि ऐसो दर्श्यो।
मिट्यो नकल गुण भास असल पूर्ण पद परस्यो।
पाला ओला बुद्बुदा जल तज कहू न जांहि।
काष्ट केरी पूतली काष्ट न्यारी नाहि।"[३]

'कवित परचा को अंग' में भी ब्रह्म-जीव के मिलन को सरिता-सिन्धु-मिलन, जल में नमक का घुलन, पाला का पानी रूप में गलन कहकर, स्वामी जी ने बतलाया है कि इसी प्रकार जीव, ब्रह्म में मिलकर, घुलकर और गलकर एक हो जाता है। जैसे जल के बुलबुले जल से अलग

१. अ० वा०, पृ० ९३८-९४०।
२. वही, पृ० १६६।
३. वही।

नहीं, जैसे नदी की लहरें उससे अलग अपना अस्तित्व नहीं रखती, वैसे ही जीवात्मा परमात्मा या ब्रह्म से भिन्न नहीं—

"राम राम मुख गाय ब्रह्म का पद कू पायो।
जैसे सिलता नीर ध्याय धुरि समद समायो।
जल की उत्पत्ति लूण उलट अपणो पद पर्यो।
पालो पाणी मांहि गल्या दूजो नहि दर्यो।
ज्यूं जल केरा बुदबुदा जलसूं न्यारा नांहि।
रामचरण दरियाव की लहर्या दरिया मांहि।"[1]

अथवा 'जिज्ञास बोध' के पांचवे प्रकरण में ये पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य है—

"निराकार निर्लेप निरंजन, पूर्व थान मिलाया वे।
लहरि बुदबुदा जल में हूवा, जल मे उलटि समाया वे।"[2]

'विश्वाम बोध' के चतुर्थ प्रकरण में स्वामी जी ने ब्रह्म को जल और जीव को 'हेम' (हिम) बतलाया है। ज्ञानसूर्य के उदय से हेम (हिम) गलकर 'आप' रूप हो जाता है—

"कहूं सो हिया को विचार।
जल रूप ब्रह्म सोहं एक सार।
कोई रीति अज्ञता तम तुषार।
जल बंध भयो तहा हेम भार।
तबै अर्क उदियो ज ज्ञान।
गलि हेम भयो आपै समान।"[3]

ब्रह्म से जीव की भिन्न स्थिति का सङ्केत देते हुए स्वामी जी स्पष्ट करते है कि जैसे जल से 'खार' (क्षार) की उत्पत्ति विकार है जो जल से भिन्न स्थिति मे दीख पड़ता है, वैसे ही देहाभिमान, भाँति-भाँति के स्नेहबन्धन, शरीर के वैभव के प्रति प्रीति आदि विकार उत्पन्न होकर जीवात्मा को ब्रह्म से भिन्न स्थिति मे ला देते हैं—

"बहुरि कहू जल मध्य खार।
स्वतै सिध उपज्यो विकार।
सोहं आप मान अभिमान देह।
तब भांति भांति बांध्यो सनेह।

---

१. अ० वा०, पृ० १०७।
२. वही, पृ० ५४०।
३. वही, पृ० ६६८।

तन आदि विभव यह प्रीति भौंन।
यूं जांण जीव जल भिन्न लोंन।"[1]

जल और नमक की एकता को ब्रह्म और जीव की एकता का प्रतीक मानकर स्वामी जी कहते हैं—

"जल सेती पैदा भया नाम धर्‌या तब लोन।
जल मे मिल जल ही भया लोन कहै अब कौन।"[2]

'सवैया विचार को अंग' मे स्वामी रामचरण जी जीव को ब्रह्म का प्रतिविम्ब घोषित करते है। जीवात्माएँ जल से पूरित कुम्भ के समान हैं और रवि का प्रतिविम्ब सब मे पड़ता है—अर्थात् सभी जीव ब्रह्म प्रतिबिम्बवत् है—

"जल सू भर कुभ अनेक धर्‌या रवि को प्रतिबिब पर्‌यो सब मांही।
पवन लग्यां सेती नीर हलै कहुं सूरज तेज हलै चलै नांही।
ऐसें ही ब्रह्म आनन्द लह्यो जिन देह इन्द्री गुण व्यापै न कांही।
देह अध्यासी कूं सुक्ख नही थिर नीर भया बिन नां दरसांही।"[3]

'सवैया सुमरण को अग' मे कवि ने बहुत स्पष्ट रूप से 'ब्रह्म के अश' जीव को राम-स्मरण के लिये प्रेरित किया है—

"रामहि राम रटो निशिबासर काहे कू दूसरो थाट थटोरे।
ब्रह्म का अंश कू ब्रह्म उपासना माया उपासत सोहि बटोरे।"[4]

स्वामी रामचरण ने अपने 'दृष्टान्तसागर' नामक ग्रन्थ मे ब्रह्म से जीव की उत्पत्ति विक्षेप और पुन मिलाप की प्रक्रिया को अग्नि और कोयला का दृष्टान्त देकर समझाया है—

"पावक सें पैदा भया, पावक सूं जीवंत।
गुण ऊरमी नाम तजि, फिर पावक ही अंत।"[5]

जैसे कोयला, अग्नि से उत्पन्न होता है वैसे ही जीव की उत्पत्ति ब्रह्म से है। कोयला, अग्नि से जीता है, जीव को भी ब्रह्म ही जिलाता है। जलती आग पर मिट्टी डालकर बुझा देने से कोयला

---

१ अ० वा०, पृ० ६६८।
२. वही।
३. वही, पृ० ८७।
४. वही, पृ० ८६।
५. वही, पृ० १०६१।

हो जाता है। इसी प्रकार ब्रह्म के शुद्ध रूप पर मायाजनित विषयों का आवरण पड़ जाने से जीव संसारी हो जाता है और कोयला-अग्नि सदृश जीव का ब्रह्म से विक्षेप हो जाता है। पुनः अग्नि-सम्बन्ध होने पर कोयला पावक हो जाता है, माया का आवरण हटते ही जीव ब्रह्म से मिलकर ब्रह्म हो जाता है।

स्वामी रामचरण ने संतपरंपरानुमोदित जीवात्मा और परमात्मा की एकता का विचार-निरूपण अपनी वाणी एवं काव्य ग्रन्थों में किया है। उन्होंने जीव और ब्रह्म में अंश-अंशी अद्वैत सम्बन्ध का विशद विवेचन विभिन्न प्रतीक उदाहरणों द्वारा किया है। 'अद्वैत-दर्शन के अनुसार जीव, ब्रह्म से तभी तक भिन्न है जब तक माया का स्वरूप विद्यमान है। माया के हटते ही जीव और ब्रह्म की एकता सम्भव है।'[1] स्वामी जी ने बतलाया है कि शरीर माया का आवरण है, इस आवरण के हटते ही जीव और ब्रह्म अभेद हो जाते हैं। यह आवरण ज्ञान के प्रकाश से निरावरण में परिवर्तित होता है। जीव, रामरसायण का प्रेमपूर्वक पानकर ज्ञान के आलोक से आलोकित हो 'नित्य निरञ्जन राम' से जा मिलता है—

"राम रसायण अजब सार का सार रे।
पीया प्रेम उपाय गया जग पार रे।
नित्य निरंजन राम मिल्या जाइ वास है।
परिहा रामचरण निज ज्ञान भयो परकाश है।"[2]

माया

"माया, ब्रह्म की शक्ति के रूप में है। ब्रह्म में वह उसी रूप में समाई हुई है जिस प्रकार अग्नि में उसकी दाहिका शक्ति। इसके दो भेद हैं—एक विद्या तथा दूसरा अविद्या। सृष्टि का निर्माण, उसकी स्थिति तथा अन्ततोगत्वा उसका प्रलय के रूप में अवसान माया के विद्या रूप का कार्य है। माया का अविद्यात्मक रूप ही नियति का चक्र माना गया है। यह दुःख-रूपा होती है।"[3]

डॉक्टर प्रेमनारायण शुक्ल ने उपर्युक्त पंक्तियों में संक्षेप में माया एवं उसके दोनों रूपों की चर्चा की है। सन्त-साहित्य में माया का वर्णन खूब हुआ है। इस सन्दर्भ में डॉक्टर शुक्ल की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य हैं। "संतों ने माया के अविद्यात्मक रूप की ही विशेष चर्चा की है। उनका यह विश्वास है कि ब्रह्मोपासना में सबसे बड़ी बाधा माया की ही है। इसलिए वे इसे नाग, नागिन, डाइन, ठगिनी, नटनी, छुरी आदि अनेक रूपों में कहीं तो प्रतीकात्मक शैली में और कहीं रूपक योजना द्वारा वर्णन करते हैं।"[4]

---

१. डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल : संत साहित्य, पृ० १०४।
२. अ० वा०, पृ० ५४०।
३. डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल : संत साहित्य, पृ० ११२।
४. वही, पृ० ११४।

स्वामी रामचरण ने भी अपने विशाल वाणी साहित्य एवं ग्रन्थों में माया का वर्णन खूब किया है। 'साखी माया को अंग' में उन्होंने माया को विभिन्न प्रतीकों एवं रूपकों द्वारा स्पष्ट किया है। माया की मधुरता के सामने 'हरि का नाम' खारा लगता है।[1] माया पापिनी अपनी उत्पत्ति को स्वयं खा जाती है। पहले सेवा द्वारा पोषण करती है, बाद में सभी को नष्ट कर देती है—

"जणि जणि खावै पापणी, दया न उपजै तास।
पहले सेवै पोखदे, पीछे करै सकल को नास।"[2]

इस अर्थ में वह 'नागिनी' भी है। नागिन जन्म देकर अपने बच्चों को ही खा जाती है। कोई एकाध बच्चा बच निकलता है, वैसे ही माया भी अपने पुत्रों को चुन-चुनकर खा लेती है, उससे बचने वाला कोई 'अवधूत' ही होता है जो राम का भजन करता है—

"माया काली नागणी, चुणि चुणि खाया पूत।
रामचरण भज राम कूं, उबर्‌या कोइ अवधूत।"[3]

और वह भक्ति की 'बैरिन' भी है—

"माया बैरणि भक्ति की, ज्यूं त्यूं घालै घाव।
रामचरण खाउ खाउ करै, कोइ संत चुकावै दाव।"[4]

यह माया 'कर्त्ता' की सृष्टि है, बड़ी बला है, 'डाकणी' भी है—

"रामचरण कर्ता करी, माया बडी बलाय।
छल बल कर संसार कूं, डाकणि खाया जाय।"[5]

'कुण्डल्या माया को अंग' में कवि 'राम' और 'राम की माया' को रवि और उसकी छाया सदृश देखता है। भक्त के सम्मुख राम है तो पीछे माया—

"माया मेरे राम की ज्यूं रवि की छाया होय।
सेवक सम्मुख राम रवि, तो पीछै लागै सोय।

---

१ अ० वा०; पृ० ५४। माया तो मीठी लगै खारा हरि का नाम।
२ वही, पृ० ५४।
३. वही, पृ० ५४।
४. वही।
५. वही, पृ० ५५।

पीछे लागे सोय, फिर्‌या सूं आगे न्हासे।
ये प्रत्यग् दृष्टान्त, सघन कू प्रगट भासे।"[1]

माया और भक्त का 'हरि' से दासी और दास का सम्बन्ध है। चञ्चल माया हरि की दासी है और 'हरिजन' हरि के दास है—

"माया हरिदास चपल, हरिजन हरि के दास।
जे माया चित्त चहूटं तो दास धर्म को नास।"[2]

वस्तुत माया झूठी है किन्तु सत्यपुरुष की रचना होने के कारण सच्ची-सी लगती है—

"माया झूठो राम की साची सी दर्शाय।
रचना साचा पुरुष की ताते लखी न जाय।
ताते लखो न जाय उपजतो हर्ष बधावं।
बिनसत उपजे शोक मींड कर शीश धुणावं।
रामचरण भज राम कू तज सब आन उपाय।
माया झूठो राम को साची सी दर्शाय।"[3]

माया और जीव क्रमशः कमल और मधुकर के समान है—

"माया कमल स्वरूप जीव मधुकर सब झूलं।
विषिया रस मोहीत होय निज घर कूं भूलं।
च्यार पहर गए बीति प्रीति सूं नहीं अघाने।
उडि न सके मति हीण माँहि मरि खरे खिसाने।"[4]

ससार और माया क्रमश 'माखी' और 'मीठे गुड' के सदृश है—

"माया यो ससार मिष्ट गुडमाया चीठो।
कलो लिपटे पगं पाख चाखि रसना रस मीठो।
अंतर आशा स्वाद परे नर तनु को हानो।
माया चले न साथ जीव जब करे पयानो।

---

१ अ० वा०, पृ० १७५।
२ वही।
३ वही।
४ वही, पृ० १२६।

माथी मूंणे कर घसै सुलक्षण नहीं बसाय।
रामचरण सग शोक ले चले भोग छिटकाय।"[1]

माया, राम और साधु का सम्बन्ध कवि कादो (कीचड), जल और मछली के रूपक से स्पष्ट करता है—

"माया कादो रामजल साधू मीन समान।
कादै जन राचै नहीं, जल बिछड़त तजै पराण।"[2]

माया ने सर्व ससार का भक्षण कर लिया, उससे बचकर कोई नही भाग सका। यदि कोई बचा तो वह सन्त ही बचा राम के चरणो मे लवलीन होकर—

"माया खायो जगत सब, सक्यो न कोई भाग।
उबर्या कोई सत जन, रामचरण लिव लाग।"[3]

कवि की दृष्टि मे माया-काया मे कोई भेद नही, अत. हरि इन दोनो के साधको से दूर है। 'भरपूर' (राम) का दर्शन तभी होगा जब इन दोनो को छोड दिया जाय—

"माया काया एक है, इन साधन हरि दूर।
रामचरण दोन्यू तजै, तब दर्शे भरपूर।"[4]

माया ने सभी के गले मे फदा डालकर पकड रखा है। सभी माया की उपज है चाहे वो ब्रह्मा हो, विष्णु हो या महेश हो। केवल एक 'ब्रह्म' ही अजन्मा है—

"माया पकड़ो जगत सब, डारि गला में पासि।
माया तजि हरि कू भजै, वा संता की दासि।
माया की पैदासि सब, एक ब्रह्म नापैद।
ब्रह्मा विष्णु महेश लग, माया कीया कैद।"[5]

स्वामी जी ने माया को ब्रह्म की जोरू या स्त्री तथा सकल सृष्टि की माता कहा है अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् मायाजात है। जो व्यक्ति ब्रह्म की जोरू को अपनी कहता है, वह यमपुरी जाता है। फिर माया तो जननी है, अत जो जननी को नारी रूप मे देखता है वह अवश्य खराब होता है। जननी को स्त्री समझने के पाप का परिणाम 'चौरासी की मार' है—

१. अ० वा०, पृ० १२६।
२. वही, पृ० ५४।
३. वही।
४. वही।
५. वही।

"माया नारी ब्रह्म की, मात करै प्रतिपाल।
रामचरण मेरी कहै, सो हरामखोर बेहाल।
माया जोरू ब्रह्म की, सकल सृष्टि की माय।
रामचरण अपणी कहै, सोही जमपुर जाय।
× × ×
जननी कूं नारी गिणै, सो नर होसी ख्वार।
रामचरण ई पाप सूं, चोराशी की मार।"[1]

कवि की दृष्टि में पिता, माता, पुत्र, स्त्री, धन-धाम, बन्धु, परिवार, जाति आदि सभी माया या माया रूप हैं।[2] जहाँ तक दृष्टि जाती है, सब माया का रूप ही दीखता है। चाहे नरपति हो या सुरपति, जिससे भेंट हो गयी उसे ही ग्रस लेती है—

"जेता आवै दृष्टि मे, सब माया का रूप।
यासूं मिल्या स ग्रासिया, कहा सुरपति कहा भूप।"[3]

कभी 'पीव' को विस्मृतकर माया के पीछे दौड़ने वाले जीव पर ही उसे झुंझलाहट होती है—

"माया बिचारी क्या करै, बडा हरामी जीव।
जहाँ तहाँ हेरत फिरै, याद करै नहिं पीव।"[4]

'कवित माया को अंग' में स्वामी रामचरण माया को वह 'शिकारणि' (शिकारिन) कहते हैं जो योगियों पर डोरे डालती है, जो तपस्वी जनों का बल तोड़ देती है, यतियों का 'सत्त' डिगा देती है, सन्यासी को पाप लगा देती है, दर्वेशों को रगड़कर ब्राह्मणों से बेगार कराती है—

"माया करि किल्कार अहेड़ै चढ़ी शिकारणि।
भोगी दिया गुड़ाय, जाल जोग्या पर डारणि।
तपस्या का बल तोड़ जत्या का जत्त डिगाया।
जंगम लीन्हा जीति, सन्यासी पाप लगाया।
दर्वेशा कूं वर्मल्या, विप्र पकड़ बेगार।
रामचरण एता शिरै संता की पणिहार।"[5]

---

१ अ० वा, पृ० ५५।

२. माया पिता मात सुत दारा, धन धाम बन्धु परिवारा।
माया रूप जाति कुलबंध, ता सग राम भूलि भ्रम्या नर अंध।—वही, पृ० ५५।

३. वही, पृ० ५४।

४. वही।

५. वही, पृ० १२७।

स्वामी जी के शब्दों में माया मोहक शक्ति रखने वाली है—

"माया हरि की मोहिणी जी मोह्या सब संसार।
पटक पछाड़्या भागता भक्ता किह्या खवार।"[1]

वह राजा राणा, रंक, बादशाह सभी को मोह लेती है, पर मोहासक्त जन तृप्त कभी नहीं होते प्रत्युत आशा में पड़े युग-युगों तक रोया करते हैं—

"राजा राणा रंक पातिशा सबही मोहै।
तिरपत भये न कोय आशधरि जुग जुग रोये।"[2]

'अणभै विलास' के सोलहवें प्रकरण में स्वामी जी माया 'डाकिणि' के दो रूप 'वाम-दाम' बतलाते हैं। इन्हीं दो रूपों में माया अनेक लोगों की फजीहत कर चुकी है। माया से बचने का 'अजीत ओट' रामभजन है—

"डाकिणि सू डरता रहो मति कोइ रहो नचीत।
बाम दाम दोय रूप धरि ई केता कीया फजीत।
केता किया फजीत प्रीति करि अति भर्माया।
छल्या सु चेते नाहि मार कै गर्द मिलाया।
रामचरण भज राम कू या निर्भय ओट अजीत।
डाकिणि सू डरता रहो मति कोइ रहो नचीत।"[3]

'अमृत उपदेश' के नवें प्रकाश में कवि माया लोक में हर्ष एवं शोक के अनेक थोक एवं भीड़ देखता है। तन-मन में अनस्थिर माया स्वयं उत्पन्न करके उसे ही खा लेता है, संसार को आकृष्ट करती है, नाच नचाती है, अति भ्रमित करती है, फिर भी हाथ नहीं आती। वह झूठ बोलने की प्रेरणा है और राम के विस्मरण की भी—

"माया लोक हर्ष अरु शोक नाना थोकं बहु भीर।
आप उपावै आपहि खावै, जग परचावै दे धीर।
नाच नचावै अति भरमावै, हाथ न आवै सह पीरं।
राम भुलावै झूठ बुलावै, तन मन माया ना थीरं।"[4]

---

१ अ० वा०, पृ० ५९१।
२. वही, पृ० १२७।
३. वही, पृ० २८९।
४. वही, पृ० ४७५।

'जिज्ञास बोध' के तेरहवें प्रकरण में 'माया रचना' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी ने माया की रचना का कारण तीन गुणों को माना है। माया की 'त्रयगुण'–शक्ति द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ है। उसमें 'चेतन-अंश' के रूप में हरि वैसे ही व्याप्त है जैसे दूध में घी—

"माया रचना त्रय गुण माही सब ब्रहमड बनाये।
चेतन अश आप हरि व्यापक ज्यूं घृत दूध समाये।'"

इसी सन्दर्भ में कवि माया को 'बाजी' कहता है। वस्तुत माया उस 'बाजीगर' की 'बाजी' है—'उपजै खपै रहै थिर नाही ये बाजीगर की बाजी'। इस बाजी का बहुत विस्तार है। इसका कोई पार नहीं पा सकता, अत विवेकपूर्ण बाजी के कर्तार को ही सम्हालने की आवश्यकता पर कवि बल देता है। माया और ब्रह्म का सम्बन्ध और स्पष्ट करने के लिये स्वामी जी ने वृक्ष एव उसकी डालों और पत्तों के सम्बन्ध का दृष्टान्त लिया है—

"पार नहीं बाजी तणूं बाजी बहु विस्तार।
तातै समझ सम्हालिये बाजी को कर्तार।
बाजी को कर्तार सकल बाजी ता मांही।
ज्यू डारपात उपडार वृक्ष सैं न्यारो नाही।
रामचरण भज राम कूं सबही को आधार।
पार नही बाजी तणूं बाजी बहु विस्तार।"[२]

यही कवि को माया की सबलता का भी आभास होता है। माया बडी प्रबल है, किसी को भी उसे निर्बल नहीं समझना चाहिए। ससार-दह से पार होते को वापस करके दह में घेर देती है। इतना ही नहीं, वह सभी को गर्दन पकडकर दबाती है और योगी-यती, ऋषि-तपस्वी किसी को उबरने नहीं देती। जो उबरता है वह नाम के प्रताप से ही—

"रामचरण माया सबल कोइ निबल जाणज्यो माहि।
पार पहूंता फेरि कै घेरि देवै दह माहि।
घेरि देवै दह माहि गर्दनों पकडि दबावै।
ऋषि तपसी जति जोगि कव्यां नहि उकसण पावै।
जे उबरै नाम प्रताप सैं रहै चरण लिपटांहि।
रामचरण माया सबल कोइ निबल जाणज्यो नांहि।"[३]

---

१. अ० वा०, पृ० ५८९।
२. वही।
३ वही।

'विश्वास बोध' के नवे प्रकरण मे कवि 'माया गति' की चर्चा करता है। राम की अद्‌भुत माया का विस्तार तीन लोक, चौदह भुवनो मे है। माया-माया सभी कहते है पर माया का रहस्य कोई नही जान पाता है। जहाँ तक मन-वाणी है, सब मायामय है, सूक्ष्म-स्थूल सभी माया के निर्माण है। त्रिगुणात्मिका माया के अनन्त नाटक एव भिन्न-भिन्न छलछन्द है। रामजी की माया अद्‌भुत लीलाकारिणी है—

"माया माया कहै पण, माया को न भेद हाथ,
साथ लागा फिरै सारा मरम न पाय है।
मन वाणी जाय जहाँ तहाँ लू स्वरूप माया,
सुक्षिम सथूल पुनि जेती बणी काया है।
नाटक अनन्त छलछद भाँति भाँतिन के,
त्रिगुण किरत बपु चौबीसू धराया है।
राम ही चरण याकी कहाँ लो बणाय कहूँ।
लीला अद्‌भुत यह राम जी की माया है।"[1]
× × ×
"अद्‌भुत माया राम की ऊँच नीच विस्तार।
तीन लोक चवदा भवन एक राम आधार।"[2]

विघ्न-विपत्तिया की खान जहाँ है वही माया का घर है—

"विघ्न बिपति की खान स माया धाम है।"[3]

माया, गणिका रूप है। यह सज्जनो को लड़ाती है। इससे दूर रहकर राम-भजन करना ही श्रेयस्कर है—

"यासूं रहिये दूर राम कू भज्जना।
परिहा माया गणिका रूप लड़ावै सज्जना।"[4]

'विश्राम बोध' के दशम विश्राम मे कवि माया की दो रीतियो की चर्चा करता है, इसका रहस्य कोई विरला ही जान पाता है। भक्तों की फजीहत करना और जगत् की शोभा के रूप मे दीख पडना ही ये दोनो रीतियाँ हैं—

---

१. अ० वा०, पृ० ७००-१।
२. वही, पृ० ७०१।
३. वही।
४. वही।

"माया की वोइ रीति भव कोइ विरला पावै।
भक्ता करै फजीत जगत की शोभ दिखावै।"[1]

'रामरसायण बोध' के चतुर्थ प्रकरण मे माया का वर्णन 'माया रग' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है। स्वामी रामचरण ने माया को अनन्तरङ्गिनी कहा है जिसका पार पाना किसी के लिये भी मुश्किल है। यह अनन्त रगोवाली अनेक छल-छन्द दिखाकर मार डालती है और जीव ऐसा है कि उसी माया के रग-रग मे सदैव भूला रहता है। वह कभी आता है, कभी जाता है और कभी 'अधबीच' मे ही झूलता रहता है।

"माया के रग अनन्त प्यारे, ताको पार कहो कुण पाय हे जी।
छल छद अनेक दिखाय मारै, रसरग मे जीव भुलाय हे जी।
कहु आय रहे कहु जाय रहे, अधबीच मे बहुत झुलाय हे जी।
जन रामचरण वे जक्ष सही, माया देखि न चित्त चलाय हे जी।"

बहुरूपिणी माया का एक रूप रूपदास (रूपया) का भी है जिसके द्वारा यह माया सर्व ससार को मोल लेती है, पर साधुजन इससे अलिप्त रहते है, उस पर मुग्ध नही होते—

"रूपदास के रूप मै, मोहे सब ससार।
साधूजन मोहे नही, मोहे तो होइ ख्वार।"[2]

स्वामी रामचरण ने माया का बडा विशद वर्णन किया है। अपनी वाणी और अपने ग्रन्थो मे माया को उन्होने खूब समझा है और विस्तृत समीक्षा भी की है। 'दृष्टान्त-सागर' जैसे 'कूटग्रथ' मे भी 'मन-माया सम्बन्ध' और 'माया के दास मन' को लेकर प्रतीकात्मक शैली मे माया का विवेचन उन्होने किया है। इस मायात्मक ससार मे हरिजन ही ऐसे है जो माया के विपरीत पथ पर चल, मनोकामनाओ को जीतकर 'निरञ्जन राम' का भजन करते है—

"हरि मग चालै हरिजना, मना मनोरथ जीत।
भजै निरंजण राम कूं, तज माया विपरीत।"[4]

जगत

जगत् सम्बधी विचार के सन्दर्भ मे 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखको की निम्नलिखित पक्तियाँ ध्यान देने योग्य है—

---

१. अ० वा०, पृ० ८४४।
२ वही, पृ० ९५५।
३ वही, पृ० ९५६।
४ वही, पृ० ९४४।

"अद्वैत के अनुसार यह सारा ससार मिथ्या है, यह माया का परिणाम है और ब्रह्म का विवर्त्त है। ससार मृगमरीचिका है।"[1]

स्वामी रामचरण ने अपने विभिन्न ग्रन्थो मे जगत् की अस्थिरता, नश्वरता आदि का वर्णन किया है। ग्रन्थ 'अणभोविलास' के नवे प्रकरण मे वे ससार को **'शीतकोट'** और **'मरीची नीर'** (मृगजल) कहते है। ससार मरीची नीर (मृगतृष्णा नीर या मरुमरीचिका आदि) के समान मिथ्या है, यह कल्पना विभिन्न कवियो ने की है पर ससार की अस्थिरता, मिथ्यात्व आदि के लिये 'शीतकोट' का प्रतीक स्वामी रामचरण की अभिनव कल्पना है। शीतकोट को 'सीकोट' भी कहा जाता है। श्री रामस्नेही सम्प्रदाय के लेखको ने इस शीतकोट को स्पष्ट करते हुए लिखा है—

"मरुभूमि मे ग्रीष्म के दिनो मे तो सूर्य की किरणो से पानी की भ्रान्ति होती है, उसे मृगतृष्णा, मरुमरीचिका आदि कहते है, उसी प्रकार सर्दी के दिनो मे सूर्योदय के कुछ पहले पश्चिम दिशा मे 'कोट कगूरे' बुर्ज आदि से युक्त नगर-सा दिखायी देता है; देखनेवाला भ्रमित हो जाता है, थोडी देर बाद सूर्य के प्रकाश के साथ वह न जाने कहाँ उडकर गायब हो जाता है, उसे (शीतकाल) मे बना हुआ कोट-किला-कहते है, यही शीतकोट है। दार्शनिको को ससार के मिथ्यात्व प्रदर्शन के लिये ये दो उदाहरण मरुभूमि से मिले है। शीतकोट ही गधर्वनगर है।"[2]

इसी शीतकोट और मरीची नीर-सदृश अस्थिर और असार है यह ससार। स्वामी जी के शब्दो मे यह वर्णन बडा ही मार्मिक है—

**"शीतकोट संसार अथिर सब थीर रे।
माया छक सुखराज मरीची नीर रे।
मन मृगा सत जान प्यास धर दौरि है।
परिहा देखत जाय बिलाय रहे शिरफोर है।
शीतकोट की ओट पोट पाला तणी।
ज्यूं मृगतृष्णा नीर सीर वरिया घणी।
ऐसे यो ससार अथिर है नीर रे।
परिहां रामचरण भजि राम निर्भय सुख थीर रे।"[3]**

---

१ केवलराम स्वामी तथा अन्य—श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ९७।
२. वही फुटनोट, पृ० ९७-९८।
३ अ० वा० पृ० २५०।

स्वामी जी संसार को मन की कल्पना से अधिक नहीं समझते। 'मन कल्पित संसार' से 'यारी' न करने एवं उसे 'ज्ञानदृष्टि' से देखने की राय देते हैं, क्योंकि यह सम्पूर्ण सृजन मिथ्या है, सच्चा केवल सर्जक है—

"मन कल्पित संसार सूं, मति बाँधे यारी।
तू अलिप्त होय राम भजि, ज्यूं जय जय होय थारी।"[1]
× × ×
"ज्ञान दृष्टि कर देखिये, मन कल्पित संसार।
सिरज्या सो सब झूठ है, साचा सिरजणहार।"[2]

स्वामी रामचरण की दृष्टि में संसार अँधेरा बाग है जिसके बहुरंगी फूल-फलों के लिये मन भ्रमर हो जाता है—

"जगत अंधेरो बाग है, विविध फूलफल रंग।
रामचरण मन भँवर होय, जहाँ किया परसंग।"[3]

यह संसार मोह बधिक की 'जाली' (जाल) है जिसमें जीव-मृग फँसा हुआ है। इस जाल के फन्दों को राम जी के अलावा अन्य कोई नहीं काट सकता—

"मोह बिधक जाली जगत, मैं मृग पड्या तामाहि।
फंद काटण कूं राम जी, तुम बिन दूजा नाहि।"[4]

बाग, वृक्ष और बागवान के प्रतीक द्वारा स्वामी जी ने जगत्, जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध स्पष्ट किया है—

"सृष्टि बाग वृछ जीव सब बागवान करतार।"[5]

'अणभै विलास' के तीसरे प्रकरण में कवि संसार को रात का अँधेरा और 'नरतन' को अल्पसी 'चाँदणी' कहता है—

"राम ही चरण जग रैंण अंधियार है।
चवांणी अल्पसी क्यू ठिगायो।"[6]

---

१ अ० बा०, पृ० २५०।
२ वही।
३ वही, पृ० १०।
४ वही।
५ वही, पृ० १७।
६ वही, पृ० २२०।

'विश्राम बोध' के आठवें प्रकरण में 'जगत भक्त परम' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी रामचरण भक्ति और जगत् की अपनी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। भक्ति का अर्थ 'भयगत' और जगत् का अर्थ 'जयगत' उन्होंने किया है—

"भक्ति किया भैगत्त होइ अरु भक्तां भै नहि सोय।
जगत कह्या जयगत भया लछ जिमि बायक होय।"[1]

'ममता निवास' के पञ्चम प्रकरण में स्वामी जी जगत् के प्रति भक्त या वैरागी को सचेत करते हैं। जगत् के प्रभाव में आकर भक्त वैसे ही नष्ट होता है जैसे खटाई के सम्पर्क से दूध फट जाता है—

"जगत उजाड़ै भक्त कूं, ज्यूं काजी फाडै दूध।
भाँति भाँति फुसलाय कै, करि दे ताहि अबुद्ध।"[2]

वैरागी को कभी संसार का विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि संसार वैरागी का शत्रु होता है। शत्रु के घर में रहनेवाला लापरवाह होते ही उसका परिणाम भुगत लेता है वैसे ही संसार में वास करनेवाला वैरागी गाफिल होते ही विनष्ट हो जाता है। संसार उस पर तनिक भी दया नहीं करता—

"जे बैरागी संसार को कोइ मति कीजो विश्वास।
ज्यूं बैरी बाडै बास करि गाफिल रह्या विनास।
गाफिल रह्या बिनास शत्रु नहि दया बिचारै।
दे स्वारथ स्वाद दिनाव ज्ञान बैरागर मारै।
रामचरण भजराम कू जग सूं रहो उदास।
जे बैरागी संसार को कोइ मति कीजो विश्वास।"[3]

स्वामी रामचरण संसार या संसारी से पलायन नहीं करते, प्रत्युत् वैराग्य में बाधा होने के कारण उससे प्रेम न करने की बात कहते हैं—

"संसार्‌या की प्रीति सूं, बिगडि जाय बैराग।
जत सत सुमरण नां रहै, बधै सवादा राग।"[4]

---

१ अ० वा०, पृ० ६९४।
२ वही, पृ० ८९४।
३ वही।
४ वही।

स्वामी जी ने जगत् या ससार सम्बन्धी अपनी धारणा से सभी को अवगत कराया है इस विशाल ग्रन्थ मे अनेक स्थलो पर विभिन्न प्रतीको द्वारा ससार या जगत् को स्पष्ट किया है साथ ही, ससार से उदास होकर वैराग्य-जीवन को मर्यादित रखने का उपदेश भी दिया है। स्वामी रामचरण ने अपने यौवन के प्रवेशद्वार पर ससारी जीवन के अनुभव के कडवे-मीठे घूँटो का स्वाद लिया था, अत वैरागी होने पर उन्होने 'मन कल्पित ससार' के प्रति प्रीति न करने का सुझाव दिया है। ससार से विरक्त होकर पुन ससार की ओर उन्मुख होना, कवि की दृष्टि मे उचित नही—

"घरवासी घर में रहै, बनवासी बन माहि।
घर त्यागै बैराग ले, तो पर घर बसिये नाहि।"[1]

मन

भारतीय साधना मे मन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल लिखते है कि "इसकी गति बडी ही तीव्र और सर्वत्र है। यह कभी अह तत्त्व के पास रहता है और कभी तद्भिन्न जगत् मे फँसकर दूर हो जाता है। वसन्त की शोभा, ग्रीष्म का उत्ताप, पावस की फुहार, शरद् की चाँदनी, हेमन्त का शीत और शिशिर का पाला यदि किसी के लिये है तो इसी मन के लिये। प्रकृति का समस्त वैभव, उसका समस्त प्रेयस् स्वरूप व्यर्थ हुआ होता यदि उसका उपभोक्ता मानव-मन न होता।"[2] हिन्दी सत-साहित्य मे मन की पर्याप्त चर्चा हुई है। प्राय सभी सन्तो ने मन पर सीधी दृष्टि डाली है। कबीर कभी मन को जीव को नचाने वाला बाजीगर कहते है तो कभी उसे 'खुदा का कहर' बताते है।[3] प्राय सभी सन्तो ने मन की चञ्चलता, सासारिकता के प्रति उसकी आसक्ति और उसकी अनियन्त्रित स्थिति का वर्णन किया है। इतना ही नही, उसे विषय-वासना से विमुख कर ईश्वरोन्मुख करने का उपदेश भी सन्तो की वाणी का विषय है।

स्वामी रामचरण ने 'मन को अग' तथा विभिन्न ग्रन्थो मे मन सम्बन्धी विवेचना की है। 'साखी मन को अग' मे स्वामी जी मन को वह 'मस्करा' कहते है जो कभी नियन्त्रण नही स्वीकारता, वह 'राम नाम' मे लीन न होकर विकारो मे रमता है—

---

१ अ० वा० पृ० ८९५।
२ डाक्टर प्रेमनारायण शुक्ल सत साहित्य, पृ० १२४।
३ 'बाजीगर का बाँदरा, ऐसा जीउ मन साथ।
नाना भाँति नचाय कै राखै अपने हाथ।
× ×
"यह मन कहर खुदाइ का मारै सो दरवेस।"

"रामचरण मन मस्करा, कदे न आवै हाथ।
रामनाम लागै नहीं, रमे विकारा साथ।"[१]

मन अनन्त रूपोवाला है जिससे कवि सजग रहने एव 'शब्द' मे 'थिर' होने का सन्देश देता है। कवि को आशका है कि मन के अनन्त रूपो मे जीव कहीं भ्रमित न हो जाये—

"मन का रूप अनत हैं, तु मति बहकै बीर।
सबही हर्षा छाँड़िकै, होय शब्द मे थीर।"[२]

मन माया मे वैसे ही रमा हुआ है जैसे दूध मे घी। मन को माया से विरत करने के लिये कवि 'कसणी' की आवश्यकता अनुभव करता है—

"मन माया मे रमि रह्या, जैसे खीर घिरत्त।
रामचरण कसणीं बिना, होता नहीं निरत्त।"[३]

यह मन अनन्त लहरो वाला है मानो समुद्र है भक्तजन इसे नियन्त्रित कर लेते है और अज्ञानी उन्ही लहरो मे बह जाता है।

"मन कै लहरि अनन्त हैं, सायर के समान।
रामचरण जन बस करै, बह्या जाय अज्ञान।"[४]

वायु वेग के सदृश इस मन का वेग है जिसमे ससार उडा फिरता है, किन्तु भक्तजन स्थिर रहते है—

"मन का वेग उतावला, वायु वेग साधार।
रामचरण जन थिर रहै, उड्या फिरै ससार।"[५]

यह पापी मन बन्धन लगाता है, गुरु निर्बन्ध करता है। मन के मत से चलनेवाला डूब जाता है, उसे 'गुरुपद' की प्राप्ति नही होती—

"मनवो पापी बन्ध लगावै, गुरु निर्बन्ध बतावे।
मन के मते चल्या सो बूड़ा, गुरुपद नहीं समावे।"[६]

---

१. अ० वा०, पृ० ४८।
२. वही।
३. वही।
४. वही।
५ वही।
६ वही।

इसलिए इस मन का विश्वास नहीं करना चाहिए। कवि तो यहाँ तक कह जाता है कि जब तक शरीर में साँस है, मन अविश्वास के योग्य है।

"मन विश्वास न कीजिये, जब लग तन मे स्वास।
रामचरण मृतक जीवे, गाफिल रहै न दास।
रामचरण ई मन्न को, ना करिये इतबार।
चढ़ता बहुतु साधन चढै, पड़ता लगै न वार।"[1]

'कुण्डल्या मन को अंग' में कवि माया के रंग में रँग मन का सिन्धु की तरङ्ग सदृश बतलाता है। स्वप्न में भी यह मन अचञ्चल नहीं होता, प्रत्युत् घर-घर डोलता फिरता है। यह 'कपट की गाँठ' रखता है और कभी सत्य नहीं बोलता, राम को अंगीकार नहीं करता, ऐसा है यह भोदू मन—

"मन भोदू भरमत रहे, जैसे सिन्धु तरग।
रामनाम राचै नही, रचि माया कै रग।
रचि माया के रंग स्वप्न मै घर घर डोलै।
रखै कपट की गाँठ साच कबहूँ नहिं बोलै।
अर्श पर्श होय राम सूं, मेलत नाही अग।
मन भोदू भरमत रहै, जैसे सिंधु तरग।"[2]

'सुख विलास' के तीसरे प्रकरण में स्वामी जी मन से सदैव सचेत रहने की बात कहते हुए मन को भक्ति का भेदन करने वाला पशु बतलाते हैं—

"ए मन पशु समान है भेलै भक्ति खेत।
रामचरण तातें रहो या मन सूं सदा सुचेत।"[3]

'जिज्ञास बोध' के एकादश प्रकरण में स्वामी जी मन को शत्रु घोषित करते हैं—"मन शत्रु मर्दन करे जे जन सूराजाणि।"[4] इसी सन्दर्भ मे स्वामी जी 'मनदल' की कल्पना करते है। 'मनदल' शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने मन को राजा, मोह को उसका मन्त्री और मदन को अधिकारी बतलाया है—

---

१. अ० धा०, ४८।
२ वही, पृ० १७३।
३. वही, पृ० ३४२।
४ वही, पृ० ५८०।

"मन राजा मंत्री जु मोह मदन तणो अधिकार।
जाकी सेना जाणिबो तोहि कहूं निरधार।"[१]

इस राजा की सेना मे कौतुक, स्वाद और शृगार सभी है, जिनके मोह और मदन सरदार है। ये दोनो सरदार ससार को बाँधे हुए है। सन्तजन, वीर सैनिक है जिन्होने राम शब्द की तलवार से इनको जीत लिया है—

"कौतुक सरक सनेहता, षटरस स्वाद सिंगार।
नाना हरस हराम की, जाको मोह मदन सिरदार।
जाकू मोह मदन सिरदार जगत कू जेर किया है।
सत सिपाई शूर जिनो ये जीत लिया है।
राम शब्द समसेर बल तिनके भजन करार।
कौतुक सरक सनेहता षटरस स्वाद सिंगार।"

इसीलिए स्वामी जी कहते है—

"अरि दल जीतै शूरवारु मन दल जीतै सत।"[३]

'विश्राम बोध' के दसवे प्रकरण मे मन की गति का वर्णन करते हुए स्वामी जी ने मन को काया कस्बा के राजा चेतन का मन्त्री कहा है। यह मन मन्त्री निरकुश है, मनमानी करता है, राजा से डरता भी नही। केवल सावधान के वश मे यह रहता है, गाफिल के वश मे नही।

"मन मंत्री चेतन नरप काया कस्बा मांहि।
सावधान सो बशि रखै गाफिल कै वश नांहि।
गाफिल के वश नांहि आपणा माया करिहै।
चालै बारा बाट नरप कै भय नहिं डरिहै।
राखि सुचेती रामचरण मति गाफिल होइ जाहि।
मन मंत्री चेतन नरप काया कस्बा माहि।"[४]

'विश्राम बोध' के द्वितीय विश्राम मे कवि मन को तन घोडा के सवार के रूप मे चित्रित करता है। जैसे सवार घोडे को जिधर चाहता है ले जाता है, उसी प्रकार मन, तन को विभिन्न दिशाओ मे दौडाता है—

---

१ अ० वा०, पृ० ५८०।
२ वही।
३ वही।
४. वही, पृ० ७०७।

"तन घोडा असवार मन, ज्यू फेरै ज्यूंही फिरन्त।
जहाँ लगन असवार की, जा दिशि दोड करन्त।"[1]

कवि मन की चञ्चलता पर विचार करता है और अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि तन को निश्चल स्थिर करके रामनाम का उच्चारण किया जाय—

"मन कूं चचल देखि कै, अन्तर यह विचार।
तन नहचल थिर राखि कै, रसना राम उचार।"[2]

मन की लहर में वही बहते है जो राम का स्मरण नहीं करते—

"जे मन की लहर्या बहे जो सुमरै नाही राम।"[3]

मनभग-चितभग

'समता निवास' के सप्तम प्रकरण में स्वामी रामचरण मन और चित्त को क्रमश 'मनोरथ' और 'चितवन' से सम्बन्धित करते है। चित्त चितवन मे चचल और मन मनोरथ मे सलग्न रहता है। ये दोनो वैराग्य के मार्ग मे बडे विघ्न है—

"चित चचल चितवन तै मन रहे मनोरथ लीन।
ये बडे विघ्न वैराग मै कोइ लखै साध परबीन।
कोइ लख साध परबीन इनू सू तर्क उपावै।
आन भरसना मान राम सू चित्त लगावै।
रामचरण इ साधना होय मनोरथ छीन।
चित चंचल चितवन तै मन रहे मनोरथ लीन।"[4]

भगवान् के दर्शन के लिए मन और चित्त पर नियन्त्रण अनिवार्य है। प्रतीक के सहारे कवि यहाँ कहता है कि 'बदरी दर्शन' के लिये 'मनभग' और 'चितभग' के पर्वतीय अड्डो को पार करना पडेगा—

"आडा बदरीनाथ कै, मनभग चितभंग दोय।
जो कोइ ये पर्वत चढै, तो बदरी दर्शण होय।"[5]

---

१ अ० वा०, पृ० ७८६।
२ वही।
३ वही।
४ वही, पृ० ९०५।
५ वही।

कवि की दृष्टि में 'रामभजन' में दो मुकाम आते हैं—चित का चितवन और मन का मनोरथ—ये दो ऊँचे पर्वत हैं।[1] इन्हें पार करना चितभंग, मनभंग है। 'मनभंग मुसकिल बाट' है, जिस पर आते-जाते अभिमान का खेद चढ़ता है—

"मन भंग मुसकिल बाट चढ़त असलाक अनेका।
आवत जावता खेद चढ्यो अभिमान विशेषा।"[2]

निजमन की कल्पना

स्वामी रामचरण ने ग्रन्थ 'मनखण्डन' में मन से अलग 'निजमन' की कल्पना की है। सप्त धातु निर्मित शरीर-स्थान का राजा 'चेतन' और प्रधान मन्त्री मन है। इस मन के तीन योद्धा (सत, रज, तम) बड़े प्रबल हैं, इनमें से दो—रज, तम—समझाने पर भी नहीं मानते। मन के साथ पाँच प्यादे भी हैं। सभी अपना-अपना भोग चाहते हैं और इस प्रकार काया नगरी का बोझ बढ़ता जाता है। तब चेतन राजा ने एक युक्ति सोची और तदनुसार मनखण्डन के लिये 'निजमन' का विस्तार किया—

"तब नरपति इक मतो विचार्यो।
मन खण्डन निज मन विस्तार्यो।"[3]

यह 'निजमन' चेतन राजा का गुप्तचर है, वह मन्त्री मन की सब चोरी जानकर राजा से बतला देता है। यह निजमन राजा के हुजूर में सदैव रहता है—

"मन की चोरी निज मन पावै।
नरपति आगे सब गुदरावै।
नरपति को निज सदा हजूरी।
परकृति मन मुख बांधै धूरी।"[4]

कवि मन को 'परकृति मन' कहकर 'निजमन' से उसे भिन्न व्यक्त करता है। 'निजमन' 'परकृति मन' से कहता है कि मैं तो राजा का आदेश मानूँगा और तेरी चोरी पकड़ूँगा। तेरा भोग राजा के दुःख का कारण है, तेरे ही कारण राजा को बार-बार गर्भ में आना पड़ता

---

१. "यूँ रामभजन कूं रामचरण, आडा कहिये सोय।
चित चितवण मन मनोरथां, ये ऊँचा पर्वत दोय।" अ० वा० पृ० ९०५।
२. वही।
३. वही, पृ० ९८१।
४. वही।

है। 'निजमन' मन के साथ सदैव लगा रहता है और एक क्षण के लिये भी उसका सङ्ग नहीं छोडता—

"मैं तो हुकम राय को करि हूँ।
तेरी चोरी कागद धरि हूँ।
तेरे भोग राय दुख पावै।
बार बार ग्रभ माही आवै।
× × ×
निजमन लागा मन की लार।
संग न छाड़ै एक लगार।"[1]

निजमन आगे मन्त्री मन (प्रकृति मन) से कहता है कि मेरे स्वामी ने मुझे, तुझे चोरी करते पकड़ने के लिये भेजा है। मैं तेरे पाँचो प्यादों को मार डालूँगा और रज तथा तम के दो टुकड़े कर डालूँगा।

"मेरै धणी बिदा कियो मोहि।
चोरी करता पकड़ू तोहि।
तेरे पाँच पयादा मारू।
रज तम दोय टूक करि डारू।"[2]

विषय-वासना मन का भोग है पर निजमन के लिये रोग है—

"विषय वासना मन का भोग।
निजमन इनकूं जाणै रोग।"[3]

मन माया की उत्पत्ति का कारण है जबकि निजमन दृढ वैराग्य को जन्म देता है—

"मन यो माया कू उपजावै।
निजमन दृढ बैराग उपावै।"[4]

निजमन जीव और ब्रह्म को एक करता है और मन की चञ्चलता को निश्चलता में परिवर्तित करता है—

---

१. अ० वा०, पृ० ९८१।
२. वही।
३. वही।
४. वही।

"जीव ब्रह्म निज एको करै।
चंचल मन महचल में धरै।"[1]

'परकृति मन' विश्वास योग्य कदापि नहीं। इसके अनुसार चलने पर अनन्त योनियों में भटकना पड़ता है।[2] ऐसे मन का खण्डन करने का स्वामी रामचरण उपदेश देते हैं। यह शिक्षा उन्हें 'सत्गुरु' से मिली है।

"ऐसै मन कू खण्डो भाई।
यह सोख सतगुरु सू पाई।"[3]

निजमन द्वारा मन खण्डन तो हो जायगा पर मन का शुद्ध रूप? स्वामी जी ने 'विश्राम-बोध' के द्वितीय विश्राम मे आदर्श मन की कल्पना निम्नलिखित पंक्तियो मे की है—

"नीति रीति परतीति जीत मन सोय रे।
रामभजन परताप कामना खोय रे।"[4]

मन को आदर्श रूप प्राप्त करने के लिए उसमे परिवर्त्तन अपेक्षित होता है। यह परिवर्त्तन सत्गुरु के उपदेश द्वारा संभव है—

"रामचरण मन उलटिया, सतगुरु के उपदेश।
विषय विकार सब छाड़ि कै, निर्गुण किया भेस।"[5]

'कवित मन को अंग' मे स्वामी जी मन से भाईचारा स्थापित करते हुए निम्न-लिखित सोख देते हैं—

"रे मन मेरी सीख मान हिरदै धरि भाई।
इन्द्रया केरा भोग भोगियाँ नाहि भलाई।
समझि सैण सुजाण राम रटि अमृत पीजे।
जन्म-मरण मिट जाय ब्रह्म मिल जुगजुग जीजे।
रामचरण ऐसी किया नरतनु लागै ठौर।
अब कै अवसर चूकियो तो मूरख मति को जोर।"[6]

---

१ अ० वा०, पृ० ९८१।
२ "जो परकृति मन के चलै सुभाय—ता अनन्त जूणि मे गोता खाय।"
३. वही पृ० ९८२
४ वही, पृ० ७८६।
५. वही, पृ० ४८।
६. वही, पृ० ११९।

स्वामी रामचरण ने मन की बड़ी विशद चर्चा अपने साहित्य में की है। निष्कर्षत वे मन को अनन्त रूप, मायालिप्त, वायुवेग सदृश तीव्रगति, सागर की लहरों सदृश चञ्चल, स्वेच्छाचारी मन्त्री आदि अनेक रूपों में देखते हैं और रामभजन द्वारा उसे नियन्त्रित करने का उपदेश भी देते हैं। निजमन की कल्पना करके उन्होंने मन को अनुशासित करने की बात कही है। स्थान-स्थान पर उन्होंने मन को मनसा रहित होने का सन्देश भी दिया है। एकाध स्थल पर उन्होंने मन को 'पापी' भी कह डाला है। मन सतगुरु के उपदेश से परिवर्तित भी होता है। इसलिये स्वामी जी ने मन का खण्डित करने की बात कही है। आत्मा व्याधि रहित है, व्याधि रोग मन की उपाधियाँ हैं। जिन्होंने ये उपाधियाँ छोड़ दी है, वे शुद्धस्वरूप है—

"आतम कूं नहीं व्याधि, व्याधि रोग मन मानिये।
जिन ये तजी उपाधि, शुद्ध स्वरूप ते जाणिये।"[1]

काल

स्वामी रामचरण ने काल को 'महाबलवन्त', 'महाप्रचण्ड' आदि विशेषणों से विभूषित किया है। सन्तों ने काल से बचने के लिये सदैव सचेत किया है—'काल महाबलवन्त मुख' है, जो इस संसार में उत्पन्न हुआ, काल के मुख में गया। काल से केवल वे ही बचते हैं जो अविगत रत हरिजन हैं—

"काल महाबलवन्त मुख, उपज्या सबै पड़त।
रामचरण अविगतिरता, उबरै हरि का सत।"[2]

पावक, तेल, दिया-बत्ती के दृष्टान्त द्वारा कवि काल की विनाशक-शक्ति का वर्णन करता है। जैसे पावक, तेल को दिया-बत्ती की शैली द्वारा निगलता है, वैसे ही काल मनुष्य को स्वार्थ-कर्म के माध्यम से निगल लेता है। जैसे-जैसे वार्ता सरकती है, तेल जलता है, वैसे ही कर्म के विकास द्वारा मनुष्य हँसते काल का ग्रास बनता है—

"पावक ग्रासै तेल कू, दीवा बाती ढग।
काल गरासै आव नित, स्वार्थ कर्मा सग।
ज्यूं सरकाव बाति कू, त्यू त्यूं तेल बलै।
रामचरण बधता कर्म, हसि हसि काल गिलै।"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० ९८२।
२. वही, पृ० ३३।
३. वही, पृ० ३२।

काल की चक्की आठों याम चलती रहती है, इस चक्की मे काल देव-मानव सभी को बिना नाम से परिचित हुए पीस डालता है—

"चक्की चालै काल की, निसि दिन आठू जाम।
सुर नर सबही पीसिया, रामचरण बिन नाम।"[1]

इस 'काल महाबली' से ब्रह्मा भी डरते हैं तो फिर मानव की क्या बिसात है?

"ब्रह्मा डरपै काल सूं, तो नर की कितियक आव।
रामचरण भज राम कूं, ज्यूं जम का लगै न दाव।"[2]

केवल एक 'अकाल शब्द' ही भयरहित है, जिसे यह शब्द प्राप्त हो जाता है वह भय-रहित हो जाता है। किन्तु यह मिलता किसे है? उसे ही मिलता है जो भ्रम-जन्जाल से मुक्त हो जाता है। भ्रम-जन्जाल से मुक्त होने पर ही काल का भय मिट जाता है—

"काल तणो भै मिट गया, छूटा भर्म जंजाल।
रामचरण निरभै भया, पाया शब्द अकाल।"[3]

यह 'महाप्रचण्ड काल' किसी को नही छोड़ता, यह काल ही मृत्यु है। राजा, राणा, देवता सभी काल के वश मे है। हजार या दस हजार वर्ष भी यदि यह तन रहता है तो भी उसे काल से छुटकारा नही। देह धारण करने वाले अवतार, सुरासुर सभी मृत्यु को प्राप्त होते है—

"काल महापरचण्ड न छोड़ै कोय रे।
राजा राणा देव सकल बस होय रे।
उबरै दास निरास राम की ओट रे।
परिहाँ रामचरण तजि ओट खाय सब चोट रे।
सहस वर्ष दस सहस लखूं भी तन रहै।
देह धारि अवतार सुर असुर ना रहै।
मृत्यु लोक कै माहि मृत्यु सबसूं बली।
परिहा रामचरण भजि राम नरां की क्या चली।"[4]

---

१. अ० बा०, पृ० ३३।
२. वही।
३. वही, पृ० ३२।
४. वही, पृ० ८२।

'सवैया काल को अंग' में स्वामी जी काल को महाविनाशक के रूप में देखते हैं। काल हाथ में कुदाल लेकर संसार के विभिन्न गढ़ों को गिराता फिर रहा है। संसारी जनों का आखेट वैसे ही करता है, जैसे चूहे का आखेट बिल्ली करती है;—

"काल कुदाल लियां कर में निशिवासर ही गढ ढावत हे।
दोइ स्वास उस्वास पड़ै दरवा बसि ताहि में क्यू सुख पावत है।
छिन माहि गिराय करै चकचूरण मूसै मजारी ज्यू ध्यावत हे।
कहै रामचरण्ण मिथ्या फिट् जीवण राम सगो बिसरावत हे।"[1]

काल ने संसार पर 'विधि निषेध' का जाल फैला दिया है जिसमें नर-नारी होड़ लगाकर फँस रहे हैं।[2] यह काल अहेरी, है, महाबलवन्त है, सभी जन्तुओं को मारकर पछाड़ देता है। "काल महाबलवन्त जन्तु सब मारि पछाड़ै।"[3] इसी सन्दर्भ में कवि काल को ममत्व का जाल पसारते देखता है। यह जाल सुर, नर, असुर एवं अनेक जीवों पर वह डाल देता है। यह बाल-वृद्ध-तरुण सभी का खोज-खोजकर भक्षण करता है, छिपने में कोई बच नहीं पाता—

"काल बडो बलवन्त ममत की जाल पसारी।
सुर नर आसुर ओर जीव सबहिन पर डारी।
कहा वृद्ध अरु तरुण बाल को बाड न आवै।
हेरि हेरि कै खाय छिप्यां कहु बचन न पावै।"[4]

इसी आशय की पंक्तियाँ 'समता निवास' के नवम प्रकरण में भी मिलती है—

"काल पसारी सृष्टि पर, मोह ममत की जाल।
जासै उलझ्या जीव बुधि, बिसर रामरिछपाल।"[5]

'सुखविलास' में 'काल' शीर्षक के अन्तर्गत कवि संसारी जीव को 'मेरी-मेरी' करते देखता है, तभी काल आ पहुँचता है और उसे पकड़ ले जाता है।

---

१ अ० वा०, पृ० ९१।
२. "विधि निषेध की जाल जगत पर काल पसारी।
करि करि होडाहोड माहि उलझे नर-नारी।"—वही, पृ० ११७।
३ वही।
४ वही, पृ० ११८।
५ वही, पृ० ९२३।

"मेरी मेरी करत ही आय पहूचै काल।
प्राण पकड ले जावता कोइ न होय रिछपाल।
कोई न होय रिछपाल खडा देखै सब रोवै।
क्या आपणा क्या और किसी सू जोर न होवै।
रामचरण सत राम है ओर निकामी जाल।
मेरी मेरी करत ही, आय पहूँचै काल।"[1]

इस ब्रह्माण्ड के सभी प्राणी काल की कैद मे है। अनेक सूक्ष्म एव स्थूल तनधारियो को काल नित्य मारता है। फिर भी अन्धा मानव भौतिक कर्मो से दूर न होकर उसी के बन्धन मे पड जाता है—

"काल सू कूंण ब्रहमण्ड मे ऊबर जीव जेता सबै जेर किया।
सुखिम अरु थूल तन धार केता कहूं निला मारै अरु मार लीया।
तोहु नर अंध कोउ धध तर्के नही बंध मे परत बेकाम कूरा।
देख ससार का ह्वाल तोसू कहू कोई घर रोज कोइ बजै तूरा।"[2]

महाप्रचण्ड काल के समक्ष ससार के सभी रिश्ते-नाते महत्वहीन हो जाते है। काल पिता के समक्ष पुत्र को धर दबाता है पर पिता का कोई जोर नही चलता, शिष्य को गुरु के सामने ही पकड लेता है पर गुरु बेबस देखता रहता है, खसम के सामने ही जोरू को खीच ले जाता है, स्वामी देखता रहता है और चाकर को पकड कर भाग जाता है। सुर, नर, असुर सभी उसका स्वर सुनकर काँप जाते है। केवल राम मे लीन जन होनहार के बल से अभय होकर रहते है—

"काल दबावै पूत पिता को जोर न कोई।
पकड़ै आय मुरीद पीर को नही बसाई।
जोरू को ले जाय खसम को जोर न लागै।
ठाकर देखत रहै पकड़ चाकर कूं भागै।
सुर नर आसुर हाकसूं सुणत अगाऊ थरहरै।
रामरता जन राम का होलव के बल नां डरै।"[3]

काल की गर्जना से तीनो लोक धडक उठता है।[4] उसके कार्य-कलापो के समक्ष ब्रह्मा भी अधीर हो उठते है, फिर उनकी सृष्टि का क्या ठिकाना जिसके वे मालिक है—

१ अ० बा०, पृ० ४१७।
२ वही, पृ० ४१७।
३ वही, पृ० ४१८।
४. "काल गजारै गरज कै, धडकै तीनूं लोक"—वही।

"काल गिलारैं आय कैं तब ब्रह्मा घरैं न धीर।
तो ब्रह्म सृष्टि की कहाचली जिनको ब्रह्मा मीर।"[1]

जैसे तीतर को बाज अचानक आकर दबा लेता है, वैसे ही काल अचानक मनुष्य को दबाकर पकड़ लेता है और वह अवश कुछ नहीं कर पाता। सृष्टि के सभी साज पड़े रह जाते हैं।[2] ग्रन्थ 'समता निवास' में भी कवि इसी आशय से पूर्ण पंक्तियाँ लिखता है—

"काल पकड़ ले जायगा ज्यूं तीतर कूं बाज।
रामचरण माया विभव पड्या रहे सब साज।"[3]

स्वामी रामचरण ने सृष्टि एवं सृष्टिकर्त्ता दोनों को काल की प्रचण्डता के समक्ष नत, अवश एवं निर्बल पाया है। इस महाबली के समक्ष किसी का जोर नहीं चल पाता। यह समस्त ब्रह्माण्ड, काल का भोजन है। इस काल से वही निर्भय रहता है जो 'अकाल शब्द' पा जाता है। इसीलिए स्वामी जी पल-पल ममत्वहीन होकर राम का स्मरण करने का उपदेश देते हैं, इस महाप्रचण्ड योद्धा से बचने का यही एकमेव उपाय है क्योंकि इसमें धन का व्यय, औषधोपचार या तलवार की धार कोई नहीं बचा सकते। 'समता निवास' नवम प्रकरण की निम्नलिखित पंक्तियाँ उपर्युक्त आशय की घोषणा करती हैं—

"काल महा परचण्ड सू बचै न कोई विचार।
धन खरचो भेषज करो भल पकडो तरवार।
भल पकडो तरवार जोध सू जोर न कोई।
धड़कै तीनू लोक डरैं ब्रह्मादिक सोई।
तातैं ममत न बाँधिये पलपल राम सभार।
काल महा परचण्ड सू बचै न कोई विचार।"[4]

मोक्ष

मोक्ष सामान्यतया मुक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। डॉ० वासुदेव शर्मा लिखते हैं—"मुक्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित धारणाएँ भारतीय समाज के मध्यकाल में प्रचलित थीं—

(१) जगत्पाश, आवागमन, जगत्सन्ताप और क्लेश का उच्छेद अथवा पूर्णनाश ही मुक्ति है, अत्यन्त क्लेशाभाव और क्लेशोच्छेद-स्वरूप।

---

१ आ० वा०, पृ० ८१८।
२ 'काल दबावै आय कै, ज्यू तीतर कू बाज।
तुरत पकड़ि ले जायगा, पड्या रहै सब साज।"—वही, पृ० ४१७।
३ वही ९२३।
४. वही।

(२) मुक्ति भावात्मक, आनन्दस्वरूप एवं अमृतोपम ब्रह्मैकता है।

(३) मुक्ति अमरता है और जरा-जन्म के भय और दुश्चिन्ताओं से निवृत्ति। अतः जिसमें जीव अहंभाव से रहित होकर सब प्रकार के सुख-दुःख, आशा-निराशा, हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वों से मुक्त हो जाता है, उसे मोक्ष कहते हैं।"[1]

स्वामी रामचरण ने 'जीवतमृतग को अंग' एवं 'मर्जीवण को अंग' में जीवन-मुक्ति पर विचार किया है। डॉक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी लिखते हैं कि—"इस जीवन में दुःखों से मुक्ति पा जाने वाला मनुष्य जीवन-मुक्त कहलाता है। मुक्त पुरुष संसार के प्रपञ्चों से मुक्त रहता है।"[2] स्वामी रामचरण ने जीवन-मुक्ति के सन्दर्भ में जनक को आदर्श माना है। ग्रन्थ 'समता निवास' के प्रथम प्रकरण में वे लिखते हैं—

"घर बन जाण्या एक रस जनक नरप गह ज्ञान।
हर्ष शोक गृहराज सग सो बर्त्यों नहीं अज्ञान।
सो बर्त्यो नहीं अज्ञान ब्रह्म नहचै करि ऐसैं।
अन्तर आशै अर्क बास कमला जल जैसैं।
रामचरण ले जीविका जग सुख लिपै न आन।
घर बन जाण्या एक रस जनक नरप गह ज्ञान।"[3]

वस्तुतः इस भौतिक जगत् में रहते हुए भी भौतिकता में अलिप्त रहना जीवन मुक्त का लक्षण है। अहंकार एवं ममता के बन्धन से मुक्त, शरीर सुख की साधना से विरत, शोकादि से परे, शत्रु-मित्र के प्रति समभाव रखना, जल में कमल सदृश संसार में रहना ही स्वामी जी के अनुसार मुक्त जीवन का आदर्श है।

"अहं ममत बाधै नहीं अरु तन सुख साधै नाहि।
प्रसाद पाय अलिप्त रहे ज्यूं कमला जल माहि।
ज्यूं कमला जल माहि शोक आसा सैं न्यारा।
शत्रु मित्र सम गिणै ज्ञान लछ लिया ज धारा।
राम कहै भ्रमना दहै यूं गृहभक्ति सधि पांहि।'
अहं ममत बाधै नहीं अरु तन सुख साधै नाहि।"[4]

---

१ डॉ० वासुदेव शर्मा : संत कवि दादू और उनका पन्थ, पृ० १६८।
२. डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी : रामसनेही सम्प्रदाय (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, गोरखपुर विश्वविद्यालय ग्रन्थालय)।
३. अ० वा०, पृ० ८६१।
४. वही।

जीवन्मुक्त के विषय में लिखते हुए वे उनके लक्षणों की विवेचना निम्नलिखित पंक्तियों में करते हैं—

"राम भजै तजि कामना, करि मैली चितवन हाणि।
रामचरण गतबासना, सो जीवण मुक्ता जाणि।"[1]

स्वामी जी के अनुसार मोक्ष का साधन 'समता भजन' है। यह 'समता' रामभजन ही है जो आस्तिकता का मूल है, जो सभी सुखों का मूल है।

"रामभजन समता जहाँ, सब आसति को मूल।
जों कमी कदे बर्तै नहीं, नित आनद गह तूल।
समता सुख को मूल है, अरु तृष्णा तन कू दाह।
तजि तृष्णा समता गही, ज्या लियो मिनख तन लाह।"[2]

गुरु-कृपा से समता भजन के सहारे जीव शीव-पद को पा लेता है—

"रामचरण गुरु महर सू, शिख परसै पद शीव।
गुरु शिख एक उपासना, समता भजन सदीव।"[3]

ग्रन्थ 'अणभो विलास' के बीसवे प्रकरण में 'मुक्त जनां की पिछांण' में (मुक्त जनों की पहचान) शीर्षक के अन्तर्गत कवि लिखता है—

"राम भजन में लीन, बीता आपो ऊर्मी।
भई बासना क्षीन, मुक्ताजन समता लिया।"[4]

इसी ग्रन्थ के नवम प्रकरण में 'जीवत मोख' जन के विषय में कवि लिखता है कि 'जीवनमोख' जन जाप जपकर उत्तम ज्ञान अर्जित करता है। उसके लिए ज्ञान सदा तृप्ति है, सन्तोष ही सारी बात है। जीवन्मुक्त सदा राम के चरणों में रत रहता है—

"जपै जाप उत्तम सदा, कदा न उपजै आन।
रामचरण, चरणा रता, पायौ उत्तम ज्ञान।

---

१ अ० वा०, पृ० ८६१।
२. वही, पृ० ८६०।
३ वही।
४. वही, पृ० ३१२।

ज्ञान सदा तिरपत्ति है, सारी बात सतोख।
रामचरण रत राम सू, जो जन जीवन मोख।"[1]

'जीवनमृतग को अग' मे स्वामी रामचरण लिखते है कि जीवनमुक्त पाखण्ड एव अभिमान को छोडकर रामरत होता है—

"जीवत मृतग होय रहै, तजि पाखण्ड अभिमान।
रामचरण मन राम रत, सदा रहै गलतान।"[2]

जीवनमुक्त का हाथ परमात्मा पकडता है। जीवनमुक्त रात दिन भगवान के सम्पर्क मे बना रहता है—

"ऐसा होय हरि कूं भजै, तब हरि पकड़ै हाथ।
निसिबासर संग ही रहै, जन को तजै न साथ।"[3]

'सजीवण को अग' मे कवि ने बतलाया है कि देह के गुणो का विस्मरण ही 'सजीवण मूल' है। इसी सप्राणता मे कवि का विश्वास है—

"रामचरण सतगुरु मिल्या, दिया सजीवण मूल।
सिख साध्या विश्वास करि, गया देहगुण भूल।"[4]

यह सप्राणता या अमरता जिसे कवि सजीवण या सरजीव कहता है, रामभजन से प्राप्त होती है—

"गुण जीतै रामैं भजै, सोही सजीवण जान।
गुण पोखै रामैं तजै, सो सब मृतक समान।"[5]

तीनो लोक मे केवल राम का नाम 'सजीवण' (अमर) है, कवि की दृष्टि मे 'सजीवण' होने के लिये निशिदिन नामोच्चारण अपेक्षित है—

"रामचरण तिहु लोक मे, एक सजीवण नाम।
हुवा सजीवण चाहिए, तो निशि दिन कहिए राम।"[6]

---

१ अ० वा०, पृ० २५२।
२ वही, पृ० २८।
३ वही।
४ वही।
५ वही, पृ० २९।
६ वही।

बिना रामभजन के जीव चितेरे की पुतली है, किन्तु रामभजन से वही जीव 'सजीवण सीव' हो जाता है।

"लिखा चितेरे पूतली, यू राम भजन बिन जीव।
रामचरण रामै भजै, सोही सजीवण सीव।"[1]

'सजीवण ब्रह्म' का ध्यानी सजीवण जन्म-मरण, आवागमन से मुक्ति पा जाता है—

"भया सजीवण ना मरै, ब्रह्म सजीवण ध्याय।
रामचरण जामण-मरण, वे नहिं आवै जाय।"[2]

स्वामी जी के अनुसार संसार में जन्म लेने वाला मनुष्य काल के वश में होकर मृत्यु को वरण करता है, किन्तु जो 'अकाल शब्द' से मिल जाते हैं वे 'सजीवण' होते हैं—

"जो उपज्या सो काल बसि, सबही मृत्तक जोय।
मिलै अकाली शब्द सू, सोही सजीवण होय।"[3]

काम-क्रोध पर विजय, लोभ-मोह की पराजय, मैं-तैं का दाह, स्वामी जी के अनुसार सरजीव विचार (सप्राण या अमर विचार) है—

"काम क्रोध कूं जीतिया, लोभ मोह गया हार।
रामचरण मैं तैं जली, सो सरजीव विचार।"[4]

भौतिक सुखो के त्याग, रामभजन के प्रति स्नेह भाव से सजीवण, ब्रह्म में मिल जाता है और इस प्रकार मोक्ष की प्राप्ति उसे हो जाती है—

"सकल स्वाद तन का तजै, रामभजन सू नेह।
मिलै सजीवण ब्रह्म सूं, तो फिर नहीं धारै देह।"[5]

स्वामी रामचरण के साहित्य में मोक्ष की कल्पना जीवन-मुक्ति मात्र नही है, वरन् जीवनमुक्ति या सरजीवना (सप्राणता) इसलिए है कि ब्रह्म से एकता स्थापित हो सके और

---

१ अ० वा०, पृ० २९।
२ वही।
३. वही।
४ वही।
५ वही।

जीव को भौतिक शरीर से छुटकारा मिल जाय। इसी मोक्ष को स्वामी जी अपने ग्रन्थ 'राम रसायण वोध' के पञ्चम प्रकरण मे 'अगमपद' नाम से अभिहित करते है। यह 'अगमपद' 'अहम्' की समाप्ति कर ब्रह्म मे मिलकर ब्रह्मरूप हो जाना है। इस 'अगमपद' की प्राप्ति मे जीव जन्म-मरण और जरा से मुक्त हो जाता है—

"आपा मेट आप मैं मिलिया, आप रूप होइ रहिया।
जनमैं मरै न जरा सतावे, इसा अगम पद लहिया।
वा पद की तारीफ न आवै, करिये कहा बखाना।
गुणातीत पचरग न वाकै, अंग सग नहि जाना।
अंग न संग भंग नहि भिनता, सर्वंग पूरण स्वामी।
निर्विकार निर्लेप निरंजन, परिपूरण धण नामी।
छोट न मोट न छाना परगट, घटघट अघट समाया।
अन्दर बाहर एक समाना, जहां न व्यापे माया।
माया पारब्रह्म अविनाशी, सव सुख रासी राया।
रमता राम धाम घर न्यारा, भजन करे कर पाया।
सो अब लीन सदाता माही, कबहु न धरहै काया।
रामचरण बलिहारी गुरु की, जिन ये भेद बताया।
पाया भेद खेद सब भागी, जागी अणभै ऐसी।
मैं भ्रम गया रह्या था सोही, कहिये सो गति कैसी।
अकथ कहाणी सतगुरु वाखी, कीन्हीं महर निधाना।
रामचरण नित चरणा शरणैं, पाया अध्यातम ज्ञाना।"[१]

स्वामी रामचरण द्वारा वर्णित 'अगमपद' की कल्पना 'परब्रह्मपद' से अभिन्न है। उनके सम्पूर्ण अध्यात्मज्ञान का सार इस पद की प्राप्ति ही है। इस 'अगमपद' या 'परब्रह्मपद' मे लीन हो जाना ही मोक्ष है। मन-वाणी से परे इस 'परब्रह्मपद' या मोक्ष तक पहुँचने का माध्यम गुरु है। स्वामी रामचरण की निम्नलिखित पक्तियाँ उक्त कथन की पुष्टि करती हैं—

"पहुँचाये पर ब्रह्म पद, मन वाणी के पार।
गुरु मिलियां सूं ऊपजै, ज्ञान अध्यातमसार।"[२]

---

१ अ० वा०, पृ० ९७३।
२ वही, पृ० ९७४।

साधना-पक्ष

गुरु

भारतीय साधना-जगत् में गुरु की महत्ता असन्दिग्ध है। सगुण-निर्गुण, सभी उपासना-पद्धतियों में गुरु की अनिवार्यता देखी जाती है। सन्त-साहित्य में गुरु, साधक का पथ-निर्देशक या प्रदर्शक माना गया है। साधना जगत् में उसकी अनिवार्यता पर टिप्पणी करते हुए डॉ० बडथ्वाल लिखते हैं कि—"साधक चाहे जितने भी साधुओं का सत्संग करे उसे अपनी आध्यात्मिक शक्ति में उत्तेजना लाने के लिए उनके साथ केवल कभी-कभी संसर्ग में आने से ही काम नहीं चल सकता। उन्हें एक ऐसे डायनमो की आवश्यकता है जो उन्हें अनवरत रूप से अभीष्ट विद्युत् शक्ति की धारा पहुँचाता रहे। उसे चाहिए कि किसी एक साधु-विशेष के साथ सदा के लिए संबंध स्थापित कर ले जिससे वह अपनी आध्यात्मिक साधना में बाधा उपस्थित होने की कभी आशंका आने पर पथ-प्रदर्शन की सहायता प्राप्त कर सके।"[1]

उपर्युक्त कथन इस तथ्य का द्योतक है कि आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में गुरु की आवश्यकता अपरिहार्य है। साधनारत साधक को प्रतिपल उत्साह ग्रहण करने के लिये गुरु एक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण उत्साह-केन्द्र है। हिन्दू धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों में भी गुरु का महत्त्व आँका गया है। "बौद्ध सम्प्रदाय में बुद्ध, जैनियों में जिन, इस्लाम के पीर-पैगम्बर और ईसाई धर्म के फादर पाल वही महत्त्व रखते हैं जो महत्त्व हिन्दू धर्म के अन्तर्गत गुरु को प्राप्त है।"[2] डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल के इस कथन के प्रति पूर्ण आस्था व्यक्त करते हुए निवेदन है कि भारतीय साधना-प्रणाली में गुरु, पीर-पैगम्बर और पाल से बहुत आगे है। भारतीय 'गुरु' कभी ईश्वर के समक्ष और कभी उससे भी अधिक महिमामय बतलाये गये हैं, जैसा कि संत कबीर ने कहा है—'हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर।'

डॉ० शुक्ल ने अपने शोध-प्रबन्ध 'संत-साहित्य' में 'गुरु' शब्द की व्याख्या में अद्वैतार्को-पनिषद् की पंक्तियाँ उद्धृत करके बतलाया है कि, "**गु शब्द का अर्थ है अंधकार और रु शब्द का अर्थ है निरोधक। जो अंधकार का विनाश करता है वही वास्तव में गुरु है।**"[3]

गु शब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः।
अंधकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते। —अद्वैतार्कोपनिषद्[4]

---

१ डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, नवीन संस्करण, पृ० २३६-३७।
२ डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल सन्त साहित्य, पृ० १७६।
३ वही, पृ० १७८।
४ वही, पृ० १७८ का फुटनोट।

हिन्दी-सन्त-साहित्य मे गुरु की विशद चर्चा हुई है। विभिन्न साधना-पक्षो मे गुरु की आवश्यकता समानरूप से आँकी गयी है। चाहे योग-साधना हो या भक्ति-निरूपण गुरु सभी स्तरो पर वर्तमान दीखता है। स्वामी रामचरण ने 'गुरुदेव को अग' एव विभिन्न ग्रन्थो मे गुरु की चर्चा की है। बहुत विस्तारपूर्वक वर्णन करने पर भी वे गुरु के गुणो का पार पाने मे समर्थ नही है। उसके अनन्त उपकारो के सामने वे नत-मस्तक है--

"कहा वरणू बिसतार कर, सतगुरु गुणा न पार।
रामचरण दे राम धन, अनन्त किया उपगार।"[१]

सासारिक वासना विष है जो रोम-रोम मे परिव्याप्त है। स्वामी जी की दृष्टि मे गुरु ही वह गारडू (विष-वैद्य) है जो 'रामसुधारस' के द्वारा 'निरविष' कर सकता है—

"रोम रोम विष से भर्‌या, निरविष कैसें होय।
राम सुधा रस पायके, सतगुरू करि हे सोय।
ऐसी कोई न कर सकै, सो सतगुरु सैं होय।
रामचरण गुरु गारडू, सब विष डारै धोय।"[२]

स्वामी जी सत्गुरु को इन्द्र के समान बतलाते है जो बिना भेदभाव के ज्ञान की वर्षा करता है, अब भक्तहृदय की भूमि के अनुरूप ही उसमे बेलि का विकास होगा—

"सतगुरु बरस्यो इन्द्र ज्यूं, दुबध्या रखी न कोय।
जैसी साखा नीपजै, तिसी भूमिका होय।"[३]

खाली खेत सदृश अचेत शिष्य के हृदय पर गुरु ज्ञान की वर्षा प्रभावहीन ही सिद्ध होगी—

"घमंड घमंड घन बरसिया, ऋतु बिन खाली खेत।
यू रामचरण गुरु क्या करै, जो सिख होय अचेत।"[४]

अत. शिष्य को उस वर्षा का जल ग्रहण करने के लिये जिज्ञासु होना आवश्यक है, तभी सत्गुरु-मेघ की ज्ञान-वर्षा 'निरफल' नही होगी—

---

१. अ० वा०, पृ० ३।
२ वही, पृ० ४।
३. वही।
४. वही।

"सतगुरु बरसै मेघ ज्यू, शिख जिज्ञासी होय।
रामचरण तब नीपजै, निरफल जाय न कोय।"[1]

भक्ति की खेती जिज्ञासु के शुद्ध हृदय रूपी खेत में नाम का बीज डालने से होती है। इस बीज से ब्रह्मज्ञान का फल तभी उत्पन्न होगा जब गुरु की कृपा का जल पड़ेगा—

"रामचरण करसण भक्ति, सुद्ध हिरदो सू खेत।
नाम बीज गुरु महर जल, ब्रह्मज्ञान फल देत।"[2]

सतगुरु आलोकमय है। वह मन को माया से विरत कर ब्रह्ममय कर देता है। उसके बिना ज्ञान का आलोक कौन बिखेरे ?—

"रामचरण सतगुरु बिना, कूण करै परकास।
माया सू मन काढि कै, किया ब्रह्म में बास।"[3]

वह 'शीव' (ब्रह्म) सर्वव्यापी है, प्रत्येक घट में उसका वास है, पर सतगुरु के बिना जीव उसका रहस्य जानने में असमर्थ है—

"जहाँ तहाँ भरपूर है, घट घट व्यापक शीव।
रामचरण सतगुरु बिना, भेद न पावै जीव।"[4]

गुरु की सामर्थ्य का वर्णन करते हुए स्वामी जी 'गुरु समर्थाई को अंग' में लिखते हैं कि सतगुरु बड़ा सामर्थ्यवान् बाहुबली है, वह जीव का संशय दूरकर अपने चरण कमल की छाया में स्थान देता है। वह दीर्घ-बुद्धि एवं सागर सदृश गम्भीर होता है—

"सतगुरु समर्थ बाहोबली, ले काढ़ै गह बाह।
सासा सबै निवारि कै, राखै चरण कमल की छाह।
गुरु समर्थ दीरघबुधी, सायर जिसा गंभीर।
शिख सींगीमछ होय पिवै, हरि सुख मीठो सीर।"[5]

भवजल में पड़े जीव को रामनाम की अपनी नौका पर चढ़ाकर सतगुरुरूपी केवट ही पार करता है—

---

१ अ० वा०, पृ० ४।
२ वही।
३ वही।
४ वही, पृ० ५।
५ वही।

"जीव पर्यो भवकूप, अपने बल नहिं पार है।
सतगुरु केवट रूप, रामनाम निज नाव है।"[१]

'कवित गुरुदेव को अंग' में स्वामी जी 'सतगुरु ब्रह्म स्वरूप नित्य चेतन परकासी'[२] कहकर गुरु को ब्रह्म स्वरूप कहते हैं, किन्तु वहीं जैसे सम्हलकर गुरु एवं ब्रह्म की तुलना करने लगते हैं—

"सब गिरा गिरैं सुम्मेरु तास पर तरु के तरही।
मलया गिरिगुण येह सकल मलयागिरि करही।
यूं सृष्टि ब्रह्म आधार सैं ब्रह्म न होई।
ब्रह्म प्रकाशी संत संत करि लेवैं सोई।
हरि गुरु एता आंतरा हरि रच्यो गुणा विस्तार।
रामचरण गुरु पलटि गुण ले पहुंचावै पार।"[३]

यही तो हरि और गुरु का अन्तर है। ब्रह्म सुमेरु है। सुमेरु पर्वतराज है, उस पर भी तरुराजि सजती है, पर मलयागिरि तरुओं को अपनी गन्ध से भर देता है। सृष्टि का आधार ब्रह्म है किन्तु सृष्टि ब्रह्म नहीं हो सकती, पर ब्रह्म के आलोक से आलोकित सन्त अन्य जनों को सन्त बना देता है। हरि, गुणों का विधाता एवं उसका विस्तारक है पर गुरु शिष्य को गुणातीत करके पार पहुँचा देता है। स्वामी रामचरण इस विवेचन के सहारे ब्रह्म के समक्ष गुरु की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं।

सतगुरु जब शिष्य पर प्रसन्न होता है तब शिष्य के हृदय में भक्ति और वैराग्य का उदय होता है और जब ज्ञान के साथ नामस्मरण में रत होता है तो पूर्ण भाग्योदय हो जाता है—

"सतगुरु रीझै शिष्य पर तब उदय भक्ति बैराग।
ज्ञान सहित सुमरण करै तो प्रगटै पूरण भाग।"[४]

स्वामी जी की दृष्टि में गुरु के समान परमार्थी अन्य नहीं। अन्य सभी स्वार्थी होते है, पर 'दातार' सतगुरु की दृष्टि सदैव एकरस होती है—

"सतगुरु सम परमार्थी और न दीसै कोय।
दूजा सब स्वारथ भर्या चाहि लगावै सोय।

---

१ अ० वा०, पृ० ५।
२ वही, पृ० १०५।
३ वही।
४ वही, पृ० १३८।

चाहि लगावै सोय दोय दिल मैं दर्शावै।
सध्याँ रीझ सन्मान सध्याँ बिन खीज धकावै।
रामचरण दातार की दृष्टि एकरस होय।
सतगुरु सम परमार्थी और न दीसै कोय।"[1]

'गुरु-महिमा' नाम के अपने लघु ग्रन्थ में स्वामी रामचरण कहते हैं कि गुरुसेवा के साथ ही 'निरजन देव' की प्राप्ति होती है, इसलिए पहले गुरु की सेवा करनी चाहिए। गुरु की कृपा से ही बुद्धि स्थिर होती है और 'तृष्णा-ताप' से मुक्ति मिलती है—

"प्रथम कीजै गुरु की सेव।
ता सग लहै निरजन देव।
गुरु किरपा बुधि निश्चल भई।
तृष्णा ताप सकल बुझि गई।"[2]

ज्ञान, भक्ति और मोक्ष तीनों का दाता गुरु ही होता है। बिना गुरु के 'नुगरा' को नरक की प्राप्ति होती है—

"गुरु बिन ज्ञान कहो किन पाया।
बैन सैन करि गुरु समझाया।
सतगुरु भक्ति मुक्ति का दाता।
गुरु बिन नुगरा दोजग जाता।"[3]

स्वामी जी गुरु को गोविन्द से अधिक घोषित करते हैं। गुरु के मिलने पर ही गोविन्द की प्राप्ति होती है—

"गुरु गोविन्द सू अधिका होई।
या सुनि रीस करो मति कोई।
प्रथम गुरु सू भाव बधावै।
गुरु मिलिया गोविन्द कूं पावै।"[4]

अथवा 'विश्राम बोध' की यह पंक्ति—

"गुरु गोविन्द सूं अधिक है देवे उत्तम बोध।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० १३९।
२. वही, पृ० २०१।
३. वही।
४. वही।
५. वही, पृ० ७७३।

'उजास' कर्ता गुरु

ग्रन्थ 'शब्द प्रकाश' में कवि तारक मन्त्र 'राम नाम' का उपदेश गुरु से ही प्राप्त होने की बात कहता है। शिष्य, गुरु प्रदत्त रामनाम को विश्वासपूर्वक हृदय में धारण कर जब निशिदिन स्मरण करता है तो निश्चय ही उसके हृदय में 'आलोक' होता है—

"रामनाम तारक मत्र है, सुमिरै शकर शेष।
रामचरण साचा गुरु, देवै यो उपदेश।
सतगुरु बक्से रामनाम, शिख धारै विश्वास।
रामचरण निशिदिन रटै, तो नहचै होय प्रकाश।"[1]

यह 'प्रकाश' ही ग्रन्थ 'अणभौ विलास' में 'निधान की उजास' नाम से कवि द्वारा उजागर किया गया है। इस 'उजास' (आलोक) की उपलब्धि गुरुज्ञान से होती है जिससे हृदय की आँखों को प्रकाश मिलता है। यह 'उजास' सूर्य और चन्द्र भी हृदय को नहीं दे सकते—

"यह उजास गुरु ज्ञान सैं, उरलोचन परकास।
रामचरण रवि शशि उदय, हीए न होत उजास।"[2]

यहाँ कवि का दावा है कि सत्गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान-ज्योति से ही हृदय प्रकाशित हो सकता है, हजारों सूर्य-चन्द्र का विकास हृदय को आलोकित नहीं कर सकते। गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान के आलोक से हृदय में छाया भ्रमान्धकार दूर होता है और साधक संसार को स्वप्न समझकर जैसे सोते से जाग उठता है—

"सहँस सूर शशि के उदय हीये न होय उजास।
सतगुरु ज्ञान उद्योत सैं हिर्दय होत प्रकास।
हिर्दय होत प्रकास भर्म अंधियारो भागै।
स्वप्नावत ससार जाण सोवत सो जागै।
परख भजै परमात्मा रखै न मैलो आस।
सहँस सूर शशि के उदय हीये न होय उजास।"[3]

गुरु दातार

स्वामी रामचरण गुरु को 'समर्थ दातार' कहते हैं। 'अणभै वाणी' में वे स्थान-स्थान पर उसके सामर्थ्यशील दानीरूप की चर्चा करते जैसे अघाते नहीं। स्वेच्छया जलदान करने

१ अ० वा०, पृ० २०८।
२. वही, पृ० २११।
३. वही।

वाले मेघ के सदृश सत्गुरु ज्ञान का दान करता है। बादल जलदान का प्रतिदान जैसे नहीं माँगता, वैसे ही गुरु भी ज्ञान का प्रतिदान नहीं माँगता। ज्ञान-कथन का भाड़ा माँगने वाले 'दातापद' के योग्य कदापि नहीं। ज्ञान के याचक (जिज्ञासु) को गुरु नकारता नहीं—

"घनहर कछु माँगै नही पर आप इच्छा अप देह।
यू सतगुरु दाता ज्ञान का भाखि न भाड़ा लेह।
भाखि न भाड़ा लेह सोही दाता पद माही।
कोई गाहिक मागै आय तासकू नाटै नाही।"[1]

गुरु, ज्ञानदाता तो है ही, 'राम' दाता भी वही है उसी मेघ की तरह। "वर्षा दाता मेघ है यू गुरु दाता दे राम।"[2] 'सुख विलास' के प्रथम प्रकरण में भी कवि गुरु के 'दातार' रूप का निरूपण करता है। उसके अनुसार संसार में गुरु के समान दूसरा दाता कोई नहीं, वह 'रामशब्द' से पुरस्कृत करता है पर बदले में कुछ भी नहीं चाहता—

"सतगुरु सम दातार ओर नही जगतर माही।
राम शब्द बक्षीस करै कछु बछै नाही।"[3]

ग्रन्थ 'विश्राम बोध' के प्रथम विश्राम में भी स्वामी रामचरण 'दातार गुरु' की अनन्यता पर मुग्ध है। गुरु ने 'समता धन' का दान कर शिष्य के लिये कोई कमी नहीं छोड़ी—

"रामचरण सतगुरु जिसा और न दाता होय।
ज्या समता धन बखशीस करि कमी न राखी कोय।"[4]

इसी प्रकार 'समता निवास' ग्रन्थ में दातार गुरु कवि को निर्वेद, सत्य और समता के साथ 'नाम अगाध' का पुरस्कार देकर दयापूर्वक उसे मनुष्य से साधु बना देता है—

"निर्वेद साच समता सहित बकस्या नाम अगाध।
सतगुर दया विचार कै किया मिनख सै साध।"[5]

---

१ अ० वा०, पृ० २१३।
२ वही।
३. वही, पृ० ३२५।
४. वही, पृ० ७७३।
५. वही, पृ० ८५९।

राम-गुरु की एकता

गुरु के उपकारों से विनत, उसके ज्ञान उजास में आलोकित एवं उसके निस्पृह दातार रूप से प्रभावित जिज्ञासु (शिष्य) राम एवं गुरु की अभिन्नता का विश्वासी बन जाता है। कवि, राम और गुरु की अभेद स्थिति का चित्रण ग्रन्थ 'अमृत उपदेश' के पहले प्रकाश में इस प्रकार करता है—

"राम मई गुरु जाणिये गुरु मइ जाणो राम।
गुरु मूरति को ध्यान उर रसना उचरैं राम।
रसना उचरैं राम भरमना उर मैं नाही।
गुरु गोविन्द तन एक देखि व्यापक सब माही।
रामचरण कहा जाईये घटबध को न ठाम।
राम मई गुरु जाणिये गुरु मइ जांणो राम।"[1]

'विश्वास बोध' के प्रथम प्रकरण की यह पंक्ति भी राम-गुरु की एकरूपता का निरूपण करती है—"परिहा रामचरण गुरु राम एक ही रूप रे।"[2]

सकल शिरोमणि गुरु

स्वामी रामचरण ने अपने ग्रन्थ 'रामरसायण बोध' के पहले प्रकरण में गुरु को 'सकल शिरोमणि' कहा है जो मिलते ही क्षण भर में निहाल कर देता है। भ्रमों का परिहार कर रामस्मरण कराता है वह परमार्थी है, सहज प्रतिपालक है और है परम दयाल, समर्थ तथा सकल शिरोमणि—

"सकल शिरोमणि है गुरु समर्थ परम दयाल।
रामचरण ताहि मिलत ही पल मैं करै निहाल।
पल मैं करै निहाल साल बोइ तुरत मिटावैं।
आन मर्म परिहार राम ही राम रटावैं।
यू सतगुरु परमार्थी सहज करै प्रतिपाल।
सकल शिरोमणि है गुरु समर्थ परम दयाल।"[3]

गुरुपारख

स्वामी रामचरण ने गुरुपारख का निरूपण सविस्तार किया है। उनका निश्चित मत है कि बिना परखे गुरु नहीं करना चाहिए—

---

१. अ० वा०; पृ० ४३१।
२. वही, पृ० ६४५।
३. वही, पृ० ९३३।

"रामचरण पारख बिना, गुरू कियां क्या होय।
गुरु बंध्या संसार सूं, तो शिख कुण देवै खोय।"

'रामरसायण बोध' के प्रथम प्रकरण मे 'गुरुपारस' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी ने गुरु के लक्षणो की चर्चा की है। उनके अनुसार गुरु को गुणातीत गम्भीर होना चाहिए। वह आदित्य के समान प्रकाशवन्त, नीर सदृश निर्मल, धरती के समान धैर्यशाली एव शशि सदृश शान्त हो। वह रामनाम का दाता हो। ये लक्षण जिनमे हो वह गुरु होने के योग्य है—

"गुरु पारख सोही गुरू गुणातीत गभीर।
आदीत जिसा परकाशवत निर्मल जैसा नीर।
निर्मल जैसा नीर धीर धरि शाति शशी है।
राम नाम दातार गुरू गति जान इसी है।
रामचरण ये लक्षणा सो मेरे शिर पीर।
गुरु पारख सोही गुरू गुणातीत गंभीर।"[1]

गुरुपद उसी को शोभा देता है जो निर्लोभी, निर्मोही, निर्बन्ध और आनन्दमय हो। वह सम्पूर्ण सृष्टि मे गुणातीत के ज्ञाता के रूप मे विख्यात हो और शरीर तथा मन से परे रामरूप हो, साथ ही अन्य को राम का रङ्ग लगाता हो एव अभङ्ग के सङ्ग वास करे—

"गुरू पद शोभ जाके लोभ को न लेश कोई।
निर्मोही निबध नित आनन्दमय मानिये।
गुणातीत ज्ञाता सो विख्याता सारी सृष्टि माही।
नाहीं तन मन जाकै राम रूप जानिये।
राम रूप सही आप राम को लगावै रंग।
करत अभंग सग वासूं सदा बानिये।
राम ही चरण जो शरण ऐसै गुरु जी के।
सोखे हम साच कांच कर्मन कू मानिये।"[3]

ग्रन्थ 'सुख विलास' के दूसरे प्रकरण मे स्वामी जी गुरु के लक्षणो की चर्चा तो करते ही है, साथ ही ऐसे जनो से सचेत भी करते है जो "गुरु पण और जोर जणाय कै ढिग ढिग धावै

१ अ० वा०, पृ० ३८।
२ वही, पृ० ९३४।
३ वही।

सोय।"[1] इसीलिए कवि कहता है, "गुरु तो सो थिर कीजिये जामें गुरुता होय।"[2] आदर्श गुरु का लक्षण निम्नलिखित कुण्डलिया में वर्णित है—

"गुरु कीजै आसे अमल राम नाम दातार।
जिनके आसा अलख की सतव्रत पालणहार।
सतव्रत पालणहार दया साता उर माही।
बाहर भीतर सुचि असुचि कम परसैं नाहीं।
उनकी संग जिहाज सैं भवजल उतरै पार।
गुरू कीजै आसै अमल रामनाम दातार।"[3]

यहीं पर स्वामी जी ने जिज्ञासु-जनों को 'गाफिल गुरु' न करने का सत्परामर्श भी दे डाला है, क्योंकि—

"उनका चेला होय करि कहो कूण घर जाहि।
गाफिल गुरू न कीजिये ज्या सावधानता नाहि।"[4]

इसी सन्दर्भ में स्वामी जी दो प्रकार के गुरुओं की चर्चा करते हैं—१ कन फूका गुजरान गुरु, २ भवतारन ज्ञान गुरु—

"गुरू गुरू सब कहत है पै गुरू दोय परकार।
कनफूंका गुजरान गुर ज्ञान गुरू भवत्यार।
ज्ञान गुरू भवत्यार जनू कै स्वारथ नाही।
परमारथ की नाव दया उनके मन माही।
रामचरण भू ऊपरै बिचरै पर उपगार।
गुरू गुरू सब कहत है पै गुरू दोय परकार।"[5]

गुरु 'अयाची पुरुष' होता है। याचना करने वाले को कवि, गुरु नहीं, 'मंगता' की संज्ञा देता है—

"जाचिक तो सतगुरु नहीं, जाचिक मंगता होय।
अजाचिक गुरु जानिये, पार उतारै सोय।"[6]

---

१ अ० वा०, पृ० २३५।
२ वही।
३ वही, पृ० २३५-३६।
४ वही, पृ० २३६।
५ वही।
६ वही।

'गुरु पारख को अग' मे कवि लिखता है कि ऐसा सतगुरु कीजिए जो 'दीरघ चित्त' एव 'उदारचित्त' हो, जो शिष्य को रामनाम दे सके और जिसकी शरण जाने से ससार से मुक्त हुआ जा सके—

"सतगुरु ऐसा कीजिये जाका दीरघ चित्त।
रामचरण दे शिष्य कू रामनाम निज तत्त।
सतगुरु ऐसा कीजिए जाका चित्त उदार।
रामचरण वाकी शरण छूटे यो ससार।"[1]

इसी प्रकार स्वामी रामचरण ने 'चन्द्रायणा गुरु पारख का अग' एव 'जिज्ञास बोध,' 'समता निवास' आदि ग्रथो मे भी 'गुरु पारख' की विस्तृत चर्चा की है।

लोभी गुरु

स्वामी रामचरण ने 'लोभी गुरु' और 'मनमुखी शिष्य' की निन्दा की है। शिष्य से आशा रखने वाला गुरु किसी काम का नही होता—

"लोभी गुरु किस काम का, करै शिखा की आस।
राति दिवस चिन्ता रहे, स्वप्नै नहीं निवास।"[2]

'लोभी गुरु को अग', 'अणभो विलास', 'विश्वास बोध' और 'समता निवास' आदि विभिन्न ग्रथो मे स्वामी जी ने लोभी गुरु की चर्चा कर उससे सावधान रहने का उपदेश दिया है। 'विश्वास बोध' के द्वितीय प्रकरण मे वे कहते है कि बिना परखे लोभी गुरु का सङ्ग करने से जन्म ही ठगा जाता है। लोभी गुरु न स्वय तरता है और न शिष्य को ही तारता है—

"जन्म ठिगासी परखि बिन करि लोभी गुरु को संग।
ऊ तिरै न त्यारै और कूं जे फूटी नाव कुसग।"[3]

लोभी गुरु के मन मे सदा माया की प्यास लगी रहती है।[4] ऐसे गुरु के साथ सदैव हृदय की ग्लानि बढ़ती है।[5] लोभी गुरु स्वामी जी की दृष्टि मे 'त्रयताप' स्वरूप है। 'जिज्ञास बोध' की निम्नलिखित पक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—

---

१ अ० धा०, पृ० ३८।
२. वही।
३ वही, पृ० ६५५।
४ 'लोभी गुरु कै लगि रहै मन माया की प्यास'—वही।
५ 'लोभी गुरु कै सग बधै हिरदै सदा गिलानि'—वही।

"शीत उष्ण पावस ऋत्त है अतिसै त्रय ताप।
आवत सी प्यारी लगै पीछै लगै संताप।
पीछै लगै संताप इसै लोभी गुरु पायो।
करत समय कर लियो जाचतां लगै अभायो।
रामचरण भज राम कूं तजि लोभ पाप की थाप।
शीत उष्ण पावस ऋत्त है अतिसै त्रय ताप।"[1]

इसलिए स्वामी जी लोभी गुरु की शरण को बुरा समझते है और उसकी ओर कभी न जाने की राय देते है। 'अणभो विलास' की यह साखी देखिए—

"लोभी को शरणो बुरो, कबहूं लीजे नांहि।
निर्भयता उपजै नहीं, सदा शंक मन मांहि।"[2]

लोभी गुरु के कृत्यो का सक्षिप्त विवरण 'अणभो विलास' के इस पद मे स्पष्ट हुआ है—

"लोभी गुरु आशा मुखी, कहा ज्ञान बतावै।
अपणा मतलब कारणैं, भर्मी भर्मावै।
जब स्वारथ पुगै नहीं, तबही घुरकावै।
शिख मूरख समझै नहीं, मन भय उपजावै।
जे कारज कैसे करै, ते बोलै दावै।
बाल बुधि बहकाय कै, गुजरान चलावै।
रामचरण ऐसा गुरु, मवभागी पावै।
भवसागर की धार कै, वे बीच धकावै।"[3]

पर यदि गुरु-शिष्य दोनो ही क्रमश कामी-पेटू हो तब कौन किसकी परीक्षा करे। 'मतलबी' शीर्षक के अन्तर्गत ऐसे चेला-गुरु का पर्दाफाश स्वामी जी करते हैं—

"शिष्य मिलै पेटार्थी, गुरू काम रत होय।
कुण परखै खोटा खरा, उत्तम स्वार्थी दोय।"[4]

---

१ अ० वा०, पृ० ५१६।
२ वही, पृ० २१४।
३ वही, पृ० २१४-१५।
४. वही, पृ० २१७।

जब गुरु और शिष्य दोनों का हृदय विवेक शून्य हो जाता है तो दोनों को अज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। "गुरु शिख हिये विवेक बिन मिलिया उभै अज्ञान"[1] पर उन्हें विवेक मिले भी तो कैसे? 'ममता निवास' में 'गुरु शिख भर्मी' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी इसका समाधान करते हैं—

"भर्मी शिख भर्मी गुरू मिलामिली लछ एक।
उन मिल कैसें पाइये भर्मा रहृ विवेक।"[2]

पर जब शिष्य का हृदय ज्ञानातुर हो और गुरु का तृष्णातापी तो दोनों का मिलाप वैसे ही असम्भव है जैसे रात और दिन का—

"शिख उर आतुर ज्ञान की, गुरु उर तृष्णा ताप।
रामचरण कैसें बणे, रजनी दिवस मिलाप।"[3]

निष्कर्ष

तब गुरु कैसा करना चाहिए? यह प्रश्न इस विशद चर्चा के अन्त में स्वाभाविक रूप से उठता है। स्वामी जी के 'विश्वास बोध' ग्रन्थ के द्वितीय प्रकरण में इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। कवि ने गुरु का आदर्श मलयगिरि और पूनम के चाँद को माना है—

"दीरघ सतगुरु कीजिये मलयागिरि सम सोय।
कंटक तरु मलया करै यूं गुरु कस्मल वे खोय।
× × ×
ऐसा सतगुरु कीजिए जैसा राका रजनी चंद।
चंद हरै जड मलिनता गुरु कस्मल करै निकंद।
गरु कस्मल करै निकंद मंद बुधि निर्मल होई।
राम भजन परताप ताप तन रहै न कोई।
रामचरण परकाश उर नयन लहै ज्यूं अंध।
ऐसा सतगुरु कीजिए जैसा राका रजनी चंद।"[4]

जिज्ञासी

साधना के विभिन्न पक्षों में जैसे गुरु या सत्गुरु अपेक्षित है, वैसे ही साधक भी। साधना तो साधक द्वारा ही सम्भव है, फिर वह चाहे योग-साधना हो या भक्ति साधना। गुरु जिसे अपनी

१ अ० वा०, पृ० ८६४।
२ वही।
३ वही, पृ० ८६४।
४ वही, पृ० ९५४।

साधना से उद्भूत अनुभवों की पूंजी देता है वह साधक ही है। साधक जिज्ञासु होता है। वह गुरु के बताये साधना पथ पर चलकर साधना रत होता है और गुरु से सदैव सीखने की जिज्ञासा रखता है। स्वामी रामचरण ने इस साधक को ही 'जिज्ञासी' कहा है। उन्होंने जिज्ञासी के लक्षण एवं पात्रता आदि पर भी विचार किया है।

'साखी जिग्यासी को अंग' में स्वामी जी जिज्ञासु का लक्षण निरूपित करते हैं। जिज्ञासु वह है जो ज्ञानोपलब्धि के द्वारा भगवन्नाम का अमिय रस ग्रहण करता है। ज्ञान होने के बाद वह फिर माया के वशीभूत नहीं होता—

"सोही जिग्यासी जाणीए, जाग अमी रस खाय।
रामचरण जाग्यां पिछै, कबहूं सोय न जाय।"[1]

जिज्ञासी का जागरण

जिज्ञासु का ज्ञानदाता गुरु है। अनेक जन्मो का भ्रमी जीव सतुगुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान से सदा के लिये जाग उठता है और उसके सभी सांसारिक दुःख स्वप्नवत् गत हो जाते हैं—

"सूता जन्म अनेक का, सतगुरु दिया जगाय।
रामचरण स्वप्ना तणां, सब दुख गया बिलाय।"[2]

स्वामी जी उस जिज्ञासु को ज्ञान देना उचित समझते हैं जो ज्ञानोपलब्धि के बाद राम नाम मे रत हो जाये। यदि वह नामस्मरण मे लीन नहीं होता तो उसके ज्ञान से अनर्थ की सम्भावना हो जाती है—

"रे शिख जागै तो नांइ लग, तांतर रहिये सोय।
रामचरण सुमरण बिनां, जाग्यां अनर्थ होय।"[3]

जाग्रत जिज्ञासु सोता नहीं, वह सतुगुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान का विचार कर माया-मोह से विरत हो 'हरिमारग' पर गतिशील होता है—

"जाग्या सो फिर ना सुवै, हरि मारग लागै।
सतगुरु शब्द विचार कै, माया मोह त्यागै।"[4]

---

१ अ० वा०, पृ० ३७।
२ वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ३८।

जिज्ञासी का भाव

जिज्ञासु साधना के लिये समर्पित प्राणी होता है। उसे केवल एक राम का भरोसा रहता है, वह समाग मे विरक्त हो जाता है—

"एक भरोसो राम को, त्यागो आन उपास।
रामचरण जासू तरक, राम स्नेही दास।"[1]

उसकी 'रहणी' और 'कहणी' मे अन्तर नही होता—

"रहणी कहणी एक है, तो लगी साध की फेट।"[2]

वह 'सुधरी' को राम का किया कहता है और 'बिगडी' को अपने शिर ओढ लेता है—

"सुधरी सूपे राम कूं, बिगड़ी अपने शीश।"[3]

वह गुरु का जूठन प्रेमपूर्वक ग्रहण करता है और उसकी आज्ञा का सदैव पालन करता है। इस प्रकार इन्द्रिय-निग्रह एव रामभजन द्वारा ब्रह्मपद प्राप्त करता है—

"गुरु उच्छिष्ट ले प्रीति सूं, अग्या लोपै नांहि।
राम भजै इन्द्रयां दवै, सो मिलै ब्रह्म पद मांहि।"[4]

जिज्ञासी का आचरण

जिज्ञासु इष्ट राम की उपासना मे रत रहता है। नगे पाँव गुरु-दर्शन को जाता है, दयाशील होता है, विपय एव विष-वचन का परित्याग करता है, हानि-लाभ के अवसर पर भगवान मे भरोसा रखता है। जुआ, चोरी, प्रलोभन, झूठ, कपट आदि से दूर रहता है। भाँग, तम्बाकू आदि अखाद्य का सेवन नही करता। वह अहिंसाव्रती, सयमी, श्रद्धालु तथा सादा भोजन वाला होता है और सादा वस्त्र शरीर पर धारण करता है—

"इष्ट राम रमतीत आन कू पूठ दई है।
पग नंगे गुरु दर्श दया की मूँठ गही है।
विषय त्याग विषवचन हासि खिलवत नहि जाणै।
हांणि वृद्धि की बार भरोसो हरि को आंणै।

---

१ अ० वा०, पृ० ३८।
२ वही।
३. वही।
४ वही।

जूवा चोरी परलुब्धि झूठ कपटाँ नहि राखै।
भांग तमाखू अमल अखज मद पांन न चाखै।
पाणी बरतै छाणि कै निरख पाँव धरणी धरै।
वे रामसनेही जांणिये सो कारज अपणो करै।
खारा मीठा स्वाद साग बनफल परिहरिये।
श्रद्धा सेती त्याग समर्था मन मैं धरिये।
तन पर निर्गुण साज मास बारा सम मानै।
बार तिहू वार उछाव भर्म मन को सब भानै।
मेला होली कीर्तन फवे न वेखै जाय।
रामचरण तन पीड कूं हिंसा तजै उपाय।"[1]

जिज्ञासी के दो रूप

स्वामी रामचरण ने अपने ग्रन्थ 'सुख विलास' के दसवें प्रकरण मे जिज्ञासु को दो रूपो मे निरूपित किया है—१ लगन जिज्ञास २ कपट जिज्ञास।

वस्तुत 'लगन जिज्ञास' ही जिज्ञासी का सही रूप है। 'कपट जिज्ञास' दुविधा मे ही पडा रहता है और गुरु की चिन्ता नही करता—

"दुभ्धया माहि दुरंग होह गुरु गम रहै जु नांहि।"[2]

स्वामी जी 'कपट जिज्ञास' को उस लोहे के सदृश समझते है जो पारस के स्पर्श से भी अपरिवर्त्तित ही रहता है। साधु-संगति का उस पर प्रभाव ही नही पडता—

"लोहा पारस मिल्यां न पलट्या तो बिच अंतर जांनो।
ऐसैं साधु संगति करतां कपटी ना पलटानो।
पारस मिल कर हेम न हूंवा जिन मिल जनपद मांही।
तो बिच कोई पडदो कहिए पारस दोष न कांही।"[3]

पर 'लगन जिज्ञास' की स्थिति इससे बिलकुल भिन्न क्या विपरीत है। 'लगन जिज्ञास' लगनशील प्राणी होता है। स्वामी जी ने लगन जिज्ञासुओ को '**नर बुद्धि प्राणी**' कहा है। जैसे

---

१. अ० वा०, पृ० १२२।
२ वही, पृ० ४०३।
३. अ० वा०, ४०४।

कुमार्गियो की लगन होती है, वैसे ही इन जिज्ञासुओं की हरि मार्ग पर होती है। वे ज्ञान मे लीन तत्त्व विचारक होते है और सत्संग मे समय व्यतीत करते है। अहं भाव और ममता की कलुषता को धोकर निरन्तर 'रामरटन' मे रत रहते हैं—

"जैसी लगन कुमार्गी यू हरि मारग पै होय।
रामचरण वे प्राणिया नर बुधि कहिये सोय।
नर बुधि कहिये सोय ज्ञान गम तत्व विचारैं।
सत्संगति मैं बैठ आपणो आपो तारैं।
राम राम रसना रटै अहं ममत मल धोय।
जैसे लगन कुमार्गी यू हरि मारग पै होय।"[1]

'लगन जिज्ञास' की लगन का वर्णन करते कवि अघाता नहीं। जैसे काम के अधीन रह हर कामी लगनशील होता है, जैसे पराये धन पर चोर की आसक्ति होती है, गाय का बछडे से जैसा लगाव होता है, सीप की स्वाती मे जो अनुरक्ति होती है, सरिता सागर की ओर जैसी लीन होकर दौडती है, प्यासा पानी के लिये जिस प्रकार उद्यम रत रहता है, क्षुधातुर भोजन के लिये जैसा बेहाल रहता है, चद्रमा के लिये जैसी आसक्ति चकोर मे होती है, लोभी दाम के लिये जिस प्रकार साधन रत होता है और मेह के लिये मोर जितना आतुर होता है वैसी लगन, आसक्ति या आतुरता आठो पहर 'लगन जिज्ञास' की रामभजन मे रहती है—

"लगावै लगन ऐसी कहू मैं बखान जैसी,
कामी कामाधीन जैसैं परधन पै चोर है।
गऊ बच्छ हेत जानो सीप हू कै स्वाति मानो,
सरिता समंद लीन ऐसी याकी दोर है।
प्यासे की लगन पानी उद्यम मैं जाय जानी,
क्षुध्यार्थी भोजन यूं चन्द कू चकोर है।
लोभी के उपाय दांम ऐसैं जन भजै राम,
आठू जाम जान तैसैं मेह काज मोर है।"[2]

जिज्ञासा गति की सूक्ष्मता

स्वामी रामचरण अपने ग्रन्थ 'जिज्ञास बोध' के प्रथम प्रकरण मे जिज्ञासा गति को अति सूक्ष्म निरूपित करते है। इस गति तक वही पहुँच सकता है जो स्वयं सूक्ष्म हो। इस जिज्ञास

१ अ० वा०, पृ० ४०२।
२. वही।

गति की शोभा और माहात्म्य दोनों गम्भीर है। वेद-पुराण भी इसकी सूक्ष्मता का गान करते हैं। योगी, यती, तपस्वी, ऋषि या और भी जो साधक हैं, सभी के लिये 'जिज्ञासा धर्म' के समान दूसरा धर्म नहीं—

"जिज्ञासा गति अति ही झीणी झीणा होय सो पावै।
जाकी शोभ महातम भारी वेद पुराणा गावै।
जोगी जती तपी ऋषि जेता साधन और अपारं।
जिज्ञासा तुल धर्म न कोई ये जानो निरधार।"[1]

जिज्ञासु की साधना में दास्यभाव का प्राधान्य होता है। स्वामी जी कहते हैं कि जिज्ञासु को सत्पुरुष की उपासना दास्यभाव से तन-मन लगाकर करनी चाहिए और स्वयं को गुरु को अर्पित कर देना चाहिए। जिज्ञासु को अपनी साधना में तभी सफलता मिलती है जब वह वर्ण, धर्म, कुल, कर्मकाण्ड, लोक-गौरव से मुँह मोड़ कर अभिमान, मान, मद, मत्सरादि का भी परित्याग कर देता है। वह गुरु की वाणी सुने, नयन से उसका दर्शन करे, मुख से प्रश्न करे, दोनों हाथ जोड़कर आज्ञा की प्रतीक्षा करे, जिह्वा से राम-नाम का उच्चारण करता रहे। गुरु का चरण धोकर उसे चरणोदक पान करना चाहिए, जिससे उसका मन उज्ज्वल हो, सीतप्रसाद ले। इस प्रकार 'प्रीतिपण' दास्य भाव से सम्भव है—

"दास भाव सत्पुरुषा केरो कीजे तन मन लाई।
अपना आपा अर्प जना कूं सूंपो लाज बड़ाई।
वर्ण धर्म कुल किरिया सारी लोक बड़ाई डारो।
तजि अभिमान मान मद मत्सर यूं जिज्ञास विचारो।
सुनि गुरु बैन नैन सूं दर्शण मुख तैं परसन करना।
आज्ञाकार दोऊ कर जोड़्या रसना राम उचरना।
चरण धोय चरणोदक पीजै ज्यूं मन उज्ज्वल होई।
सीत प्रसाद प्रीतिपण सेती दास भाव सूं होई।"[2]

जन-जिज्ञासी

स्वामी रामचरण ग्रन्थ 'विश्वास बोध' के इक्कीसवें प्रकरण में जन-जिज्ञासी सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हैं। यहाँ उन्होंने जन का अर्थ परमात्मा से माना है। जिज्ञासु का एकमेव

---

१. अ० वा०, पृ० ५१२।
२. वही, ५१२-१३।

आधार 'जन' है। जैसे कमल जलवासी है और उसकी आशा दिवाकर आकाश में रहता है। पर सूर्योदय के साथ ही कमल अपने अन्तर के उल्लास एवं लगन के साथ विकसित हो जाता है। यही स्थिति 'जन' और 'जिज्ञासी' की भी है। परमात्मा जिज्ञासु के हृदय में वैसे ही रमा रहता है जैसे सूर्य कमल के हृदय में। जैसे आकाशवासी सूर्य दूर रहकर भी कमल के निकट वासी हो जाता है, वैसे ही 'जन' जिज्ञासी के हृदय के निकट पहुंच कर उसे [illegible] देता है और जिज्ञासी सदा के लिये शुद्ध भावना से 'जन' का अनुकूल दास बन जाता है—

"अम्बुज बासो अम्बु में आशो अर्क आकाश।
उदै भया बिकसै कमल अतर लगन हुलास।
अतर लगन हुलास जाण यूं जन जिज्ञासी।
जन हिरदै रहे समाय दूरि सो निकट निवासी।
रामचरण शुध भावना सदा मनसुखा दास।
अम्बुज बासो अम्बु मैं आशो अर्क अकाश॥"[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण ने 'जिज्ञासी' शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया है। उनका 'जिज्ञासी' साधना की हर स्थिति में अपनी दास्य-भावना के साथ, अपने नम्र आचरण के सहारे, गुरु की आज्ञा में रहकर 'अमी रस' का पान करने में तत्पर है। वह अम्बुज सदृश जगत्-जलाशय में रहते हुए भी ब्रह्म की ज्ञान रश्मियों से ज्योतित होकर अमित लगन एवं हुलास से परिपूर्ण रहता है। उसका हृदय 'स्वाति की चातक आशा' से भरा रहता है, इसीलिए तो स्वामी जी कहते हैं—

"पिवो रामरस होय जिज्ञासी अविनाशी सुख पावो।"[2]

योग

डॉक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रन्थ 'नाथ सम्प्रदाय' में लिखा है कि 'योगशिखोपनिषद्' में "चार प्रकार के योग कहे गये हैं—मन्त्र योग, हठ योग, लय योग और राज योग। मन्त्र योग में कहा गया है कि जीव के निश्वास-प्रश्वास में 'ह' और 'स' वर्ण उच्चरित होते हैं। 'ह' कार के साथ प्राणवायु बाहर जाता है और 'स' कार के साथ भीतर जाता है। इस प्रकार जीव सहज ही 'हंसः' इस मन्त्र का जाप करता है। गुरु वाक्य जान लेने पर सुषुम्ना मार्ग से यही मन्त्र उल्टी दिशा में उच्चरित हो 'सोऽहं' हो जाता है और इस प्रकार योगी 'वह' (सः) के साथ 'मैं' (अहम्) का अभेद अनुभव करने लगता है। इसी मन्त्र योग के सिद्ध होने पर हठ योग के प्रति विश्वास पैदा होता है। इस हठ योग में हकार सूर्य का वाचक है और ठकार

---

१ अ० वा०, पृ० ७६९।
२ वही, पृ० ५१३।

चन्द्रमा का। इन दोनों का योग ही हठ योग है। हठ योग से जडिमा नष्ट होती है और आत्मा-परमात्मा का अभेद सिद्ध होता है। इसके बाद वह लय योग शुरू होता है जिसमें पवन स्थिर हो जाता है और आत्मानन्द का सुख प्राप्त होता है। इस लय योग की साधना से भिन्न अन्तिम राज योग है। योनि के महाक्षेत्र में जपा और बन्धूक पुष्पों के समान लाल रज रहा करता है। यह देवी तत्त्व है। इस रज के साथ रेत का जो योग है, वही राज-योग है।.. निश्चय ही यहाँ पारमार्थिक अर्थ में 'रज' और 'रेतस्' (शुक्र) का उल्लेख हुआ है।"[१]

नाम-साधना

सन्त-साधना में योग की महत्ता है, पर सन्तों ने योग को स्वानुभूति का विषय बनाया। ऐसा नहीं कि सन्तजन योग की शास्त्रीयता से अपरिचित थे। पर वे योग की सहजता के विश्वासी थे। उन लोगों ने विभिन्न योगों को अपनी अनुभूति का आधार देकर ग्रहण किया और अपनी विचार शैली से उसकी साधना की। वस्तुतः मन्त्र योग, लय योग और हठ योग आदि का सन्तों ने परिष्कार किया और अपनी अनुभूतियों के सहारे उन्हें सहज बना दिया। डॉ० बडथ्वाल 'नाम सुमिरन' को 'मन्त्र योग' कहते हैं और उसे ही सारे योगों का योग बतलाते हैं। सभी योग इसी के रूपान्तर हैं। इसे ही वे 'सुरति शब्द योग' का दूसरा रूप कहते हैं।[२] पण्डित परशुराम चतुर्वेदी ने 'सन्तकाव्य' के अन्तर्गत सन्तों की पारिभाषिक शब्दा-वली में 'सुमिरन' की परिभाषा दी है। "सुमिरन—नामस्मरण की साधना जो वस्तुतः अनाहत नाद के श्रवण को लक्ष्य करती है और जो सुरति शब्द संयोग का कारण बनकर सन्तों के लिए आत्मोपलब्धि में सबसे प्रधान सहायक है।"[३]

डॉक्टर बडथ्वाल ने नामस्मरण की साधना में रत होने वाले साधक के लिये उस पनिहारिन का आदर्श सुझाया है जो "मार्ग पर चलती हुई बातचीत भी करती जाती है, किन्तु उसका मन सदा अपने सिर पर रखे हुए भरे घड़े की ओर ही लगा रहता है। इसी प्रकार साधक को भी चाहिए कि अपने को उस पनिहारिन की स्थिति में रखे और बाह्यरूप से संसार में व्यवहार करता हुआ भी अपनी सुरति को सदा ईश्वर में ही लगाये रहे।"[४]

इसी सन्दर्भ में डॉ० बडथ्वाल सुमिरन के तीन प्रकारों का भी उल्लेख करते हैं—"(१) 'जाप' जो कि बाह्य क्रिया होती है, (२) 'अजपा जाप' जिसके अनुसार साधक बाहरी जीवन का परित्याग कर आभ्यन्तरिक जीवन में प्रवेश करता है, (३) 'अनाहत'

१. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : नाथ सम्प्रदाय, पृ० १४३-४४।

२. डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (नया संस्करण), पृ० २५५।

३. पण्डित परशुराम चतुर्वेदी : सतकाव्य, पृ० ५७४।

४. डॉ० बडथ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० २५०।

जिसके द्वारा साधक अपनी आत्मा के गूढ़तम अंश में प्रवेश करता है, जहाँ पर अपने आप की पहचान के सहारे वह सभी स्थितियों को पार कर अन्त में कारणातीत हो जाता है।"[1] जाप में होंठ, जिह्वा से नाम को बार-बार दुहराया जाता है। पर अजपा-जाप 'अव्यक्त जाप' है, उद्बुद्ध आत्मा ईश्वर में तल्लीन हो जाती है फिर मुख की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसके बाद अनहद शब्द सुनने की स्थिति आ जाती है। "आराध्य का स्मरण करते-करते आराधक उसके द्वारा इतना भरपूर हो जाता है कि वह उसकी जगह ले लेता है।"[2] इस मग्नावस्था के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सुरति शब्द योग

सन्त नाम-जप के सहारे ही सुरति का शब्द से संयोग कराने में समर्थ होता है। जाप, अजपा जाप और अनाहत की पूर्णता के बाद ही सुरति शब्द संयोग हो पाता है। इस सुरति शब्द योग की संक्षिप्त चर्चा यहाँ आवश्यक है। डाक्टर बड़थ्वाल ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है—"वह योग जिसके द्वारा सुरति एवं शब्द का संयोग सिद्ध होता है और उक्त सुरति शब्द में फिर से लीन हो जाती है, शब्द योग अथवा सुरति शब्द योग कहलाता है और वह शब्द सर्वप्रथम भगवन्नाम के रूप में मुँह से निकलता है और अन्त में स्वयं शब्द स्वरूप ब्रह्म हो जाता है। इसे सहज योग भी कहा जाता है, क्योंकि इसकी सहायता से भी ब्रह्मविज्ञान का उदय होता है।"[3] अन्ततः यह सुरति है क्या? पण्डित परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि—"सुरति जीवात्मा परमात्मा की वह प्रतीक है जो उसकी स्मृति वा प्रतिनिधि के रूप में मनुष्य के भीतर विद्यमान है। सुरति का सन्तों ने अपने पति परमात्मा से बिछुड़ी हुई दुलहिन के रूप में भी वर्णन किया है। वह उससे मिलने के लिये आतुर हो नामस्मरण की सहायता से अनाहत शब्द के साथ संयोग कर लेती है जिससे अन्त में उसे तदाकारता की उपलब्धि होती है।"[4]

डॉ॰ धर्मवीर भारती ने अपने ग्रन्थ 'सिद्ध साहित्य' में 'सुरति' पर विचार किया है। उनके अनुसार "सिद्धों ने इस शब्द का प्रयोग निःसंदेह प्रेम-क्रीडा के अर्थ में किया था।"[5] आगे इसी सन्दर्भ में नाथ-सम्प्रदाय से भी इसे जोड़ते हैं। "नाथ सम्प्रदाय का एक बहुत पुराना नाम शब्द सुरति योग बताया जाता है।"[6] गोरख-मछिन्द्र संवाद के आधार पर डा॰ भारती सुरति शब्द की व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—"सुरति शब्द की वह अवस्था है जब

---

१ डॉ॰ बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ॰ २५२।
२. वही।
३ वही, पृ॰ २५६।
४ पण्डित परशुराम चतुर्वेदी : संतकाव्य, पृ॰ ५७४।
५ डॉ॰ धर्मवीर भारती : सिद्ध साहित्य, पृ॰ ४०९।
६. वही।

वह चित्त में स्थिर रहता है। शब्द अनाहद नाद है जो विशुद्धाख्य तथा आज्ञाचक्र में सुन पडता है।"[1]

'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने सुरति को राजस्थानी शब्द 'सुरता' का पर्याय बताते हुए लिखा है कि—"राजस्थानी भाषा में आज भी 'सुरता' शब्द का प्रयोग ईश्वरोन्मुख ध्यान के लिए प्रचलित है। 'सुरता' का प्रचलित अर्थ ऊर्ध्वगामिनी चित्त-वृत्ति है।"[2] सन्त साहित्य के अन्य अनेक विद्वानों ने इस शब्द के कई सामान्य एवं विशेष अर्थ ग्रहण किये हैं। जैसे—स्मृति, स्रोत, आध्यात्मिक किरण आदि।

'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने 'सुरति शब्द योग' का निरूपण इस प्रकार किया है। यह मत स्वामी रामचरण के सुरति शब्द योग सम्बन्धी निरूपण में सहायक सिद्ध होगा। "सन्त मत का दूसरा नाम सुरति शब्द योग है। यह शब्द योग सतमत का प्राण है, मर्म है, उसका सार है, सर्वस्व है। यह सतमत का मध्यम मार्ग है, उसमें न तो सिद्धों जैसी महामुद्रा की साधना है और न हठयोगियों जैसी कृच्छकाय साधना। यह लय योग है, यही सहज समाधि है। सभी सन्तों ने 'परचे' के अंग में इस अपरोक्षानुभूति का बड़ा ही प्राणवन्त, हृदयस्पर्शी और उल्लासपूर्ण वर्णन किया है।"[3]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सन्तों की योग-साधना न तो सिद्धों का कमल कुलिश का सुरत विलास है, न हठयोगियों का हठ योग। मन्त्र योग का 'सोऽहं' भी सन्तों को अग्राह्य हुआ। उन लोगों ने 'सोऽहं' के स्थान पर 'राम' का भजन करना उचित समझा। वस्तुतः यह वैष्णव प्रभाव था। वैष्णवों में रामभजन की बड़ी महिमा है और रामभजन को ही मुक्ति का साधन भी बतलाया गया है।

स्वामी रामचरण की दृष्टि में योग

स्वामी रामचरण ने हठ योग, लय योग, सुमिरन के मिस मन्त्र योग, एवं सुरति शब्द योग की चर्चा की है। यहाँ इन सभी पर स्वामी जी के दृष्टिकोण की संक्षिप्त चर्चा हमारा अभीष्ट है।

हठ योग

स्वामी जी ने 'हठ जोग को अंग' के कवित और कुण्डलिया शीर्षकों में हठ योग की समीक्षा की है। हठ योग में आसन, प्राणायाम तथा षट्कर्मों का विधान है। हठयोगी प्राणवायु का निरोध करता है। प्राणवायु के निरोध से कुण्डलिनी का जागरण होता है।

---

१ डॉ० धर्मवीर भारती सिद्ध साहित्य, पृ० ४१०।

२. वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १०२।

३. वही।

कुण्डलिनी षट्चक्रों का भेदन करके, ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचकर ब्रह्म में मिल जाती है। प्राण-वायु निरोध, कुण्डलिनी का जागरण और षट्चक्रों के भेदन की प्रक्रिया सहज नहीं।

स्वामी जी कहते हैं कि योगी पवन का निरोध करके काल से बदला चुकाता है, वह रात दिन इसी क्रिया में लीन रहता है पर राम का स्मरण कभी नहीं करता। कवि योगी को सम्बोधित करते हुए कहता है कि रामभजन के बिना तुम्हारे योग को ब्रह्म में ठिकाना नहीं,—

"जोगी पवन चढाय काल सू दाव चुकावै।
निशिदिन पवन उपाय राम कबहू नहि गावै॥
ज्यू चाकर होय अमान धणी सू गढ सजि राखै।
जब आवै फुरमांन वचन सब उलटा भाखै॥
रामचरण ब्रह्मा कल्प लहै आपणै जोर।
तोहि रामभजन बिन जोग कू नही ब्रह्म मैं ठार॥"[1]

योगी अष्टाग योग की साधना करता है, शरीर, मन एवं इन्द्रियों का निग्रह करता है, प्राणवायु को पकड़कर रखता है किन्तु भजन बिना उसके ये सभी धन्धे व्यर्थ हैं और वह आँख रहते अन्धा है—

"नही ब्रह्म मे ठार ओर साधन जो साधै।
करै जोग अष्टाग देह मन इन्द्री बाधै।
प्राणवायु कू पकडि पचै निशिवासर अंधा।
करि है कूडी खेद भजन बिन सबही धधा॥"[2]

कवि का विचार है कि स्वर-साधना, जलपान आदि यौगिक क्रियायें निरोग रहकर सोने के लिये की जा सकती हैं पर इससे मुक्ति नहीं मिल सकती। बिना रामस्मरण के मुक्ति सम्भव नहीं। इस प्रकार की योगसाधना से न तो परमात्म-सुख ही मिल सकता है और न मन का भ्रम (*माया अधकारादि*) ही दूर हो सकता है।

"सुर साधन करि जल पिवै रहे निरोगा सोय।
रामचरण इक राम बिन वाकी मुक्ति न होय।
वाकी मुक्ति न होय झूठ के सागै लागा।
परमातम सुख त्याग भर्म उर का नहि भागा॥"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० १२५।
२ वही।
३. वही, पृ० १७४।

यद्यपि स्वामी रामचरण ने रामस्मरण के सामने हठ योग की क्रियाओं की व्यर्थता प्रतिपादित की है, किन्तु सुरति शब्द योग के वर्णन में इडा, पिंगला, सुषुम्ना, त्रिवेणी, त्रिकुटी, अनहद नाद, मेरु की घाटी आदि हठ योग सम्बन्धी शब्दों का प्रयोग किया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि सन्तों ने योग को भी स्वानुभूति का विषय बना लिया था और उसी आधार पर उन लोगों ने योग का ग्रहण किया था। अत स्वामी रामचरण ने भी यदि हठ योग का परिष्कार कर लिया तो वह सन्त परम्परा के अनुरूप ही था। इस सन्दर्भ में डॉक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी का यह मत समीचीन है—"उनका हठ योग प्रेम की डगर में चलते-चलते नाथयोगियों का हठ योग न रहकर संतों का सुरति शब्द योग हो गया।"[1]

लय योग

डॉक्टर बड़थ्वाल लिखते हैं कि "'लय योग' वह है जिसे निर्गुणी 'लो' की संज्ञा देते हैं।"[2] स्वामी रामचरण ने 'लै को अंग' में 'लै,' 'ल्यो' और 'ल्यौ' शब्दों का प्रयोग 'लय' के लिये किया है। लय योग पिण्ड में ब्रह्माण्ड निरूपित करता है। जो ब्रह्माण्ड में है, वह सब पिण्ड में भी है। प्रकृति का पुरुष में लय होना ही लय योग है। कुण्डलिनी ही वह प्रकृति है जो जाग्रत होकर सहस्रार में स्थित पुरुष में लय होती है।[3]

स्वामी रामचरण कहते हैं कि लय पहले 'रसना' में लगती है, फिर रसना से चलकर हृदय में पहुँचती है। लय जब हृदय से लग जाती है तो वही अजप्पा जाप कहा जाता है। इस स्थिति में पाप-पुण्य का भय सदा के लिये मिट जाता है—

"प्रथम लै रसना लगै, रामचरण निसि बास।
रसना सू हिरदै गई, बाक्ष नही परकास।
हिरदै लै लागी रहै, सोही अजप्पा जाप।
रामचरण तब ना रहै, पाप पुण्य की ताप॥"[4]

वस्तुत रसना से लय लगने का अर्थ नामस्मरण की आरम्भिक अवस्था है जिसे जाप कहा गया है और 'अजप्पा जाप' का तो स्वामी जी स्वयं नामोल्लेख कर देते हैं। इस लय के लग जाने पर भ्रम की निकम्मी आदत छूट जाती है और तब राम-मिलन होता है और लय का निवास [ल्यौ को धाम] का दर्शन हो जाता है।

---

१ डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी रामसनेही सम्प्रदाय [अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, गोरखपुर विश्वविद्यालय ग्रन्थालय, गोरखपुर]।

२ डॉ० बडथ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय [नया संस्करण], पृ० २५५।

३ डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी : रामसनेही सम्प्रदाय [अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, गोरखपुर विश्वविद्यालय ग्रन्थालय, गोरखपुर]।

४. अ० वा०, पृ० १२।

"रामचरण भ्रम ऊठतो, बाहर मिलसी राम।
गई खोडली बाण यह, दरसा त्यो की धाम।"[1]

स्वामी जी कहते है कि जब तक भ्रम (माया) से मुक्ति नहीं मिलती, समझना चाहिए कि लय नहीं लगी क्योंकि लय लगते ही आनन्द प्रकट हो जाता है—

"हिरदै लै लागै नही, जब लग भरम न जाय।
रामचरण लैकै लग्या आणद प्रगटै आय।"[2]

लय लगने की पहचान यह भी है कि रातदिन, सोते-जागते कभी छूटे नहीं, सदा एकरसता बनी रहे। इस एकरसता से काल का जाल छूट जाता है और प्राणी कालातीत हो जाता है—

"लै लागी तब जाणिये, निसिदिन छूटै नाहि।
रामचरण रहै एक रस, सोवत जागत माहि।
सोवत जागत एक रस, तो मार सकै नहि काल।
रामचरण लै कै लग्या, कटी काल की जाल।"[3]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण ने लय योग की शास्त्रीय परिभाषा से अलग हटकर लय पर विचार किया है। उन्होंने लय को लगन या 'लौ' के अर्थ में उस सीमा तक लिया है जब 'अजपा जाप' की स्थिति निर्मित हो जाती है। किन्तु जैसा डॉक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि लय योग से आत्मानन्द का सुख मिलता है, स्वामी जी भी कहते हैं कि लय लगने से आनन्द प्रकट होता है। निष्कर्ष यह कि स्वामी जी लय में भी नामस्मरण या मन्त्र योग को महत्त्व देते हैं।

मन्त्र योग

मन्त्र योग नाम-साधना है। सभी सन्त नामोपासक रहे हैं पर उन्होंने मन्त्र योग के 'सोऽहं' को अपनी स्वीकृति नहीं दी। उन्होंने इसका भी अपने ढंग से परिष्कार किया और 'सोऽहं' के स्थान पर राम की प्रतिष्ठा की। स्वामी रामचरण 'साखी सुमरण को अंग' में स्पष्ट लिखते हैं कि 'ओम् सोऽहं' शब्द माया के विस्तार है,केवल 'रकार' माया रहित है—

"ॐ सोऽहं शब्द का, सब माया विस्तार।
रामचरण माया रहित, अखर एक रकार।"[4]

---

१ अ० वा०, पृ० १२।
२ वही।
३ वही।
४ वही, पृ० ८।

स्वामी रामचरण की यह साखी सोऽहं के स्थान पर राम की प्रतिष्ठा ही नहीं करती, वरन् सोऽहं के समक्ष राम शब्द की श्रेष्ठता भी यह कहकर प्रतिपादित करती है कि 'ओम् सोऽहं' दोनों माया युक्त हैं और राम शब्द माया से परे है। यह राम-स्मरण इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि यह शब्द तारक मन्त्र है। ग्रन्थ 'शब्द प्रकाश' में स्वामी जी ने बहुत ही स्पष्ट कहा है—

"रामनाम तारक मंत्र है, सुमिरै शंकर शेष।
रामचरण साचा गुरू, देवै यो उपदेश।"[1]

कवि 'हरिनाम' पर इसलिए न्योछावर है क्योंकि उसके स्मरण से काया-नगरी में प्रियतम से परिचय हो गया। नामस्मरण से ही सुरति शब्द संयोग भी होता है—

"रामचरण हरिनाम की मैं बलिहारी जांहि।
सुमर्या पिव परचै भया काया नगरी मांहि।
प्रथम शब्द श्रवणां शुणै, रसना रटण लगाय।
सुरति समावै शब्द में, तब चित की चितवन जाय।"[2]

स्वामी जी रामस्मरण को 'मोक्ष पन्थ' घोषित करते हैं—

"सुमरै रमता राम कूं, गुण इन्द्री मन जीत।
रामचरण यह मोख पंथ, और सकल विप्रीत।"[3]

और 'सवैया सुमरण को अंग' में तो वे रामस्मरण को 'निर्मल धर्म' की संज्ञा दे डालते हैं, इससे 'परमपद' की प्राप्ति हो जाती है—

"रामचरण्ण ये निर्मल धर्म है,
होय पुनीत परमपद पावै।"[4]

इतना ही नहीं, जाने अनजाने भी यदि नित्य नामस्मरण किया जाय तो मुक्ति मिल जाती है—

"जानि अजानि रटै नित राम कूं,
रामचरण्ण तिरै ही तिरैंगे।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० २०८।
२. वही, पृ० ७।
३. वही, पृ० ९।
४. वही, पृ० ८६।
५. वही।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण ने राम के नामस्मरण को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना है। उन्होंने इसे मन्त्र योग से और भी श्रेष्ठ नाम 'योग पथ' और 'निर्मल धर्म' दिया है। यह राम-नाम का स्मरण ही सुरति शब्द योग का द्वार भी उन्मुक्त करता है। वस्तुत यह सभी योगों की कुञ्जी है। सभी योग इसी मे समाहित है। डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने उचित ही कहा है—"भक्ति योग, राज योग, मंत्र योग, लय योग, हठ योग एव ज्ञान योग भी इसी के विविध रूपान्तर कहे जा सकते है। सभी के आधारभूत सिद्धान्त इसके भीतर आ जाते है।"[1] स्वामी जी 'नाम निरणा का अग' मे 'नाम का भेद कहो कूण भाई ?' यह प्रश्न प्रस्तुत करके 'राम' नाम के स्मरण की स्पष्ट घोषणा करते है—

> "ओर सब नाम जुग जुग उपजै खपै,
> एक रकार रहे, अखण्ड जोई।"[2]

स्वामी रामचरण का सुरति शब्द योग

स्वामी रामचरण ने सुरति शब्द योग का वर्णन अगबद्ध वाणी के 'परचा को अग' के विभिन्न छन्द शीर्षकों, 'नाम प्रताप' एव 'शब्द प्रकाश' नामक लघुग्रन्थो तथा 'अणभो-विलास', 'जिज्ञास बोध' एव 'विश्वास बोध' आदि बडे ग्रन्थो मे किया है। अन्य सन्तों की भाँति ही सुरति शब्द योग स्वामी रामचरण का स्वानुभूतिपरक योग है जिसे नाम योग की सिद्धि के सहारे प्राप्त होने की बात वे कहते है। 'स्वामी रामचरण की दृष्टि मे योग' के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि नामस्मरण ही सब योगों का योग है। यह सभी योगों का मूल है। 'सुरति शब्द सयोग' इसी साधना से सम्भव है। इसे ही सहज योग भी कहा गया है।

भजन प्रताप की चार चौकियाँ

स्वामी जी ने सुरति शब्द योग की बडी स्पष्ट कल्पना प्रस्तुत की है। इस साधना के चार अवस्थान उन्होंने निरूपित किये है जिसे वे भजन प्रताप की चार चौकियाँ कहते है—

> "चोकी भजन प्रताप की, सत कह गए च्यार।
> रामचरण या सत्य है, दूजा भरम असार।"[3]

---

१. डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल हिन्दी काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय (नया सस्करण), पृ० २५५।

२. अ० बा०, पृ० १९२।

३ वही, पृ० १३।

इन चार चौकियों के मुकाम क्रमश: कण्ठ, हृदय, नाभि और ब्रह्माण्ड हैं—

"रसना कण्ठ रस पीय कै, हिरदै सुख विलास।
नाभि कमल सें उलटि कै, सुरति गई आकास।"[१]

सुरति शब्द योग की साधना की इन चारो अवस्थाओ का वर्णन स्वामी जी ने 'नाम प्रताप' एव 'शब्द प्रकाश' मे बहुत स्पष्ट किया है। यहाँ कवि के अनुसार चारो चौकियो का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है—

प्रथम अवस्थान

सुरति शब्द योग की साधना का प्रारम्भिक अवस्थान नाम जप है। यह 'राम-नाम' है जिसे स्वामी जी ने तारक मन्त्र कहा है। जिज्ञासु या साधक को इस रामनाम की उपलब्धि गुरु से होती है—

"प्रथम नाम सतगुरु सूं पाया।
श्रवणां सुनि कै प्रेह उपजाया।"[२]

सतगुरु से प्राप्त रामनाम का श्रवण कर जिज्ञासु को शब्द के प्रति प्रेमानुभूति होने लगती है और तब वह रसना की श्रद्धा का जागरण करके निशिवासर 'राम-रटन' मे लीन होता है।

"पुनि रसना की श्रद्धा जागी।
राम रटनि निशिवासर लागी।"[३]

नाम के प्रति अनुराग भाव का जागरण ही रसना की श्रद्धा के जागरण का कारण होता है। तब अपर आशाएँ समाप्त हो जाती है और सुरति रामनाम मे लग जाती है। मन एकाग्र हो जाता है और सुरति शब्द छोडकर अन्यत्र नही जाती—

---

१ अ० वा०, पृ० १३।

२ वही। यथा
"राम राम रसना रट्या रामचरण इक धाय।
रहना सू सरक्या शब्द कण्ठ होय हिरदै ध्याय।
कण्ठ होय हिरदै ध्याय तृतीये नाभि निवासा।
नाभिकमल सू उलटि गगन जाय किया विलासा।
चौकी च्यारू पशि कै सहज समाधि समाय।
राम राम रसना रट्या रामचरण इक धाय।"—वही पृ० १४१।

३ वही, पृ० २०८। तथा
"प्रथम नाम रसना सूं गावै।
मन कूं पकडि एक घर लावै।—वही, पृ० २०६।

"दूजी आशा सकल बुहारी।
तब रामनाम में सुरति ठहारी।"[1]

इस समय साधक पद्मासन लगाकर मन को निश्चल कर लेता है और साँस-उसाँस के साथ राम-जप में तन्मय हो जाता है। जप करते-करते नाम के प्रति जगी आसक्ति नामी राम के वियोग में परिणत हो जाती है।[2] नामोच्चारण करते-करते रसना की श्रद्धा उसके शिरोभाग से रसधार के रूप में स्रवित होने लगती है। यह स्राव अखण्ड होता है। इस स्राव का नीर दुग्धवत् होता है—

"तब रसना शिर छूटै धारा।
लगै अखण्ड नहिं खण्डै लगारा।"[3]

इसकी मिठास का क्या कहना! हर्ष और विश्वास की अनुभूति होने लगती है—

"रटता रटता भयो मिठास।
हर्ष भयो आयो विश्वास।"[4]

इस रसधार की मिठास से जल पीने की श्रद्धा समाप्त हो जाती है। साधक इस अमृत-पान से पल भर भी विलग नहीं होना चाहता। इस रस-पान से भूख नहीं लगती। प्रत्येक नाड़ी में गिलगिली के चलने की अनुभूति होने लगती है और सुखधारा की अनवरतता शिराओं को मुदित कर देती है—

"जल पीवन की श्रद्धा मांही।
मति यो अमृत दूरि होइ जांही।
रस पीवत क्षुधा सब भागी।
कण्ठौं शब्द टगटगी लागी।
नाडि नाड़ि में चलै गिलगिली।
सुख धारा अति बहै सिलसिली।

---

१. अ० वा०, पृ० २०८। तथा—
"राखे सुरति शब्द ही माही।
शब्द छाँडि कहु अनत न जाही।"—वही, पृ० २०६।

२. "श्वास उश्वासा श्रवण लगाई।
आरति करिकै विरह जगाई।"—वही, पृ० २०९।

३. वही, पृ० २०६। तथा—
"रसना अग्र खुली इक सीरा।
प्रथम वाको पय सो नीरा।"—वही, पृ० २०९।

४. वही, पृ० २०९।

मुख सूं कछू न उचरै वैना।
लग्या कपाट खुलै नहीं नैना।
श्रवणा चर्चा सुणै न कोई।
कण्ठ ध्यान यह लक्षण होई।"[1]

उपर्युक्त अवस्था को कवि 'कण्ठ ध्यान' की संज्ञा देता है। इस अवस्था में निराये तो आनन्दानुभव करती ही है, मुख से वाणी नहीं फूटती, नयन-कपाट बन्द हो जाते हैं, कान बाह्य चर्चा नहीं सुन पाते। शब्द जिह्वा से सरक कर कण्ठ-स्थान में आ जाता है। 'कण्ठ ध्यान' में कम्पन की अनुभूति होती है और रोम-रोम में शीतलता आ जाती है, हृदय गद्गद् हो जाता है, श्वास अवरुद्ध हो जाता है और नयनों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है—

"कण्ठ के ध्यान मे कॅमकॅमी जागै।
रोम रोम सीतंग सो लागै।
हियो गद्गदे श्वास न आवै।
नैणा नीर प्रवाह चलावै।"[2]

यह कण्ठ-ध्यान विरहानुभूति की स्थिति है। कण्ठस्थान पर साधक की सुरति नामी राम का वियोग अनुभव करने लगती है। यह बडी कठिन अवस्था होती है। मुख से बोला नहीं जाता, खान-पान की रुचि नहीं रह जाती, शरीर क्षीण हो जाता है, त्वचाएँ सिकुड जाती है, नसें नीली पडकर झलकने लगती है, चेहरा पीला पड जाता है, नेत्रों में लाली छा जाती है और ललाट आइने की ज्योति सदृश दीप्त हो उठता है, कम्पन और सिहरन चलने लगती है, छाती रुँध जाती है। विरहिणी की जैसी दशा हो जाती है। इस अवस्थान को या तो गुरु ही जानता है (जो विरह जगाता है) या फिर विरही स्वयं जो इसे झेलता है।[3]

---

१. अ० वा०, पृ० २०६। तथा
"केई दिवस रसना रस गटक्यो।
पीछे शब्द कण्ठ में अटक्यो।"—वही, पृ० २०९
२ वही, पृ० २०६।
३. "कण्ठ स्थान बहुत कठिणाई।
मुख सूं बचन न बोल्यो जाई।
खान पान मे रुचि रहे थोरी।
मारग रुक्यो जाय कहू बोरी।
क्षीण शरीर त्वचा सकुचानी।

द्वितीय अवस्थान

कण्ठस्थान की कठिनाई पारकर शब्द ने हृदय में प्रवेश किया।'[1] यह भावना का द्वितीय अवस्थान है। कण्ठस्थान से चलकर हृदय-देश में शब्द के प्रवेश की क्रिया का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि एक दिन एक तमाशा हुआ, कण्ठ और हृदय के बीच 'हुलास' जगा। स्रवित होकर हृदय में 'सीर सुखम रस' प्रवाहित होने लगा और 'शब्द ब्रह्म' हृदय में वास करने लगा। अन्धेरी निशा में शशि के आलोक-सा अनुभव होने लगा—

"एक दिवस इक भया तमासा।
कण्ठ हृदा बिच उठ्यो हुलासा।
ज्यूं पाला की डोरणि छूटी।
हिरदे सीर सुखम रस ऊठी।
शब्द ब्रह्म हिरदं किया बासा।
ज्यूं रैंण अंधेरी चंद प्रकाशा।"[2]

परमसुख से हृदय आलोकित हो उठा जैसे रवि ने अन्धकार का विनाश कर दिया हो—

"परम सुक्ख हिर्दै परकाशा।
ज्यू रवि कीनो तम को नाशा।"[3]

इस अवस्थान को कवि 'हृदय ध्यान' की संज्ञा में अभिहित करता है। इस अवस्था में भ्रम, कर्म, संशय सभी दूर जा पड़े और हृदय में अखण्ड जाप होने लगा। जब हृदय-

---

नीली नस दीसै झलकानी।
पीरो बदन नेतरा लाली।
मुकुर ज्योति ज्यूं दिपै कपाली।
चले कँमकँमी रू थररावै।
छाती हँवै स्वास न आवै।
ऐसी विधि विरहनि की होई।
विरहि जाणै कै सतगुरु सोई।"—अ० वा०, पृ० २०९।

१. "एक दिवस ऐसी बनि आही।
शब्द सरक गयो हिर्दा माही।"—वही, पृ० २०९।

२. वही, पृ० २०६।

३. वही, पृ० २०९।

ध्यान की ध्वनि होने लगती है तो सभी अन्य साधन लुप्त हो जाते हैं। इस सुख की महिमा अवर्णनीय है।[1] हृदय के भीतर होने वाले इस सहज सुमिरन का रहस्य बाहर कोई नहीं जान पाता—

"सहजै सुमरण हिरदै होई।
बाहिर भेद न जाणे कोई।"[2]

सोते-जागते हर अवस्था में यह सहज सुमिरन चलता रहता है। वन-बस्ती की शंका नहीं रह जाती। यह कवि की दृष्टि में 'अजपा जाप' की स्थिति है। इस अवस्था में बाहरी साधन विला जाते हैं।

"सोवत जागत डोरी लागी।
बन बस्ती की शंका भागी।
रसना जप्या अजप्पा पाया।
बाहिर साधन सकल बिलाया।"[3]

प्रेम का जागरण हो जाने पर सांसारिक मर्यादाओं के नियम बन्धन समाप्त हो जाते हैं। इस प्रेम साधना[4] द्वारा ही साधक को शरीर में 'राम धाम' मिल जाता है—

"जाग्यो प्रेम नेम रह्यो नाही।
पाई रामधाम घर माही।"[5]

तृतीय अवस्थान

उर-स्थान में विश्राम कर शब्द नाभिप्रदेश में पहुँचता है। यह तीसरा मुकाम है—

---

१. "भर्म कर्म साधो गयो भागी।
हिरदै ध्वनी अखण्ड लिवलागी।
कहा कहूँ या सुख की महिमा।
और सुख सब दीसै पल मा।
हिरदै ध्यान ध्वनी जब होई।
दूजो साधन रहै न कोई।" —अ० वा०, पृ० २०६-२०७।

२. वही, पृ० २०९।

३. वही।

४. "सुमिरन एक प्रकार की प्रेम साधना है।"
—डॉ० बड़थ्वाल हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (नया संस्करण), पृ० २५३।

५. अ० वा०, पृ० २०९।

"उर अस्थान पाय विश्रामा।
शब्द किया जाय नाभि मुकामा।"[1]

'नाम प्रताप' में 'शब्द' को कवि 'लै' कहता है। यह 'लय' नाभिकमल में जाकर चैतन्य हो जाती है—

"हिरदै सूं लै धरणी गई।
नाभिकमल मे चेतन भई।"[2]

यहाँ पहुँचकर शब्द गुञ्जन करने लगता है जिससे सभी नाड़िया जागृत हो जाती हैं। रोम-रोम में राग ध्वनित होने लगते हैं और नौ सौ नाड़ियों का मगलगीत सुनायी पड़ता है। यहाँ मन-मधुप को अतीव सुख मिलता है—

"शब्द गुजार नाडि सब जागे।
रोम रोम में होइ रही रागे।
नौ से नारी मंगल गावे।
तहाँ मन भँवरा अति सुख पावे।"[3]

काया शीतल हो जाती है, क्योंकि शब्द को ब्रह्मरस का अमृत प्राप्त हो जाता है।[4] रोम रोम ताँत यन्त्र की तरह झकृत होने लगता है—

"रोम रोम झणकार झुणकै।
जैसे जतर तात ठुणकै।"[5]

चतुर्थ अवस्थान की ओर

नाभि-प्रदेश में ब्रह्मरस की अनुभूति करने के बाद शब्द गगन[6] की ओर अपनी यात्रा आरम्भ करता है। गगन का रास्ता मेरुदण्ड की घाटी से होकर है। इस मेरु में

---

१ अ० वा०, पृ० २०९।
२ वही, पृ० २०७।
३ वही। तथा
"नाभिकमल मे शब्द गुंजारे।
नौ से नारी मंगल उचारे।"—वही, पृ० २०९।
४ "शीतल भई सबै ही काया।
शब्द ब्रह्म रस अमृत पाया।"—वही, पृ० २०७।
५ वही, पृ० २०९।
६ "गगन शरीर के भीतर का वह आकाशवत् अन्तराल जिसमें ज्योतिर्मय ब्रह्म

बीस गाँठे हैं। शब्द के वेग से बीसों गाँठे फट जाती हैं और गगन का मार्ग खुल जाता है।[1]

"अब तो शब्द गगन कूँ चढ़िया।
पछिम घाटि होइ कै अनुसरिया।"[2]

घाटी के मार्ग से होकर शब्द त्रिकुटी[3] पर पहुँचता है। इसके ऊपर 'अनहद' बजता है। यह त्रिकुटी इडा, पिंगला, और सुषुम्ना का त्रिवेणी संगम है। इस त्रिवेणी घाट पर स्नान करके जीव गगन में प्रवेश करता है—

"पहिली बैठा त्रिकुटी छाजे।
जाके ऊपर अनहद बाजे।
त्रिवेणी तट ब्रह्म न्हवाया।
निर्मल होय आगे कूं ध्याया।

इगला पिंगला सुखमणा, मिले त्रिवेणी घाट।
जहाँ झाझ जल झूलि के, निर्मल होय निराट।
अब त्रिवेणी न्हाइ कै, कीया गगन प्रवेश।
तीन लोक सूँ अलघ सुख, यो कोई चौथा देश।"[4]

चतुर्थ अवस्थान

अभी तक जिन तीन लोकों के सुख की चर्चा हुई है उनसे बिल्कुल भिन्न सुखों वाला यह कोई चौथा देश है। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने इस अवस्थान पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि "यह साधना की अंतिम भूमिका है जहाँ सुरति शब्द को पकड़कर

का प्रकाश दीखता है और जहाँ से अनाहत की ध्वनि सुन पड़ती है। इसको कभी-कभी 'शून्य' भी कहा करते है।"—पण्डित परशुराम चतुर्वेदी, संत काव्य, पृ० ५७१।

१ पश्चिम दिशा मेरुकी घाटी।
बीसू गाठि घोर से फाटी।—अ० वा०, पृ० २०९।

२. वही पृ० २०७।

३ त्रिकुटी—भ्रूमध्य में स्थित वह बिन्दु है जहाँ इडा, पिंगला एवं सुषुम्ना योग नाड़ियों का मिलन होता है और जिसे इसी कारण 'त्रिवेणी' भी कहा जाता है।"
—प० परशुराम चतुर्वेदी संतकाव्य, पृ० ५७२।

४ अ० वा०, पृ० २०७।
त्रिकुटी संगम कीया स्नाना।
जाइ चढ्या चौथे अस्थाना। —वही, पृ० २०९।

पुरुष ररंकार का यह मिलन और तज्जन्य आनन्द का विस्मयकारी वर्णन—यही संत साधना का अनर्घ अक्षय कोष है।"[1]

इस गगन लोक (चौथा घर) में निरंजन सिंहासनासीन है जिसकी ज्योति के प्रकाश से अनन्त सूर्य शोभा पाते हैं। जहाँ अनहद नाद अगणित रागों में ध्वनित होता रहता है। जहाँ सुषुम्ना नीर की फुहार निरन्तर स्रवित होती रहती है जिससे सुरति भीग कर गर्क हो जाती है। जहाँ अर्द्ध-उर्ध्व कमल विकसित है और सुरति भँवरा बनकर विलसती है। जहाँ अनहद की 'घरर-घरर' सुन पड़ती है और परम ज्योति का विद्युत् प्रकाश दीख पड़ता है—

"जहाँ निरंजन तख्त विराजै।
ज्योति प्रकाश अनन्त रवि राजै।
अनहद नाद गिणत नहिं आवै।
भाँति भाँति की राग उपावै।
स्रवै सुषुम्णा नीर फुहारा।
शून्य शिखर का यह विह्वारा।"[2]

'कुण्डल्या को अंग' में स्वामी जी इसे 'ब्रह्म सभा' कहते हैं। इस ब्रह्म-सभा का विस्मयकारी वर्णन उन्हीं की पंक्तियों में प्रस्तुत है—

"बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजै तूर।
बिन श्रवणां अनहद सुणे जहाँ ब्रह्मसभा भरपूर।
जहाँ ब्रह्मसभा भरपूर और कोई निजर न आवै।
सुरति रही मठ छाय देह तहां जांण न पावै।
रामचरण वै देश में बहु परकाशे सूर।
बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजै तूर।"[3]

---

१. वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य—श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ११०।
२. अ० वा०, पृ० २०९ तथा।
"घरर घरर अनहद घहरावे।
परमज्योति दामणि झलकावे।
सुषुमण नीर खूब झडिलाई।
भीजत सुरति गर्क होइ जाई।
अर्ध ऊर्ध जहा कमल प्रकासा।
सुरति भँवर होइ करत विलासा।"—वही, पृ० २०७।
३. वही, पृ० १४१।

अपने ग्रन्थ 'जिज्ञास बोध' के पञ्चम प्रकरण मे स्वामी जी उस अगम स्थान मे सुरति-शब्द सयोग का दृश्य-वर्णन करते हैं—

"जागी ज्योति जगत गुरु दर्श्या, परस्या अगम सथाना वे।
रसना बिना रामधुन लागी, जानै संत सुजाना वे।
गगन मण्डल में बाजै अनहद, सुणि है बिनही काना वे।
चरण बिना जहा नृत्य करत हैं, देखत है ब्रह्म दांना वे।
भांति भांति सुखदाई नाटक, प्रेम मगन गलतांना वे।
रीझ रमइया मोजां बकसी, जांमण मरण मिटांना वे।"[1]

उस अगम लोक के अनाहद नाद का अलौकिक स्वर सगम का एक चित्र 'रेखता प्रचा को अग' मे स्वामी जी ने प्रस्तुत किया है—

"घोर अनहद की गगन गिरणाईया होत बहु सौर नहिं कहत आवै।
झालरी बीण मरदग सहनाईयां बांसुरी ताल झुणकार लावै।
भेरि नरसिंग करनाल बंकया बजै चग अरु उपग गति करत न्यारी।
एक एक नाद में राग नाना उठै मधुर स्वर मधुर स्वर चलत भारी।
मंजीरा मान धधकार धोलक करै गिडगिड़ी राय मोहोचंग बाजै।
रुणझुणू रुणझुणूं नृत्य ज्यूं घुघरू घटा टंकोर ध्वनि अधिक गाजै।"[2]

इसी सन्दर्भ मे स्वामी जी कहते हैं कि ससार मे ३६ रागो का वर्णन किया गया है पर संतजन गगन मे 'बेपरमाण अनहद' सुनते हैं—

"रामचरण संसार में, राग छतीस बखांण।
संत सुनत है गिगन में, अनहद बेपरमांण।"[3]

उस चौथे देश की बात अतुलनीय है, मुख से उसका वर्णन सम्भव नहीं। प्रत्यूष-वेला के अरुणालोक सदृश उस अगम देश का अवर्ण्य आलोक है। जहाँ अनहद गरजता रहता है, गगन झरता है, दामिनी चमकती है, वही सागर के तट पर हंस निवास करता है। हस मे सागर समा गया। द्वैत की यही समाप्ति है।[4]

---

१. अ० वा०, पृ० ५४०।
२. वही, पृ० १९२-९३।
३. वही, पृ० १४।
४ "या तो बात अतोल है भाई।
मुख सू कहा तोल ह्वै जाई।
... ...

सुरति शब्द का सयोग बूंद और समुद्र का सयोग है। जैसे बूंद समुद्र मे मिल जाती है, फिर उसे पकडा नही जा सकता वैसे ही जीव और ब्रह्म का मिलन अभिन्न है। स्वामी जी कहते है कि जब तक यह स्थिति न आ जाय, ध्यान नही छोडना चाहिए, क्योकि राम के बिना सारा ज्ञान ही फोकट है—

"जैसे बूंद मिली सायर मे।
कैसे पकडि सके कोइ कर मे।
जीव ब्रह्म मिली भया समाना।
ब्रह्म मिल्यां कर्म करै न आना।

एह चहन दरस्यां बिना, मति कोइ छोड़ो ध्यान।
रामचरण इक राम बिन, सबही फोकट ज्ञान।"[1]

यही स्वामी रामचरण के सुरति शब्द योग की सक्षिप्त समीक्षा है। वैसे अपने विभिन्न ग्रन्थो एव फुटकर पदो मे उन्होने सुरति शब्द योग का वर्णन विभिन्न प्रतीको द्वारा भी किया है।

भक्ति

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि निर्गुण सन्तो की भक्ति पर वैष्णव सिद्धान्तो का प्रभाव रहा है। यद्यपि सन्तमत के मूल मे नाथों की योग-साधना आबद्ध है, फिर भी सन्तमत के विकास के समय वैष्णव-भक्ति की भावधारा इतनी प्रबल थी कि वह सन्तो की साधना की एक प्रमुख भूमिका बन गयी। शनै शनै योग की कठिन प्रक्रियाओ का सन्त-साधना से एक प्रकार से बहिष्कार-सा हो गया। अब वे सुरति-शब्द योग के अभ्यासी बन गये थे, जिसकी सहजता की भावभूमि मे वैष्णवों के रामभजन की प्रमुख भूमिका रही है। डॉ० रामकुमार वर्मा का निम्नलिखित मत इस विचार की पुष्टि करता है। वे लिखते हैं—"रामानन्द के प्रभाव से राम और उनकी भक्ति का प्रसार इतना अधिक था कि सन्त सम्प्रदाय मे भी राम और उनकी भक्ति का रूप स्वीकार किया गया। यह बात दूसरी

रूप वर्ण कैसो तडका को।
ऐसो कहा बखानो जाको।
अनहद गरजै नभ झरै, दामिनि ज्योति उजास।
रामचरण सुनि सायरा, हसा करत निवास।
सायर तट हस बैठा जाई।
सायर हंस मे रह्या समाई।" —अ० वा०, पृ० २०७।

१. वही, पृ० २०८।

है कि राम का नाम ही संतमत मे मान्य हुआ, राम का व्यक्तित्व नही। राम के ब्रह्म रूप को विस्तार देने के लिए एक ओर अवतार और मूर्ति का खण्डन किया गया और दूसरी ओर राम के अनेकानेक नाम तथा उनके निर्गुण रूप पर अधिक बल दिया गया।"[१]

डॉ० वर्मा के इस दृष्टिकोण की और भी स्पष्टता संत विनोबा की इन पंक्तियो से प्राप्त होती है जिसे 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखको ने उद्धृत किया है—"कुछ ध्यानी नाम के साथ सगुण निराकार का ध्यान करते है। अक्सर हम जहाँ निर्गुण-निराकार को छोडते है, सगुण-साकार मे आ जाते है। लेकिन इन दोनो के बीच सगुण-निराकार की भी एक भूमिका होती है। इसमे भगवान को निराकार मानते हुए भी दया, वात्सल्य आदि अनन्त गुणों के परम आदर्श के तौर पर माना जाता है।"[२] वस्तुत. निर्गुण निराकार भगवान मे आदर्श गुणों का आरोप वैष्णव भक्ति की भावधारा का प्रभाव है। सन्तो की भक्ति-साधना का अध्ययन करते समय उक्त विचार पर दृष्टि रखना नितान्त आवश्यक है।

स्वामी रामचरण की भक्ति-समीक्षा के संदर्भ मे यह ध्यान देने योग्य है कि स्वामी जी ने रामावत वैष्णव-सम्प्रदाय मे दीक्षा ली थी। उनकी गुरु गद्दी दातडा की वैष्णव गद्दी है। उनके गुरु स्वामी कृपाराम जी परम वैष्णव सन्त थे जिनकी स्वामी जी ने अपनी 'अणभै-वाणी' एव अन्य ग्रथो मे भूरि-भूरि प्रशसा की है। स्वामी रामचरण के जीवन-वृत्त से यह भलीभाँति स्पष्ट है कि वे अपने विरागी जीवन के आरम्भ मे एक रामानन्दी साधु के रूप मे विख्यात थे और बाद मे निर्गुणोपासक हुए। अत. स्वामी जी के भक्ति विषयक दृष्टिकोण पर वैष्णव प्रभाव स्वाभाविक है। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखको ने लिखा है कि—"इस दृष्टि से स्वामी रामचरण जी की वाणी मे भगवान का सगुण-निराकार रूप आया है, पर, सगुण होते हुए भी वह अलिप्त है—व्योमवत्; यही उसका वैशिष्ट्य है और यही मध्य भूमिका है।"[३]

स्वामी रामचरण की दृष्टि में भक्ति

महिमा

स्वामी रामचरण के विशाल साहित्य मे सर्वत्र-भक्ति-भावना का आरोपण मिलता है। स्वामी जी ने भक्ति की श्रेष्ठता का अनुभव किया है। उनकी दृष्टि मे भक्ति से सभी कुछ सम्भव है। 'कवित भक्ति महिमा को अंग' मे भक्ति की महिमा का गायन करते हुए वे कहते है कि भक्ति के प्रभाव से सूखा सरोवर पल भर मे जलपूरित हो सकता है और भरापूरा जलाशय उसी क्षण सूख भी सकता है। जलाशय ऊसर मे परिणत हो सकता है।

---

१. संपादक—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड), पृ० २०७।
२. श्री केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ८९-९०।
३. वही पृ० ९०।

राक्षसकुलोद्भव प्रह्लाद 'भक्ति के खंभ' से ही उजागर हो गया और राजा उग्रसेन का पुत्र कंस दुर्बुद्धि के कारण असुर हो गया। स्वामी जी की दृष्टि में भगवान की गति वर्णनातीत है, वह अनहोनी को होनी में बदल देता है और जो होनी है वह विला जाती है—

"सूका सरवर भरै भर्‌या पलमाहि सुकावै।
सर सूं ऊसर होय उसर्‌या सर होय जावै।
राखस कुल प्रह्‌लाद भक्ति के खंभ उजागर।
उग्रसेन सुत कंस भये आसुर बुधि आगर।
रामचरण कहिए कहा हरिगति लिखी न जाय।
अँणहोणी होणीं करै होणीं जाय विलाय।"[1]

यह भक्ति ही है जिसकी महिमा में ध्रुव स्वर्ग को सुशोभित कर रहे हैं और सप्तर्षि उनकी परिक्रमा में रत हैं। भगवान तो अपने भक्त के प्रेम के भूखे हैं, इसीलिए तो उन्होंने ब्राह्मण और ऋषियों को छोड़कर शबरी का जूठन लिया। दुर्योधन का यज्ञ त्यागकर विदुर का 'साग' ही खाया।—

"ध्रू राजत वैकुण्ठ सप्त परिक्रमा देवैं।
बड़े विप्र ऋषि नाइ, झूठ शबरी की लेवैं।

दुर्योधन जिग त्याग विदुर को साग ही पायो।"[2]

स्वामी जी ने बड़े निःसंकोच शब्दों में कहा कि हरिभक्त के बिना कुल की उत्तमता व्यर्थ है। यदि यवन और चाण्डाल भक्त हैं तो उत्तमकुलीन भी उनकी तुलना में नहीं आ सकते। भगवान का भजन करने वाले ऊँच-नीच सभी समान हैं। भक्ति की दुनियाँ में सर्वश्रेष्ठ जाति भक्तों की होती है। भक्ति-भावना से रहित ऊँच और श्वपच में कोई भेद नहीं—

"उत्तम कुल किस काम जहाँ हरि भक्ति न होई।
भक्त जवन चंडार तास तुलि और न कोई।

ऊंच नीच हरि कूं भजै सो ही उत्तम जान।
रामचरण हरिभजन बिन ऊँचहि श्वपच समान।"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० १२६।
२ वही।
३. वही।

इसी अग मे उन्होने हनुमान, विभीषण, अजामिल, अबरीष आदि अनेक भक्तो की चर्चा की है। इसी सन्दर्भ मे स्वामी जी कहते है कि हरिभक्ति के बिना सभी साधन निरर्थक है—

"रामचरण हरि भजन बिन साधन सब बेकाम।
तातें साधन साधि कै निशिदिन रटिये राम।"[1]

ग्रथ 'अणभो विलास' के तृतीय प्रकरण मे 'चौरासी की धारा' के इलाज रूप मे ज्ञान, भक्ति और वैराग्य को महापद घोषित करते हुए भक्ति को सर्वश्रेष्ठ निरूपित करते है। उनके अनुसार अन्य साधन भय-भरित हैं, एक भक्ति ही भय रहित है—

"चोरासी की धारा भारी, जाको यह इलाजा।
ज्ञान भक्ति वैराग्य महापद, जानो धर्म जिहाजा।
सो अब सुणों कहूं गति जाकी, पाकी बुधि कर भाई।
जाकी शाख निगम नित गावें, सो गुरुदेव बताई।
दृढ़ता सेती उर मैं धरिये, करिये कारज भाई।
और सकल साधन भय भरिया, भक्ती निर्भय भाई।"[2]

ग्रंथ 'जिज्ञास बोध' के द्वितीय प्रकरण मे स्वामी रामचरण भक्ति को 'भव नीर' के पोत के रूप मे निर्दशित करते है जिस पर चढकर अनेक स्त्री-पुरुष पार उतरे है। भक्ति के समान तीनो लोक मे दूसरा कोई धर्म नही। अनन्त पुण्य, पाठ, तप, जाप, यज्ञ, वेद विद्या, योग-साधना, तीर्थ, दान, स्नान, पर्व आदि तुलना मे भक्ति की बराबरी नही कर सकते। षट्दर्शन, वर्णाश्रम-धर्म की साधना भले ही कीजिए पर बिना भक्ति के भगवान् मे प्रेम नही होता—

"भक्ति भवनीर पर जांन ये पोत है बहुत नर नारि चढ़ि पार हूवा।
भक्ति सों धर्म तिहुं लोक में को नही भक्ति मधि सब नांहि जूवा।
अनन्त पुंन पाठ तप जाप जज्ञादि से वेद विद्या पढ़ै जोग धारा।
तीरथां दान सनान पव्यां तणो तोलिए भक्ति सम नांहिं सारा।
दर्शणी वरण आश्रम का धर्म भल साधिये भक्ति बिन प्रेम नांही।
रामही चरण कोउ बरण के आतमा भये जग पार मिज भक्ति मांही।"[3]

---

१ अ० वा०, पृ० १२६।
२ वही, पृ० २२१।
३ वही, पृ० ५२५।

ग्रंथ 'अमृत उपदेश' के तीसरे प्रकाश में स्वामी रामचरण भक्ति को 'नित्यधर्म' की सज्ञा देते हुए उसे अगाध बताते है। भक्ति से पावनता मिलती है, यह भ्रमविनाशिनी एव कर्म की मलिनता दूर करती है, शुद्ध चित्त मे ही इसका ग्रहण होता है—

"भक्ति सो अगाध कहे बेद रु पुराण साध,
ताहू को न अन्त होय जोय धर्म नित्त है।
पावन करन सब हरन मलीन कर्म,
भ्रम को विनाश करै धरै शुद्ध चित्त है।"[1]

स्वामी जी हरिभक्ति को मानव की ऋतु कहते हैं जिसे करने से मनुष्य पावन होता है—

"नर की ऋतु हरि भक्ति है, कियास पावन होय।
रामचरण निज भक्ति बिन, पावन करै न कोय।"[2]

रामभक्ति की गगा के अवगाहन से ही मनुष्य निर्मल होता है, गगा, गया के स्नान निर्मलता नही प्रदान कर सकते। रामभक्ति की भागीरथी मे स्नान करके निर्मल हुए भक्त की प्रसिद्धि होती है, बखान होता है पर गगा गया के स्नानार्थी को कौन जानता है? भक्ति मे ऊँच-नीच के सभी कर्मों को धो डालने की क्षमता है—

"रामचरण गंगा गया निर्मल करै न कोय।
रामभक्ति भागीरथी करै स निर्मल होय।
करै स निर्मल होय, सबै विख्यात बखाणै।
गंगा गया स्नान किया ताहि कोइ न जाणै।
ऊँच नीच कुल का कर्म भक्ती डारै धोय।
रामचरण गंगा गया निर्मल करै न कोय।"[3]

ग्रथ 'विश्वास बोध' के चतुर्थ प्रकरण मे स्वामी जी रामभक्ति की सूक्ष्मता का निरूपण करते हैं। उनकी दृष्टि मे 'रामभक्ति' महाक्षीण' (अति सूक्ष्म) है, इसे वही कर सकता है जो सूक्ष्म हो, यह भक्ति स्थूल मन की साधना का विषय नही है—

"रामभक्ति महाक्षीण है, क्षीणा क्षीणी सोय।
मोटा मन सूं ना सधै, कोइ साधै क्षीणा होय।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० ४४३।
२. वही।
३. वही
४. वही, पृ० ६७२।

इसी प्रकार ग्रथ 'दृष्टान्त सागर' मे अनेक दृष्टान्तो द्वारा भक्ति की महिमा स्वामी जी ने गायी है। स्वामी रामजन जी की टीका से इन दृष्टान्तो के गूढार्थ की जानकारी होती है। स्वामी जी के सम्पूर्ण साहित्य वचनिका मे भक्ति की प्रमुखता है।

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य के प्रतीक

स्वामी रामचरण ने ज्ञान, भक्ति और वैराग्य तीनो मे भक्ति को ही प्रमुखता दी है, यह पीछे स्पष्ट किया जा चुका है। ग्रथ 'अणभो विलास' के तीसरे प्रकरण मे ज्ञान, भक्ति और वैराग्य, तीनो की विशेषता[1] निरूपित करते हुए कवि ने ऋतु प्रतीक के द्वारा तीनो की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की है—

"शीत सरस ऋतु शीत मे ग्रीषम अधिक तपांहि।
तब समझ्या ऐसें कहै पावस अति वर्षांहि।
पावस अति वर्षांहि वहन मन मोद उपावै।
यूं प्रथम ज्ञान वैराग्य उभय मिलि भक्ति बधावै।
ये अंगवांणी आगम कहै जांणे सो लखि जांहि।
शीत सरस ऋतु शीत मे ग्रीषम अधिक तपांहि।"[2]

शीत, ग्रीष्म और पावस, इन तीन ऋतुओ मे शीतकाल अतीव शीतल, ग्रीष्म अतीव तापमय और पावस अति वृष्टि की ऋतु है। यद्यपि पावस मे अत्यधिक वृष्टि होती है पर वह ऋतु मन मे मोद बढाती है। इनमे शीत ज्ञान का, ग्रीष्म वैराग्य का और पावस भक्ति का प्रतीक है। इस प्रतीक मे वर्षा अर्थात् भक्ति को मन मुदित करनेवाली कहा गया है। निस्सन्देह भक्ति, वैराग्य और ज्ञान से अधिक महिमामयी सिद्ध होती है। इन तीनो ऋतुओ के भेद से ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का भेद स्पष्ट हो रहा है और भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन भी। स्वामी जी के निम्नलिखित 'दृष्टान्त' एवं उसकी टीका वचनिका द्वारा यह विषय भलीभाँति स्पष्ट हुआ है—

---

१. "ज्ञान भक्ति वैराग्य की खरा खरी यह बात।
आपा अर्पै आप कू करै नही परघात।
करै नही परघात भक्ति जहाँ भर्म न कोई।
ज्ञान सबै निर्दोष त्याग वैराग्य स होई।
रामचरण जे पहुँचसी निर्भय पदकुशलात।
ज्ञान भक्ति वैराग्य की खरा खरी यह बात।"—अ० वा०, पृ० २२१।

२. वही।

"च्यार भ्रात आगे चलै च्यार लार मधि च्यार।
च्यार सुलखणा कर रहै आठतणू अधिकार।
आठ तणू अधिकार च्यार बिन आदर नाही।
आठ वाट होय जाय बालहवा निजर छिपाही।
च्यार सध्या आठा मिलै सज्जन हाथ पसार।
च्यार भ्रात आगे चलै च्यार लार मधि च्यार।"[1]

इस मूल प्रतीक को 'वाणी' मे टीका वचनिका[2] द्वारा स्पष्ट किया गया है। प्रतीक का स्पष्टीकरण यहाँ दिया जाता है।

एक वर्ष मे १२ मास होते हैं। इस एक वर्ष को पिता और १२ महीना को पुत्र माना गया है। चार-चार महीने की एक-एक ऋतु हुई, यथा—चार महीने की ग्रीष्म ऋतु, चार महीने की पावस और शेष चार महीने की शीत ऋतु। वर्ष पिता के १२ मास-पुत्रो को तीन भागो मे सगठित कर दिया गया है। इन १२ पुत्रो के १२ लक्षण है जिनका ब्यौरा चार-चार के तीन विभागो मे अलग-अलग प्रस्तुत किया गया है। स्वामी जी धूपकाल को वैराग्य, वर्षाकाल को भक्ति और शीतकाल को ज्ञान का प्रतीक मानते है। फिर प्रत्येक मास को उसके साधना-भेद से जोडते है। हर महीना अपनी ऋतु के अन्तर्गत क्रमश वैराग्य, भक्ति और ज्ञान की विभिन्न साधना अवस्थानो का प्रतीक है।

१ **धूपकाल**—यह वैराग्य का प्रतीक है।[3] इसके अन्तर्गत स्वामी जी ने फाल्गुन, चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठ के महीनो को रखा है। ये चारो महीने वैराग्य के चार अवस्थानो के प्रतीक है। यथा—

(क) फागुन—पतझड का महीना है। जैसे वृक्ष फागुन मे पत्तो का त्याग कर देते है, वैसे ही साधक वैराग्य लेकर सासारिक आचरण से मुक्त होता है। वर्णाश्रम, कनक, काम का परित्याग करता है।[4]

(ख) चैत्र—धूपकाल का द्वितीय मास चैत्र चित्त की एकाग्रता का प्रतीक है।[5]

---

१ अ० वा०, पृ० २२१।
२. वही, पृ० २२१-२२।
३ "धूपकाल वैराग्य कहिये"। वही, —पृ० २२१।
४ "प्रथम फागण मास सो फकीरी लेवै,
ज्यौं द्रुम पानन को त्याग करै,
वर्णाश्रमादिक कनक काम परिहार करै,
निर्वृत्त होय मन वचन काय कर इकत पणौ विचारै।"—वही, पृ० २२१-२२।
५ "द्वितीय चैत्र, सो चित्त एकाग्र करै।"— वही, पृ० २२२।

(ग) वैशाख—साधक लोक और परलोक दोनों की वासना का त्याग करता है।[1]

(घ) ज्येष्ठ—यह मास ताप की चरम सीमा है। यह महीना नदी, नाले, धरती सभी को सुखा देता है। साधक इसी प्रकार वैराग्य द्वारा शरीर के गुण सुखा देता है। शरीर एवं मन को तपा कर विरहातुर होकर अतिशय वैराग्य में लीन होता है। इस प्रकार वैराग्य दृढ होता है।[2]

२ **वर्षाकाल**—भक्ति का प्रतीक है। वैराग्य की उष्णता भक्ति रूपी वर्षा से शान्त होती है।

(क) अषाढ—राम भक्ति की आतुरता का प्रतीक है। यह बीजारोपण का महीना है। भक्त नाम रूपी बीज गुरु से प्राप्त करता है। हृदय की धरती में रसना की नायला से रामनाम रूपी भक्ति का बीज साधक बोता है। प्रेम की वर्षा से उसका सिन्चन होता है।[3]

(ख) श्रावण—जैसे सावन के महीने में धरती पर हरियाली छा जाती है, वैसे ही शरीर में भजन द्वारा भक्ति की झडी लग जाती है, धरती की हरियाली सदृश शरीर की कान्ति बढ जाती है। हृदय में भजन का अकुरण होता है।[4]

(ग) भाद्रपद—पावस का यौवन-काल है। घटाएँ उमडती हैं, गरजती हैं, बिजली चमकती है, नीर बरसता है, वैसे ही साधक के हृदय में प्रेम की घटा उमडती है, आनन्द की गाज सुन पडती है, नाम बिज्जु का आलोक भासित होने लगता है, अमिय सदृश प्रेमरस नीर की वर्षा होने लगती है। हृदय की धरती गद्‌गद्‌ हो

---

१ "तृतीये वैशाख, सो वे नाम दोय लोक की वासना तजै।"—अ० वा०, पृ० २२२।

२ "चतुर्थ जेठ, सो जेठ पृथ्वी का नदी निवाण सोषन्त करै, जैसे ही विरागी जन तप वैराग्य कर शरीर का गुण शोषन्त करै, जत्त पणो विचारै, मन तो निवाण, इन्द्रीनाला, नदी, तिनके विकार, शोषन्त करै, विरह वियोग उपजाय, तन मन तपायमान करै.. ऐसे प्रथम वैराग्य की दृढता होय।" —वही।

३. "अषाढ मास जो राम जी की भक्ति की आतरि कहिये, सो गुरु बीज रूपी रामजी को नाम प्राप्ति करै...अरु वर्षा प्रेम के आगम कुमाई करिये...,रसना रूपी नायला करि कै, ज्यू हिरदा रूपी भौमिका में राम कृपा तै उदय होय।" —वही।

४. "द्वितीये श्रावण मास में पृथ्वी हरियाली होत है, तैसे ही शरीर मध्ये भजन को झड लागत है, तब शोभावान दीषत है, तबै भजन अकुर उदयाकार होत है, हिरदा स्थान के विषय।—वही।"

जाती है, नेत्र अश्रु विमोचन करते है, रोमाञ्च होता है। भजन विकास के साथ प्रेमविह्वलता बढती है।[1]

(घ) आसोज—जहाँ तहाँ निर्मल नीर भरा रहता है। कृषि भलीभाँति उपजती है—अकाल की अवस्था समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार साधक भक्ति की निर्मलता से पूरित होकर महाकाल की दशा से मुक्त होकर परमात्म पद को प्राप्त करता है।[2]

जिज्ञासु के जीवन मे भक्ति की वही महिमा है जो मानवजीवन मे पावस की। ग्रीष्म की तपी धरती पर अच्छी वर्षा का जो प्रभाव होता है, वही वैराग्य से तपे साधक के हृदय पर भक्ति का। आश्विन के महीने मे जैसे अच्छी वर्षा के परिणामस्वरूप खेतो मे अन्न तैयार दीखता है, वैसे ही भक्ति के विभिन्न अवस्थानो से गुजरा जिज्ञासु का हृदय प्रौढ होकर ज्ञान ग्रहण करने के लिए ज्ञान की परिधि मे प्रवेश करता है। यह विवरण नीचे प्रस्तुत है।

३ **शीतकाल**—यह ज्ञान का प्रतीक है।[3] इसके अन्तर्गत स्वामी जी ने कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष और माघ महीनो को लिया है। इन चारो महीनो के प्रतीक द्वारा कवि ने ज्ञान के अवस्थानो को स्पष्ट किया है। वर्षान्त के बाद जैसे शीत की अनुभूति होती है, वैसे ही भक्ति की प्रौढ़ता ज्ञान का अनुभव कराती है।

(क) कार्तिक—शुभ कार्यों के आरम्भ का यह महीना है। साधक अब ज्ञान क्रियाओ मे तत्पर होता है।[4]

(ख) मार्गशीर्ष—अचञ्चल भाव से मन ज्ञान की एकरसता मे निमग्न हो जाता है।[5]

(ग) पौष—यह मास प्रपञ्चविहीन होने का प्रतीक है। साधक प्रपञ्चरहित होकर ज्ञान की शीतल अनुभूति करता है।[6]

---

१ "आगम भाद्रपद मास, प्रेम घटा को चढ़ाव होत है, कैसो होत है बरण वामैं आवै नही, ये उमग आनद रूपी तो गाज होती है, प्रकाश रूपी बीज खिवत है, अमृतरूपी प्रेमरस-नीर वर्षत है, त्यू त्यू भौमि रूप हीयो गद्‌गद् होत है, विह्वल होत है, नेत्रा अश्रुपात चलत है, रोमाच खडे होत है, ज्यू ज्यू भजन रूपी शाख बधत है, त्यू त्यू प्रेम छोल मै मगन होत है।" —अ० वा०, पृ० २२२।

२ "आसोज निर्मल नीर जहाँ तहाँ भरिया, अमूरत शाख भली तरह सू नीपजी, वहाँ जगत मे तो काल को माथो टूटो, यहाँ महाकाल को दड छूटो, आत्मा-परमात्मा का पद नैं प्राप्त हवौ।" —वही।

३. "तृतीये शीतकाल ज्ञान कहिये है।" —वही।

४ "प्रथम तो कार्तिक मास ज्ञान क्रिया सहित होय" —वही।

५ "द्वितीय मार्गशिर, हरसौं मन चलायमान नही, नहचल वृत्ति एकरस है।"—वही।

६ "तृतीये पौष, सो जन काहू का प्रपच मे फसै नही।" —वही।

(घ) माघ—शीतकाल का अन्तिम महीना साधक द्वारा ज्ञान प्राप्ति का अन्तिम अवस्थान है। अति सुन्दर शोभायुक्त ज्ञान की प्राप्ति साधक को होती है।[१]

डॉक्टर अमरचन्द वर्मा ने इस प्रतीक को एक सारणी द्वारा स्पष्ट किया है। सारिणी यथावत् प्रस्तुत है।[२]

वर्ष के १२ मास	साधना के १२ तत्व
१. ग्रीष्मकाल=वैराग्य	
(१) फाल्गुन	(१) जन विहार त्याग व वैराग्य धारण
(२) चैत्र	(२) एकाग्रता
(३) वैशाख	(३) वासना त्याग
(४) ज्येष्ठ	(४) वैराग्य दृढ़ता
२. वर्षाकाल=भक्ति	
(५) आषाढ	(५) गुरु से रामनाम रूपी बीज ग्रहण तथा हृदयरूपी भूमि मे बोना
(६) श्रावण	(६) शरीर मे भजन की झड लगना, अकुर की उत्पत्ति
(७) भाद्रपद	(७) आनन्द की गणना तथा प्रकाशरूपी बिजली
(८) आश्विन	(८) महाकाल से मुक्ति तथा परमपद की प्राप्ति
३. शीतकाल=ज्ञान	
(९) कार्तिक	(९) क्रिया सहित ज्ञान
(१०) मार्गशीर्ष	(१०) निश्चयवृत्ति
(११) पौष	(११) प्रपञ्च रहित
(१२) माघ	(१२) सुन्दर शोभावान ज्ञान

इस प्रतीक द्वारा स्वामी जी ने ज्ञान, भक्ति और वैराग्य को स्पष्ट तो किया ही है, साथ ही टीका वचनिका के अन्त मे यह भी वे लिखते है कि जैसे अच्छी वर्षा के चार मास

---

१ "चतुर्थ माघ महीनों, सो महासुंदर शोभावान।"—अ० वा०, पृ० २२२।

२. डॉ० अमरचन्द वर्मा : स्वामी रामचरण—एक अनुशीलन, पृ० १८५।

के कारण शेष आठ महीनों का आदर होता है वैसे ही भक्ति में ज्ञान और वैराग्य की महत्ता है। बिना भक्ति के ज्ञान और वैराग्य को फोटक समझना चाहिए। बिना भक्ति के ब्रह्मपद की प्राप्ति नहीं होती।[1]

भक्ति निरूपण

'शांडिल्य भक्ति सूत्र', 'नारद भक्ति सूत्र' एवं श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों में भक्ति का भली प्रकार निरूपण मिलता है। श्री जयदयाल गोयन्दका ने अपनी लघु पुस्तक 'नवधा भक्ति' में भक्ति विवेचना के सन्दर्भ में महर्षि शांडिल्य और देवर्षि नारद को उद्धृत किया है।[2] उक्त दोनों ऋषियों के अनुसार भक्ति, ईश्वर में परम अनुराग या परम प्रेम का नाम है। श्रीमद्भागवत में भक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—"सांसारिक विषयों का ज्ञान देनेवाली इन्द्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति निष्काम रूप में भगवान में जब लगती है, तब उस प्रवृत्ति को भक्ति कहते हैं।"[3]

स्वामी रामचरण ने अपने ग्रन्थ 'अमृत उपदेश' के तृतीय प्रकाश में भक्ति की महिमा के वर्णन के सन्दर्भ में भक्ति के प्रकारों की चर्चा की है। वे भक्ति के तीन भेद बतलाते हैं—

१ कनिष्ठ भक्ति
२ मध्यम भक्ति
३ उत्तम भक्ति

"व्यास कही भागवत में भक्ती तीन प्रकार।
कनिष्ट उत्तम मध्यमा जाकूं जो अधिकार।
जाकूं जो अधिकार असमर्थ्यो कनिष्ट गाई।
उत्तम उत्तम जनन समझ कू मधि फुरमाई।
पैदासी जाणै नहीं जो मतलब के यार।
व्यास कही भागवत मे भक्ती तीन प्रकार।"[4]

---

१ अ० वा०, पृ० २२२।

२ "महर्षि शांडिल्य ने कहा है—'सापरानुरक्तिरीश्वरे' ईश्वर में परम अनुराग यानी परम प्रेम ही भक्ति है।' देवर्षि नारद ने भी भक्तिसूत्र में कहा है—'सात्वस्मिन् परम-प्रेमरूपा' उस परमेश्वर में अतिशय प्रेमरूपता ही भक्ति है। 'अमृतस्वरूपा च' और वह अमृत रूप है।"—श्री जयदयाल गोयन्दका . नवधा भक्ति, पृ० ४।

३ डॉ० दीनदयालु गुप्त अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५२९।

४. अ० वा०, पृ० ४४३।

भक्ति के इस भेद-निरूपण में स्वामी रामचरण भागवत को सन्दर्भित करते है। वस्तुतः भागवत मे भक्ति पर जो शास्त्रीय समीक्षा मिलती है, उससे स्वामी जी के इस विवेचन से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। किन्तु उन्होंने निरूपित भेदों को भलीभाँति स्पष्ट किया है। उनके अनुसार **कनिष्ठ भक्ति** में प्रतिमा-सेवा ही हरि-सेवा है, **मध्यम भक्ति** में गुणातीत होकर निरञ्जन देव का भजन अपेक्षित है और **उत्तम भक्ति** में साधक सकल कामनाहीन होकर निजस्वरूप हो जाता है। इस उत्तम भक्ति को स्वामी रामचरण ने 'अनूपा' कहा है—

> "कनिष्ट पैडी प्रत्थमी प्रतिमा मैं हरि सेव।
> दूजी मध्य गुण जीतिबै भजै निरजन देव।
> भजै निरंजन देव तीसरी उत्तम अनूपा।
> सकल कामना हीन भये जन निज्ज स्वरूपा।
> पैंदासी पदास परि भजन सेव नांहि भेव।
> कनिष्ट पैडी प्रत्थमी प्रतिमा मैं हरि सेव।"[1]

स्वामी जी उत्तम भक्ति को श्रेष्ठ मानते है, मध्यम में निरञ्जन के भजन का विधान है पर कनिष्ठ मे प्रतिमा सेवा की व्यवस्था है, अतः कनिष्ठ भक्ति पर स्वामी जी टिप्पणी लगा ही देते हैं। कनिष्ठ भक्ति की प्रतिमा सेवा बाल-बुद्धि को बहलाने के लिए है क्योंकि बालक इतना विकसित बुद्धि नहीं होता कि वह सन्तों का ज्ञान ग्रहण कर सके—

> "बाल बुद्धि समझै नहीं, संत जनां को ज्ञान।
> ताकूं ये बिलमावणी, कनिष्ट प्रतिमा थांन।"[2]

दशधा-भक्ति

वैष्णवभक्त कवियों ने श्रीमद्भागवत मे उल्लिखित नवधा भक्ति[3] की खूब चर्चा तो की ही है, साथ ही दसवी भक्ति—प्रेमलक्षणा भक्ति—का भी उल्लेख किया है। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने सूरदास द्वारा इसके उल्लेख किये जाने की बात लिखी है—

---

१ अ० वा०, पृ० ४४३।

२ वही।

३ "श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।"
श्री जयदयाल गोयन्दका—नवधा भक्ति, पृ० ७।

"श्रवण कीर्तन स्मरण पादरत, अरचन वदन दास।
सख्य और आत्मनिवेदन, प्रेम लक्षणा जास।"[1]

अष्टछाप के दूसरे प्रसिद्ध कवि परमानन्ददास ने भी दशधा भक्ति का उल्लेख अपने एक पद में किया है। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने अपने शोधप्रबन्ध में उस पद को उद्धृत किया है—

"ताते दसधा भक्ति भली।
जिन जिन कीनी तिनके मन ते नेकु न अनत चली।"[2]

स्वामी रामचरण नवधा भक्ति के समक्ष दशधा का महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार नवधा भक्ति करके भक्त सुलझता नहीं, प्रत्युत् उलझता है। इससे संशय-संताप आदि की उत्पत्ति होती है। वे नवधा को त्रेता-द्वापर की भक्ति कहते हैं और कलियुग के लिए दशधा का विधान करते हैं—

"करि करि नवधा भक्ति भक्त उरझात है।
शासो सिंह संताप सर्क उपजात है।
उर तृष्णा की तावत ज्ञान जरात है।
परिहा क्यू ही कही न जाय अनोखी बात है।
नवधा त्रेता द्वापरा जो दशधा उपजै सोय।
कलिजुग का भक्ता करै, सो जगत रूप क्यू होय।"[3]

नवधा में हृदय-तृष्णा के ताप से ज्ञान जलता है, ऐसा क्यों होता है, यह अनोखी बात है, पर यदि भक्त दशधा को अपनाये तो वह 'जगत रूप'[4] नहीं होगा।

अब यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि क्या वैष्णव भक्तों द्वारा चर्चित दशधा भक्ति ही स्वामी रामचरण की दशधा भक्ति है या दोनों में भिन्नता है? श्रीमद्-भागवत में साधक की प्रकृति के अनुसार भक्ति के चार भेद उल्लिखित हैं—१ तामसी, २ राजसी, ३. सात्विकी और ४ निर्गुणा। इस निर्गुणा भक्ति को 'सुधासार भक्ति' भी कहा गया है। "सुधा भक्ति करने वाला भक्त मुक्ति को नहीं चाहता, यह अनन्य भक्त कुछ नहीं माँगता, इसका न कोई शत्रु होता है न मित्र, इसको संसार की माया का सन्ताप

---

१ डॉ० दीनदयालु गुप्त अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५४३।

२ वही।

३. अ० वा०, 'समता निवास', द्वितीय प्रकरण, पृ० ८६९।

४. स्वामी जी के अनुसार जगत का अर्थ जिसका जय गत हो जाय—लेखक।

नहीं होता।"[1] श्रीमद्भागवत में वर्णित निर्गुणा भक्ति की परिभाषा का अनुवाद डॉ० दीनदयालु गुप्त इस प्रकार करते है—"जो जन मेरे गुणों के श्रवण से, मुझको सब में समान जानता है और अपनी कर्मगति को अविच्छिन्न भाव से मुझमें अर्पण करता है, उस आसक्ति को निष्काम या निर्गुणा भक्ति कहते है। ये भक्त मेरी दी हुई पाँच प्रकार की मुक्ति को भी ग्रहण नहीं करते।"[2]

यह निर्गुणा (निष्काम) भक्ति जिसे सूर 'सुधासार भक्ति' की संज्ञा देते है, प्रेम लक्षणा भक्ति है।[3] स्वामी रामचरण नवधा भक्ति के नौ अंगों के ऊपर दशधा भक्ति को सबका सार कहते है। यदि दशधा (अनन्य भक्ति या शरणागति) भक्ति नहीं तो सब व्यर्थ समझना चाहिए। बिना दशधा भक्ति के नवधा भक्ति के सभी व्यापार फीके हैं। अत: दृढतापूर्वक एकतानता धारण कर राम के भजन में रत होना चाहिए। यही नामोच्चारण दशधा भक्ति है—

"नव अंग नवधा भक्ति के जापर दशधा सार।
जे दशधा प्रापति नहीं तो सबही जाण असार।
तौ सबही जाण असार सार जिन कर्तब फीकौं।
देखो हिये बिचार नाम नवधा शिर टीकौ।
रामचरण भज राम कूं धार्‌या दृढ़ इकतार।
नव अंग नवधा भक्ति के जापर दशधा सार।"[4]

स्पष्ट यों कि तन्मयतापूर्वक राम का नामस्मरण ही दशधा भक्ति है। इस तन्मयता के कारण ही इसे प्रपत्ति भी कहा गया है। स्वामी जी की भक्ति निष्काम भक्ति है। 'अणभौ विलास' के तृतीय प्रकरण में 'साची भक्ति' को 'अलूणी शिला', निर्वासना, काम-कामना रहित बताते हैं—

"रामचरण साची भक्ति शिला अलूणी जान।
करैज होय निर्वासना, काम कामना हान।"[5]

भक्ति निरूपण में स्वामी जी कहते हैं कि उत्तम भक्ति में भक्त सकल कामनाहीन होकर निजस्वरूप हो जाता है।

---

१ डॉ० दीनदयालु गुप्त अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५३९।
२ वही।
३ 'सूर ने प्रेमलक्षणा भक्ति को सुधासार भक्ति भी कहा है।'
—वही; पृ० ५४५।
४. अ० वा० (समता निवास, द्वि० पृ०), पृ० ८७०।
५ वही, पृ० २२३।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह दशधा भक्ति जिसकी श्रेष्ठता स्वामी रामचरण प्रतिपादित करते हैं, श्रीमद्भागवत की निर्गुण (निष्काम) भक्ति है जिसे सूर सुधासार भक्ति कहते हैं और जिसे परमानन्ददास भी 'दसधा' कहते हैं। इससे एक बात और सिद्ध होती है कि सन्तों की भक्ति-भावना पर वैष्णवता का जो प्रभाव पड़ा था उससे स्वामी रामचरण भी अछूते नहीं, वरन् पूर्ण प्रभावित हैं।

भाव-भक्ति

यद्यपि सन्तों का उपास्य निराकार ब्रह्म है, फिर भी वैष्णव भक्ति की भावचत्ता से सतकाव्य अछूता नहीं रह सका है। वैष्णव भक्ति-पद्धति की मान्यता है कि "भगवान सर्वदा सर्व भाव से भजनीय है।"[1] भावभक्ति के क्षेत्र में आकर सन्तों का उपास्य निर्गुण निराकार न रहकर सगुण निराकार का रूप ग्रहण कर लेता है, क्योंकि जब तक निराकार में सगुणता का आरोपण नहीं होगा दैन्य-प्रदर्शन, आत्मनिवेदन आदि की कल्पना असम्भव है। स्वामी रामचरण के साहित्य में भाव-भक्ति की दृष्टि से दास्य, माधुर्य एवं शान्त भक्ति के दर्शन होते हैं।

दास्य-भक्ति

अपने ग्रन्थ 'विश्राम बोध' के द्वितीय विश्राम में स्वामी जी दास्य-भाव द्वारा भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं। वे कहते हैं कि दास्य भाव की करुणा के साथ हृदय में निरञ्जन राम का ध्यान करो और नित्य उनकी शरण में रहो—

> "शिर सतगुरु उर रामनिरंजन, ऐसे ध्यानज धरना।
> रामचरण नित शरण रहिये, दासभावकरिकरुणा।"[2]

इसी ग्रन्थ में स्वामी जी 'दासभाव' शीर्षक के अन्तर्गत दास्य-भक्ति के विभिन्न पक्षों की चर्चा करते हैं। वे कहते हैं कि यदि दास होने की अभिलाषा है तो मैली आशा और ग्लानि का परित्याग करना आवश्यक है, श्याम में एकतान लगन लगाकर मुख से राम नाम ले और हृदय में भी राम को धारण करे। मन-वाणी की एकरसता दास्य-भक्ति में सर्वथा अपेक्षित है।[3] राम तो 'गरीब-निवाज' है पर कोई दास गरीबी ग्रहण तो करे—

---

१ डॉ० दीनदयालु गुप्त . अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, पृ० ५९७।

२ अ० वा०, पृ० ७८१।

३. "रामचरण तोसू कहू तू चित दे सुणियो कान।
दास होण की हूंस तोहि तजि मैली आश गिलान।
तजि मैली आश गिलान स्याम इकतार विचारो।
राम नाम मुख गाय सोही अन्तरगत धारो।

"राम गरीब निवाज है कोइ गहो गरीबीदास।"[1]

दास की महत्ता इसी मे है कि वह सदैव 'दासगी' मे रहे। निरन्तर दासभाव से साधनारत रहे, उसे छोड कर कही भी न जाय। दास को चाहिए कि केवल शारीरिक क्रिया के हेतु ही साधना छोडकर कही जाय, अन्य सभी समय साधनारत रहे। जब स्वय को उपास्य को अर्पित कर दिया तो फिर हृदय मे भिन्न आशा को स्थान कहाँ ? अत उसी की 'दासपदी' सही है जो निरन्तर 'दासगी' मे रहता है।[2] राम के दास को केवल राम का ही विश्वास रहता है, यदि दास राम को छोडकर किसी अन्य की आशा करता है तो फिर वह एकतान लगन का दास नही—

"राम तुम्हारा दास कै इक तुम्हरो ही विश्वास।
जे दास आश दूजी करै सो नहि इकतारी दास।"[3]

इसलिए 'दासपदी' की शोभा इसी मे है कि साधक उपास्य के प्रति आशा विश्वास का भाव धारण करे। भ्रमरहित होकर एकतान लगन लगावे, कर्म और कामना से विरत हो और दुराशा को खण्डित करे—

"श्याम आश विश्वास धार उर सोय रे।
राख एक इकतार भर्मना खोय रे।
मना मनोरथ कृत्य कर्म सब छांडिये।
परिहां दासपदी तब शोभ दुराशा खाडिये।"[4]

मनसा वाचा एकरस तो समर्थं होय विधान।
रामचरण तोसू कहू तू चित दे सुणियो कान।"
—अ० वा०, पृ० ७९१।

१. वही।

२ "दासपदी जाके सही जे सदा दासगी माहि।
श्याम साधना मै रहे तजि साधन कहू न जाहि।
तजि साधन कहू न जाहि जाहि तो तन किरिया कू।
और न करै उपाय चूक साधन बिरिया कू।
ज्या आपा अर्प्यो श्याम कू आन आश उर नाहि।
दासपदी जाके सही जे सदा दासगी माहि।"
—वही।

३. वही।

४. वही।

जब दास दासपदी मे लीन रहता है तभी श्याम हाथ से सम्हालता है, जब वह अलख अगम को अन्तर मे बसा कर सुमिरन करता है, तभी सनाथ होता है—

"दास दासगी मे रहू तब श्याम सम्हावै हाथ।
अलख अगम आंतर बसू सुमर्‌यां होय सनाथ।"[1]

दास अपनी निर्बलता के सहारे राम का बल प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार विजयी होता है और सबल अपने सामान का भरोसा लिये पराजय का वरण करता है। निर्बल के बल राम हैं और सबल का उसका सामान। कौरवों-पाण्डवों का उदाहरण प्रस्तुत कर कवि ने भगवान मे विश्वास की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।[2]

स्वामी जी की दास्य-भावना

स्वामी जी ने 'बीनती को अंग' के विभिन्न छन्द शार्षकों तथा अपने काव्य ग्रन्थो मे दास्य-भाव से अपने आराध्य को पुकारा है। अपने अवगुणो को स्वीकारते हुए दीन भाव से शरणागत होकर राम से उबारने का वह निवेदन करते है—

"बहु गुणवंता साईया मै अवगुण भर्‌या गुलाम।
जे चितवौ अजगुण दिशा तो नहीं कहू विश्राम।
तो नहीं कहूं विश्राम आप सब गुन्हा निवारो।
तुम बिन समर्थ और दूसरो नहीं सहारो।
दास दीन विनती करै शरण उबारो राम।
बहु गुणवता साईया मै अवगुण भर्‌या गुलाम।"[3]

दास अपने निवेदन मे अपनी पूरी जीवनचर्या को ही अवगुणमय बतलाता है, उसका हृदय अवगुणो की खान है, अवगुण करते वह अपने स्वामी से भी नही डरता। फिर

---

१. अ० वा०, पृ० ७९१।

२ "निबला केवल राम को अरु सबला बल सामान।
सामांन समर्थ कैरवा पडवां पखि भगवान।
पडवा पखि भगवान कहो हार्‌या कुण जीता।
सो छाना छिप्या न कोय सृष्टि ह्वै रहा बदीता।"
—वही०, पृ० ७८२।

३. वही, पृ० ७८१।

अपने 'गुणवंता रामजी' से 'अवगुणनिपात' के लिए प्रार्थना करता है।[1] उसका राम अन्तर्यामी है, उसके अन्तर में वह वास करता है, अतः अन्तर में उत्पन्न होने वाले गुण-अवगुण उससे कहाँ छिपे रह सकते हैं? अन्यत्र उसे छिपायें भी कहाँ? इसलिए दैन्य-भाव से विनय में तत्पर होता है।[2]

"राम रटावो राम जी तुम काम घटावो ताप।
भर्म उठावो जीव को कर्म कटावो पाप।
कर्म कटावो पाप छाप तुम्हरी निरबाहो।
और हटावो आश बासना सकल मिटावो।
ये अरज बीनती साम्हलो अधम उधारण आप।
राम रटावो राम जी तुम काम घटावो ताप।"[3]

'साखी बीनती को अंग' में वह अपने दीवान के समक्ष स्वयं को अनेक जन्मों का गुनहगार, खूनी-बन्दी आदि कहकर बन्धन काटने के लिए कृपा की याचना करता है—

"गुन्हगार बहोजन्म का, खूंनी बंदी वांन।
बन्दे ऊपर महरकर, काटो बंध दिवांन।"[4]

अपने रामदयाल के समक्ष अनाथ निराधार कहकर दास शीघ्र उनका साथ पाकर सनाथ एवं साधार होने की कामना करता है—

"तुम तो राम दयाल हो, मैं अनाथ निरधार।
रामचरण कह राम जी, वेग लगावो लार।"[5]

---

१ 'अवगुण ऊठत बैठता बोलत चालत खात।
अवगुण सोवत जागता अवगुण आवत जात।
अवगुण आवत जात रैण दिन अवगुण करिहूं।
उर अवगुण का खान श्याम के भय नहिं डरिहूं।
तुम गुणवंता रामजी अवगुण करो निपात।
अवगुण ऊठत बैठता बोलत चालत खात।"—आ० व०, पृ० ७८३।

२ "अन्तर्यामी राम जी तुम हो अन्तर माहिं।
गुण अवगुण अंतर ऊपजै सो तुम सैं छाना नाहिं।
सो तुम सैं छाना नाहिं कहो अब कहा दुराऊँ।
जो कोइ बाहिर होय जिनू सू कपट कमाऊँ।
जासैं करिहूं बीनती दीनपणो उपजाहिं।
अंतर्यामी राम जी तुम हो अंतर माहिं।"—वही।

३ वही।

४. वही, पृ० १०।

५ वही।

'चन्द्रायणा बीनती को अंग' में भक्त अपनी एक 'अरदास' मानने का निवेदन राम से करता है। स्वयं को कामी, कपटी, कूर कहने के बाद भी वह राम का अपना है। यदि राम ने हाथ छोड़ दिया तो वह बेसहारा हो जायगा, अतः वह अपनी सब खोटों के लिए क्षमा के साथ स्वामी की शरण चाहता है—

"राम एक अरदास हमारी मानियो।
कामी कपटी कूड़ आपणो जाणियो।
जे तुम छोड़ो हाथ ओर नही ओट जी।
परिहां रामचरण रखि सरण बक्ष सब खोट जी।"[1]

अविलम्ब दया एवं चरण शरण की इस याचना में दास्य भावना जैसे साकार हो उठी है—

"कीजै दया दयाल विलम नहि करो गुसांई।
सुरति रहै तुम माहि चरण तजि अंत न जाई।"[2]

भक्त अपनी एक और 'अरदास' में 'राम निरंजन देव' से उनके चरणकमल की सेवा की याचना करता है। उसे ऋद्धि-सिद्धि, मुक्ति कुछ भी नहीं चाहिए। उसे केवल 'अलख' की भक्ति चाहिए।[3] वह राम के नाम पर अनेक बार न्योछावर होता है क्योंकि राम उस निराधार का एकमात्र आधार है—

"राम तुम्हारे नाम की मैं वलि बारंबार।
रामचरण निरधार के एक राम आधार।"[4]

दास्य-भावना से सराबोर स्वामी रामचरण की इन पंक्तियों को पढ़कर यह आभास नहीं होता कि स्वामी जी निराकार की आराधना में रत हैं। जैसे कवि पुनः अपनी

---

१. अ० वा०, पृ० ७६।
२ वही, पृ० १४१।
३ "सुणो एक अरदास हमारी रामनिरंजन देव।
रामचरण कू दीजिये चरण कमल की सेव।
चरण कमल की सेव छाडि ऋधि सिधि नहिं मागै।
मुक्ति माहि मन काढि सुरति तुमही सू लागै।
भक्ति बिना कैसे लहै अलख तुम्हारा भेव।
सुणो एक अरदास हमारी रामनिरंजन देव।" —वही, पृ० १४१।
४. वही।

सगुण वैष्णवता के तट पर इस भावना की तरंगों में बहता-बहता पहुँच गया है। स्वामी जी का अधिकांश साहित्य इसी दास्य-भक्ति में ओतप्रोत है।

मधुर-भक्ति

"लोक में प्रेम के जितने भिन्न-भिन्न सम्बन्ध हो सकते है, उन सबको भक्तों ने लोक से हटाकर ईश्वर के साथ जोड़ा है, यहाँ तक कि ऐन्द्रिय विषयों में अनुरक्त लोगों को संसार-विषय से छुड़ाने के लिए भक्तिशास्त्र के आचार्यों ने ईश्वर को ही उनकी विषय-तृप्ति का साधन बनाया।"[1] माधुर्य भाव की भक्ति-साधना वैष्णव भक्त कवियों और निर्गुणोपासक संतों, दोनों को भायी है। अन्तर इतना ही है कि वैष्णव भक्तों ने परकीया-भाव से अपने आराध्य की उपासना विशेष रूप से की है जबकि संत कवियों ने स्वकीया भाव को ही अधिक महत्त्व दिया है। संयोग-वियोग के अनेक सूक्ष्म चित्र इन भक्तों की वाणी में उभरे हैं।

स्वामी रामचरण ने भी कबीर आदि संत कवियों की भाँति राम की उपासना पत्नी-भाव से की है। 'राम भर्तार' से अपनी लगन लगाने की बात 'सुख विलास' के चतुर्थ प्रकरण में कहते हैं—

"एक राम भर्तार को मना धार इकतार।
मना एक इक तार बिन नहिं परसन कर्तार।"[2]

इसी प्रकार 'समता निवास' के द्वितीय प्रकरण में 'एक राम भर्तार' के अतिरिक्त अन्य को जार समझने की बात भी कवि को अभीष्ट है—

"एक राम भरतार है जार दूसरा आन।
एक एक को आसरो एक एक को ज्ञान।"[3]

'गावा का पद' में माधुर्य-भक्ति भाव के बड़े मर्मस्पर्शी पद मिलते है। कवि का भक्त हृदय प्रियतम राम के लिए कितना उल्लसित है। आज भक्त की पुकार पर प्रियतम उसके महल में आया है। मन-मंदिर में प्रेम का दीपक जलेगा, प्रीति की पलंग बिछेगी, शील के शृंगार से सजकर पीव के अंग से अंग स्पर्श कराने का अवसर आ गया है। बहुत दिनों के बाद 'प्रीतम' मिला है, मनोकामनाएँ पूरी हो गईं। एक चौथाई क्षण के लिए भी प्रियतम राम को छोड़ने का इरादा नहीं है—

---

१. डॉ० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ६२१।
२. अ० धा०, पृ० ३५६।
३. वही, पृ० ८७३।

"मेरे महल पधार्या प्रीतमा हो, सखीरी मेरे साहिब सुनी हे पुकार।
पण कर पान भाव करि कायो, चूंनो कर्म जलाय।
साच सुपारी साजकर बिडलो, मोहि सतगुरु दिया हे झिलाय।
प्रेम का दीपक जोय मंदिर मे, प्रीति का पिलग बिछाय।
शील शृंगार साज पिय परशूं, अंग सू अंग लगाय।

× × ×

बहुत दिना सें प्रीतम पाया, सर्या मनोरथ काम।
पाव पलक ढीला नही छाडूं, घर आया केवल राम।"[1]

और अब संयोग के बाद वियोग की बारी आती है। स्वामी जी विरह भाव की भक्ति में स्वयं विरहिणी की भूमिका में उपस्थित होते है। भक्त-हृदय अपने 'रमइया' के पधारने की प्रतीक्षा में बेचैन है, सूनी सेज दूना दुख बढाती है। विरहिणी अपने प्रिय के कारण वन-वन विचरण करती है, वह गिरगिर कर उठती है, क्योंकि प्रेम बैठने जो नही देता। प्रेम बिना अन्धेरा नही मिटेगा। पर यह अन्धेरा तभी मिटेगा जब विरहिणी के हृदय मे दीवाली होगी। वह प्रेम का दीपक जलायेगी और उसके आलोक मे अपने राम का दीदार करेगी—

"विरहा रूनी प्रेम शज्या सूंनी, दूनी दूनी दुख पावै।
इत उत म्हारै कबै पधारै, आव रमईया यू गावै।
तुमरै कारण विचरूं आरण, जारण बिरहन तर्सावै।
परि परि उठै प्रेम न बूठै है, प्रेम बिना क्यू तिम जावै।
अहो दिवाली मोउरा कब होसी कर्तार।
दीपक जोऊ प्रेम का करूं राम दीदार।"[2]

स्वामी जी की इन पक्तियो ने अनेक विरही भक्तो की हठात् स्मृति करा दी। कबीर और मीरा के विरही हृदय इन पक्तियो के आइने मे अपना रूप झलकता हुआ देख सकते हैं। वियोगावस्था मे विरहिणी की पलके नहीं लगती। दरस की आस मे रैन दिन का जागरण, दश दिशाओ मे मन की आतुरता, बाट जोहने की प्रक्रिया, सभी तो हो रहे है। स्वाति के चातक की दशा हो रही है, पर क्या घन आशा पूरी करेगा ? जो भी हो, रामचरण की विरहिणी का निवेदन यही है कि अविलम्ब पिया दर्शन दे—

---

१. अ० वा०, पृ० ९९९-१०००।
२. वही पृ० २४५।

"रमइया मेरी पलक न लागे हो।
दरश तुम्हारे कारणै, निशिवासर जागे हो।
दशूं दिशा आतर करूँ, तेरो पथ निहारू हो।
राम राम की टेर दे, दिन रेण पुकारू हो।
नैन दुखी दीदार बिन, रसना रस आवै हो।
हृदय हुलसै हेत कूं, हरि कब परकासै हो।
स्वाति बूंद चातक रटै, जल और न पीवै हो।
घन आशा पूरै नहीं, तो कैसे जीवे हो।
दास की अरदास सुण, पिया दर्शण दीजे हो।
रामचरण बिरहनि कहै, अब बिलम न कीजे हो।"[1]

पर उसे तब पूर्ण सन्तोष होता है जब उसका समर्थ 'साईया' कृपा करके उसका दर्द पहचान लेता है। उसकी सामर्थ्य पर वह रीझ उठती है।

"साईया मैं समर्थ जांण्या हो।
महरि करी मुझि ऊपरै, मेरा दरद पिछांण्या हो।"[2]

अव्यक्त प्रियतम के वियोग के उपर्युक्त उद्गार सन्तकाव्य की माधुर्य-भक्ति में निश्चित ही अमूल्य है। स्वामी रामचरण के काव्य-साहित्य में मधुर-भक्ति के ऐसे अनेक उदाहरण बिखरे पड़े हैं।

शांता-भक्ति

"संसार की अनित्यता, वासनाओं का त्याग और ईश्वर भक्ति अथवा ज्ञान द्वारा प्राप्त की गयी चित्त की स्थिर अवस्था से जिस परमानन्द को भक्त अथवा ज्ञानी पाता है, वही शान्त भाव है और काव्य में व्यक्त होकर काव्यशास्त्र के अनुसार वही शान्त रस है।"[3] इसी शान्त भाव की काव्य रचना शांता भक्ति के अन्तर्गत आती है। वस्तुतः संसार की असारता, वासना-त्याग एवं ईश्वर के प्रति भक्ति भाव आदि विषय ही सन्तों के साहित्य-सृजन की प्रेरणा है। स्वामी रामचरण की कृतियों में शान्त भाव की भक्ति से सम्बन्धित पदों या छन्दों की संख्या कम नहीं है। सम्पूर्ण 'अणभैवाणी' का विशाल संग्रह शान्ता-भक्ति से भरा हुआ है।

---

१. अ० वा०, पृ० १००६।
२. वही, पृ० १००८।
३. डॉ० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, पृ० ६४९-५०।

सासारिकता मे लीन प्राणी को जीवन की अनित्यता के प्रति सजग होने की बात कवि निम्नलिखित पक्तियो मे करता है—

"जाग जाग नर रैण बदीती।
सोवत भोरे भयो अणचीती।
जाम एक गयो भाल भोल मै, दोइ मै गुणा दबायो।
चौथे चिन्ता जरा गिरास्यो ऐसे जन्म गुमायो।
यो संसार विषय को संगी, स्वारथ नहीं जगायो।
तस्कर बास बस्यो भयो गाफिल, हीर हर्‍या पिछतायो।"[1]

यह मानव-जीवन बडे भाग्य से मिलता है। इसकी सार्थकता रामरस से क्षणभर के लिए विरत न होकर इसमे सदैव डूबे रहने मे है। रामरस सदृश कोई रस नही, यह पीने मे बडा प्यारा लगता है। स्वामी जी रामरस के पान का अवसर हाथ से न जाने देने के लिए, सभी को सचेत करते है—

"रामरस पलकन कीजै न्यारो।
ऐसी सूज बहुरि नहि पावै, नरतन को अवतारो।
लख चौरासी भ्रम भ्रम आयो, भुगत्यो कष्ट अपारो।
भाग भले मिनखा तन पायो, भजलै सिरजन हारो।
ऐसो रस और नहि कोई, पीवत लगै पियारो।
ई अवसर मे पीलै प्राणी, होय होय हुंसियारो।"[2]

चार दिन की जवानी पर गुमान करनेवालो का स्वामी जी का यह सन्देश है—

"ससार मता ये ससार मता।
दिनां च्यार जोबन बिभचारी। अतकाल सब खाय खता।"[3]

इसी प्रकार 'चितावणी' एव 'उपदेश को अग' के विभिन्न शीर्षकों मे शान्त भाव की पुष्टि मे अनेक छन्द स्वामी जी ने लिखे है।

भक्ति के साधन

सन्तो ने भजन एव सत्सग को भक्ति का अन्यतम साधन माना है। स्वामी रामचरण ने भजन एव सत्सग की बडी महिमा गायी है और भक्ति के विकास मे इन्हे साधन अग के रूप मे स्वीकार किया है।

---

१ अ० वा०, पृ० ९९३।
२ वही, पृ० १००४।
३ वही, पृ० ९९८।

भजन

भगवान के नामस्मरण को भजन भी कहा जाता है। स्वामी रामचरण ने 'अणभो-विलास' के पाँचवे प्रकरण मे 'सुमरण' को भक्ति का अग कहा है और इसे सभी अंगो का सिरताज माना है। राजा हो या रंक बिना राम-स्मरण के सद्गति सम्भव नही—

"सुमरण भक्ती अंग कहीजे,
सब माही शिर ताजा।
सुमरै राम सोही गति पावै,
कहा रंक कहा राजा।"[1]

स्वामी जी कहते है कि एकाग्र मन से रमता राम का भजन करके देखिए तो जिह्वा रस चखती है या नही ?—

"रामचरण भज देखिए रसना सें रस चाख।
रमता राम समोधिये एक अग्र मन राख।"[2]

यह भजन सभी नही कर सकते, यह कठिन है, जिस पर राम की कृपा होती है वही भजन करता है—

"भजन दुहेलो राम को जिण तिण सूं नहि होय।
जापर किरपा राम की भजन करैगा सोय।"[3]

'जिज्ञास बोध' चतुर्थ प्रकरण मे 'भजन गति' शीर्षक से उद्धृत निम्नलिखित पक्तियाँ भी भजन की महत्ता का प्रतिपादन करती है। राम भजन सभी कर्त्तव्यो का सार अभयशरण और कलियुग के जीवन का आधार है—

"रामचरण शरणो अभय कलि जीवन आधार।
रामभजन करिये सदा यो सब किरतब को सार।"[4]

भक्ति के साधन के रूप मे सुमिरन या राम भजन को निरूपित करते हुए स्वामी जी ने भजन की बडी महिमा गायी है। वस्तुत राम भजन को उन्होने अपनी सम्पूर्ण साधना के मूल मन्त्र के रूप मे स्वीकार किया था।

---

१. अ० वा, पृ० २३३।
२. वही।
३. वही (अमृत उपदेश, षष्ठोप्रकाश) पृ० ४६१।
४ वही, पृ० ५३४।

सत्संग

सत्संग स्वामी रामचरण द्वारा गृहीत भक्ति का दूसरा प्रमुख साधन है। स्वामी जी ने अपने ग्रन्थों में सत्संग की बड़ी महिमा गाई है। यद्यपि इस विषय का विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में किया जायगा, फिर भी भक्ति के साधन अंग के रूप में यहाँ भी उसकी संक्षिप्त चर्चा अपेक्षित है। ग्रन्थ 'विश्राम बोध' के सत्संग प्रकरण में सत्संग की महत्ता प्रतिपादित करते हुए स्वामी जी ने सत्संग को ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का कारण तक कह डाला है। इसका पालन करने के लिए सदैव उत्कंठित रहना चाहिए, मन भंग नहीं करना चाहिए। मनुष्य देह धारण करने का लाभ भी सत्संग ही है—

"ज्ञान भक्ति वैराग को है कारण सत्संग।
सो सदा हुलसि कै कीजिए ना करिये मन भंग।
ना करिये मन भंग लाभ नर तन को लीजे।
रसना रटिये राम कर्ण चर्चा रस पीजे।
रामचरण जब ही लगै जन रहणी को रंग।
ज्ञान भक्ति वैराग को है कारण सत्संग।"[1]

भक्ति-ज्ञान के लिए भक्तों का सत्संग स्वामी जी की दृष्टि में आवश्यक है। बिना सत्संग के भक्ति का ज्ञान सम्भव नहीं—

"भक्तां बिन पावै नहीं भक्ति ज्ञान गहू तूल।
और ठौर अति भर्मना लगै ज शांसै फूल।"[2]

सत्संग की महिमा अवर्णनीय है।[3] कितने सत्संग से निहाल हो गये, जगत्-जाल से मुक्त हो गये और 'भक्ति की चाल' से अवगत हो गये। भक्ति ने अनेक जनों को कृतार्थ किया। वे सचमुच ही 'बड भाग' है जो संसार में जीकर सत्संग करते हैं—

"रामचरण सत्संग में केतेहि भये निहाल।
जगतजाल सूं सुलझिया पाय भक्ति का चाल।
पाय भक्ति का चाल जीव केतार्थि कीया।
धिन वाका बडभाग धन्य सो जग में जीया।
गर्क रहै गुरुज्ञान में नितप्रति सदा खुश्याल।
रामचरण सत्संग में केतेहि भये निहाल।"[4]

---

१ अ० वा०, पृ० ७२२।

२. वही।

३. "रामचरण सत्संग की महिमा को नहि पार"—वही, पृ० ७२१।

४. वही।

'ममता निवास' के चतुर्थ प्रकरण मे 'गता को सत्सग' शीर्षक के अन्तर्गत सत्सग के युग-युगो से बखाने जाने की बात कहते है। सत्सग ने अनेक पतितो को अमृतरूपी ज्ञान देकर पावन कर दिया। राम भजन सत्सग की प्रेरणा से ही सम्भव है जिससे पाप-नाश होता है और सत्सग ही मानव को 'हरिभक्त' की सज्ञा दिलाता है—

"रामचरण सत्सग का जुग जुग होय बखांण।
जे बहुत पतित पावन करै वे अमृतरूपी ज्ञान।
वे अमृत रूपी ज्ञान राम को भजन करावै।
जाँ पातक होय निपात पुनह हरिभक्त कहावै।
ऐसे बड दातार की नहि महिमा को परमांण।
रामचरण सत्संग का जुग जुग होय बखांण।"[1]

इसी प्रकार 'अणभै विलास' के बीसवे प्रकरण मे स्वामी जी सत्सग को 'रामबाग' कहते हैं। इस बाग मे बैठकर रसरग मे गोता लगाइये। रामरस का प्याला पान कीजिए और युग-युगो तक जीवित रहिए। इस उद्यान मे ध्यान के वृक्ष, ज्ञान के फूल और विज्ञान के फल मिलते हैं। भ्रान्तियो का शमन होता है। यह सत्सग ऐसा बाग है जो कभी नष्ट नहीं होता—

"रामबाग है सत्सग।
जामैं बैठ कीजै रंग।
प्याला रामरस पीवो।
जासूं जुगे जुग जीवो॥
जहाँ अलि ज्ञान डमरी फूल।
भागे भर्मना सब भूल।
जहाँ निज तरू उत्तम ध्यान।
जाकै लगै फल विज्ञान।
ताको नाहि कबहूं भंग।
ऐसो बाग है सत्संग।"[2]

स्वामी जी सत्सग को सभी साधनो मे श्रेष्ठ घोषित करते है। 'अनन्य भक्ति', 'निजनाम की प्राप्ति', 'ब्रह्म निरूपण' ये सभी सत्सग के विषय है। सत्सग के समान उनकी दृष्टि मे और दूसरा कोई साधन नही—

---

१ अ० वा०, पृ० ८८२।
२. वही, पृ० ३१०।

"सब साधन के शिरै समझ सत्संगति कीजै।
तन मन धन अघ थोक अर्प सतगुरु को दीजै।
अनन्य भक्ति निज नाम साध संगति मैं पावै।
मिले न दूजी ठाम मर्म त्रयलोकी आवै।
रामचरण सत्संग सम ओर न दीसै कोय।
जहा निरूपण ब्रह्म को सदा सर्वदा होय।"[1]

इस सन्दर्भ मे 'अणभै विलास' की निम्नलिखित पंक्ति भी महत्त्वपूर्ण है।

"ज्ञान भक्ति वैराग्य मिलै सत्सगति माही।"[2]

परन्तु 'जिज्ञास बोध' के सोलहवे प्रकरण मे तो स्वामी जी ने स्पष्ट घोषणा कर दी कि सत्सग भक्ति का आगर है वैसे ही जैसे सुख का आगर तोष और सिद्धि का आगर साधन है--

"सत्सग आगर भक्ति को सुख को आगर तोख।
साधन आगर सिद्धि को सुत शिख निपजण पोख।"[3]

इसीलिए 'विश्राम बोध' के चौथे विश्राम मे कवि को कहना ही पडा कि सत्सग के समान 'सुख-सार' कोई दूसरा नही—

"सतसग सम सुखसार नहीं कोई ओर रे।
सब देख्या निरताय थकी मन दोर रे।"[4]

स्वामी रामचरण ने भक्ति के प्रमुख साधन अग के रूप मे सत्सग की महत्ता आँकी है। यो उनकी कृतियो मे सत्सग का सतसगति, साध सगति आदि विभिन्न शीर्षको मे बडा विस्तृत विवेचन किया गया है, जिसकी चर्चा लोकपक्ष के अध्याय के अन्तर्गत होगी। यहाँ सत्सग का निरूपण भक्ति के साधन रूप मे किया गया है।

स्वामी रामचरण भक्त हृदय सन्त कवि थे। उनका सम्पूर्ण साहित्य भक्ति-भावना का अमित एव अक्षय सागर है। उन्होने भक्ति को ज्ञान-वैराग्य सभी से श्रेष्ठ घोषित किया है। यो तो उनके इस विशाल सग्रह ग्रन्थ मे सर्वत्र भक्ति-भावना के अनगिनत मुक्ता-हल सघनता से व्याप्त है पर कतिपय प्रमुख शीर्षको मे उन्होने भक्ति का निरूपण किया

---

१ अ० वा०, पृ० ११२।
२ वही, पृ० ३११।
३. वही, पृ० ६०७।
४ वही, पृ० ७९८।

है जो इस प्रकार है। शीर्षकों की पृष्ठ संख्या फुटनोट में अंकित है। निष्काम भक्ति[1], सरल भक्ति निन्दा[2], अर्चन भक्ति[3], भक्त-रक्षा[4], श्रद्धाभक्ति[5], भक्ति माहात्म्य-त्रिविध भक्ति[6], भक्ति-सिद्धान्त[7], भक्ति माहात्म्य[8], ग्रेही भक्ति कठिनता[9], प्रतीति भक्ति[10], मूल भक्ति[11], नकल भक्ति[12] आदि।

उपर्युक्त शीर्षकों में स्वामी रामचरण ने भक्ति की कोई सैद्धान्तिक समीक्षा नहीं की है और यदि कहीं ऐसा प्रकरण आया भी है तो उसमें क्रमबद्धता को महत्त्व नहीं दिया है। वस्तुतः उनकी भावना में भक्ति का जो रूप जिस समय विचरण करने लगता था उसे उसी तरह निरूपित कर देते थे। उदाहरणार्थ, 'सुखविलास' की पंक्तियों में 'श्रद्धा-भक्ति' का निरूपण प्रस्तुत है—

"श्रद्धा सें सबही बणें बिन श्रद्धा बणें न काय।
धर्म अधर्म विकर्म सब वेखो अकल जगाय।
वेखो अकल जगाय सती संग्राम ज होई।
तन मन श्रद्धा घट्यां भग्यो भी जाय न कोई।
तातें भजिये राम कूं श्रद्धा अधिक उपाय।
श्रद्धा सें सबही बणें बिन श्रद्धा बणें न काय।"[13]

इसी प्रकार अंगबद्ध वाणी के बीनती, सुमरण आदि विभिन्न अंगों में भी उनकी भक्ति-भागीरथी का अजस्र प्रवाह देखा जा सकता है। सम्पूर्ण वाणी साहित्य ही भक्ति का दूसरा नाम है। ग्रन्थ 'अमृत उपदेश' के प्रथम प्रकाश में 'निर्णय' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी

---

१. अ० वा०, पृ० २२१।
२. वही, पृ० २२५।
३. वही, पृ० २२८।
४. वही, पृ० २३०।
५. वही, पृ० ४०८, ७९८, ९५१।
६. वही, पृ० ४४३।
७. वही, पृ० ४६१।
८. वही, पृ० ५२५।
९. वही, पृ० ६७१।
१०. वही, पृ० ७८०।
११. वही, पृ० ७८८।
१२. वही, पृ० ९१२।
१३. वही, पृ० ४०८।

अपना निर्णय भक्ति के पक्ष में देते हैं। उनके अनुसार साधु की शोभा वैराग्य, जग की शोभा व्यवहार बन्धन, विप्र की शोभा विद्या और क्षत्रिय की शोभा तलवार हो सकती है, पर भक्ति तो सबकी शोभा है—

"जन शोभा वैराग सू जग की बंध्या विहू वार।
विद्या शोभा विप्र की क्षत्री की तरवार।
क्षत्री की तरवार भक्ति सबही की शोभा।
बडी कुशोभा मूल तूल तन उपजै लोभा।
रामचरण गुरु ज्ञान गहो रहो पला फटकार।
जन शोभा वैराग सू जग की बंध्या विह्वार।"[1]



१ अ० वा०, पृ० ४३४।

षष्ठ अध्याय

लोकपक्ष

सन्तो की लोकजीवन पर सीधी नजर थी। लोकजीवन की उन्होंने न तो कभी उपेक्षा की और न उसकी लौकिकता मे फँसे ही। वे बडे ही सहज भाव से रामोपासना मे रत रहते थे। अपने उपासक जीवन को विस्मयकारी बनाकर समाज को प्रभावित करने की दिशा मे वे कभी अग्रसर नही हुए प्रत्युत् ऐसे तत्त्वो से समाज को सदैव सजग रहने का मगलमय सन्देश देना वे अपना परम कर्तव्य समझते थे। सिद्धो, नाथो एव वैष्णवो की उपासना पद्धतियो मे सलग्न विकृतियाँ जो उन्हे नापसन्द थी, परम्परा से चली आती सामाजिक रूढियाँ और अन्धविश्वास जिन्हे वे लोकजीवन के लिए विष समझते थे तथा अनेक बाह्याचार जिन्हे उनके मस्तिष्क ने नही स्वीकार किया—के प्रति लोक-जीवन को दिशा देने मे वे पीछे नही रहे। साथ ही, व्यक्ति और समाज के नैतिक मूल्यो के विकास के लिए उन्होंने जो रचनात्मक सुझाव दिये, वे सब समाज के लिए उनकी अमर देन है। इस सन्दर्भ मे 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखको की निम्नलिखित पक्तियाँ उद्धृत करना असामयिक न होगा।

"सन्त वाणी की दो धाराएँ है—एक धारा सींचती हुई बहती है—जीवन के उपवन को, पर मानव जीवन मे जो अशिव है, अशुभ है, जीवन मे जो जडता है, अन्धविश्वास, वैर विरोध, हिंस्र भाव है—उनके लिए सतवाणी की दूसरी धारा प्रलय वन्या बनकर उसे बहाती, डुबाती, उखाडती, गिराती—प्रचण्ड वेग से बही है। सत के एक हाथ मे निर्माण का वरदान है तो दूसरे मे विध्वस का अभिशाप। निर्माण व ध्वंस दोनो कार्य सतवाणी एक ही भाव से एक ही वृत्ति से करती है। वहाँ न हर्ष है न विषाद।"[1]

उपर्युक्त दृष्टिकोण से विचार करने पर स्वामी रामचरण के साहित्य का लोकपक्ष भी खण्डन-मण्डन से पूर्ण प्रतीत होता है। स्वामी जी ने जहाँ समाज मे प्रचलित बाह्याडम्बरो, अन्धविश्वासो आदि पर जोरदार शब्दो मे आक्रमण किया है, वही उन्होने लोकजीवन को रचनात्मक दिशा भी दी है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से ध्वसात्मक एव रचनात्मक दो पहलुओं मे हम उनके लोकपक्षीय विचारो को विभाजित कर सकते है।

ध्वंसात्मक

इस शीर्षक के अन्तर्गत उन विषयों का विश्लेषण हमारा अभीष्ट है जिनसे लोकजीवन के विभिन्न पहलुओ मे कुरूपता समाती है। प्रतिमापूजन, रोजा-नमाज, व्रतोपवास,

---

१. वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामसनेही-सम्प्रदाय, पृ० ११९।

वर्णाश्रम व्यवस्था, हिंसा, देवल-मस्जिद, कञ्चनकामिनी, बहुदेववाद, पुस्तकज्ञान एवं विभिन्न सामाजिक कुरीतियों आदि पर स्वामी जी के दृष्टिकोण का संक्षिप्त विवेचन करके उनके लोक-जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझना सरल है। स्वामी जी धार्मिक आडम्बरों, सामाजिक रूढ़ियों एवं बाह्याचारों के प्रबल विरोधी थे। राजस्थान के जनजीवन में उनके लोकजीवन सम्बन्धी विचारों का जहाँ एक ओर स्वागत हुआ वहीं दूसरी ओर विरोध भी। भीलवाड़े का सूबेदार तो स्वामी जी का विरोध करने में व्यक्तिगत स्तर पर आगया था, किन्तु शाहपुरा-नरेश ने ससम्मान अपने नगर में उन्हें बसाया एवं उनके द्वारा प्रचारित 'रामधर्म' का अनुयायी भी बना। बाद में उदयपुर के महाराणा ने भी स्वामी जी का दृष्टिकोण समझा और उन्हें आदर भी दिया।

प्रतिमापूजन का विरोध

निर्गुण सन्त मूर्त्तिपूजा के विरोधी थे। वस्तुतः निराकार की उपासना में आकार पूजन सम्भव नहीं। कबीर आदि सन्तों की भाँति स्वामी रामचरण भी मूर्त्तिपूजा का खण्डन करने में पीछे नहीं रहे। मिट्टी की गौरी और पत्थर के भगवान की पूजा करने वाले नर-नारियों की बुद्धि पर उन्हें तरस है। कभी वे इस प्रकार के प्रतिमापूजकों की खिल्ली उड़ाते हैं तो कभी उनकी मूर्खता पर रोष प्रकट करते हैं। मिट्टी की गौरी प्रतिमा के पूजन पर स्वामी रामचरण जी की प्रतिक्रिया कितनी तीखी है—

"लादगार की गौरी बणाई, पाणी दे दे साधी।
होय कर्ता कर जोड खड़ी है, ऐसी दुनियां आधी।
हार डोर अपणा पहराया, शक्ति कर कर पूजै।
जड के आगै चेतन नाचै, देखो साच न झूठै।"[1]

मिट्टी की गौरी अपने हाथों बनाने वाली स्त्री स्वयं उस मूर्त्ति के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ी होती है। उसे माला पहनाकर शक्तिरूपा मानकर पूजती भी है। क्या कौतुक है कि जड के सामने चेतन नृत्य करता है, यह दुनिया का अन्धविश्वास ही तो है। पाषाण-प्रतिमा पर स्वामी जी की दृष्टि सीधी पड़ी है। स्वामी जी को विस्मय है कि भगवान द्वारा निर्मित पत्थर को दुनिया पत्थर ही कहती है पर उसी पत्थर को जब मनुष्य गढ़कर मूर्त्ति का रूप दे देता है तो उस मानव-सृजन को लोग भगवान कहने लगते हैं—

"सिरज्या सिरजणहार का, जासूं कहै पाषाण।
रामचरण मानुष घड़्यां, ताहि कहै भगवान।"[2]

---

१ अ० वा०, पृ० ६५।
२. वही, पृ० ६६।

इसी सन्दर्भ में कवि कहता है कि राम सब को पैदा करता है, उसे तो 'कर्ता' कहा जाता है पर जिस मूर्त्ति को मनुष्य बनाता है उसे कैसे कर्ता कहा जा सकता है—

"राम सकल पैदा करै, कर्ता कहिये सोय।
रामचरण मानुष किया, सो क्यू कर्ता होय।"[१]

मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हुए स्वामी जी अवतारों की भी चर्चा करते हैं। वस्तुत अवतारों की मूर्त्तियां बनाकर उन्हें संसार पूजता है पर स्वामी जी पूछते हैं कि अवतार जिस घर जाता है, कभी उस पर भी विचार किया है? स्वामी जी समाधान करते हैं कि अवतार का जन्म और मरण युग-युगों से होता आया है, किन्तु अवतार उत्पन्न होकर जिसमें समा जाता है उस घर का पता सन्त जानता है।[२] स्वामी जी कहते हैं कि यदि अवतार प्रत्यक्ष हों तो उसका सुमिरन किया जा सकता है पर वह प्रत्यक्ष है कहाँ? पाषाण का भजन तो कदापि संभव नहीं—

"जे सुमरूं अवतार कूं, जे कहूं प्रत्यक्ष होय।
रामचरण पाषाण कू, भजत न आवै मोहि।"[३]

स्वामी रामचरण पहले सगुणोपासक थे, उन्होंने सच्चे मन से प्रतिमा पूजी थी किंतु परिणाम?

"हम भी पूजी प्रतिमा, साच धारि मन मांहि।
रामचरण दुखपीड़ को, कबहूं बूझी नाहि।"[४]

परिणाम, आकार में विश्वास नहीं रहा और उन्होंने अनुभव किया कि दुनिया बड़ी नासमझ है, वह पत्थर को प्रणाम करती है पर राम ज्ञाता सन्त के निकट नहीं जाती, वह पत्थर का प्रसाद ग्रहण करती है और राम से स्नेह रखनेवाले साधुओं से व्यर्थ का विवाद करती है—

"रामचरण पाषाण कै, दुनिया लागै पाय।
साधु मिलावै राम सूं, ताके निकट न जाय।

---

१ अ० वा०, पृ० ६६।
२. अवतारां की प्रतिमा करि पूजै संसार।
रामचरण जिस घर गया, जाका नहीं विचार।
जन्म मरण अवतार का, जुग जुग होय अनन्त।
उपजि समावै तासमैं, सो घर जाणै संत।—वही।
३. वही पृ० ६६।
४. वही।

रामचरण संभार ले, पांहण को परसाद।
रामस्नेही साय सूं, करै खेचरी वाद।"[1]

स्वामी जी मुसलमानों के आक्रमण के सकट की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। मूर्त्ति को गढ-सवार कर मन्दिर मे रख दिया जाता था और उस मूर्ति से सम्बद्ध सम्पत्ति का भण्डार लूटने के लिए तुर्क आक्रमण करते थे। स्वामी जी कहते है कि पाषाण मूर्ति को गढ-सवार कर प्रस्थापित तो कर देते है पर जब तुर्कों की तवाई पडती है तो डर के मारे भण्डार ही दे डालते है।[2] उनका तात्पर्य यह है कि मूर्तिस्थापन के कारण एक सकट को आमन्त्रण देते है।

'कुण्डल्या भर्म विध्वस को अग' मे स्वामी रामचरण कहते है कि पत्थर की मूर्ति गिरकर फूट सकती है, उसमे जीव-प्राण है नही, फिर उसे देव कैसे कहा जाय? उससे काग और स्वान भी नही डरते, फिर मूर्ख मनुष्य की बुद्धि को क्या कहे। ऐसा लगता है कि ससार की दृष्टि से ज्ञान गत हो गया है।[3] मूर्तिपूजा के सन्दर्भ मे पडितो पर आक्षेप करते हुए स्वामी जी कहते है कि पत्थर को गढकर कर्तार नाम दे दिया पर ससार सचमुच जो 'कर्ता का कर्तार' है उसे नही देख पाता क्योकि उस पर पडितो का प्रभाव है जो अपने पेट के लिए मूर्तिपूजा का भ्रम ससार मे फैलाये हुए है—

"टाचया घड़ि पैदा कर्‌यो नाम धर्‌यो कर्तार।
कर्ता का कर्तार को लखै न यो संसार।
लखै न यो संसार वसै पंडित की छाया।
उदर कोट की ओट जिनूं ये भर्म चलाया।
रामचरण सतगुरु बिना सत मत नहीं बिचार।
टाचया घडि पैदा कर्‌यो नाम धर्‌यो कर्तार।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० ६६-६७।
२. "रामचरण पाषाण का, मूरति घडी सवार।
पडी तवाई तुरक की, तब भै मैं दई भडार।"
—अ० वा०, पृ० ६७।
३. "घरिया कूं घीजू नही घड्‌यो घाट पाषाण।
पडि फूटै परवस रहै तामैं जीव न प्राण।
तामैं जीव न प्राण देव कैसी विधि कहिये।
डरै न कउवा स्वान मिनख मूरख मति बहिये।
रामचरण ससार कै दृष्टि ज्ञान गत भाण।
घटिया कूं धीजू नही, घड्‌यो घाट पाषाण।" वही
४. वही।

पाषाण-देव की चर्चा करते हुए स्वामी जी चित्र-देवता तक पहुँच जाते है। मूर्त्ति-पूजा सदृश चित्रपूजा को भी वे व्यर्थ समझते है और ससार की बुद्धि पर तरस खाते हैं। वे कहते हैं—

"रंगदारक को मोरडो उडे न चुगवा जाय।
सुण घनहर की घोर कूं खुसी न होय कुर्लाय।
खुसी न होय कुर्लाय भवंग भी देख न डर्पं।
देखो नर की समझ चित्र का दैवत थर्पं।
रामचरण ससार चख भर्म तिमिर रहे छाय।
रगदारक को मोरड़ो उडे न चुगवा जाय।"[१]

रगशिल्पी का मोर न उडता है न चारा चुगने जाता है, न वह मेघगर्जन से प्रसन्न होकर क्रीडा ही करता है, सर्प भी उससे नही डरता पर मनुष्य का समझ को क्या कहा जाय, वह तो उस चित्र में देव की प्रतिष्ठा करता है। वस्तुत इस ससार की आँखो में भ्रम का अँधेरा छा रहा है।

स्वामी जी की दृष्टि में धातु, काष्ठ, पाषाण की मूर्त्तियाँ और चित्र सभी मृतक समान है क्योकि उनमे चेतना नही है—

"धातु काठ चित्राभ का, चौथा घड्या पषाण।
रामचरण चेतन बिना, सब ही मृतक जांण।"[२]

स्वामी जी अन्तत इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि जैसे पत्थर की नाव पर चढे व्यक्ति का डूबना निश्चित है वैसे ही पत्थरप्रेमी का पार न पहुँचना भी निश्चित है।[३] इसीलिए स्वामी जी ने चेतावनी दी है कि पाषाण से अपनी रक्षा नही हो सकती, सेवक का उसके समक्ष हाथ जोडना व्यर्थ है—

"रामचरण पाषाण सू, अपणी रख्या न होय।
कर जोड्या सेवक खडा, क्या पावैगा सोय।"[४]

---

१ अ० वा०, पृ० १७९।

२. वही, पृ० ६६।

३. "रामचरण पाषाण की, प्रीति न पहूंचै पार।
ज्यू पाहण का नाव चढि, बूडै बहती धार।"
—अ० वा०, पृ० ६७।

४. वही।

उपर्युक्त स्वामी रामचरण ने मूर्ति को प्रणाम करने का स्पष्ट निषेध करते हुए भगवान के चरणों में रत होने का उपदेश दिया है—

"तजि पाहण कर बंदगी, हरि चरणा में लीन।
रामचरण चरणारविंद, तजै स होवै हीण।"[1]

धर्म विध्वंस के विभिन्न शापकों में स्वामी जी ने प्रतिमापूजन का तिरस्कार करते हुए राम में लीन होने की बात कही है। निर्गुण मत की दृष्टि में मिट्टी, धातु, काष्ठ, पाषाण का मूर्ति में और रंगशिल्पा के चित्र में अवतार या देवी-देवता की कल्पना मनुष्य की अज्ञानता का परिचायक है। इसीलिए कवि बार-बार मानव बुद्धि पर तरस खाता है। वह अनुभव करता है कि शठ संसार ऐसे ही धर्म में विश्वास करता है जो निस्सार है, जैसे धुँएँ की वर्षा जिसमें धरती नहीं भीगती है—

"जैसे वर्षा धूम की, धरती भीजै नाहि।
रामचरण ससार शठ, ऐसो धर्म समाहि।"[2]

निष्कर्ष यह कि स्वामी जी ने प्रतिमापूजन को धूम-वर्षा की भाँति व्यर्थ बता कर उसका पूर्णतया निषेध किया है।

व्रतोपवास की व्यर्थता

स्वामी जी ने व्रतोपवास की महत्ता नहीं स्वीकार की है। सामान्यतया एकादशी का व्रत हिन्दू-समाज में लोकप्रिय-व्रत के रूप में विख्यात है। स्वामी जी एकादशी समेत सभी व्रतों की व्यर्थता सिद्ध करते हैं। एकादशी को स्वामी जी ने 'कच्चाव्रत' कह कर निरूपित किया है—

"रामचरण एकादशी तू दृढ़ कर हिरवै धारि।
ग्यारह काचा व्रत है मोठ ले गयो मारि।"[3]

कवि एकादशी और एकादशीव्रत में अन्तर स्पष्ट करता है। उसके अनुसार एकादशी एवं एकादशी-व्रत दो भिन्न स्थितियाँ हैं। व्रत से भिन्न एकादशी वह है जिसका कभी नाश न हो—

---

१ अ० वा०, पृ० ६७।
२ वही, पृ० ६६।
३. वही।

"मुख सू कहे एकादशी, अरु करै ग्यारस कौ वास।
एकादशी सो जांणिये, जाका कदै न होवै नास।"[1]

इसलिए स्वामी जी राम के नामस्मरण को ही सर्वश्रेष्ठ व्रत मानते हैं यदि जन्म से मरण तक एकरस निभ जाय। जो निभ न सके वह व्रत बेकाम है—

"जन्ममरण लग एक रस, निभै राम का नाम।
भीड पड्या भगि जात है, सोही व्रत बेकाम।"[2]

'साखी चाणक को अंग' मे एक स्थल पर स्वामी जी बहुत स्पष्ट लिखते है कि उपवास और व्रत आदि मे 'हरि मारग' की प्राप्ति नही होती—

"वास व्रत अरु पर्बी साधै, देवी देव मनावै।
रामचरण दुनियां चकचूंधी, हरिमारग नहि पावै।"[3]

हिंसा एवं मांसाहार का विरोध

स्वामी रामचरण ने हिंसा एव मासभक्षण का निषेध किया है। सन्तजन जीव हिंसा के प्रबल विरोधी रहे है। उन लोगो ने हिंसा करके मासाहार करनेवालो को बहुत फटकारा है। समाज मे हिंसा के विरुद्ध वायुमण्डल निर्मित करने मे अन्य सन्तो सदृश स्वामी जी भी पीछे नही रहे। मासाहारी एव जीव-हिंसक हिन्दू और मुसलमान दोनो को स्वामी जी ने धिक्कारा है। स्वामी जी कहते है कि चराचर सभी मे भगवान व्याप्त है। अत ऐसे जीव को मारकर खानेवाला हिन्दू हो या मुसलमान, अवश्य ही नरक मे जाता है—

"बधता फिरता बोलता, खाता पीता जीव।
रामचरण सचराचरा, सब मै व्यापक शीव।
ताकूं मारै करवले, आनंद कर कर खाय।
तो रामचरण हिन्दु तुरक, दोन्यू दोजिग जाय।"[4]

जीवहत्या बहुत बडा जुर्म है, इससे भगवान कुपित होता है और एक जीव की हत्या का हजार बार बदला लेता है। स्वामी जी ससार को बतलाना चाहते थे कि जीवहिंसा बहुत बडा अपराध है, यह ईश्वरीय अपराध है।

---

१. अ० वा०, पृ० ६६।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ६४।

"बडा जुलम जिव मारता, कोपै सिरजणहार।
रामचरण ले जीव का, बदला बार हजार।"

देवी-देवताओं के स्थान पर उनके निमित्त हत्या करने वालों की स्वामी जी ने बड़ी भर्त्सना की है। भैरव और देवी की पाषाण-प्रतिमाएँ प्रत्यक्ष जड़स्वरूप है, किन्तु मनुष्य उन्हीं के निमित्त परमात्मरूप जीव की हत्या करता है—

"भैरू देवा पथर का, प्रतिमा जड्ड स्वरूप।
रामचरण ताकै निमित, हतै जीव सरूप।"

जीव-हत्या के लिए स्वामी जी ने काजी मुल्लाओं को भी फटकारा है, समझाया है। इस सन्दर्भ मे उन्होंने कुरान की साक्षी भी दी है। वे कहते है कि सभी जीव खुदा स्वरूप पैगम्बर की उत्पत्ति है किन्तु काजी हाथ मे छुरी लेकर उनका वध करता है। हिंसा करने वाला मनुष्य 'नापाक' होता है यह कुरान का वचन है—

"सब जीवां खुद खुद्दाय है, पैगम्बर की पैदास।
रामचरण कर कर्द ले, काजी करत बिनास।
काजी कलमा पाक है, तो खडी पछाडै काहि।
हिंसा नर नापाक है, कह कुरान कै माहि।"

स्वामी जी फूलपत्तियों के तोड़ने को भी हिंसा ही समझते है। निर्जीव की पूजा करनेवाली पुजारिन निर्दयतापूर्वक सजीव फूल पत्ती की हत्या करती है। अपने पेट के आगे उसे पाप नही दीखते। ब्राह्मण भी यह क्रिया करते है। फूल को जड मूर्त्ति पर ले जाकर चढा देते है और घडी पहर मे वह सूख जाता है। जब कर्त्ता इसका विवरण माँगता है तो उस समय जीभ नही डोलती—

"सरजीवत पाती फूल हत निर्जिव पूजणहारि।
पुनि राम कहा से खिज मरै ये वड़ी भोल ससार।

तोडै फलता-फूलता, ज्या दया न दिल कै मांहि।
कारज अपणा उदर कै, पातक नहिं दर्शाहि।

---

१ अ० वा०, पृ० ६४।
२. वही।
३ वही।

पातक नहि दर्शांहि ल्याय जड ऊपर धरिहे।
घडी जाम जाय सूक विप्र यह किरिया करिहे।
कर्ता लेखो मांगसी जब जीभ उलथसी नाहि।
तोडै फलता फूलता ज्यां दया न दिल कै माहि।"[1]

स्वामी जी कहते हैं कि पात-पात में पुरुषोत्तम का निवास है, माटी का महादेव बनाकर उस पर पत्ते तोडकर चढाना, परमात्मा को दुःख देना है—

"पात पात पुरुषोत्तम व्यापक, ताकू तोड सतावै।
माटी का महादेव बणावै, जापर ल्याय चढ़ावै।"[2]

स्वामी रामचरण फूल पत्ती को तोडने में भी हिंसा का अनुभव करते हैं, फिर निर्दोष वनवासी पशु जिसका आहार ही तृण-जल है—की हत्या करने में बहुत बडा पाप का बोझ सिर पर चढता है—

"निरदावै वन मे रहै, तृण जल करै आहार।
रामचरण ताकू हत्या, बहुत चढै शिर भार।"[3]

स्वामी जी मांसाहार के प्रबल विरोधी थे। कबीर आदि निर्गुण सन्तों की भाँति स्वामी जी भी मांसभक्षियों को धिक्कारते हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार से मांस-भक्षण के प्रति घृणा भाव को उकसाते हैं। शालिग्राम की पूजा, गीता का पाठ और उसके साथ जीव-हत्या कर उसका मांसभक्षण विचित्र स्थिति है। स्वामी जी कहते हैं, ऐसा करने वाला प्राणी भगवान से भी नहीं डरता—

"सेवा सालिगराम की, मुख गीता पाठ करै।
जीव मार भक्षण करै, साई सू न डरै।"[4]

स्वामी जी समझाते हैं कि जिस मुख में चरणामृत और तुलसी धारण करते हों, उसी से मांसाहार करना अनुचित है—

---

१ अ० वा०, पृ० ७४६।
२. वही।
३. वही, पृ० ६४।
४. वही।

"चरणामृत मुख मैं धरै, पुनि तुलसी का पांन।
रामचरण नहि खाइये, ता मुख माटी खांन।"[1]

मास कुत्ते और गीदड का भोजन है किन्तु कुत्ते और सियार भी निर्जीव का मास भक्षण करते है पर मनुष्य तो भगवान से भी नहीं डरता। वह जीवित को भी मार कर खा जाता है—

"श्वान स्याल को खाण है, सो भी मूवा खाय।
नर निधडक नाराण सू, जीवत मारण खाय।"[2]

स्वामी जी बडी सरल भाषा मे समझाते है कि मनुष्य का खाद्य अन्न-पानी है पर मनुष्य कहाँ मानता है, वह अपनी मूर्खतावश माटी (मुर्दा) भक्षण करता है—

"रामचरण नर देह का, अन पाणी है खज्ज।
ताहि छाडि माटी भखै, मूरख खाय अज्ज।"[3]

'जिज्ञास बोध' के उन्नीसवे प्रकरण मे स्वामी जी हिंसकों की चर्चा उठाते है। वे कहते है कि जो पराया प्राण लेता है उस निर्दयी की गति राक्षस की होती है—

"आसुर गति सो निर्दई, जे हतै पराया प्रान।"[4]

वस्तुत मासाहार के लिए जीवहत्या करनी ही पड़ती है क्योंकि मास न तो पेड मे फलता है और न खेत मे उपजता है। जो लोग जीवहत्या करते है वे जिह्वास्वाद के वशीभूत असुरबुद्धि है। स्वामी जी कहते हैं कि जीवहत्या के समय जितनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं, उसका बदला उसी प्रकार रो-रोकर देना पडता है—

"मास न वृच्छा लागि है मास न निपजै खेत।
मास किसी कूं चाहिये तो प्राणघात करि लेत।
तो प्राणघात करि लेत हेत रसना रस जानो।
बोलत चोधत हतै ताहि आसुर बुधि मानो।

---

१ अ० वा०, पृ० ६४।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ६२८।

आपं हँसि हँसि मारिया आगे रोइ रोइ ववलो देत।
मास न वृच्छों लागि है मास न निपजै खेत।"[1]

स्वामी जी ने जीवहिंसा करके मांसाहार करने वाले सभी मनुष्यों को धिक्कारा है चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान। उन्होने हिंसा का घोर पाप कहा है और मांसाहारियों को श्वान-शृगालो से भी गया बीता बतलाया है। रामसनेही सम्प्रदाय मे जीवो की रक्षा का इतना अधिक ध्यान रखा जाता है कि रामसनेही जन पानी कपडे से छान कर प्रयोग मे लाते है और सूर्यास्त के बाद भोजन नही करते।

पाखण्डो पर सीधी नजर

स्वामी रामचरण ने धर्म के नाम पर समाज को ठगने वाले विभिन्न कर्मकाण्डो को पाखण्ड कहा है और उनके विरोध में अपना स्वर बराबर ऊँचा करते रहे। उन्होने पूजा, नमाज, तीर्थयात्रा, नदी-स्नान, उपवास, देवल-मस्जिद सभी पर सीधी दृष्टि डाली है और जो कुछ भी कहना था उसे बडे निर्भीक भाव से कह गये। उनके संत हृदय ने इन सभी को आडम्बर से अधिक नही माना। हृदय एव आचरण की शुद्धता पर उन्होने विशेष बल दिया जिसके लिए उपर्युक्त सभी साधनो को उन्होने निरर्थक माना। समाज के हर स्तर पर लोगो को उन्होने समझाया। हिन्दू-मुसलमान दोनो को बिना भेदभाव के खरी-खोटी सुनाकर उन्हे भगवत् भजन की ओर उन्मुख होने का सदेश दिया।

पूजा-नमाज

स्वामी जी ने माला फेरने वाले हिन्दुओ और नमाज की अजान देने वाले मुल्लाओ पर सीधे प्रहार किया है। माला और अजान दोनो की उन्होने बडी कडी आलोचना की है। स्वामी रामचरण द्वारा पूजा-नमाज पर की गयी बौछारें कबीर की कटूक्तियो का स्मरण करा देती है। माला फेरने वालो को वे ठग कहने मे सकोच नही करते—

"माला का चाला करै, मुख सूं कहै न राम।
रामचरण दे भजन शिर, ये ठिगवाजी का काम।"[2]

इसी प्रकार अजान देने वाले मुल्ला का पुकार पर स्वामी जी की प्रतिक्रिया भी कम तीखी नही है। स्वामी जी कहते है कि कान मे अँगुली डालकर जिसे मुल्ला पुकारता है, क्या कभी विचार किया है कि वह कौन है ?

---

१. अ० वा०, पृ० ६२९।
२. वही, पृ० ६५।

"घाल कान मे आगली, मुल्ला करै पुकार।
बांग देय सो कूंण है, जाका करो विचार।"[1]

वह सर्वव्यापी रहीम है जो बहरा नहीं है, फिर मुल्ला किसे अपनी बाग सुनाता है ?

"सकल जिहान मे रमि रह्या, मुल्लां एक रहीम।
बांग सुणावे कूण कू, बहरा नाहि करीम।"[2]

स्वामी कहते हैं कि मैं भी बाग देने को तैयार हूँ पर जब मै यह जान लूँ कि वह साहब दूर है, पर उसे तो सकलव्यापी कहते हैं, फिर वह मुझमे भी तो है। जो वस्तु जहाँ है वहाँ तो उसे खोजते नही, बाहर खोजने जाते हे। दोनो मे अन्तर है, अत कैसे वह मिल सकता है—

"रामचरण मैं बाग द्यू, जो साहिब जाणू दूर।
सकल वियापी कहत है, तो मुझ ही मैं भरिपूर।
बस्तु जहां हेरै नहीं, बाहिर हेरण जाय।
रामचरण कैसैं लहै, दूंणूं अन्तर थाय।"[3]

तीर्थ-यात्रा

स्वामी रामचरण की दृष्टि मे तीर्थयात्रा, नदी-स्नान आदि व्यर्थ है यदि हृदय सत्सग से पवित्र नही है। वे हृदय की शुद्धता से ही सभी तीर्थयात्राओ को चरम फल पा लेने के पक्षपाती हैं—

"काशी गया पराग गंग मथुरा वृन्दावन्न।
दूर देश तै आयकै खर्चै मुक्ता धन्न।
खर्चै मुक्ता धन्न मन्न की भ्राति न जावै।
भेदाभेद निषेध वर्ण विधि नहीं मिटावै।
रामचरण सत्संग बिन मलवत् सभी जतन्न।
काशी गया पराग गग मथुरा वृन्दावन्न।"[4]

लोग काशी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन आदि विभिन्न तीर्थस्थलो पर जाकर नदी-स्नान करते हैं, धन व्यय करते है पर क्या इससे मन की भ्राति दूर होती है ? नही, इससे न तो भेदाभेद का ही निषेध हो पाता है और न वर्ण-विधान ही मिटता है, मन सदैव भ्रान्त

१. अ० वा०, पृ० ६४।
२ वही।
३. वही।
४. वही, पृ० १७८।

रहता है। अत तीर्थों में जाकर धन का व्यय करना या अन्य प्रकार के यत्न करना मलवत् है जब तक सत्सग न हो। 'अणभो विलास' के बीसवे प्रकरण में स्वामी जी कहते है कि तीर्थ-यात्रा करते आयु व्यतीत हो गयी पर मन नही जीता जा सका, फिर परिणाम क्या रहा? बेशरम बने, फजीहत हुई, शरीर और धन की हानि हुई—

"कूंण करै मन जीत, सुणै न देखै दास को।
आयु गयी सब बीत, करता तीरथ जातरा।
तीरथ कीता मन नहीं जीता भया फजीता बेशर्मा।
तन धन छीजै दुख मे खीजै कहो कहा कीजै करि कर्मा।"[१]

'सुख विलास' ग्रथ मे तीर्थस्थलो की चर्चा करते हुए स्वामी जी स्पष्ट कहते है कि अडसठ तीर्थों का स्नान नदी-केदार की यात्रा सभी व्यर्थ है यदि मन विकृत है। मन का विकार तो राम-भजन से ही जाता है—

"अडसठ तीरथ न्हाय कै, चढ़ बदरी केदार।
एक राम का भजन बिन, मन नहि तजै विकार।"[२]

भले ही कोई जगन्नाथपुरी और बद्री-केदारधाम की यात्रा कर आवे, पर मन मे कोई अतर नही आता, वही लोभ-कामना की लगन मन पर छायी रहती है—

"भल जाओ कोइ द्वारका, भल कोई बदरीनाथ।
लोभ कामना लगन अति, मन की वाही बात।"[३]

स्वामी जी द्वारका के साथ मक्का तक की बात कर जाते है। उनका कहना है कि बिना गुरु ज्ञान के मन पराजय नही स्वीकारता—

"भल कोइ जाओ द्वारका भल जाओ मक्के।
रामचरण गुरुज्ञान बिन मन नाही थक्के।"[४]

इसी सन्दर्भ मे स्वामी जी कहते है कि कर्म-कामना तीर्थयात्रा से नही मिटती, ससार मे आना-जाना लगा रहता है। मन की शुद्धता रामभजन से सम्भव है, तीर्थयात्रा से नही—

---

१ अ० वा०, पृ० ३११।
२. वही, पृ० ३४६।
३. वही।
४. वही।

"गया गया जाता हुआ आया आया आत।
कर्म कुलक्ष कामना मिटै न तीरथ जात।
मिटै न तीरथ जात, गया आगा जग माही।
रामभजन मन शुद्ध होय सो वणैज नाही।
अतर की सोजी बिना गोलमोल सी बात।
गया गया जाता हुआ आया आया आत।"[1]

देवल-मस्जिद

स्वामी रामचरण की दृष्टि में हिन्दू मुसलमान दोनों की गति क्रमश मदिर और मस्जिद तक है पर दोनो का भ्रम देवल-मस्जिद की उपासना से दूर नही होता। भ्रम-निवारण तो रामभजन से सभव है पर दोनों ही राम का नाम न लेकर भरमते रहते हैं। ग्रथ 'विश्वास बोध' के अठारहवे प्रकरण मे इस विषय पर स्वामी जी ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। उन्हे दोनो ही जातियो पर तरस आता है कि 'राम रहीम' को बिसारकर अन्य स्थानो की उपासना मे दोनो ही लीन है।[2] कवि समाज को दोनो की स्थिति से अवगत कराता है, दोनो ही राम का स्मरण नही करते प्रत्युत मदिर एव मस्जिद मे दौडते है—

"फेर सुणो दोइ आलिम की गति, नित्य राम नहि गावै।
वै मसीत वै देवल धावैं, बिनही नहचै जावै।"[3]

हिन्दू देवल और मुसलमान मस्जिद को मानते है।[4] कवि मस्जिद और देवल के भीतर झाँकता है तो देखता है कि मस्जिद के नाद और देवल की 'मूरति' से उसके 'साई' के रूप का कही मेल नही है। काजियो ने कुरान और पण्डितो ने वेद का सन्दर्भ प्रस्तुत कर मुसलमान और हिन्दू दोनो को अज्ञानता मे भरमा दिया। किन्तु 'शून्य' और 'देवत' की उपासना से दुख और खेद नही छूटेगा। इसके लिए तो रामभजन ही आवश्यक है—

---

१ अ० वा०, पृ० ३४६।

२ दया धर्म भूला सबै आलिम दोइ अज्ञान।
राम रहीम बिसारि कै पूजै आन स्थान।
पूजै आन स्थान मान कू पाप कुमावै।
कारज नाही सिद्धि कुबुधि बहुभाति उपावै।
रामचरण भज राम कू जे वाहूं सुखदान।
दया धर्म भूला सबै आलिम दोउ अज्ञान।—वही पृ० ७४८।

३ वही।

४ हिन्दू मानै देहुरा, मुसलमान मसीत—वही।

"मसीत में लाक अरु देवल में मूरति है,
सूरति सांई की भिन्न जानत न भेद जू।
योही आलिम अमला कू भरमाय दिये,
काजी अरु पंडितां कुरान मिल वेद जू।
पूजि पूजि पगां परै करै अरदास बहु।
तोहि न मिटावै पीर संशै कौन छेद जू।
राम ही चरण कहै राम का भजन बिना।
सेयें शून्य देवत हटै न दुःख खेद जू।"[1]

स्वामी जी हिन्दू और मुसलमान दोनों को भ्रम के वश में देखते है। दोनों का लोक-जीवन भ्रमों का आगार बना दीखता है। हिन्दू देवल-द्वारका के चक्कर मे भरमता है तो मुसलमान मस्जिद और मक्का के भ्रम मे पडा हुआ है। मुसलमान रोजा रहते हैं तो हिन्दू एकादशी रहते हैं। हिन्दू कर्म के फंदे मे है तो मुसलमान ईद-बकरीद मनाता है। तात्पर्य यह कि देवल-द्वारका, मस्जिद-मक्का, रोजा-एकादशी, ईद-बकरीद सभी भ्रमोत्पादक हैं और मनुष्य इन्ही मे भूला रहता है। 'अलह इलफ' से भरपूर राम का भजन ही सुखदायी है। अत दुविधा त्यागकर राम का भजन करना चाहिए क्योंकि दुविधा में पड़ा व्यक्ति नरक का वासी होता है चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान हो—

"क्या देवल क्या द्वारका क्या मक्का महजीद।
क्या रोजा एकादशी क्या कर्म ईद बकरीद।
क्या कर्म ईद बकरीद भर्म में भूल्या दोई।
अलह इल्फ भरपूर राम सुमर्या सुख होई।
दुबध्या दोजिग जाईये क्या मुसलमान क्या हींद।
क्या देवल क्या द्वारका क्या मक्का महजीद।"[2]

रोजा-एकादशी, देवल-मस्जिद, ईद-बकरीद एव द्वारका-मक्का सभी को स्वामी जी ने निस्सार तो बतलाया ही हिन्दू और मुसलमान दोनो को भगवान को दिशाबद्ध करने से भी मना किया। उनका कहना है कि हिन्दू-मुसलमान भगवान को विरोधी दिशाओ मे पाते हे अर्थात् हिन्दुओ का भगवान पूरब की ओर हे और मुसलमानो का पश्चिम की ओर, अत दोनो दो विरोधी दिशाओं की ओर उन्मुख होकर उपासना करते हैं। किन्तु भक्त कहते है कि वह सूर्य की ज्योति के समान दसो दिशाओं मे व्याप्त है—

१. अ० वा०, पृ० ७४८।
२. वही, पृ० १७८।

"हिन्दू हरि पूर्व कहे पश्चिम मुसलमान।
दशू दिशा हरि जन कहे तिमचर ज्योति समान।"[1]

इस कथन मे जहाँ हिन्दू-मुस्लिम उपासना विधियों पर स्वामी जी ने दृष्टि डाला है, वही उन्होने दोनो को निकट करने का भी प्रयास किया है। दोनो ही एक परमात्मा के बदे हैं पर यहाँ इस ससार मे आकर दोनो भिन्न-भिन्न मार्ग पर चलते है। इस प्रकार दोनो की उलझने बढती है, दोनो उलझनो को सुलझाकर रामस्मरण नही करते वरन् मस्जिद और देवल मे भरमते फिरते हैं—

"रामचरण हिन्दू तुर्क निकस्या एकै घाट।
एकै साईं सिरजिया अब चालै दो दो बाट।
अब चालै दो दो बाट उलझ की आटी भारी।
सुलझ भजै नहि राम मिनख तन बाजी हारी।
वै मसीत वै देहुरै भर्म्या फिरै निराट।
रामचरण हिन्दू तुर्क निकस्या एकै घाट।"[2]

भिन्न धर्मों एव उपासना पद्धतियों मे आस्था होने के कारण भी हिन्दू और मुसलमानो मे भेदभाव की खाईं चौडी थी। उपर्युक्त उदाहरणो से इस आशय की गध मिलती है कि स्वामी जी दोनो को मतवाद की उलझनो से विरत हो परस्पर निकट होने का सदेश देते है। मतवादी उलझनो से विरत होने का एकमात्र मार्ग रामनाम का स्मरण है। इस सदर्भ मे स्वामी जी विभिन्न मुसलमान-भक्तो का नाम भी गिनाते है जो रामस्मरण के द्वारा उजागर हो गये हैं—

"शाहा सुलतानी हेत मा काजी महमद फीद।
प्रगट दास कबीर है दादू अरु बाजिद।
दादू अरु बाजिन्द और हिन्दू बहु आगर।
जिन सुमर्‌या इकराम सोही सब भया उजागर।"[3]

भारतीय सन्तो की हिन्दू-मुस्लिम विचार-वैषम्य पर सदैव दृष्टि रही है। मतभिन्नता के कारण दोनो जातियों मे सदा वैर-विरोध का भाव बना रहा और सत जन उसे दूरकर मद्‌भाव उत्पन्न करने के प्रयास मे लगे ही रहे हैं। कबीर आदि सत सदैव हिन्दू और मुसलमानो को उनकी विकृत उपासना-पद्धतियो के लिए फटकारते रहे है जिनके कारण

---

१. अ०वा०, पृ० १७८।
२. वही।
३. वही।

दोनो मे वैर-भाव स्थायित्व पाता था। वस्तुत सतो की दृष्टि मानवतावादी रही है। स्वामी रामचरण इसी सत-परम्परा की एक सुदृढ कडी थे। अत यदि उन्होने भी दोनो पक्षो मे सद्भाव जगाने का सद्प्रयास किया तो यह उचित ही था। निर्गुण-उपासको ने राम को सर्वव्यापी कहा है। स्वामी जी इस राम को 'तिमचर ज्योति' के समान दसो दिशाओ मे व्याप्त पाते है और इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान दोनो उस ज्योति से आलोकित होते है, अत भेदभाव भ्रम के अलावा अन्य कुछ नही।

पुस्तक-ज्ञान

स्वामी रामचरण ने वेद, पुराण, कुरान आदि ग्रथो के ज्ञान को भी निरर्थक ही कहा है यदि उस ज्ञान से राम न मिल सके। 'साखा चाणक को अग' मे वेद के जानकार वेदी के ज्ञान को सुनकर कहा हुआ कहते है। उनकी दृष्टि मे वेद पढने और तत्त्वभेद जानने मे अन्तर है।[1] वेदी को भेदी (ब्रह्म का रहस्यवेत्ता) से व्यर्थ विवाद नही करना चाहिए क्योकि वेदी दूसरे के कथन को दुहराता है और भेदी अनुभव करके कहता है—

"रामचरण वेदी अडै, भेदी सू बेकाम।
वेदी परभाखी कहै, भेदी परसी राम।"[2]

वेदी तत्त्व का रहस्य-द्रष्टा नही, वह अपने पेट के लिए बारबार वेद का वाचन करके ससार को फँसाये रहता है।[3] वस्तुत स्वामी जी की दृष्टि मे वेद ससार का जाल है, साधु इससे विरत रहकर रामभजन मे लीन होता है। उसे विधि, विद्या, यज्ञ, योग तपादि से कोई वास्ता नही रहता—

"वेद जाल ससार कूं, साधू सुमरै राम।
बिधि बिद्या जिग जोग तप, इनसू रहै नहकाम।"[4]

'विश्राम बोध' के छठे विश्राम मे स्वामी जी ने बतलाया है कि ग्रन्थ पढकर उसका अर्थज्ञान कर लेने के बाद मन मे अहकार का भाव जागृत हो जाता है। 'काम-दाम' की तृष्णा विकसित होकर मनुष्य को अज्ञानी बना देती है। इससे अच्छा तो अपढ रहना ही है क्योकि अपढ को गुरु द्वारा बताये ज्ञान से ही सन्तोष होता है।

---

१. "वेद पढ्या भी भेद न पाया, देख्या नही सुण्या सो गाया"—अ० वा०, पृ० ७२।
२. वही।
३. "वेदी ततभेदी नही, बाँचै बारबार।
आप उदर कै कारणैं, उलझायो ससार"—वही।
४. वही।

"ग्रंथ अर्थ पढ़ि बाचि कै मन आयो अभिमान।
काम दाम तृष्णा बधी तो पढ़ि क्यूं पचे अज्ञान।
तो पढ़ि क्यूं पचे अज्ञान अगिन ज्यूं घृत सिचाई।
पाय पनंगनी दूध मध्य मिश्री जु मिलाई।
जासूं तो अपढ भले संतोष रता गुरु ज्ञान।
ग्रंथ अर्थ पढ़ बाचि कै मन आयो अभिमान।"[1]

स्वामी जी कहते हैं कि संस्कृत और प्राकृत में निहित ज्ञान का अर्थ तो बनाकर निकाल लेते हैं पर माया में लीन प्राणी के हृदय में वह ज्ञान अपना स्थान नहीं बना पाता।[2] स्वामी जी का मत है कि कथावाचन तो जीविकोपार्जन का उपाय है, सिद्धि का उपाय कदापि नहीं। सिद्धि तो साधना से ही सम्भव है।[3]

स्वामी रामचरण की दृष्टि में विभिन्न ग्रंथों के ज्ञान की सार्थकता 'निजनाम' में ही है, फिर चाहे चारों वेद[4], षड्दर्शन[5], नौ व्याकरण[6], अठारह पुराण[7], कविता और कुरान का ज्ञान हो चाहे संस्कृत और प्राकृत भाषा का हो, बिना नाम के सम्पूर्ण ज्ञान अंधा है। यह रहस्य सभी नहीं जानते और जानने वाला कोई भगवान का भक्त ही होता है—

"चत्र षष्ट नव अष्टदश भी कवितारु कुरान।
संस्कृत प्राकृत को हे निज नाम निधान।
हे निज नाम निधान नाम बिन सब ही अंधा।
कहो कोण लखै ये भेद लखै कोई असली बंदा।

---

१ अ० वा०, पृ० ८१७।

२ "संस्कृत प्राकृत को करिहै अर्थ बणाय।
पै माया रत्ता प्राणिया ज्या हिरदै मिदै न काय।" —वही, पृ० ८१७।

३. "साधन करि सिधि पाईये, तो आप सुखी सुख ओर।
बिन साधन बाचक कथा, करै जीविका दोर।" —वही।

४. चार वेद—ऋक्, यजु, साम, अथर्व।

५. षड्दर्शन—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त।

६. नौ व्याकरण—इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, शकटायन, पिशालि, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र, सरस्वती।

७. अठारह पुराण विष्णु, वाराह, वामन, पद्म, शिव, अग्नि, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड, भविष्य, भागवत, मार्कण्डेय, मत्स्य, नारद, लिंग, स्कंद, कूर्म, गरुड़।
(संत साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली, संत साहित्य—डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल)।

महापतित पावन करण राम भजन निर्वाण।
चत्र षष्ट नव अष्टदश भी कवितास कुरान।"[1]

ग्रंथ 'समता निवास' के सप्तम प्रकरण मे पुराण और कुरान के पठन-वाचन पर स्वामी जी का ध्यान गया है। पंडित, काजी, मीर, मुल्ला और सुल्तान सभी पुराण और कुरान का अध्ययन करते हैं किन्तु सभी भ्रम-सरिता की धारा मे पडकर बहे जा रहे है। इन सभी ग्रंथो का पढना व्यर्थ है क्योकि बिना रामभजन के किसी को भी ससार-सागर से मुक्ति संभव नही।[2] स्वामी जी की दृष्टि मे तत्त्व चिन्तन रहित पुराण या कुरान का अध्ययन वैसा ही है जैसे जल का मन्थन। जैसे जलमन्थन से घृत की प्राप्ति सम्भव नही वैसे ही कुरान या पुराण के अध्ययन से तत्त्व शोधन नही हो सकता—

"जो पढ़यो पुरान कुरान कहा भयो बीर रे।
जे तत्वज सोध्यो नांहि मथयो यू नीर रे।
घिरत चढ़्यो नहि हाथ वाद गह्य खेद रे।
परिहां बिन सतगु० की भेंट लह्यो नहि भेद रे।"[3]

पुराण और कुरान के अध्येताओ को तत्त्व नही मिलता, वैसे ही जैसे किसी के हाथ में अन्न न आकर भूसा आवे। स्वामी जी कहते है कि कुरान-पुराण पढकर व्यक्ति अहंभाव से भर उठता है और अभिमान मे रहकर मन को तोष नही दे पाता और न ससार-सागर से पार होने का मार्ग ही खोज पाता है—

"पढ़ि पढ़ि पुरान कुरान जो तत्व न पाईया।
सो बिन कण आयां हाथ कि कूकस गाहिया।
पढ फूल्या भूल गुमाय न बन पर सोधिया।
परिहां कर विचार भवत्यार सार नहिं सोधिया।"[4]

---

१. अ० वा० (समता निवास, द्वि० प्र०), पृ० ८७०।

२. पडि मर्मे नदी की धार बह्यै संसार रे।
कोइ बिना राम के भजन होय नहि पार रे।
कहा पंडित काजी मीर मुला सुलतान रे।
परिहां रामचरण पढ़ पुरांण बांचता कुरांन रे। —वही, पृ० ९०७।

३. वही, पृ० ९०८।

४. वही, पृ० ९०८।

इस प्रकार स्वामी जी गीता, भागवत, वेद, पुराण, कुरान, साखी, शब्द—सभी के पठन या वाचन को सारहीन समझते हैं।[1] सभी पाठो का मूल राम का नाम है जिन्होने राम का विचारपूर्वक स्मरण किया, उनका कार्य सिद्ध हुआ—

"सकल पाठ का मूल है, रामचरण इक राम।
जिनूं सोधि सुमरण किया, जिनका सरिया काम।"[2]

जात-पांत

स्वामी जी ने चारो वर्ण एव आश्रमो को भी निरर्थक बतलाया है। राममयता ही सब वर्णों एव आश्रमो के ऊपर है—

"च्यार वर्ण च्यारूं आश्रमा, राम बिनां सब खाली।
रामचरण रचि आन धर्म सूं, दुनिया दोजिग जाली।"[3]

ग्रंथ 'सुख विलास' के प्रथम प्रकरण मे स्वामी जी मानव-जाति मे ऊँच-नीच की भावना पर प्रहार करते हैं। स्वामी जी की दृष्टि मे पाँच तत्त्व और तीन गुणो से निर्मित सभी मानव चेहरे एक हैं, इनमे भेदभाव व्यर्थ है—

"केते ऊँच नीच मध्य विविध प्रकारन के,
अहं कृत्य मान भूलै न्यारी न्यारी टेक है।
रामचरण कहै गहै गुरु ज्ञान मान,
पांच तीन मांही तन नर चहरो एक है।"[4]

चाहे हिन्दू हो या मुसलमान सभी मानव चेहरे एक हैं, जैसे नारायण एक है। दोनो को दो कहना नारायण को दो कहने के समान है—

"नर नांमै चहरो एक है क्या हिन्दू मुसलमान।
ऐसैं ही नारायण इक दोय कहै अज्ञान।"[5]

---

१. पढबो गीता भागवत, भी चतुर अठारा षष्ट।
रामचरण इक राम बिन, ज्यूं माखी कर्लों मिष्ट। —अ० वा०, पृ० ७३।

२. वही।

३. वही, पृ० ७४।

४. वही, पृ० ३२६।

५. वही।

कर्तार की रचना मे कहाँ कोई हिन्दू है, कहाँ कोई यवन या चाण्डाल, कहाँ ऊँच-नीच और चार वर्ण है? भगवान की सृष्टि मे यह भेदभाव नहीं है, यह तो मनुष्य ने अहंकार मे बँधकर अपने आप भेद उत्पन्न कर लिया है। किन्तु भगवान ऊँच और नीच का भेद नही गिनते, जो अपने को ऊँचा समझता है वह अभिमान वश मानव-जन्म की हानि करता है—

"कहा कोउ हिन्दू अरु जवन चण्डार जू।
ऊंच अरु नीच पुनि वर्ण च्यारी।
करी कर्तार करतूति रचना सबै।
आप अहंकार बंध होय न्यारी।
× × ×
ऊच अरु नीच का भेद हरि ना गिणै।
वोही जन पिवत है पिवख धारा।
पिव रच निज नाम पर ब्रह्म को मानिये,
जानिये रचे सब थाट खीना।
राम ही चरण जे ऊँचकुल मानि कै।
हांनिकर जन्म अभिमान कीना।"[1]

भेख

स्वामी रामचरण ने साधुवेश धारणकर साधुकर्म से विरत होने वालो की अच्छी खबर ली है। उनका कहना है कि वेष धारणकर साधु की संज्ञा से तो विभूषित हो जाता है पर वह राम का स्मरण नही करता प्रत्युत व्यभिचारी का जीवन अपनाकर जन्म व्यर्थ नष्ट करता है—

"साधु कुहावै राम का करै न वाकूं याद
रामचरण व्यभिचार धर, जन्म गुमायो बाद।

जगत की अधीनता मे रहने वाले वेषधारी को स्वामी जी हीनभक्त की संज्ञा देते हैं। भक्त तो वह है जो संसार को भक्ति भावना से पूर्ण कर दे—

"जगत मांहि भक्ति करै, सो भक्तिवांन जन लीन।
हीण भक्ति सो जांणिये, भक्त जगत आधीन।"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० ३२६।
२ वही, पृ० ६७।
३ वही, पृ० ६८।

स्वामी जी कण्ठी, तिलक, माला धारण करनेवालों पर भी दृष्टि रखे हुए हैं। यह सारा स्वांग 'हरि मिलन' के नाम पर रचा जाता है पर मनुष्य भगवान से विमुख हो संसार में रत हो जाता है। वह स्वांग धारण कर माया का बनता है—

"माथे तिलक बणाइ कै, कंठी कंठी धार।
रामचरण माया तकै, भटके घर घर बार।
सांग कछ्यो हरि मिलण कू, हरि सू फेरी पूठ।
रामचरण माया रता, चल्या जगत मग ऊठ।"[1]

स्वामी जी भेष का स्वांग की सजा देते हुए कहते हैं कि भेष धारण कर स्वामी बनने वाला रामविहीन भेषधारी की दशा उस स्त्री सदृश होती है जो पतिहीन होने पर शृंगार करती है—

"साग पहर स्वामी भया, राम नहीं उर माहि।
तो विधवा का शृंगार है, पति कहु दीसै नाहि।"[2]

साधु का स्वांग करने वाले ढोंगिया के वेशविन्यास को देखकर कवि को वेश्या के उस शृंगार की स्मृति हो आयी है जिसे वह संसार को रिझाने के लिए करती है—

"जगत रिझावण कारणे, गणिका किया शिगार।
यूं मन माया तन भेष धरि, मारि खाय संसार।"[3]

भेष धारण करने के बाद यदि हरि भजन द्वारा हृदय पवित्र नहीं किया तो स्वामी जी की दृष्टि में वह पोशाक 'बंदर की पोशाक' है—

"भेष पहर हरिभजन करि, किया नहीं दिल पाक।
तो रामचरण यू जाणिये, करि बंदर पौशाक।"[4]

जो भेष धारण कर दूसरे का अन्न ग्रहण करते हैं पर राम का स्मरण नहीं करते, वे पाप करते हैं और इस पाप से उन्हें दुःख मिलता है—

"भजन बिना पर अन्न भेष धर खाईया।
परिहां रामचरण ई पाप इमा दुख पाईया।"[5]

---

१ अ० वा०, पृ० ६८।
२. वही।
३ वही, पृ० ७०।
४ वही।
५. वही, पृ० ८४-८५।

भक्त वेश में रहने वाले कलियुगी पर स्वामी जी का यह कटाक्ष भी अपनी यथार्थता के कारण ध्यान देने योग्य है—

"कलूकाल भगत की चाल यारो जाकी सगति येहू निवास है रे।
पान फूल सुगंध घुटै बिजिया जहाँ खूब तमाखू की नास है रे।
तहाँ ज्ञान बैराग भजन्न की खण्डना नाचना कूदना हासि है रे।
जहाँ राडिया भांडिया आय मिलै विषिया रस गाय विलास है रे।"[1]

स्वामी जी कहते हैं कि संसार में साधु की पहचान भी मुश्किल हो गयी है। हाथ में धातु का पात्र, जामा और पगड़ी का पहनावा, कमर में कटारी लटकी हुई, पीठ पर गठरी का भार लिये हुए मानो कोई संसारी है। फिर कैसे उसे पहचाने और प्रणाम करे। उसमे तो रामशरण का कोई दाग भी नहीं दीखता।[2] स्वामी जी वेषधारी का आदर्श प्रस्तुत करते हुए कहते है कि वेष का यश दाम-ग्राम के परित्याग, लोभ-काम से उदासीनता और ममता से सुमिरन करने में है। संत को आठो पहर सचेत रहना चाहिए और सहज स्वभाव ज्ञान-बैराग्यमय होकर विचरना चाहिए—

"बाना को यह बिडद है त्यागै दाम रु ग्राम।
समता सूं सुमरण करै नहीं लोभ अरु काम।
नहीं लोभ अरु काम जाग अठ रहै सुचेता।
बिचरै सहज सुभाय ज्ञान वैराग्य सहेता।
रामचरण तब पाइये शोभा सुख विश्राम।
बाना को यह बिड़द है त्यागै दाम रु ग्राम।"[3]

अन्य देवोपासना का निषेध

स्वामी रामचरण ने राम के अतिरिक्त अन्य किसी भी देवता की उपासना का खण्डन किया है। उनकी दृष्टि में अन्य देवता का उपासक व्यभिचारिणी नारी सदृश होता है, उसका मुंह काला होता है—

---

१ —अ० वा०, पृ० १०३।
२ "क्या सूं साध पिछाणिये कैसै कीजै आध।
कर मैं पातर धातु को पहर्या जामो पाघ।
पहर्या जामो पाघ कमर सूं बंधी कटारी।
पूठ गांठड़ी भार जांण आयो संसारी।
रामचरण दीसै नहीं रामशरण को दाग।
क्या सूं साध पिछांणिये कैसै कीजै आध।"—वही, पृ० १६८।
३. वही।

"आंन उपासै राम बिन जाका काला मुख।
रामचरण पति परिहर्‌या स्वप्नै नाही सुख।"[1]

'चन्द्रायणा विचार का अंग' में स्वामी जी 'सबका निरजणहार' एक राम के अतिरिक्त अन्य किसी की भी उपासना का खण्डन करते हैं।[2] क्योंकि—

"रामनाम निज मूल ओर सब डार रे।
शाखापत्र अनेक बहुत विस्तार रे।"[3]

अन्य देवोपासना से 'राम' नहीं मिलता, जैसे जार-रत नारी को उसका 'कन्त' नहीं मिलता। स्वामी जी अन्य देव की उपासना को नारी के जार-प्रेम सदृश समझते हैं—

"आन देव की सेव पीव क्यूं पाईये।
ज्यू तरुणी रत जार सू कन्त रिभाईये।"[4]

'अणभै विलास' के बारहवें प्रकरण में स्वामी जी इस घोषणा के साथ अन्य किसी भी देवता की उपासना का निषेध करते हैं कि "रामसनेही राम का नहीं आन का दास"।[5] उनका दावा है कि राम के आगे कोई देवता क्या कर सकता है। देवता का अधिकार जगत पर हो सकता है, भक्त पर नहीं—

"रावल आगै देवला कहा करैगा कोय।
देवां दावो जगत् पर नही भक्त पर होय।"[6]

ग्रंथ 'अमृत उपदेश' के तेरहवें प्रकाश में कवि 'खलक' को आरोपित करता है कि वह अपने 'खालक' को छोड़ कर अन्य को पूजने जाता है, इस प्रकार आँख रहते धोखा खाता है—

"खालक पालक है सदा खलक न चीन्है ताहि।
ता ऊपर अदता फिरै घटता पूजण जाय।

---

१ अ० वा०, पृ० १६।
२. यू सबको निरजणहार एक है राम रे।
परिहा रामचरण भज ताहि आंन नहिं काम रे।"—वही, पृ० ४३।
३. वही।
४. वही।
५. वही, पृ० २७४।
६. वही।

घटता पूजण जाय चाहि तन ताप लगावै।
पूरा शीतल करै कामना लाय बुझावै।
रामचरण लोचन छतां देखत खोटा खाय।
खालक पालक है सदा घटता पूजण जाय।"[1]

इसीलिए कवि इस निष्कर्ष पर पहुँच जाता है कि—

"आन की सेव नहीं सुखदायक,
भेद बिना नर खेद उपावै।"[2]

'विश्वास बोध' के सत्रहवें प्रकरण में वे 'आनदेव खण्डन' शीर्षक के अन्तर्गत भैरव और भूत आदि के पूजन की निन्दा करते है तथा 'परमानन्द निरंजन' की उपासना में लीन होने की प्रेरणा देते हैं—

"परिहरि परमानन्द निरंजन पूजै भैरूं भूता।
जाकूं सिद्धि मिलै नहि क्यू ही यूंही जन्म बिगूता।"[3]

अन्य देव की उपासना करने वाले को कवि 'कृतघ्नी' की संज्ञा इस तर्क के साथ देता है कि जिस कर्तार ने गर्भ में जन्म देकर पालन-पोषण किया उसे भूलकर अन्य देवता का ध्यान करता है। ऐसा व्यक्ति जो 'कर्ता की करतूति' को भूल जाता है, विपत्ति का भाजन होता है—

"गर्भ माहि पैदा कियो पोख्यो रिछ्या कराय।
कृतघणी ताहि बीसर्‌यो आन मनावै ध्याय।
आन मनावै ध्याय तास कै भय करि डरि है।
कर्ता की करतूति परिहर्‌यां बिपता भरि है।
रामचरण ऐसे नरा खरा खराबी पाय।
गर्भ माहि पैदा कियो पोख्यो रिछ्या कराय।"[4]

स्वामी जी की दृष्टि में राम विमुख होकर अन्य देव की पूजा करने वाला 'प्रपंची' होता है, वह इस पूजन से पुत्र और धन की आशा करता है और आशा अपूर्ण रहने पर पछताता है। इस उपासना को वह 'हरि हेत' का नाम भी देता है। पर भगवान तो अन्तर्यामी है। वह प्रपंची के अन्तर तक में झाँक लेता है—

---

१. अ० वा०, पृ० ४९५।
२. वही।
३. वही, पृ० ७४५।
४. वही।

"परपची पूजत फिरै हर्ष हूल उपजाय।
सुत वित की आशा धरै बिन सध्यां रहै पिछताय।
बिन सध्या रहै पिछताय, कियो हरि हेत बतावै।
हरि अतर की लखै कहो कैसे भरि पावै।"[1]

कवि ऐसे लोगों को 'हीण बुधी नर' नाम से अभिहित करता है जो अन्य देवों की सेवा करते है चाहे वह पत्थर, धातु, काठ, माटी या गोबर के बने हों—

"रामचरण जे हीण बुधी नर, और और कू सेवत।
पाहण धात काठ रग माटी, कै गोबर का देवत।"[2]

ऐसे ही स्वामी जी अपने ग्रथो मे विभिन्न स्थलों पर अन्य देवो की उपासना से विरत होकर केवल राम मे रत होने को कहते है।

ढोंगी तत्त्वो का रहस्योद्घाटन

स्वामी रामचरण ने समाज मे परिव्याप्त ऐसे तत्त्वो का भली भाँति पर्दाफाश किया है जो समाज मे ढोग-ढकोसला या पाखण्डो के सहारे जाते है और उन्ही के आवरण मे अपने दुराचरणो को छिपाते है। ऐसे तत्त्व मुख्यतया पण्डित और योगी या साधु के रूप मे समाज मे विचरते है और समाज को ठगकर अपने आचरण-भ्रष्ट जीवन का पोषण करते है।

पण्डित रूप

स्वामी जी ने पण्डित शब्द ब्राह्मण के लिए प्रयुक्त किया है। ग्रथ 'पडित सवाद' मे प्रारम्भ मे ही पण्डित के लिए ब्राह्मण शब्द का प्रयोग कर कलियुगी पण्डितो की अच्छी खबर ली है। कवि पण्डितो को व्यर्थ वाद करने के परिणाम से अवगत कराता है—

"ब्राह्मण वाद न कीजिए, तेरी लच्छ विचार।
कर्म छाड़ि कुकर्म करै, तो धका दाय दरबार।"[3]

कलियुग के पण्डितो को उन्होने स्पष्ट रूप से पाखण्डी कहा है जिनके घर मे कुबुद्धि रूपी वेश्या का वास रहता है।[4] पण्डित स्नानादि से शरीर स्वच्छ कर लेता है पर मन मे कामना की मैल बैठी रहती है। स्वामी जी कुरेद कर कहते है कि शरीर धोने से उत्तम नही होता, उत्तम मन तो नामस्मरण करने से होता है—

१ अ० वा०, पृ० ७४५।
२ वही, पृ० ७४६।
३. वही०, पृ० ९८४।
४ "कलिजुग के पडित पाषण्डी, घर मे कुबुधि करकसा रण्डी।" —वही।

"न्हाय धोय अवरश ह्वै बैठा।
मन मे मैल चाहि का पैठा।
तन धोया नहि उत्तम होई।
उत्तम नाम लिया मन होई।"[1]

पण्डित कथा-वाचन करते हैं और अनेक अर्थ विचारते है पर मन मे माया की आशा धारण किये रहते हैं। वह अर्थ करने मे ही पापी को धर्मी कह देते हैं और रामभक्तो से ईर्ष्या रखते हैं। ललाट पर शिव का तिलक लगा लेते हे पर शिवस्मरण के रहस्य से सर्वथा अनभिज्ञ है। कहने को ब्राह्मण है पर ब्राह्मण का लक्षण एक भी नही दृष्टिगत होता, धरती को छूते हुए आकाश मे उडना चाहते है—

"कथा करै बहु अर्थ विचारै।
अतर आश माया की धारै।
पापी कूं धर्मी कह भाखै।
रामजना सू द्रोहता राखै।
माथे शिव का तिलक बणावै।
शिव सुमरै सो भेद न पावै।
विप्र कहै पर एक न दर्शै।
चाहै उडयो धरणि कूं पर्शै।"[2]

पण्डित ज्ञानी को कहते है, वह विद्वत्ता का रूप ही होता है, पर यहाँ पण्डित को ज्ञान-ध्यान से कोई नाता नही है।[3] पण्डित पिंड का शोधनकर्त्ता होता है, वह महाबली मन को समझाता है।[4] किन्तु कलियुग का पण्डित तो वासना की साक्षात् मूर्ति है। स्वामी जी ने वासना के पुतले पण्डित का कुत्ते सदृश वासना मे लिप्त देखा है—

"कामणि संग कूकर ज्यू लागै।
विष की लहरि सुमति नहि जागै।"[5]

स्वामी जी पण्डित से कहते है कि पहले तो मनुष्य योनि मे उत्पत्ति, फिर ब्राह्मण की उत्तम देह तुम्हे मिली है, तुम्हे तो राम का भजन करना चाहिए। राम का नाम लेने वाले अधम भी मुक्त हो गये पर पण्डित तू क्यो चूकता है ?

१. अ० वा०, पृ० ९८४।
२. वही।
३. "ज्ञान ध्यान दोह बैठाहार, शूद्र जुहारै हाथ पसार"—वही० ।
४. "पडित सोही पिण्ड कू सोधै, महा अपरबल मन कूं बोधै"—वही।
५. वही।

"मिनख जन्म उत्तम द्विज देही।
जा करि भजिए राम सनेही।
राम कहत अधम तिर गया।
तू क्यों पंडित गाफिल भया।"[1]

स्वामी जी की दृष्टि में चारों वेद का वक्ता, षट् शास्त्र एवं व्याकरण का ज्ञाता, संध्या-तर्पण और गायत्री में रत रहने वाला पण्डित यदि भक्ति-विमुख है तो वह पापी है—

"वक्ता च्यारयू वेद बखाणं।
शास्त्र षट् नव व्याकरण जाणं।
संध्या तर्पण गायत्री जापी।
भक्ति विमुख सो कहिये पापी।"[2]

ज्योतिषाभिमानी उन्मत्तवशी पण्डित का रत्न सदृश जीवन नष्ट होते देख कवि को पछतावा होता है, वह कहता है—

"रतन जनम हार्‍यो अज्ञानी।
उत्तम कुल जोतिष अभिमानी।"[3]

परन्तु है तो वह पण्डित, अतः स्वामी जी उससे प्रश्न करते हैं कि लोभ, मोह और अज्ञान में बँधकर पण्डित तू ने क्या पाया ? खैर, जो हुआ सो हुआ पर अब सजग होकर राम का नामस्मरण कर संसार-सागर से मुक्त हो जा—

"लोभ मोह अज्ञान बंधाया।
तै पंडित होइ कहा कुमाया।
रामचरण अब ढील न करिये।
रामसुमर भवसागर तिरिये।"[4]

योगी रूप

स्वामी रामचरण ने साधु संन्यासी या योगियों के वेश में समाज को ठगने वाले तत्त्वों का गहरा अध्ययन किया था। वास्तव में ये सभी विभिन्न सम्प्रदायों या पन्थों का वेष

१. अ० वा०, पृ० ९८४।
२. वही, पृ० ९८४-८५।
३. वही, पृ० ८५।
४. वही।

धारण कर लेते थे और धर्मभीरु समाज को मूड़ने में कोई कोर-कसर न उठा रखते थे। ऐसे विभिन्न वेषी साधुओं एवं योगियों से स्वामी जी ने समाज को सजग किया था। 'विश्राम-बोध' के आठवें एवं 'समता निवास' के आठवें प्रकरण तथा 'लच्छ अलच्छ जोग', 'बेजुक्ति निराकार' और 'शब्द' आदि ग्रन्थों में इन तत्त्वों का पर्दाफाश खूब हुआ है।

नागा साधु

नागाओं के समूह को स्वामी जी ने सेना के रूप में देखा है। 'विश्राम बोध' के आठवें विश्राम में 'नागी सेना' शीर्षक देकर उन्होंने नागाओं के सैनिक रूप का वर्णन किया है—

"तन पर खाख चढ़ाय कै, बरछी लीन्ही हाथ।
तुपक तायरी बांधि कै, चालै जोड़ जमात।"[1]

ग्रंथ 'लच्छ अलच्छ जोग' में सभी साधुओं से बड़े विनम्र शब्दों में स्वामी जी नागाओं को साधु-समाज का अवांछित तत्त्व बतलाते हैं। कलियुग में नागा के रूप में दानव प्रकट हुए हैं। जहाँ यज्ञादि महोत्सव होते हैं, वहाँ ये दानव सदृश विध्वंस करने पहुँच जाते हैं—

"कलि में दानव प्रगट्या, नागा बड़ी बलाय।
जिन महोछा देखिकैं, दौड़ि विध्वसै जाय।"[2]

नागाओं की सेना काल की सेना के सदृश किसी भी नगरी में पहुँचकर नगर निवासियों को आतंकित कर देती है। स्वामी जी ने इस सन्दर्भ में विभिन्न साधु-सम्प्रदायों के नागा साधु संगठनों की चर्चा की है, जैसे—निर्वाणी, संतोषी, निर्मोही, खाकी, गूदड़िया आदि। इन सभी वैरागी अखाड़ों के नागा कुश्ती लड़ने, डण्ड-व्यायामादि में रत रहते हैं[3]—

"नागा की फौज बखाणूं।
मैं भांति भांति परमाणूं।
कटक काल को आवैं।
नगरी दुनिया धड़कावैं।
निरालंब निर्वाणी।
ये संतोषी अगिवांणी।
खाखी धूल्या आया।
निर्मोही झुण्ड बणाया।"[4]

१ अ० वा०, पृ० ८३१।
२ वही, पृ० ९८६।
३. कुश्ती का पूचा मोड़ै. . .ये पेलै डड वियामा। —वही, पृ० ९८६।
४. वही।

स्वामी जी इस निष्कर्ष पर हैं कि नागा संगठन साधु-समाज में असामाजिक तत्त्व हैं। इनसे राजा भी डरता है, ये प्रत्यक्ष काल स्वरूप हैं—

"रामचरण नागा नगन प्रत्यग काल स्वरूप।
जगत बिचारो क्या करै, धडको मानै भूप।"[1]

योगी

अपने लघु ग्रन्थ 'शब्द' में स्वामी रामचरण ने 'चौपाई' और 'निशाणी' छन्द पंक्तियों में कलियुग के योगियों का भण्डाफोड़ किया है। यहाँ योगी से स्वामी जी का तात्पर्य नाथ-योगियों से ही है जो कनफटे, मुंडित सिर एवं भगवाधारी होते हैं। "कानफड़ाया सिर मुरड़ाया भगवा बेष बणाइन्दा।"[2] ये आदिपुरुष का रहस्य तो जानते नहीं। हाँ, लबेद के सहारे भीख की उगाही अवश्य करते फिरते हैं, कहने को नाथ कहे जाते हैं पर घर-घर गीत गा-गाकर भंडैती करते घूमते हैं—

"आदि पुरुष का लखै न भेव।
भीख उघावै लिया लबेद।
× ×
गावै गीत भंडाई करै।
नाथ कहावै घर घर फिरै।"[3]

स्वामी जी की दृष्टि में ये नाथ योगी पंच विकारों[4] से मुक्त नहीं, और नहीं तो ऊपर से योगिनी का साथ भी हो जाता है। स्वामी जी इस निष्कर्ष पर हैं कि कलियुग का योगी करणी भ्रष्ट और पंचरस भोगी है—

"पाँचू छूटी सकै साथ।
बहुरि निसरड़ी जोगणि साथ।
× × ×
करणी भ्रष्ट पंचरस भोगी।
रामचरण ये कलिजुग का जोगी।"[5]

---

१ अ० वा०, पृ० ९८७।
२. वही, पृ० ९९१।
३ वही।
४ काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद—संत साहित्य, पृ० २०५।
५ अ० वा०, पृ० ९९१।

अन्य सम्प्रदायों के साधु

स्वामी जी को कलियुग में विरक्त बिरला ही दीखता है, सभी कनक-कामिणी में लीन है। 'बेजुक्ति तिरस्कार' में उन्होंने सभी मतों के साधुओं को वासना-रत देखा है, चाहे वह भद्रवेश हो या जटाधारी, चाहे खाकी हो या कनफटा, चाहे जैनी हो या नमाजी—सभी नारी योनि के भोग में रत हैं—

> "रामचरण कलुकाल में, बिरकत बिरला कोय।
> कनक कामणी रत घणा, बैठा जत मत खोय।
> × × ×
> कान फड़ाय र जोगी भया।
> नारि कनफडी सूं मन दिया।
> कर्णफूल मुद्रा इक संग।
> छैल छबीला नाना रंग।
> बार बार थाकू धिरकार।
> शक्ति पूज भुगतै भगद्वार।"[1]

कवि ने इसी शैली में विभिन्न वेशधारी एवं मतावलम्बी साधुओं को नारी-संयोग में रत होने के लिए दुत्कारा है। अति यथार्थ के धरातल पर उतर कर उन्होंने समाज के समक्ष समाज के इन पाखण्डरूपों का सही रूप प्रस्तुत कर दिया है।

मादक वस्तुओं का सेवन-निषेध

स्वामी जी ने जीवन में सदाचार एवं सात्विकता को विशेष महत्त्व दिया है। उन्होंने अहिंसा पर इतना बल दिया कि पानी छानकर पीने का आदेश अपने जिज्ञासुओं को दिया। मांसाहार की तो बड़ी भर्त्सना की। इसके साथ ही उन्होंने मादक वस्तुओं—तम्बाकू, गाँजा आदि के सेवन का भी निषेध किया। अपने महाग्रन्थ 'अणभै वाणी' में उन्होंने इस आशय की चर्चा की है। 'साखी भेख को अंग' की निम्नलिखित पंक्तियाँ उपर्युक्त कथन को पुष्ट करती हैं—

> "कै आफू कै भांग तमाखू, घोटा कुण्डी लार।
> भक्त हुआ पण राम न जाणै, अमलां का अधिकार।
> भक्त हुआ छा भजन करण कूं, भजन रह गया दूर।
> भांग तमाखू लगाकर, कर्म किया भरपूर।"[2]

---

१. अ० वा०, पृ० ९८९।
२ वही, पृ० ६८।

'कुण्डल्या भेख को अंग' में स्वामी जी भाँग-तमाखू को भेख का भाड़ने वाला कहते हैं—

> "भाग तमाखू छूतरा कियो भेख क भाड।"[1]

इसी प्रकार 'नशा को अंग' के सवैया और कवित्त शीर्षकों में भी भाग, तम्बाकू, अफीम आदि के सेवन का निषेध स्वामी जी ने किया है।

लीला और स्वांग की भर्त्सना

स्वामी जी महापुरुषों की लीला करने और स्वांग रचने के भी कट्टर विरोधी थे। उनकी दृष्टि में ये कृत्य उनकी महत्ता तो कम करते ही हैं, अपमान भी करते हैं। 'नारी मर्म विध्वंस को अंग' के आरम्भ में ही कवि राधा और कृष्ण का स्वांग रचने वालों की तीखी आलोचना करता है। गोवर्धनधारी कृष्ण का रूप बनाकर चौराहे पर नाचने वाले मसखरे से चिढ़कर स्वामी जी कहते हैं कि नख पर गोवर्धन धारण करने वाला, ब्रजजनों का त्राता चौराहे पर क्यों नाचता है और क्या भीख माँगकर खाता है?—

> "गोबर्द्धन नख पर धर्‌यो, ब्रज की करी सहाय।
> सो क्यूं नाचै चौहटै, भीख माग क्यूं खाय।"[2]

सुर, नर, मुनि जिसका सदैव भजन करते है, जो असुरों के लिए अजेय है, उस कृष्ण की नकल उतार कर भांड उनको फजीहत करता है। स्वामी जी की दृष्टि में यह अनर्थ है पर स्वार्थवश भाँड इस अनर्थ का बोझ ढोता है और जो इस भाँड को पैसे देते हैं वे गँवार भी पाप का भार वहन करते हैं—

> "जाकूं सुरनर मुनि रटै, असुरा सिरै अजीत।
> ताकू भांड बिगोवा नकलकर, भड़वा करै फजीत।
> भंड़वा स्वारथ कारणै, लैचै अनर्थ भार।
> रामचरण जो दाम दे, खैंचै पाप गिवार।"[3]

सत्य तो यह है कि ये नाचने वाले डोम है पर कहते है कि राधा और कान्ह हैं और पशु सदृश अन्धविश्वासी जन उन्हे ही देख कर दान देते है। पुरुष कृष्ण की रानी राधा का स्वांग रचकर, नारी का चेहरा लगाकर घर-घर नाचता फिरता है और इस 'प्रकट कपट' को संसार भक्ति की संज्ञा देता है—

---

1. अ० वा०, पृ० १८५।
2. वही, पृ० ६५।
3. वही।

"स्वारथ नाचै डूमड़ा कहै राधिका कान्ह।
रामचरण आंधा पशू, ताहि देख दे दान।
राधा राणी कृष्ण की, सब ही में अधिकार।
ताकी नकल बणाय कै, नाचै घर घर बार।
ऊपर चहरा नारि का, माहि पुरुष आकार।
रामचरण प्रगट कपट, भक्ति कहै ससार।"[1]

स्वामी जी ऐसे राधा-कृष्ण का नटन करने वालो तथा उन्हे दान देने वालो पर व्यग्य करते हुए कहते है कि राधा को नाचते और कृष्ण को कूदते देखा गया है—

"राधा देखै नाचती, कूदत देखै कान्ह।
रामचरण ताहि दान दे, आधा पशू अज्ञान।"[2]

नारी का स्वाग बनाकर नाचने वाला मूर्खो का धन-माल अपहृत करता है पर बुद्धिमान लोग जहाँ ऐसी आचरणहीनता देखते हैं, कदम नही रखते। इसी को ससार धर्म कहता है पर स्वामी जी की दृष्टि मे यह 'प्रकट पाप' दीखता है। ऐसे पाप का निषेध स्वामी जी निधड़क करते है—

"नारी सांग नरतन करै, हरै मुग्ध धनमाल।
बुध जन तहां न पग धरै, दर्शै चाल कुचाल।
× × ×
धर्म कहै ससार सब, प्रगट दीसै पाप।
पुत्र नचावै वांन दै, नाचै भाई बाप।"[3]

स्वामी जी ऐसे अधम मानव को अधबेसर की सज्ञा देते हैं जो स्त्री का स्वाग बना कर लोगो मे काम-वासना का जागरण करते है। इनके पैर पीटने, ताली बजाने, नकल करने और गाने से आकृष्ट जनो की मनसा विचलित होती है। कवि यह देख कर अवाक् है कि ससार मे ऐसे अनेक जन हैं जिन्हे ठग कर भाँड अपना जीवन यापन करते हैं—

"अधम गति अधबेसरा, मूर्ख बहकावै रे।
कामिणि साग बणाय कै, मन काम जगावै रे।
× × ×
पग पीटै नकलां करै, ताली दे गावै रे।
कौतिक देखै कौतिगी, मनसा बिचलावै रे।

---

१ अ० वा०, पृ० ६५।
२. वही।
३ वही।

"रामचरण संसार की, कछु कहत न आवै रे।
ज्ञान हीण हिय अध की, भडवा छल खावै रे।"[1]

झीणूं सो मारग हाथ न आवै : एक समीक्षा

'सवैया साच को अग' मे स्वामी रामचरण ने परमात्मा तक पहुँचने के पथ को 'झीणा मारग' (सूक्ष्म पथ) कहा है। यह 'झीणा मारग' सामाजिक माया जाल, ढोंग-पाखण्ड से नहीं मिलता। इसके लिए गुरु प्रदत्त ज्ञान अपेक्षित है।[2] पर मनुष्य भौतिकता के बधन में जकडा हुआ है। उस भौतिकता के भ्रम के कारण ही कोई काशी में जाकर वेदाध्ययन करता है, कोई करवत लेता है, कोई हिमालय मे जाकर हड्डियाँ गलाता है तो कोई केदार तीर्थ का पत्थर लाता है।[3] स्वामी जी की दृष्टि मे आबू, गिरनार पर्वतो की चढान गोमती सगम स्नान, दण्डकारण्य का वास, गोदावरी की सिद्धि, केशलुचन, मुख पर कपडा लगाना, कान फडाना, लिंग का चमडा कटवाना, द्वारिका, मक्का भ्रमण, पुराण-कुरान का अध्ययन तथा इसी प्रकार के अन्य विविध कर्मकाण्डो से भगवान नही रीझता—

"कोइक आभू चढ़ै, गिरनारहि कोइक गोमती सगम न्हावै।
कोइक वास करै दण्डकारण्य कोइक सिद्धि गोदावरी पावै॥
. . . . . .
लूच किया मुख पाट दिया हरि नांहि मिलै अग छार लगाया।
कान फट्या लिंगचाम कट्या यूं राम रीझै नहि मूड मुंडाया॥
. . . .
हिन्दू को देव द्वारिका राजत वेद पुराण मे पण्डित गावै।
कुरान कतेब तुरक्क पढ़ै सिध बैठ जिहाज मक्कै चलि जावै॥"[4]

स्वामी जी की दृष्टि मे कर्मकाण्डो से भ्रम उत्पन्न होता है। ससार के प्रपचो मे वृद्धि के कारण मनुष्य को मुक्ति का मार्ग नही मिल पाता। स्वामी जी ने इन सभी कारणो की धज्जी उडाई है और कर्मकाण्डों के परित्याग का उपदेश दिया है। इसके साथ सामाजिक रूढियो, पाखण्डो और उनके पोषक विभिन्न वेशधारी ढोंगियो की भी अच्छी खबर ली है। उन्होने सबसे विरत हो रामस्मरण का पंथ सुझाया है।

---

१. अ० वा० (सुख विलास सप्तम प्रकरण) पृ० ३७६।
२. "रामचरण बिना गुरु ज्ञानहि झीणू सो मारग हाथ न आवे।"
—वही, पृ० ९६।
३. "कोइक काशी मै वेद पढै पुनि कोइ करवत शीश चढावै।
कोइक हाड हिवाला मै गालत कोइ केदार को काकण लावै।"—वही
४ वही।

रचनात्मक

स्वामी रामचरण ने जहाँ लोक-जीवन से अमंगलमयता को ध्वस्त करने का उद्-घोष किया था वहीं उन्होंने जीवन को मंगलमय करने के लिए रचनात्मक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया था। इनकी कल्पना का सज्जीवन एक आदर्श जीवन था जिसके लिए उन्होंने जन-मानस को अपनी प्रेरणाओं से भर दिया था। एतदर्थ उन्होंने नामोपासना, सत्संग, अहिंसा, दया, श्रद्धा, विश्वास आदि विभिन्न आदर्शों को जीवन का पाथेय बनाने का संदेश दिया था।

नामोपासना

निर्गुण गायक संतों मे से अधिकांश ने राम-नामस्मरण का उपदेश दिया था। स्वामी रामचरण ने नामोपासना की महिमा का गान करते हुए सभी को रामभजन की प्रेरणा दी। भगवान के नाम स्मरण से मनुष्य निष्पाप हो जाता है। जैसे सूर्य का प्रकाश 'शीतकोट'[1] को समाप्त कर देता है वैसे ही नामस्मरण से पाप कट जाते हैं। नाम पाप रूपी शीतकोट के लिए सूर्य है, पाप रूपी धुआँ के लिए मारुत सदृश है, यदि पाप समूह भेड़ों का यूथ है तो नाम सिंह है पाप व्याल के लिए नाम मयूर है। पाप रूपी जंगल के झाड के लिए नाम पावक है—

"पाप शीत के कोट नाम आदित्य प्रकाशै।
पाप धोम की धाम नाम मारूत बिनाशै।
पाप भेड़ के यूथ नाम केहरि मल गज्जै।
पाप बावनै भजुग नाम मोरा कोहो भज्जै।
अघ आरण उलझाड़ नाम पावक परजालै।
अघ पाला के पुंज नाम सूरज तप गालै।
रामचरण सोरो सुरंग गढ उडि बीखर जाय।
इसो अपरबल राम है भजतां मुक्ता थाय।"[2]

नामोपासना से मन शुद्ध होता है। जैसे साबुन से मैल कटती है वैसे नामस्मरण से मन धुल जाता है, नाम वह अग्नि है जिससे कर्मवन जल कर नष्ट हो जाता है। एतदर्थ स्वामी जी वेद और साधुओं की साक्षी की बात भी कहते हैं—

---

१. शीतकोट—मरुभूमि मे ग्रीष्मकाल के मरीची नीर सदृश शीतकाल मे सूर्योदय से कुछ पहले पश्चिम दिशा में 'कोट कंगूरे' बुर्ज आदि से युक्त नगर-सा दिखाई पडता है पर सूर्य का प्रकाश होते ही भ्रमित करने वाला नगर अदृश्य हो जाता है। यही शीतकोट है—लेखक।

२. अ० वा० (नाम समर्थाई को अंग), पृ० १०६।

"मलचर काट मैल नाम यूं मन को धोवै।
बहु बन जालै अनल नाम ऐसे क्रम खोवै।
. . .
वेद साध सब ठीक है सुमरन सूं सुख होय।
रामचरण सतगुरु शब्द राखो हिरदै पोय।"[1]

'चन्द्रायणा नाम समर्थाई को अंग' मे स्वामी जी रामनाम के प्रताप का स्मरण कराते है और कहते है कि यह एकमेव 'तारक' है। इसके प्रताप से जीव तो क्या पत्थर भी पार हो जाते हैं—

"राम नाम परताप सुरति कर जोय रे।
या बिन तारक नाहि दूसरो कोय रे।
जद्‌ठ तिरै जल माहि लिख्यो रक्कार रे।
परिहा पाहण उतरे पार जीव क्या बार रे।"[2]

'समता निवास' के द्वितीय प्रकरण मे कवि रामनाम को अनन्य 'मंगलपद' कहता है जिसके स्मरण मे कुछ लगता नहीं और मन मे भी कोई अन्य भाव नहीं उपजता प्रत्युत तीनो ताप से मुक्ति मिल जाती है। नामस्मरण से मन मे पूर्ण शान्ति आती है और अशाति दूर होती है। यह रामनाम अनेक जन्मो के सचित पापो का अपहर्ता बडा चोर है—

"रामनाम सम दूसरो कोइ मंगल पद नहि ओर।
सो लेता कछु लागत नहीं जी आवत नाही ओर।
जी आवत नाहीं ओर तापत्रय रहण न पावै।
सुमरत शाता पूर अशाता निकट न आवै।
संचित पाप केइ जन्म के जे हरणै बड चोर।
रामनाम सम दूसरो कोइ मंगल पद नहि ओर।"[3]

'राम रसायण बोध' के द्वितीय प्रकरण मे कवि राम नाम को 'परमपद' की संज्ञा देता है जिसकी स्मृति से समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती है, सतोष की उत्पत्ति होती है और मन की वासनाएँ नष्ट होती हैं। 'राम जी' सूक्ष्म-स्थूल सभी मे व्याप्त हैं जिनका सुमिरन 'अभग सुख' का दाता है—

---

१. वही, पृ० १०५।
२. अ० वा०, पृ० ७६।
३. वही, पृ० ८७०।

"परमपद्द इक राम कामना सबही पूरन।
उपजावै संतोष मनोरथ करिहै चूरन।

. . .

रामचरण इक राम जी सुखिमधूल सर्वंग।
जाको जे सुमरण करै जाकै सुक्ख अभंग।"[1]

'विश्राम बोध' के तृतीय विश्राम में स्वामी जी राम नाम को जीव की जीविका या आधार कहते हैं। जैसे प्राण की जीविका धान है वैसे ही जीव की जीविका राम है—

"प्रांन की जीविका जांनि यह धांन है जीव की जीविका राम कहिये।
धांन सूं प्रांन अरु राम सूं जीव है ताही तैं राम का नाम लहिये।"[2]

'सुख विलास' के तृतीय प्रकरण में स्वामी जी भजन विकास को हृदय में उत्पन्न होने वाले 'आनन्द प्रकाश' का कारण मानते हैं। राम का नाम स्मरण करने से दुःख-द्वन्द्व भय-भ्रमादि का नाश होता है—

"भजन उदय जहाँ जानिये, उर आनंद प्रकाश।
रामचरण दुख द्वन्द गया, भया भर्म भय नाश।"[3]

इसी प्रकार 'अणभो विलास' के पंचम प्रकरण में स्वामी जी नामस्मरण को भक्ति का अंग स्वीकारते हुए उसे सब अंगों में श्रेष्ठ घोषित करते हैं। राजा हो या रंक जो भी राम का नामस्मरण करता है उसे सद्गति मिलती है—

"सुमरण भक्ती अंग कही जे,
सब मांही शिर ताजा।
सुमरै राम सोही गति पावै,
कहा रंक कहा राजा।"[4]

'सवैया नाम महिमा को अंग' में स्वामी जी ने राम का नामस्मरण कर मुक्ति पाने वालों की चर्चा के साथ नामप्रताप को उजागर किया है। ग्राह से पीड़ित गज, तोता को राम-राम पढ़ाने वाली वारवधू, अघी अजामिल, ध्रुव, प्रह्लाद, कबीर आदि अनेक नाम से

---

१. अ० वा०, पृ० ८७०।
२. वही, पृ० ६६०।
३. वही, पृ० ३४९।
४. वही, पृ० २३३।

अनुरागियो के उद्धार का सदर्भ प्रस्तुत कर स्वामी जी ने नामोपासना की महिमा गाई है—

"गज ग्राह गह्यो तब राम कह्यो नहिं ढील करी तिहिकाल उवारे।
रामहि राम पढ़ावति कीर कू वारमुखी कैसे कर्म निवारे।
रामनारायण नाम लियो सुत हेत अजामिल अघ. प्रजारे।
रामचरण्ण दयासिन्धु रामजी थोरे हि में अैसे पावर त्यारे।

काशी मे एक कबीर भयो जुलहुवा घर आय प्रवेस कियो है।
छाडि दियो सबही कुल को धर्म नाम निरजन सोधि लियो है।
शाह सिकंदर ताप दई तब पूरण ब्रह्म में प्राण दियो है।
रामचरण्ण ये सत न सूझत ता नर को धिरकार जियो है।"[1]

'साखी सुमरण को अग' मे कवि ईश्वर के दीदार का साधन नामस्मरण को मानता है। बिना भजन के भवपाश से मुक्ति सभव नहीं है—

"भजन बिना छूटै नही रामचरण भव पासि।
जे चाहवै दीदार कूं तो रटिये सास उसास।"[2]

स्वामी जी राम के नामस्मरण पर बार-बार बल देते है, क्योकि वह सुख का सागर एव दुख भजक है। भाव से रामभजन करने से प्रेम का विकास होता है। अत कवि ससार की इस रीति को छोडने और राम भजन को न छोडने का सत्परामर्श सभी को देता है। इसी सन्दर्भ मे वह इसे 'आनन्दपद' कह देता है—

"सुख का सागर राम है दुख का भंजनहार।
रामचरण तजिये नहीं भजिये वारंबार।
. . .
रामभजन कर भावसू दिनदिन बधती प्रीति।
रामचरण संसार की तजि देवै रसरीति।
. . .
रामभजन आनंदपद दुख दीर्घ संसार।
रामचरण दुख परिहरो सुखपद करो विचार।"[3]

---

१ अ० वा०, पृ० ८६।
२ वही, पृ० ६।
३ अ० वा०, पृ० ८।

अंत में स्वामी जी यह कहते हैं कि गुण, इन्द्रियों और मन पर विजय करके राम का नामस्मरण करना चाहिए क्योंकि यही 'मोखपथ' है, अन्य सब नहीं—

"सुमरै रमता राम कूं गुण इन्द्री मन जीत।
रामचरण यह मोख पथ और सकल विप्रीत।"[१]

यह राम का नाम 'रसायन' है, इसका पान करने वाला व्यक्ति जीवन्मुक्त हो जाता है, उसे पुन माता जन्म नही देती। 'रामरसायण बोध' की ये पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"जननी कबहूं नां जणै जो पीवै रामरसाण।
राम रसायण पीवता मिटै जीव की बाण।"[२]

इसीलिए तो सत अब अपने 'रमइया' के दीदार के लिए बेचैन है, वह निशिदिन रामनाम की टेर लगाये हुए है। 'गावा का पद' का यह पद इसी भावना से ओत-प्रोत है—

"रमइया मेरी पलक न लागै हो।
दरश तुम्हारै कारणै निशिबासर जागै हो।
दशूं दिशा आतर करूं तेरो पंथ निहारूं हो।
राम नाम की टेर दे, दिन रैण पुकारूं हो।"[३]

कवि ने रामनाम की उपासना का महत्त्व समझा है और सभी को राम के नामस्मरण की प्रेरणा दी है क्योंकि यह मगल पद, परमपद, आनन्दप्रकाश, भक्ति का साधन आनद पद, सुखपद, मोखपथ आदि सभी कुछ है। यह राम का नामस्मरण सचमुच भवपाश से मुक्त करने वाला है। इसीलिए स्वामी जी सभी को नामोपासना का सदेश देते है।

सत्संग

स्वामी रामचरण ने सत्संग को लोकजीवन के लिए अत्यावश्यक समझा है। मन की निर्मलता, सदाचरण एवं अन्य सद्विचारो की रक्षा एव विकास सत्सग से ही सम्भव है। समाज में कुत्सित विचारों एव व्यवहारों वाले लोगो की सख्या कम नही है। उनके प्रभाव से समाज को अछूता रखने का गम्भीर प्रयास सत जीवन का प्रमुख उद्देश्य होता है। स्वामी रामचरण ऐसे सन्तो मे प्रमुख स्थान रखते है जिन्होने जीवन के नैतिक मूल्यो, उच्चादर्शों एवं मोक्षादि के लिए सत्सग को बडा ही आवश्यक बतलाया है। उन्होने नामस्मरण के साथ

---

१. वही, पृ० ९।
२. वही, पृ० ९२९।
३. वही, पृ० १००६।

सत्सग को भी नितान्त आवश्यक अग समझा है। 'अणभो विलास' के बीसवे प्रकरण मे सत्सग को कवि ने 'रामबाग' की सज्ञा दी है जिसमे उत्तम-उत्तम गणो वाले वृक्ष हैं—

"उत्तम उत्तम तरु सरु है सकल गुण,
राम ही चरण रामबाग सत्सग है।"[1]

सामान्य रूप से अच्छे जनो के सम्पर्क मे रहकर उनसे सद्चर्चा करना सत्सग कहलाता है। स्वामी जी ने साधु सगति को सत्सग का पर्याय सदृश मान लिया है और हरि चर्चा को सत्सग के रूप मे स्वीकार किया है। कहा भी है कि सत्सग वह सरोवर है जिसमे राम जल होता है और जिसका घाट कोई साधु ही बाँधता है—

"सतसंग सरवर रामजल, कोई साधू बाधै घाट।
करम कचोई आतमा, बहती रोकै बाट।"[2]

कवि सत्सग की चर्चा के साथ कुसग से चेत भी करता चलता है। जहाँ वह सत्सग को मोक्ष का कारण कहता है वही कुसग को बधन समझता है। नरदेह के साथ इन दोनो लक्ष्यो का लगाव प्रमाणित है—

"सत संग कारण मोख को, कुसंग बधन जान।
रामचरण नरदेह मैं, ये दोय लछ प्रमान।"[3]

कुसग का परिणाम दुख होता है। स्वामी जी का विचार है कि सत्सगति मिलते ही कुसगति से विरक्त हो जाना चाहिए, यदि तनिक भी लापरवाही हुई तो खेल के उलटा हो जाने की सम्भावना हो जाती है। देखिए न, जीव ब्रह्म का अश है पर देही का सग मिल जाने के कारण दुख पाता है—

"जाकूं सतसंगति मिलै, सो तजै कुसंगति मेल।
रामचरण गाफिल रह्याँ, होय जाय उलटा खेल।

• • •

रामचरण कुसग का देखो फल निरताय।
जीव ब्रह्म का अंस है, देही संग दुख पाय।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० ३१०।
२. वही (साखी साध संगति को अग), पृ० २२
३. अ० वा० (साखी साध सगति को अग), पृ० २२।
४. वही (साखी कुसगति को अग), पृ० २३।

सत्सग दुःख मुक्ति का सरल साधन है। सत्सग ऐसा पद है जिससे जन्म-मरण के दुःख से छुटकारा मिल जाता है। स्वामी जी का मत है कि ज्ञान की न्यूनता में राम का भजन करना चाहिए, इससे हृदय में काम-क्रोध का विकास नहीं होता और दुःख तो सभी मिट जाते हैं—

"सत्सग सुगम उपाय ध्याय के कीजिए।
उभै दुःख मिट जाय इसो पद लीजिए।
ज्ञान गरीबी पाय भजें नित राम रे।
परिहां रामचरण उर क्रोध न व्यापे काम रे।

• • •

सर्व दुःख मिट जाय किया सत्सग रे।
तृष्णा तर्क विकार न व्यापे अग रे।"[1]

स्वामी जी सत्सग को बुद्धि की निर्मलता का कारण घोषित करते हैं। सत्सगति में लोभ, मोह और क्रोधादि मिट जाते हैं तथा उनके स्थान पर शील, सतोष और दया जैसे सात्त्विक गुणों की उत्पत्ति होती है। सत्सग धैर्य के रस का पान कराता है और काम-कुबुद्धि को समाप्त करता है। कवि कहता है कि मानव जीवन में सत्सग बड़े भाग्य से मिलता है, इसलिए साधु सगति अवश्य ही करनी चाहिए—

"करि मन सगति साधुन की जहाँ बुद्धि निर्म्मल रामहि गावै।
लोभ अरु मोह विरोध मिटै सब शील संतोष दया उपजावै।
धीरज को रस पाय छकाय दै काम कुबुद्धि की लहरि न आवै।
रामचरण्ण नरातन पाय कै भाग बडो सत्संगति पावै।"[2]

कवि की दृष्टि में सार-असार का अन्तर भी सत्सग में ही स्पष्ट हो पाता है।

"सार-असार का भेद यारो सत्संग बिना नहि पाइयेजी।"[3]

'कवित साध सगति को अग' में स्वामी जी स्पष्ट कहते हैं कि सत्सग के समान दूसरा कुछ भी नहीं है क्योंकि सत्सग में ही ब्रह्म निरूपण होता है और निज नाम की अनन्य भक्ति भी मिलती है। सत्सग से भय-भ्रमादि नष्ट होते हैं और आत्मा विकार रहित निर्मल हो जाती है। इसलिए सत्सग को सर्वश्रेष्ठ समझकर करना चाहिए।

"सब साधन कै शिरै समझ सत्सगति कीजे।
तन मन धन त्रय थोक अर्प सतगुरु को दीजे।

---

१ अ० वा० (चन्द्रायणा साधु सगति को अग), पृ० ७८-७९।
२ वही (सवैया साध सगति को अग), पृ० ८८।
३. वही (झूलणा साधु संगति को अग), पृ० १०२।

अनन्य भक्ति निज नाम साध संगति मे पावै।
मिलै न दूजी ठाय मर्म त्रय लोकी आवै।
रामचरण सत्सग सम और न दीसै कोय।
जहा निरूपण ब्रह्म को सदा सर्वदा होय।"[1]

'सुख विलास' के छठें प्रकरण में स्वामी रामचरण ने 'सत्सग महिमा' शीर्षक के अन्तर्गत सत्सग को 'ज्ञान का आगर' कहा है। जैसे साभर नमक का भण्डार है वैसे ही सत्सग ज्ञान का।[2] इसीलिए स्वामी जी शुद्ध बुद्धि से साधु सगति करने का उपदेश देते हैं और सत्सग से प्राप्त ज्ञान को हृदय मे धारण करने को कहते हैं।[3]

इसी प्रकरण मे स्वामी जी ने सगति के दोनो प्रकारो की भी चर्चा की है। उनके अनुसार दो प्रकार की सगति होती है—१. तारक, २ नाशक अर्थात् सत्सग और कुसग। इनमे से जो पसद आये उसको धारण कर लेने की बात भी वे कहते है। किन्तु स्मरणीय है कि सत्सग तुम्बिका है और कुसग पाषाण। तुम्बी के सहारे मनुष्य पार जा सकता है पर पत्थर तो किनारे ही डूब जायेगा।

"संगति दोय प्रकार की करिये परख विचार।
इक तारण इक बोवणी मन मानै सो धार।
मन मानै सो धार तुम्बिका सत्संग जांनो।
पांहण जिसो कुसंग उभय अर्था यू माणो।
रामचरण अपणी उक्ति ऐसी जुक्ति निहार।
संगति दोय प्रकार की करिये परख विचार।"[4]

दोनों को स्पष्ट करने के लिए कवि ने एक प्रतीक का सहारा लिया है। लोहा का स्वभाव जल मे डूब जाने का है पर लकडी का स्वभाव तैरने का है। लोहे का कांटा नौका में जडा रहता है, वह भी उसी के साथ तैर जाता है। इसी प्रकार लोहे के घन मे लकड़ी का बेंट

---

१ अ० वा०, पृ० ११२।
२. "साभर आगर लूण को यू सत्संग आगर ज्ञान।"—वही, पृ० ३६८।
३. "संगति कीजै साध की दिल की दुर्मति खोय।
जो सत्सग मैं ज्ञान होय सो लीजै हिरदै पोय।
सो लीजै हिरदै पोय विसरिये कबहूँ नाही।
जोलूं देह हयात बरतिये गुरगम माही।
रामचरण नर देह को तबही कारज होय।
सगति कीजै साध की दिल की दुर्मति खोय।"—वही।
४. वही, पृ० ३६८-६९।

लगा रहता है, जो लोहे के साथ जल मे डूब जाता है। जगत के जीव लोहे के सदृश हैं और सत-जन दारु (लकड़ी) के समान। तात्पर्य यह कि सतो के सत्सग से ससारी जीव का उद्धार हो जाता है पर ससारी जीव के कुसग मे पडा व्यक्ति डूब जाता है—

"लोहा भव जल डूब है दारक तिरण सुभाय।
जे कांटा नौका जडै तो दारक संग तिर जाय।
तो दारक सग तिर जाय जगत जीव लोहा जांना।
निर्विकार निर्लोभ सोही जन दारु समांना।
तुछ बैंसो घण मैं जड़ै वै हिल मिल उभय डुबाय।
लोहा भव जल डूब है दारक तिरण सुभाय।"[1]

'अमृत उपदेश' के चतुर्थ प्रकाश मे भी 'सत्सग महिमा' शीर्षक में स्वामी जी ने सत्सग की महत्ता का प्रतिपादन किया है। सत्सग प्रेमामृत की नदी है जिसमे अनेक सत डूबे हे पर सत्पुरुष के सग बिना इस प्रेमपीयूष की सरिता मे डूबते किसी को भी नही सुना गया—

"पेम पियष दरियाव मैं बूडे संत अनेक।
सत्पुरुषा का सग बिन बूड़े सुणे न एक।"[2]

सत्संगति प्रेमामृत की नदी तो है ही, वह ज्ञानजल से पूर्ण भी है। समता ही उस नदी का तट है जहाँ जिज्ञासु-हस शांति का वरण किये मोती चुगता है और माया-मछली की ओर ध्यान भी नहीं देता—

"सत्संगति दरियाव है भरे ज्ञान जल मांहि।
समता तठ शाता लियां हंस जिज्ञासी ताहि।
हंस जिज्ञासी ताहि नाम मोताहल चुगिहैं।
माया मच्छी देख ताहि बिशि चित्त न धरिहैं।
रामचरण तज मानसर छीलर आवै नांहि।
सत्संगति दरियाव है भरे ज्ञान जल मांहि।"[3]

'विश्वास बोध' के बारहवे प्रकरण मे 'सत्सग' शीर्षक मे स्वामी जी कहते हैं कि सत्संग की महिमा अपार है।[4] सत्सगति तमहर है, वह ज्ञान का उदय करती है, वह संसार समुद्र को पार करने वाला पोत है—

---

१ अ० वा०, पृ० ३६९।
२ वही, पृ० ४५०।
३. वही।
४ "रामचरण सत्सग कै महिमा को नहि पार।"—वही, पृ० ७२१।

"सत्संगति अगि तम हरै, करै ज्ञान उद्दोत।
जन दांनी निज नाम का, भवतारण बड पोत।"[1]

सत्सग से समता-ज्ञान की उपलब्धि होती है और शोभा बढती है, किन्तु ससार का सग दु:ख की खान है—

"सत्सगति शोभा वध, प्रापति समता ज्ञान।
रामचरण ससार संग, है दुख रूपा खान।"[2]

'विश्राम बोध' के चौथे विश्राम मे कवि सत्सग की धारणा को शुभ का कारण कहता है। शुभ से सतोष का उदय होता है और अशुभ इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं—

"सतसगति की धारणा सब शुभ को कारण जोय।
शुभ सतोष उदै करै अशुभ कामना खोय।
अशुभ कामना खोय नफो टोटो दर्शावै।
टोटा से टलवाय नफा को धर्म दिढावै।
निज बोहिथ निज नाम दे जन भव जल त्यारण सोय।
सत सगति की धारणा सब शुभ को कारण जोय।"[3]

इसी विश्राम मे कवि सत्सग करने के लिए श्रद्धा को आवश्यक समझता है और श्रद्धा से ज्ञान प्राप्त करने का उपदेश देता है—

"सतसंग श्रद्धा सूं करो श्रद्धा सूं ल्यो ज्ञान।
श्रद्धा सू हरि सुमरिये श्रद्धा सू द्यो दान।"[4]

'समता निवास' के चतुर्थ प्रकरण मे 'सत्संग ताको वखाण' शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने सत्सग को ज्ञान की नदी कहा है। उस ज्ञान सरि मे भगवन्नाम का जल प्रवाहित होता है, जो उसका स्पर्श करता है वह निश्चित ही निष्काम हो जाता है।

"सत्संगति ज्ञाना नदी जीं शीतल जल निज नाम।
कोइ परशै आतर लिया सो निर्मल होइ नहकाम।

---

१ अ० वा०, पृ० ७२२।
२ वही, पृ० ७२३।
३ वही, पृ० ७९६।
४ वही, पृ० ७९८।

सो निर्मल होइ नहकाम कामना मल न रहावै।
सुख शाता अलर पूर अशाता अजक बिलावै।
रामचरण मृतलोक मे संत सजीवण धाम।
सत्सगति ज्ञाना नदी जों शीतल जल निज नाम।"[1]

स्वामी जी सत्सग का मिलना और करना दोनो को दुर्लभ कहते है—

"सत्संगति मिलिबो दुलभ, भी दुर्लभ करणो जांणि।
दुर्लभ आशै पारख्या, दुर्लभ शब्द पिछांणि।"[2]

कुसंग त्याग का सन्देश

स्वामी रामचरण ने सत्संग की महिमा का बखान करके उसे ग्रहण करने का जहाँ सन्देश दिया है, वहीं कुसग से दूर रहने की चेतावनी भी बार-बार दी है। गंधी और कलाल के निकट बसने का प्रतीक प्रस्तुत कर वे स्पष्ट करते हैं कि जैसे गंधी के पड़ोस मे बसकर 'शुभ सुवास' लेना चाहिए, कलवार के पडोस मे बसकर 'अशुभ कुवास' लेना अनुचित है, वैसे ही अशुभ कुवास सदृश कुसग का परित्याग और अगम अर्थ की प्राप्ति के लिए सुवास सदृश सत्सग को ग्रहण करना चाहिए—

"गंधी कै पाड़ोस बसि शुभ लीजै बास सुबास।
तज पाड़ोस कलाल को जों घर अशुभ कुबास।
जों घर अशुभ कुबास कुसगति यूं परिहरिये।
जहाँ लहै अगम का अर्थ ध्याय सतसंगति करिये।
ऊँच नीच परखै जिकै जा उर उत्तम आश।
गंधी कै पाडोस बसि शुभ लीजै बास सुबास।"[3]

स्वामी जी 'अणभो विलास' के बारहवे प्रकरण मे कुसंग का बडा स्पष्ट निषेध करते है—

"कबहूँ नांहि कुसंगति कीजै।
कहा पर आपणो सब तज दीजै।
ऊँची दशा बणाया तन पर।
ज्ञान बिहूंणा फिर है घर घर।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० ८८२।
२. वही, पृ० ८८५।
३ वही, पृ० ८८४।
४ वही, पृ० २६५।

कवि की दृष्टि में कुसग-वास मे हरिभक्ति की आशा वैसे ही व्यर्थ है जैसे बबूल का बीज बोकर आम की आशा करना—

"बाहवै बीज बंबूल का उर आंबा की आश।
हर्ष धरै हरि भक्ति को करै कुसगा बास।
करै कुसगा बास बीज जैसो फल लेवै।
पाप कर्म विस्तार कहो सुख कैसे लेवै।
रामचरण जैसी वस्तु तैसो होत प्रकाश।
बाहवै बीज बंबूल का उर आंबा की आश।"[1]

स्वामी जी लोक, वेद और सतजनो की साक्ष्य देकर कहते हैं कि कुसग भला नही। कुसग से मनुष्य की गुरुता हल्केपन मे बदल जाती है। रावण के कुसग का परिणाम यह रहा कि समुद्र की गभीरता हल्की पड गयी और उसमे शिला तैरने लगी—

"लोक वेद अरु सत जन कुसग भलो कहु नाहि।
कुसग कही जे जास को निषिध चलण ता माहि।
निषिध चलण ता माहि जगत भल भवतज होई।
कहा काजी पडित कोय, बिकल बुद्धि भलो न सोई।
रामचरण नीची सगति ऊच तौल घटि जाहि।
ज्यूं रावण का संग दोष सूं समदर सिला तिराहि।"[2]

स्वामी रामचरण ने सत्सग की महत्ता और कुसग के दुष्परिणामों की तुलनात्मक चर्चा करके सर्व सामान्य को सत्संग की ओर चलने का सदेश दिया है। लोकजीवन में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के लोगों से सम्पर्क होता है। ऐसा देखा जाता है कि मानव-प्रवृत्ति कुत्सा की ओर तेजी से उन्मुख होकर जीवन को पतित कर देती है। स्वामी जी ने इस प्रवृत्ति को 'सु' की ओर मोडने के लिए सत्संग को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना है। सत्संग से मानव-प्रवृत्ति जीवन के नैतिक मूल्यों की महत्ता आँकती है और तदनुसार मानव को सदाचरण की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा देती है। सत्सगति मानव के विकासोन्मुख जीवन की आधार-शिला है।

जीव दया

स्वामी रामचरण ने 'जिज्ञास बोध' के उन्नीसवें प्रकरण में 'दया निरूपण' शीर्षक के अन्तर्गत दया की चर्चा की है। स्वामी जी ने दया को धर्म की नींव, करुणा का मन्दिर, ज्ञान

१ अ० वा०, पृ० २६५।
२ वही, विश्राम बोध, द्वादश प्रकरण, पृ० ७१३।

का स्थान कहा है, दया गुणियों मे सुन्दरता है। दया दीनो की रक्षा करती है, परपोषण का भाव दया की उपज है। दया से हृदय शुद्ध होता है, दया किसी को सताती नही है। दया भाव की उत्पत्ति से मन मे निर्दोषिता जन्म लेती है, दया से ही सब जीवो के प्रति मैत्री भाव का जागरण होता है, कोई शत्रु लगता ही नहीं—

"दया धर्म की नीव दया करुणा को मंदिर।
दया ज्ञान को थान, दया गुनियन मैं सुंदर।
दया दीन रिछपाल दया परपोख उपावै।
दया करै दिल शुद्ध दया कोई न सतावै।
रामचरण निर्दोषता दया ऊपज्यां होय।
सब जीवा सै मित्रता शत्रु न भासै कोय।"[1]

स्वामी जी दयावान को देवता समझते है और जो जीव हत्या करते है, वे निर्दय जन राक्षस है—

"देव रूप सो जाणिये, जा उर दया सयांन।
आसुर गति सो निर्दई, जे हतै पराया प्रान।"[2]

'दया धर्म को मूल है'—कहकर कवि ने दया की श्रेष्ठता का निरूपण किया है। दया का सचार जिस जीव मे होता है वह 'परघात' नही करता। दया करुणा के समुद्र सरिस है और पराई पीर समझने का भाव दयालु जन ही रखते है। दया आत्मज्ञान का पथ है। मनुष्य देह मे दया का सचरण तब होता है जब मानव 'देवबुद्धि' हो जाता है—

"दया धर्म को मूल है दया न अधर्म होय।
दया ऊपज्या जीव में परघात बणै नहि कोय।
परघात बणै नहि कोय दया करुणा को सागर।
दया लखै परपीर दया दत्तब को आगर।
मारग आतम ज्ञान के है दयाज आगू सोय।
रामचरण नरदेह में दया देवबुधि जोय।"[3]

स्वामी रामचरण ने दयावत को पवित्र और निर्दय को अपवित्र घोषित किया है।[4] दयाहीन व्यक्ति को स्वामी जी पाप कमानेवाला पापी कहते है। पाप करते उसके

१. अ० वा०, पृ० ६२८।
२. वही।
३. वही।
४. "दयावत सो पाक है बेपाक निर्दयी जाणि।
जाकी साखी अब कहू, सो प्रत्यग लेहु पिछाणि।"—वही, पृ० ६२९।

हृदय मे पीडा नहीं होती, वह प्रसन्न होकर हिंमारत होता है और इस कुकर्म से डरता भी नही, प्रत्युत कुकर्म करने समय उसके हृदय मे प्रसन्नता और श्रद्धा रहती हे। वह जीवहत्या करके खाता है और मुंह से स्वाद की सराहना भी करता है। इस प्रकार रत्नसदृश नरतन को वह बिगाड लेता है—

"पापी पाप कुमावता कसक नहीं उर माहि।
हर्ष हर्ष हिंसा करै कुकर्म डरपै नाहि।
कुकर्म डरपै नाहि मोद श्रद्धा उपजावै।
परवित तन कू हतै खात मुख स्वाद सिराहू वै।
नरतन रतन विगाडियो कहा कहैंगे जाहि।
पापी पाप कुमावता कसक नहीं उर माहि।"[1]

स्वामी जी को ऐसे पतित जनो पर तरस हे जो अपने स्वाद और स्वार्थ के लिए दूसरे जीव का दर्द नहीं समझते और इस प्रकार लघु एव क्षणभगुर जीवन के लिए अपने माथे पर 'पाप-ताप' लेते हे। कवि ऐसे लोगो को सचेत करता है कि आज जो ले रहे हो उसे आगे ब्याज-समेत चुकाना पडेगा—

"दरध बिरांणो ना लखै स्वार्थ स्वादा हेत।
थोडा जीवन कारणै पाप ताप शिर लेत।
पाप ताप शिर लेत लियो आगै भरि देसी।
ई मोसर जिन दियो व्याज सहितो सोही लेसी।
लैणो ज्यूं दैणो सही कोइ अंतर की ज्यो चेत।
दरघ बिरांणो नां लखै स्वार्थ स्वादां हेत।"[2]

धर्म मूल दया को मानव तभी पाता है जब वह कर्त्तव्य करता है। विना करनी के कथनी तृण और धूल के समान व्यर्थ है—

"किरतब सूं पावै सही दया धर्म को मूल।
किरतब विन कहणी अफल सब जांणो तृण तूल।"[3]

कवि दया को धर्म की नौका निरूपित करता है, दया से उपकार का जन्म होता है, दया ही हिंसा के प्रति मानव की आँखे खोलती है और सभी कर्मों मे तत्त्व दया ही है—

---

१ अ० वा०, पृ० ६२९।
२ वही, पृ० ६२८।
३ वही।

"दया धर्म की नावड़ी, दया बणं उपकार।
दया दिखावं हिंसता, दया क्रिया मैं सार।"[1]

स्वामी जी ने 'दया निरूपण' के माध्यम से हिंसकों, मांसाहारियों की जहाँ भर्त्सना की है, वहीं दया को धर्म का मूल, करुणा का मंदिर, करुणा का सागर, ज्ञान का स्थान तथा आत्मज्ञान का मार्ग कहकर दयावान को देवरूप और निर्दय को राक्षस सदृश कहा है।

श्रद्धा

श्रद्धा को परिभाषित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते है—"**श्रद्धा महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूज्य बुद्धि का संचार है।**"[2] मैं समझता हूँ कि पूज्य बुद्धि के साथ लगन भी अपेक्षित है। श्रद्धा जिसके प्रति होती है उसके लिए पूज्य भाव रहता है, साथ ही भाव की क्रियाशीलता लगन से ही सभव है। स्वामी रामचरण ने अपने ग्रथो 'सुख विलास', 'विश्राम बोध' और 'रामरसायण बोध' में 'श्रद्धाभक्ति' शीर्षक से श्रद्धा की महत्ता का प्रतिपादन किया है। मानव, जीवन के नाना व्यापारो मे जब श्रद्धा के साथ जुटता है तभी उसे सफलता मिलती है। लोकजीवन की रचनात्मकता में श्रद्धा का स्थान महत्त्वपूर्ण है। धर्म-अधर्म, कर्म-विकर्म सभी मे श्रद्धा की भूमिका अपनी महत्ता रखती है। उससे सब कुछ सभव है, बिना उसके कुछ भी सभव नहीं। विकटतम कार्यों में भी व्यक्ति तब तक जमा रह सकता है जब तक उसके तन-मन मे श्रद्धा का अभाव नही होता—

"श्रद्धा सें सबही बणै बिन श्रद्धा बणै न काय।
धर्म अधर्म विकर्म कर्म देखो अकल जगाय।
देखो अकल जगाय सती संग्राम ज होई।
तन मन श्रद्धा घट्यां भग्यो भी जाय न कोई।
तातैं भजिये राम कूं श्रद्धा अधिक उपाय।
श्रद्धा से सबही बणै बिन श्रद्धा बणं न काय।"[3]

पर स्वामी जी श्रद्धा को अधर्म या विकर्म की ओर नहीं झुकने देना चाहते। इससे हानि निश्चित है। वे धर्म के तत्त्व 'हरि भजन' मे श्रद्धा का विकास चाहते है—

"सार धर्म हरि भजन सं श्रद्धा अधिक बधाय।
अधर्म विकर्म मर्म हैं आलस बैठ घटाय।

---

१ अ० वा०, पृ० ६२८।
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल · चिन्तामणि, भाग १, पृ० १४।
३. वही (सुख विलास), पृ० ४०८।

आलस बैठ घटाय इनों मे हानो परिहै।
इनके कर्म कलेस कष्ट चौरासी भरिहै।
गुरुमुख भजिये राम कू तजिये आन उपाय।
सार धर्म हरि भजन सै श्रद्धा अधिक बधाय।"[1]

'विश्राम बोध' के चौथे विश्राम मे कवि सत्सग, ज्ञान ग्रहण, रामस्मरण, दान, अर्पण और सत्पुरुषो के सम्मान आदि के लिए श्रद्धा को नितान्त आवश्यक समझता है—

"सतसंग श्रद्धा सू करो श्रद्धा सूं ल्यो ज्ञान।
श्रद्धा सू हरि सुमरिये श्रद्धा सू द्यो दान।
श्रद्धा सू द्यो दान कियो श्रद्धा निरबाही।
अणश्रद्धा को कियो ठेठ लग निभै ज नाही।
सत्पुरुषा को कीजिये श्रद्धा सूं सनमान।
सतसग श्रद्धा सू करो श्रद्धा सू द्यो दान।"[2]

कवि का विचार है कि किसी भी रीति से कर्त्तव्य किया जा सकता है पर श्रद्धा से करने पर यश मिलता है। श्रद्धाविहीनता से कार्य बनता नहीं वरन् खीचतान होती है—

"कोई रीति किरतब करो, श्रद्धा सै जश होय।
अणश्रद्धा खैचा खंची, काज न सुधरै कोय।"[3]

'रामरसायण बोध' के तृतीय प्रकरण मे श्रद्धा और भक्ति का सम्बन्ध कवि ने स्पष्ट किया है। श्रद्धा से भक्ति करने पर विकास मे देर नहीं लगती पर श्रद्धारहित कर्त्तव्य करने से किया कराया मिट्टी हो जाता है—

"श्रद्धा सूं भक्ति कियां बंधता लगै न बार।
बिन श्रद्धा किरतब कियो सो कियो करायो छार।"[4]

स्वामी जी का दृष्टिकोण है कि इसी प्रकार योग-साधना और नामस्मरण के हर अवस्थान भी श्रद्धा की अपेक्षा रखते हैं। एक बात और भी, श्रद्धालु को शोक नही होता—

---

१ अ० वा० (सुख विलास), पृ० ४०८।
२ वही, पृ० ७९८।
३ वही।
४. वही, पृ० ९५१।

"कहा कोई सायो जोग बिना श्रद्धा नहि कोई।
श्रद्धा सूं सब वर्ण भजन श्रद्धा सूं होई।
रामचरण श्रद्धा लिया कदै न उपजैं शोग।
करणी बिन क्या पाय है जे असलाकी लोग।"[१]

कवि उदाहरण प्रस्तुत करता है कि रामभक्त श्रद्धालु होते है। अत. उनके द्वारा किये गये कार्य सिद्ध होते ह। श्रद्धा विरहित कार्य निरर्थक है—

"रामभक्त श्रद्धा लिया किया काज सिधि होय।
बिना श्रद्धा कारज किया फलै न फूले कोय।"[२]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्रद्धा का जीवन के लिए बडा महत्त्व है। जीवन में सदाचरण, सत्सग, रामभजन, भक्ति, योग आदि किसी भी क्रिया या व्यवहार मे यदि श्रद्धा का योग रहता है तो सार्थकता चरण चूमती है। जीवन के सम्पूर्ण व्यापार श्रद्धा की अपेक्षा रखते है।

विश्वास

स्वामी रामचरण ने जीवन के लिए विश्वास को भी महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक माना है। अपने ग्रथ 'विश्वास बोध' मे उन्होने राम मे विश्वास रखने की बात कही है। बिना विश्वास के कही भी कोई सफलता नहीं मिलती। जहाँ विश्वास है, वहाँ आदर भी होता है। इसीलिए मन, वचन और काया से अपने स्वामी राम के प्रति विश्वास रखने की सीख कवि देता है—

"सुनो शिख मन थीरकारक, एक तारक नाम है।
राखिये विश्वास याको, नाम जाको राम है।
बिना एक विश्वास भाई, कोई सिद्धि न जांनिये।
जहा तहा विश्वास आदर, सर्वथा ही मांनिये।
× × ×
ताही तैं विश्वास राखो, एक अपना श्याम को।
मन वाच कायक दूसरो तजि, होई रहो इक राम को।"[३]

स्वामी जी ने इसी सन्दर्भ मे ध्रुव, अजामिल, वाल्मीकि, गणिका आदि का नाम गिनाया है जिन्होने अपने अटूट विश्वास के सहारे सघर्षों में सफलता पायी है—

---

१. अ० वा०, पृ० ९५१।
२. वही ।
३. वही, पृ० ६४६-४७।

"देखि ध्रुव विश्वास भक्ता, भये मुक्ता नाम सैं।
हरि आज्ञा बैंकुण्ठ राजत, बहुरि मिलिहै राम सैं।
राखियो विश्वास दृढता, विचलता परिहारियो।
अजामेल कवि आदि गणिका, एक नाम उचारियो।"[1]

ग्रन्थ 'अणभो विलास' के चौदहवे प्रकरण मे उन्होंने अविश्वासी को बावरा कहा है जिसे अविश्वास के कारण चैन नही। उस अविश्वासी को क्या पता कि सर्वत्र और उसके सिर पर 'समर्थ राम' है—

"बेविश्वासी बावरा जाकै नहि आराम।
ऊ कहा जाणै सर्वभर, शिर पर समर्थ राम।"[2]

'जिज्ञास बोध' के पचम प्रकरण मे स्वामी जी विश्वासघाती की चर्चा भी कर देते हैं। विश्वासघाती को उन्होंने इस भाँति परिभाषित किया है—

"तन विरक्त आशारक्त दगाबाज है सोय।"[3]

यही कवि किसी को दगा (धोखा) न देने का सदेश भी देता है—

"दगो न किसको दीजिए दगै दगो फल पाय।"[4]

स्वामी जी ने विश्वासी, अविश्वासी और विश्वासघाती—तीनो की समीक्षा की है और राम मे विश्वास धारण करने का सदेश जनसमाज को दिया है। दया और श्रद्धा सदृश विश्वास भी जीवन को सुखमय करने के लिए आवश्यक है।

संतोष

सत-साहित्य में सतोष की बडी महिमा गायी गयी है। संतोष, मानव हृदय से तृष्णा-लोभादि विकारों को दूर करता है। स्वामी रामचरण ने सतोष की चर्चा सद्‌गुण के रूप मे की है। 'जिज्ञास बोध' के छठवें प्रकरण मे कवि सतोष को तीनों लोक का धन बतलाता है जिसका भोग केवल हरि जन ही कर सकते हैं, लोभी कदापि नही।

"रामचरण संतोष मैं तीन लोक को धन्न।
लोभी जन बिलसै नहीं बिलसै हरि का जन्न।"[5]

---

१ अ० वा०, पृ०६४७।
२ वही, पृ० २७६।
३. वही, पृ० ५४५।
४. वही।
५. वही, पृ० ५५१।

स्वामी जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि धर्म की शोभा सतोष मे है, लोभ से धर्म की शोभा बिगडती है। सत्य बात का सत्यपोषण सतोष मे ही होता है। इसीलिए लोभी और सतोषी के मार्ग भिन्न-भिन्न है। लोभी लोभ मे रत रहता है और सतोषी सतोष मे—

"लोभ लगन लोभी मगन संतोखी संतोख।
शोभ धर्म संतोष मैं लोभ कुशोभा वोख।
लोभ कुशोभा वोख बात ये नांही छांनै।
सो पंडित परबीण लोभ सैं ममता भानै।
रामचरण संतोष मैं साच बाच सतपोख।
लोभ लगन लोभी मगन संतोखी संतोख।"[1]

सतोष तृष्णा विनाशक है। कवि की दृष्टि में तृष्णा की अग्नि सतोष जल से ही शान्त होती है। 'रामचरण संतोष जल तृष्णा अनल सिराय'[2] अर्थात् सतोष के समक्ष तृष्णा का जागरण नही होता और सतोषरहित व्यक्ति उसी मे पच मरता है—

"संतोष सदा साबूत होय, तो तृष्णा जागै नांहि।
रामचरण संतोष बिन, लागि पचै ता मांहि।"[3]

संतोषी सदा सुखी

स्वामी रामचरण की दृष्टि मे सतोषी सदा सुखी रहता है। चाहे वह गृहवासी हो या वनवासी। उसका हृदय आनन्द, उदारता और उत्तम आशा का निवास है।

"संतोषी सुखिया सदा भल ग्रेही बनवास।
आनन्दकंद उदारचित उत्तम आश निवास।"[4]

कवि कहता है कि संसारी, भक्त, काजी, तथा पडित मे से कोई भी यदि तृष्णावत है तो सुखी नहीं हो सकता, सुखी तो वही होगा जो सतोषी हो—

"तृष्णावंत सुखिया नहीं, सुखी सतोषी होय।
कहा जगत भक्ता कहा, कहा काजी पंडित कोय।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० ५५१।
२ वही (विश्राम बोध, अष्टम प्रकरण), पृ० ६९८।
३. वही।
४. वही, पृ० ५५१।
५. वही, पृ० ६९८।

सतोषी व्यक्ति चाहे भ्रमण करे, या एक ही स्थान पर बैठा रहे, वह जहाँ रहेगा सुखी रहेगा, किन्तु लोभी को कही भी सुख नहीं—

"रामचरण रामत करो, भल बैठ रहो इक ठाहि।
सतोषी जहाँ तहाँ सुखी, लोभी सुखिया नाहि।"[1]

ध्यान की अवस्था भी सतोष मे ही विकसित होती है और स्वार्थ से ध्यान कुध्यान मे परिणत हो जाता है। भक्ति-भावना मे कमी आ जाती है और गुरुप्रदत्त ज्ञान-सम्मान सभी बिला जाते हैं—

"ध्यान बधै सतोष सैं, स्वारथ होय कुध्यान।
भक्तिभाव घट जाय सब, बिलै मांन गुरु ज्ञान।"[2]

संतोष से आदरभाव

स्वामी रामचरण ने 'विश्वास बोध' के आठवे प्रकरण और 'समता निवास' के छठे प्रकरण मे उपर्युक्त की पुष्टि की है। वे कहते है कि सतोष से आदर अधिक होता है और लोभ से उतना ही तिरस्कार—

"आदर अधिक सतोष सैं अत्यंत लोभ तस्कार।
गुण अवगुण अपणो आप मैं गुण जैसो अधिकार।"[3]

इसी भावना का विकास 'समता निवास' के छठे प्रकरण मे भी दिखलायी पडता है। कवि के अनुसार सतोष के द्वारा आदर मे वृद्धि होती है और लोभ से उसका विनाश होता है—

"आदर बधै संतोष सै अरु लोभ लग्यां घटि जाय।
कहा भकता पढ़ि पंडिता द्विज दर्शण इक भाय।
द्विज दर्शण इक भाय आपको आप घटावै।
घर घालि चहूड़ी चाहि नीच गति कर्म कुमावै।
तातैं यह विचार कै कोइ समता रखो सम्हाय।
आदर बधै संतोष सैं अरु लोभ लग्या घटि जाय।"[4]

---

१ अ० वा० (विश्वास बोध, अष्टम प्रकरण), पृ० ६९९।
२. वही (विश्राम बोध, एकादश विश्राम), पृ० ८४९।
३. वही (विश्वास बोध, अष्टम प्रकरण), पृ० ६९९।
४. वही, पृ० ८९८।

स्वामी जी संतोष भाव की श्रेष्ठता यह कहकर निरूपित करते हैं कि उसकी महिमा अवर्णनीय है। पर संतोष की महिमा केवल संतोषी जनों को दिखती है, लोभियों को तो वह भासित भी नहीं होती—

"रामचरण संतोष की, महिमा कही न जाय।
लोभ्या कूं भासै नहीं, कोइ संतोष्यां दर्शाय।"[१]

स्वामी जी ने संतोष भाव के पोषण के साथ-साथ तृष्णा, लोभ आदि विचारों का तिरस्कार भी किया है। उनकी दृष्टि में तृष्णा और संतोष का मेल संभव नहीं। संतोष से जीवन में सात्त्विक गुणों का विकास होता है। लोकजीवन के रचनात्मक दृष्टिकोण में संतोष का बड़ा महत्त्व है।

सत्य

स्वामी रामचरण ने लोकजीवन एवं व्यक्तिगत जीवन में सत्य की बड़ी प्रतिष्ठा आँकी है। स्वामी जी की दृष्टि में जीवन का आदर्श ही सत्य है। सच बोलना, सच सुनना, सच देखना और सत्य का ही ध्यान करने को ही वे जीवन का आदर्श मानते हैं और इसी आदर्श को जीवन में उतारने का संदेश देते हैं। 'अमृत उपदेश' के पन्द्रहवें प्रकाश में 'सत्य प्रशंसा' के अन्तर्गत कवि ने इस आशय के वचन कहे हैं—

"मुख सूं साच उचारिये साचहि सुनिये कांन।
नैंनां साच परक्खिये उर धर साचो ध्यांन।
उर धर साचो ध्यांन झूठ मैं हासिल नांही।
हासिल की कहा चली गांठ को मूल गुमांही।
रामचरण ये मैं कहूं कह गये संत सुजांन।
मुख सूं साच उचारिये साचहि सुनिये कांन।"[२]

सत्य इतना प्रबल होता है कि उसे दबाया नहीं जा सकता। यह एक ऐसा तथ्य है जिसे सारा संसार जानता है। यदि कोई सत्य पर आवरण डालना भी चाहे तो दो-चार दिन से अधिक यह व्यापार नहीं चल सकता। सत्य को स्वामी जी 'सूर्य' कहते हैं। सूर्य भला छिपाये से छिप सकता है। भ्रम के मेघों की आड़ में सत्य का सूर्य छिप नहीं सकता—

"साच दबायो ना दबै प्रगटै सब संसार।
जे कोई दाब्यो चहै तो रहै दिनां दोइ च्यार।

---

१. अ० वा०, पृ० ५५१।
२. वही, पृ० ५०४।

रहै दिनां दोइ च्यार सूर क्यों छिपै छिपायो।
मर्म बावलां ओट कहा भयो निजर न आयो।
रामचरण घूघट किसो जो नाची हाट बजार।
साच दबायो ना दबै प्रगटै सब संसार।"[1]

'साच झूठ को ब्योरो' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी सत्य की असहनीय प्रखरता की चर्चा करते हैं। सत्य की आँच राजा, रावत, ज्ञानी, पंडित, साधु, योगी, सन्यासी, दरवेश किसी को भी नही भाती। संसार मे कोई बिरला ही सच्चा होगा जिसे सत्य पसन्द हो—

"राजा रावत जगत सब ज्ञानी पंडित भेस।
जोगी जंगम सेवडा सन्यासी दर्वेस।
सन्यासी दर्वेस साच कोई न सुहावै।
कोई बिरला ससार साच साचां कूं भावै।
कलिजुग करणी लुटि कै स्वारथ भर्यो विशेष।
राजा रावत जगत सब ज्ञानी पंडित भेस।"[2]

स्वामी जी सत्य भाषण पर विशेष जोर देते हैं। उनका कथन है कि स्वामी (ईश्वर) सत्य की बेलि है, झूठ से उसका रिश्ता नही, यह समझकर मुख से सत्य भाषण करना चाहिए—

"साईं बेली साच का, झूठा बेली नांहि।
रामचरण यूं समझ कै, साच भाख मुख माहि।"[3]

स्वामी जी यह भी कहते हैं कि जो 'साच-झूठ' की धारणा को नही समझता है, उस जीव को बुद्धि भ्रष्ट ही समझा जाना चाहिए—

"साच झूठ की धारणा, समझै नांही आश।
रामचरण ता जीव कै, भयो बुद्धि को नाश।"[4]

'जिज्ञास बोध' के अठारहवें प्रकरण मे 'झूठसाच को विचार' शीर्षक के अन्तर्गत स्वामी जी झूठ को अनित्य और साच को नित्य कहते हैं। इसीलिए वे झूठ को मनसा, वाचा परित्याग करने के लिए प्रेरित करते हैं—

---

१ अ० वा०, पृ० ५०४।
२. वही।
३. वही।
४. वही।

"झूठ दोउ दिन वोय की, अत रहेगा साच।
रामचरण तजि झूठ कू, ये जाणो मनसा वाच।"[१]

कवि का निश्चित मत है कि इस लोक मे झूठ की साख नही चल सकती। मिथ्यावादी मिथ्या वोलकर अपनी शोभा नष्ट करता है—

"शोभ गुमावै आपणी झूठा झूठी भाखि।
रामचरण या लोक में चलै न झूठी साखि।"[२]

स्वामी जी नरतनधारी झूठे को धिक्कारते हैं और उसे पशु से भी गया गुजरा समझते है—

"ज्यां घट साच न सचरे, झूठ तणो विस्तार।
तासू तो पशवा भला, वा नरतन को धिरकार।"[३]

इसलिए कवि लोकजीवन को सत्य के निम्नलिखित आदर्श को ग्रहण करने के लिए प्रेरित करता है—

"मुख उचरै साचा वचन साचाहि सुणे ज बैंन।
चित चितवन साची करै साचा परखै नैन।
साचा परखै नैंन यहै नर तन की शोभा।
झूठ कपट पाखण्ड दगा सै होय कुशोभा।
रामचरण भज राम कूं तजो गहो यह चहन।
मुख उचरै साचा वचन साचाहि सुणे ज बैंन।"[४]

निष्कर्ष यह कि स्वामी जी ने जीवन मे सत्य को उतारने की प्रेरणा समाज को सदैव दी और उसे 'साई की वेली' कहकर उसकी महत्ता प्रदर्शित की।

एकता

स्वामी रामचरण ने 'रामरसायण वोध' के तीसरे प्रकरण मे एकता की महत्ता की चर्चा की है। स्वामी जी ने एकता के लिए बूंद-बूंद से धारा बनने का दृष्टान्त देकर कार्य-सिद्धि के लिए एकता-स्थापन की बात कही है—

---

१. अ० वा०, पृ० ६२३।
२ वही।
३ वही, पृ० ६२५।
४. वही।

"बहु बूंदा इकधार नार सो प्रगट कहिये।
सब काज सुधारण जोग एक में आनद लहिये।"[1]

स्वामी जी की दृष्टि मे एकता सुख का कारण है। एकत्वहीनता मे दुख और द्वन्द्व सदैव घेरे रहते है। इसी लिए कोई भी निश्चय या विचार एक होकर ही करना चाहिए—

"आशै वासै एक होय सुख पूर है।
एक विना दुख द्वन्द निकट पण दूर है।
तातें बात विचार एक होय कीजिए।
परिहा रामचरण भज राम इसे सुख लीजिए।"

एकता शक्ति का प्रतीक

स्वामी रामचरण एकता में शक्ति का अनुभव करते हुए लिखते है कि एक और एक के मिलने से ग्यारह की शक्ति आती है। दोनों एक को अलग कर जोडने से केवल दो ही रह जाता है। इस प्रकार नौ की शक्ति समाप्त हो जाती है। अलग-अलग दो को दुजन भी घेर कर मार सकता है। नीति की बात करते-करते अध्यात्म जगत मे पहुँच कर राम और गुरु की एकता का भी सदेश देने लगते है—

"एकै एक मिलाप मे ग्यारा को बल होय।
एक एक न्यारा गिणै तो जासू कहिये दोय।
तो जासूं कहिये दोय मिटै बल नोवा केरो।
दोइ न्यारा मारा जाय आय दुर्जन दे घेरो।
रामचरण गुरु राम को एक रूप कर जोय।
एकै एक मिलाप मे ग्यारा को बल होय।"[3]

स्वामी रामचरण द्वारा एकता का सदश जन-जागरण की दिशा मे बढा हुआ प्रेरक कदम के रूप में निरूपित किया जा सकता है। एकता, सुख और शक्ति दोनो को जीवन मे प्रविष्ट कराती है। इसी सन्दर्भ मे कवि राम और गुरु मे अभेद देखने का भी सदेश जन-सामान्य को देता है। जो पृथकतावादी (क्षण मिलता) है उनसे उदासीन रहने की बात भी स्वामी जी स्पष्ट रूप से कहते है। जैसे सोना और राँगा का मिलाप नही हो सकता और यदि

---

१ अ० वा० पृ० ९५२।
२ वही, पृ० ९५२।
३ वही, पृ० ९५२-५३।

हुआ तो स्वर्ण का विनाश निश्चित है उसी प्रकार 'अन मिलता' से पहले तो मेल सभव नही, यदि कही मेल हो गया तो सोने सदृश व्यक्ति का विनाश सुनिश्चित है—

"कनक रांग मांही मिलै मिलै तो कनक विनास।
रामचरण तातैं रहो अणमिलता ज उदास।"[1]

इस प्रकार स्वामी जी एकता की भावना को लोकजीवन के लिए आवश्यक समझकर उसे सभी को जीवन मे चरितार्थ करने का उपदेश देते है।

यह रहा स्वामी रामचरण की लोकपक्ष सबधी विचारधारा का एक सक्षिप्त निरूपण। स्वामी जी के लोकपक्षीय विचार प्रवाह पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि स्वामी जी की लोकजीवन मे गहरी रुचि थी। वे भक्तहृदय सत कवि थे। जीवन और जगत मे परिव्याप्त कुत्साओ की उन्होने बडी तीखी आलोचना की और जन-मानस को ढोगियो, पाखण्डियों एव अनेक सामाजिक रूढियो तथा अन्धविश्वासों से मुक्त कराने के लिए भरपूर प्रयास किया। एतदर्थ उन्होने प्रतिमापूजन, व्रतोपवास, रोजा-एकादशी, पूजा-नमाज, मूर्ति-पूजा, मादक पदार्थों का सेवन, देवल-मस्जिद, पुस्तकज्ञान आदि विभिन्न विषयों पर लेखनी उठाई और उन सभी का निषेध किया। साथ ही उन्होने जीवन को सुखी बनाने के लिए अनेक रचनात्मक सुझाव भी दिये, जिससे लोक का बडा उपकार हुआ। एतदर्थ उन्होने राम नाम की उपासना, सत्सग, जीवो के प्रति दयाभाव, श्रद्धा-भक्ति, विश्वास, सतोष, सत्यपालन, एकता आदि मानवोचित गुणो को अपनाने की प्रेरणा दी। इसके अतिरिक्त वचन विवेक, विनयशीलता, कथनी करनी की अभेदता आदि की सक्षिप्त चर्चा उन्होने की है। स्वामी रामचरण के सम्पूर्ण साहित्य मे लोकजीवन के प्रति उनकी उदारता की एक अच्छी झाँकी देखने को मिल जाती है। इस सदर्भ मे 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखको का निम्नलिखित कथन युक्तियुक्त है—

"मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए जिन गुणो की आवश्यकता है, उन गुणो की अनेक बार अनेक रूपो मे 'अणभैवाणी' मे चर्चा हुई है। उन गुणो को अपनाने से यह धरती स्वर्ग बन सकती है। हमारा व्यावहारिक बाह्य-जीवन सब प्रकार से सुखी, सम्पन्न और स्पृहणीय बन सकता है।"[2]



१. अ० वा०, पृ० ९५३।
२. वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १२१।

तृतीय खण्ड : काव्यत्व

सप्तम अध्याय : अनुभूति पक्ष

अष्टम अध्याय : अभिव्यक्ति पक्ष

सप्तम अध्याय

काव्यत्व : अनुभूति पक्ष

सतो की काव्यरचना के उद्देश्य की चर्चा करते हुए पडित परशुराम चतुर्वेदी लिखते है—"ये रचनाएँ मनोरजन के लिए नहीं की गयी थीं और न उनका उद्देश्य कभी किसी प्रकार के 'यश' या 'धन' का उपार्जन ही रहा। इनके रचयिताओं ने अपने सामने 'कविता कविता के लिए' का भी आदर्श नही रखा और न अपनी उन्मुक्त कल्पना के प्रभाव मे विभिन्न भावनाओ की सृष्टि कर एक अपना मनोराज्य स्थापित करने की कभी चेष्टा की। उनकी व्यक्तिगत स्वानुभूति मे विश्वजनीन अनुभूति की व्यापकता थी और उनके आदर्श पद की स्थिति ठेठ व्यवहार से कही बाहर न थी। अपनी रचना के माध्यम को भी इसी कारण, उन्होंने उसके विषय से अधिक महत्त्व कभी नहीं दिया और न उसके शब्द और शैली मे चमत्कार लाने के पीछे, उसके भाव सौन्दर्य के प्रति वे कभी उदासीन हुए। इसके सिवाय, अपने उच्च से उच्च एव गभीर से गभीर भाव को भी वे सदा सर्वसाधारण की भाषा मे व्यक्त करते आए और इन्ही के दृष्टान्तो एव मुहावरों द्वारा उन्होने उसका स्पष्टीकरण भी किया।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण सन्त-काव्य-रचना के उद्देश्यो पर यथार्थ टिप्पणी है। सतो ने काव्य-रचना का उद्देश्य कभी भी कला-कौशल का प्रदर्शन नही माना था और न उन्होंने किसी को प्रसन्न करने के उद्देश्य से ही काव्य-रचना की थी। सत वस्तुत मस्त-मौला थे, उनकी काव्य-गगा का प्रवाह जन-जीवन को अपने स्पर्श से परिमार्जित करता था। अपनी काव्यधारा से लोकजीवन को प्रक्षालित कर उसे निर्मलता प्रदान करना ही सतो की काव्य-रचना का उद्देश्य था, साथ ही योग-साधना का ओज, भक्ति-भावना का माधुर्य और दोनो के सयोग का प्रसाद, जो उनकी अनुभूति से निस्सृत होता था, का प्रकाशन भी वे करते थे। ब्रह्म, जीव, माया, सृष्टि आदि के प्रति उनके हृदय मे जो धारणाएँ जन्म लेती थी, वे सभी उनकी काव्य-सामग्री बनती थी। जीवन की सहजता के प्रति आस्था, लोक-जीवन के लिए मगल-कामना, जीवन को सामाजिकता से कुत्सा का लोप आदि विभिन्न विषय उनकी कविता मे वर्णित होते थे। पर इन सभी की आधारशिला उनकी स्वानुभूति थी। उन्होने इसी के सहारे ईश्वर को अपने प्रेम का विषय बनाया, उसकी रहस्यमयता को अपनी भावाकुलता से सराबोर कर दर्शन का नहीं कविता का विषय बनाया।

---

१. पं० परशुराम चतुर्वेदी : सतकाव्य-भूमिका, पृ० ४९-५०

स्वामी रामचरण के विशाल काव्य-साहित्य में उपर्युक्त तथा उन्हीं सदृश विभिन्न विषय उनकी कविता के वर्ण्य है। कबीर आदि सन्तो की भाँति अनुभवजन्य भावों का निर्भीक प्रकाशन उनके कवि-व्यक्तित्व को अत्यन्त प्रभावशाली बना देता है। स्वामी जी की कविता का साहित्यिक मूल्याकन करते समय हमे इस सत भावधारा को ही प्रमुखतया दृष्टि मे रखना होगा। पिछले अध्यायो मे हम स्वामी जी के द्वारा निरूपित विभिन्न विषयो की चर्चा कर चुके है। इस अध्याय मे उनकी रचनाओं मे काव्यत्व की प्रमुख सवेदनाओ पर विचार करेंगे।

प्रेमानुभूति

संत कवियों ने जिस प्रेम की चर्चा की है वह आध्यात्मिक प्रेम है। परमात्मा के प्रति अनन्य आसक्ति ही इस प्रेम की प्रमुख विशेषता है। स्वामी रामचरण ने 'प्रेम प्रकाश को अग' के अन्तर्गत प्रेम का वर्णन किया है। साधक का प्रेमी हृदय जब भक्ति-भावना मे भावमय हो उठता है तब प्रेम की तरगें उसके हृदय मे सागर की वीचियो सदृश प्रवाहित होने लगती है और उन अनुराग की लहरो से उसका सर्वाङ्ग भीग जाता है—

"प्रेम लहरि ऐसे बहे, जैसे सिन्धु तरग।
रामचरण ता छोलसू, भीजत है सब अग।"[1]

प्रियतम परमात्मा की प्राप्ति दाम्पत्य भाव की अपेक्षा रखती है। प्रेम बड़ा ही सूक्ष्म होता है। जो सच्चा 'आशिक' होगा वही 'महबूब' को पा सकेगा।

"राम ही चरण कहे इस्क बारीक है।
होय आसिक महबूब पावै।"[2]

प्रेमानुभूति गुरुकृपा से ही सम्भव है। गुरु प्रेम-बाण से हृदय वेध देता है और शिष्य प्रेमपूर्वक उसे झेलता है। तब उसके हृदय में प्रेम का प्रकाश होता है। प्रेम रूपी भाले की नोक हृदय मे प्रवेश कर जाती है। वह बाहर नही दीखती, अहर्निश प्रेम की पीर हृदय को सालती रहती है—

"संता बाण चलाइया, धरकर सूधी मूठ।
प्रेम सहित सिख झेलिया, गया कलेजा फूट।
प्रेमभाल भीतर खुची, बाहर दीसै नाहि।
रामचरण कसकत रहै, निसिबासर उर मांहि।"[3]

---

१. अ० बा०; पृ० १२।
२. वही, पृ० ११३।
३. वही, पृ० १२।

प्रियतम प्रभु के लिए उसके प्रेमी साधक के हृदय मे विरहाग्नि प्रज्वलित रहती है, किन्तु हृदय मे जब प्रेम का प्रकाश हो जाता है तो विरहाग्नि शीतल हो जाती है और प्रेम हृदयवासी हो जाता है—

"विरह अग्नि शीतल भई जब भया प्रेम प्रकास।
रामचरण अब पाईया, मनवै प्रेम निवास।"[1]

इसी प्रसग मे कवि प्रेमानुभूति के लक्षणो की चर्चा भी करता है। उसके अनुसार जब साधक के रोम-रोम से रामधुन का उच्चारण होने लगे तब प्रेम का उपकार समझना चाहिए। जब काम-क्रोधादि विकारो से मुक्त मन का रग बदला हुआ प्रतीत होने लगे तब प्रेम का विकास होना समझना चाहिए। जब लोक-वेद की मर्यादा से परे होकर निःशक और निर्गुण भाव से, साधक अभिभूत हो तब प्रेम को खुला हुआ मानना चाहिए—

"रोम रोम मे होय रह्या ररकार उच्चार।
रामचरण तब जाणिये ये प्रेम तणा उपकार।
प्रेम खुल्या तब जाणिये, मन का पलटै रग।
काम क्रोध व्यापै नहीं कूडा करै न संग।
प्रेम खुल्या तब जाणिये, गुण तजि निर्गुण होय।
लोक वेद मुरजाद की, शक न मानै कोय।"[2]

प्रेम-पट के खुलते ही परमात्मा प्रियतम से मिलकर विरहिणी आत्मा निहाल हो जाती है। दुःख की छाया स्मृति से दूर चली जाती है और निशिवासर वह मुदित रहती है—

"प्रेम खुल्या साईं मिल्या बिरहनि भई निहाल।
रामचरण दुख बीसर्‌या निसिदिन रहत खुस्याल।"[3]

स्वामी जी की धारणा है कि प्रेम का नाम तो सभी रटते है पर प्रेमानुभूति नही कर पाते क्योकि उसकी बाधा लज्जा बन जाती है। कवि पूछता है कि लज्जानुभूति क्यो जब अपना ही प्रियतम स्पर्श कर रहा है? लोक-लाज विरहित होने पर ही प्रिय-मिलन हो सकेगा अन्यथा नही—

"प्रेम प्रेम सबको कहै, प्रेम लखै नहि कोय।
प्रेम जहाँ लज्जा नहीं, लज्जा प्रेम न होय।

---

१. अ० वा०, पृ० १२।
२. वही।
३. वही।

अपना सांईं परसता, लाज करो मति कोय।
सक करै संसार की तो सांईं मिलण न होय।"[1]

स्वामी जी घोषित करते हैं कि प्रेम के बिना सुख नहीं और इस प्रेम-सुख की प्राप्ति अपने प्रियतम के मिलन से ही सम्भव है—

"रामचरण साची कहे, प्रेम बिना सुख नाहि।
साईं मिलै तो सुख लहै, नातर लख चौरासी माहि।"[2]

प्रेम की हिलोर कर्म-धूल को बहा ले जाती है और तब तन-मन में उज्ज्वल आलोक का दीदार होता है। कवि इस प्रेमालोक का अवलोकन कर विस्मित है, अँधेरी रात में चन्द्रमा सदृश यह प्रेम हृदय में विकसित है—

"करम छार सब बह गई, आई प्रेम हलूर।
रामचरण अब दरसिया, तनमन उज्जल नूर।
रामचरण इचरज भया, देख्या प्रेम उजास।
निसि अंधियारी चंद ज्यूं, मनवें किया विगास।"[3]

उपर्युक्त पंक्तियों में निरूपित प्रेम ही स्वामी रामचरण का अभीष्ट है। प्रेमानुभूति के पलों में विरह से जली उस प्रेमी की देह की तपन मिट जाती है और उसका रोम-रोम उस प्रेम का रसपान करके शांत हो जाता है। पर यह सब उस दयालु राम की दया से ही सम्भव है—

"राम दयाल दया करी, बरस बुझाई लाय।
रोम रोम सीतल भया, पीया प्रेम अघाय।"[4]

अथवा—

"विरह अग्निदाधी देह, सींची प्रेम अघाय।
तप्त मिटी सीतल भई, रोम रोम रस पाय।"[5]

आध्यात्मिकता के उज्ज्वल आलोक में स्वामी रामचरण ने कबीर आदि अन्य संतों की भाँति प्रेमानुभूति की है। 'प्रेम का उजास' उनकी दृष्टि में चन्द्र के उजास सदृश है। वे प्रेम को ही सुख का मूल मानकर लज्जा रहित होकर प्रियतम परमात्मा से प्रेम लाभ करने का संदेश

---

१ अ० वा०, पृ० १२।
२. वही।
३. वही।
४ वही।
५ वही।

देते हैं। और इसके लिए रामभजन को ही सर्वश्रेष्ठ साधन समझते हैं। भजन-प्रताप से ही यह प्रेम निवास मिलता है—

"रामभजन परताप तैं, पाया प्रेम निवास।
रामचरण निर्भय भया, मिटी काल की त्रास।"[1]

रहस्यानुभूति

संतकाव्य में रहस्यानुभूति बहुचर्चित विषय रहा है। "रहस्यवाद शब्द प्राय काव्य की एक धारा विशेष को सूचित करता है।"[2] डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत लिखते हैं कि "जब साधक भावना के सहारे आध्यात्मिक सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतियों को वाणी के द्वारा शब्दमय चित्रों में सजा कर रखने लगता है तभी साहित्य में रहस्यवाद की सृष्टि होती है।"[3] डॉ० रामकुमार वर्मा ने रहस्यवाद को इस प्रकार परिभाषित किया है—"रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है, यह सबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता। जीवात्मा की शक्तियाँ इसी अनन्त शक्ति के वैभव और प्रभाव से ओतप्रोत हो जाती हैं। जीव में केवल उस दिव्य शक्ति का अनन्त तेज अन्तर्हित हो जाता है और जीवात्मा अपने अस्तित्व को एक प्रकार से भूल सा जाती है। एक भावना, एक वासना हृदय में प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है और वह भावना सदैव जीवन के अंग-प्रत्यंगों में प्रकाशित होती है।"[4]

संत-साहित्य में रहस्यानुभूति विषय की चर्चा करते हुए डॉक्टर प्रेमनारायण शुक्ल ने लिखा है कि "संत-साहित्य में अनेकानेक स्थलों में रहस्यानुभूति की उपलब्धि होती है। संत प्रकृत्या तत्त्वचिंतक थे। उनका चिंतन का क्षेत्र बड़ा व्यापक एवं गम्भीर था। उन्होंने आत्मा और परमात्मा के स्वरूप का परिचय प्राप्त किया था। यह परिचय केवल बौद्धिक विकास के रूप में न होकर साधना की पूर्ण परिपक्वावस्था के रूप में था। अत अपनी अनुभूति की गहनता में उन्होंने जिन तथ्यों का प्रकटीकरण किया है, वे सामान्य धरातल से कहीं अधिक ऊँचे हैं जिन्हें साधारण मानव समझने में असमर्थ हैं। जो साधक अपनी आत्मा का जितना ही अधिक विकास कर लेगा वह उन रहस्यानुभूतियों से उतना ही अधिक परिचय भी प्राप्त कर लेगा।"[5]

रहस्यानुभूति सम्बन्धी उपर्युक्त टिप्पणियों को दृष्टि में रखकर जब हम स्वामी रामचरण की कविता पर विचार करते हैं तो स्पष्ट होता है कि तत्त्व-चिंतक रहस्यदर्शी संतों में

---

१ अ० वा०, पृ० १२।
२ प० परशुराम चतुर्वेदी कबीर साहित्य की परख, पृ० १२१।
३ डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत कबीर की विचारधारा, पृ० २३६।
४ डॉ० रामकुमार वर्मा : कबीर का रहस्यवाद, पृ० ३४।
५ डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल . संत साहित्य, पृ० ४६-४७।

स्वामी रामचरण का स्थान महत्त्वपूर्ण है। वे कबीर आदि निर्गुण संत कवियों की परम्परा के रहस्यदर्शी कवि थे। उनकी भक्ति साधना की सीमा में उस रहस्यमय प्रियतम के लिए आत्म समर्पण का भाव, प्रेमाकुलता और उससे एकाकार होने की स्थितियों के चित्र रूपायित हुए मिलते है। इस अनुभूति का आधार संत-हृदय की भावुकता है। इसीलिए संतो की इस रहस्यानुभूति को समीक्षकों ने भावात्मक रहस्यवाद की संज्ञा दी है। योगपरक साधना की चरम परिणति सहज समाधि है और वह भी रहस्यवाद की समीपवर्तिनी है। इसे साधनात्मक रहस्यवाद के नाम से अभिहित किया जाता है।

यद्यपि रामचरण जी हठयोग की कठिन साधना के आलोचक थे फिर भी सुरति शब्द योग की साधना ब्रह्मानुभूति का प्रमुख साधन थी। इस योग की साधना में स्वामी जी ने 'कण्ठ ध्यान' को कठिन बतलाया है पर 'हृदय ध्यान' की स्थिति आते ही सारे साधनों का अन्त हो जाता है। 'कण्ठ ध्यान' की स्थिति की कठिनाई का आभास 'शब्द प्रकाश' की निम्नलिखित पंक्तियों से मिलता है—

"कण्ठ स्थान बहुत कठिणाई।
मुख सूं बचन न बोल्यो जाई।"[1]

पर उसके आगे—

"हिरदै ध्यान ध्वनी जब होई।
दूजो साधन रहै न कोई।"[2]

पर योग साधना की प्रक्रिया का आरम्भ भी नामस्मरण से ही होता है। इस नामस्मरण से ही उस रहस्यमय के प्रति लगाव बढ़ता है और तभी उससे सम्बद्ध होने का भाव मन में उमड़ने लगता है। यही रहस्यमय के प्रति जिज्ञासा का भाव है। जिज्ञासु का मन अनवरत उसके प्रेम में रनात रहता है—

"आठ पहर चोसठ घड़ी, मन प्रेम में भीना।"[3]

यह प्रेम भीना मन लिये साधक आठों पहर नित्य 'पिया' के प्रेम में मस्त होकर घूमता रहता है। यही रहमान के रंग में सराबोर फकीर की स्थिति है—

"फकीरा रंग रता रहमान।
आठ पहर घूंमत रहै नित प्रेम पिया मस्तान।

---

१ अ० वा०, पृ० २०९।
२ वही (नामप्रताप), पृ० २०७।
३ वही (गावा का पद), १००५।

जग में बिचरै सहज सूं वे, ना काहू करै सनेह।
आसिक देखै रब्बदा, टुक जाकूं आपा देह।"[1]

प्रियतम के प्रेम की मादकता में मन डूब जाता है। उसे राम का व्यसन अलमस्त दीवाना बना देता है। हृदय में उसी का ध्यान सदैव बना रहता है। शरीर की सुध जाती रहती है और उस प्रेम प्याले का पान अविस्मरणीय हो जाता है—

"संत दिवाना अलमस्ताना राम अमल गलताना वे।
तन बिसराना उर धरि ध्याना, प्याला नाहि भुलाना वे।
परगट छाना आप लुकाना, दुनिया मरम न जाना वे।
राव रंक की शंक न आना, आनंद में अस्थाना वे।"[2]

साधक मन को अन्य दिशाओं से विरत कर प्रियतम के कदमों में दे देता है। वह प्रियतम (मियाँ) कभी विस्मृत नहीं होता। ज्ञान के जल से वह 'गुसल' करता है, गगन गुफा में उसका बिस्तर है जहाँ वह ध्यानमग्न है। यह संसार उस दर्वेश का रहस्य नहीं जान पाता जो अलख का 'मौजूद' देख पाता है—

"आन दिशा सूं कब्ज कर वे, दिल दिया कदमूं माहिं।
निसा स्यांम फजरा बिचै, मीया कबहू बिसरै नाहिं।
ज्ञान आब सें गुसल कर वे, तस्बी तत्त बणाय।
गगन गुफा में बिस्तरा, मीयां बैठे ध्यान लगाय।
रामचरण दर्वेश का वे, खल्क न जाणै भेव।
अलख लख्या ओजूद में, मीया सदा अखंडित सेव।"[3]

आत्मा जब परमात्मा को प्रेम करने लगती है तो पल भर का वियोग असह्य हो जाता है। आत्मा परमात्मा का मिलन ही अनन्त संयोग है। इसके लिए साधक विरहिणी सदृश बेहाल रहता है। वह प्रियतम से उसकी दया की भीख माँगता है। दीन निवेदन में वह अपनी विरहदग्धा शारीरिक स्थिति का वर्णन करता है। दीदार के लिए उसके नयन झरते हैं। उसका प्रियतम उसे न भूले, वह जहाँ भी हो आकर उसे गले से लगा ले, यही उसकी साध है—

"साईया अरज हमारी हो।
बिरहनि ऊपर कीजिए, टुक महर तुम्हारी हो।

---

१. अ० वा०; पृ० १००५।
२. वही।
३. वही।

भेद सुखत सकुची त्वचा, मेरो बदन गयो मुरझाय।
आसको दीदार की, दोय नैन रहे झडलाय।
दुखी तुम्हारे दर्श बिन, तुम कबर मिलोगे आय।
रामचरण की बीनती, पिया मति मोहि बीसर जाय।
विरहनि कू विश्वास दीजे लीजै कण्ठ लगाय।"[1]

प्रेम की इस आकुलता में उसे नींद नहीं आती। अपने प्रियतम से उसे यही शिकायत है कि तुम्हारे दर्शन के लिए निशिवासर जागना पड़ता है—

"रमइया मेरी पलक न लागै हो।
दरस तुम्हारे कारणै निशिबासर जागै हो।"[2]

प्रियतम की मिलनोत्सुकता के लिए चातक का आदर्श स्वामी जी को अभीष्ट है—

"स्वाति बूंद चातक रटै, जल और न पीवै हो।
घन आशा पूरै नही, तो कैसे जीवै हो।"[3]

और अब वियोग के बाद सयोग। इस स्थिति मे साधक अपने प्रियतम से एकाकार होने की स्थिति मे आ जाता है। दोनो प्रेमी प्रेमिका सदृश आपस मे एक दूसरे का स्पर्श करने लगते हे। यह पति-पत्नी का होली मिलन है। अविनाशी अविगत वर और सुन्दरी नवलकिशोरी सुरति पत्नी का यह फाग दृश्य ! क्या कहना है इस फाग का...फागुन मे यह फाग आरभ हुआ और भादो आ गया, अम्बर बरसने लगा। सुरति सुन्दरी भीगकर सुख मे विभोर हो गई, उसका प्रियतम मुरारी उसका रूप निहारता है। इस मिलन फाग का करारा रग ऐसा लगा कि उसका जन्म सफल हो गया—

"ररंकार पति सुरति सुंदरी अर्श पर्श रमै होरी हो।
वर अविगत नहचल अविनाशी, सुंदरि नवलकिशोरी हो।
पचरग पीस गुलाल उड़ाई, तिरगुण केसर गारी हो।
अर्थ अबीर साज करि सूंधो, भरत प्रेम पिचकारी हो।
... .
फागुन फाग रमत भयो भादू, अम्बर बरसै भारी हो।
भीजत सुरति गरक भई सुख मैं, निरखत रूप मुरारी हो।

---

१. अ० वा०, पृ० १००६।
२ वही (गावा का पद), पृ० १००६।
३. वही।

जीवन सुफल भयो नागरि को, लागो रंग करारी हो।
रामचरण पिव फगवा बकस्या, पूरी आश हमारी हो।"[1]

ऐसे ही पिया के संग प्यारी नित्य ही फाग खेलती है।[2] तभी एक दिन फाग खेलने में ही प्रिय ने उसे सुहाग-दान कर दिया। प्रिय ने प्रिया को अपना लिया, सदा के लिए अपना बना लिया। साधक का भाग्योदय हो गया क्योंकि प्रियतम से उसका राग बन्धन हो गया, समर्पण का यही फल है। उसका प्रियतम गुणसागर है। उसने अपना अंग देकर चंचलता को अचलता में बदल दिया। प्रियतम और प्रिया का परस्पर एक दूसरे का स्पर्श सरिता सागर के मिलन जैसा है—

"खेलत फाग री, मोंहि बकस्यो राम सुहाग।
पकर्‌यो हाथ नाथ अबला को, अतर भरम बिलायो।
जाग्यो भाग राग बध्यो पिव सू, शरणा को फल पायो।
भरि पिचकारी प्रेम पियारी, सनमुख स्याम चलाई।
आवत हुबस लई पतिहित सू, सुदरि अग लगाई।
अपणो अग दियो गुण सागर, चचल अचल कराई।
जैसे नीर बहै सरिता को, समद समद होई जाई।
अरस परस अतर नहि दर्शों, परसै प्रीतम प्यारी।
जैसें डरी गरी सरवस की, कूण करै जल न्यारी।"[3]

शरणागत की यही सुखानुभूति है। प्रिया और पिया का यही तन-मन का परस्पर अर्पण और मिलन है। यह अद्वैत स्थिति अवर्णनीय है—

"तन मन अर्प मिली पिव पतनी, न्यारी नैंक न जावै।
रामचरण शरणैं सुख पायो, ताकी कहत न आवै।"[4]

उसे भासित होता है कि उसका प्रियतम सर्वव्यापी है। वह कहाँ नहीं है, यह कहा नहीं जा सकता। जल-थल, वृक्ष, पुष्प, तिल सभी में विद्यमान है। यह सम्पूर्ण विश्व उसी रहस्यमय का विस्तार है—

"रमईयो सब में रमि रह्यो हो।
हा हो कहुं नाहिं कह्यो नहि जाय।

---

१. अ० वा०, पृ० १००१।
२. 'पिया सग प्यारी, ऐसैं नित ही खेलत फाग'—वही, पृ० १००९।
३. वही, पृ० १००९।
४. वही।

अवनी उदक दारु में हुतभुक पुष्प गंध तिल तेल।
पय में घिरत परशि परिपूरण, अैसें हो मिल्यो है सुमेल।
अगम अगोचर निकट न दर्सै, बिन करणी सुख दूर।
भजन कियां उर अंदर भासैं, आपा पर में भरपूर।"[१]

साधक को अपने प्रियतम की सामर्थ्य का आभास हो गया, वह आभारी है क्योंकि उसने उस पर कृपा की है, उसका दर्द पहचाना है—

"साईया मैं समर्थ जांण्या हो।
महर करी मुझ ऊपरैं, मेरा दरध पिछाण्यां हो।"[२]

स्वामी रामचरण की कविता का रहस्यवादी स्वर उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है। रहस्यवादी अव्यक्त सत्ता के प्रति जिज्ञासा का भाव लेकर उसकी ओर आकृष्ट होता है। उसे प्रेमी या प्रेमास्पद के रूप मे देखने लगता है। उसके प्रेम की भावुकता उसे दीवाना बनाये रहती है और वियोगावस्था मे वह अपने हृदय की सम्पूर्ण करुणा व दीनता अपने उपास्य के चरणों मे उडेल देता है। भावाकुल हृदय 'पिया' के दीदार के लिए बेचैन हो उठता है—

"दास की अरदास सुण, पिया दर्शण दीजे हो।
रामचरण विरहनि कहै, अब बिलम न कीजे हो।"[३]

आत्मा-परमात्मा के मिलन की आनन्दानुभूति का तो कहना ही क्या है, दोनो 'पिया-प्यारी', 'पिव पतनी' या 'आशिक-महबूब' सदृश एक-दूसरे मे तन्मय हो विलासरत होते है, *रहस्यानुभूति की यही चरम परिणति है।* जरसन के इस कथन की पुष्टि यही होती है— **"पवित्र और उमंग भरे प्रेम से परिचालित आत्मा का परमात्मा मे गमन ही तो रहस्यवाद कहलाता है।"**[४] इसी प्रकार आत्मा-परमात्मा का एक-दूसरे के प्रति समान आकर्षण की बात भी रहस्यानुभूति की एक विशेषता है। स्वामी रामचरण का साधक रहस्यानुभूति के इस सोपान पर पहुँच कर अनन्त सयोग का अनुभव करने मे तन्मय हो जाता है। सत कवियों के रहस्यवाद की जिस विशेषता की ओर हमारा ध्यान निम्नलिखित पंक्तियाँ ले जाती है उसके तत्त्व स्वामी रामचरण के काव्य मे वर्तमान है। यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो

१. अ० वा०; पृ० १०००।
२. वही, पृ० १००८।
३. वही, पृ० १००६।
४. डॉ० रामकुमार वर्मा : कबीर का रहस्यवाद; पृ० २७६।

जाता है। "ऐसा ज्ञात होता है कि संत सम्प्रदाय के रहस्यवाद में वैष्णवभक्ति के प्रेम का उत्कर्ष और सूफी मत के इश्क की मस्ती का योग है।"[1]

अन्त में हम 'पीव पिछाण को अंग' की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत कर इस प्रकरण को समाप्त करेंगे जिसमें कवि रहस्यमय प्रियतम के मिलन के विवरण को 'भया जु मन का भावता' में ही समाप्त कर 'कासू कहिये बैण' में अपनी असमर्थता प्रकट कर देता है। इस असमर्थता का कारण अनुभूति की तन्मयता ही है—

"पीव पिछाण्या हे सखी, आदि अंत का सैण।
भया जु मन का भावता, कासू कहिये बैण।"[2]

रसानुभूति

विद्यावाचस्पति पंडित रामदहिन मिश्र ने 'काव्य-दर्पण' ग्रंथ की नवीनतम छाया में 'अनुभूतियाँ' शीर्षक के अन्तर्गत रसानुभूति पर अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है—

"रसानुभूति—काव्य की उस अनुभूति को जिसमें मन रम जाता है, आँसू बहाता हुआ भी पाठक, दर्शक या श्रोता उससे विलग होना नहीं चाहता, रस कहा जाता है। काव्यानुभूति और रसानुभूति में कोई विशेष अन्तर नहीं, पर कुछ लोगों का विचार है कि काव्यानुभूति विशेषतः कवि को और रसानुभूति दर्शक, पाठक या श्रोता को होती है। यह कहा जा सकता है कि दोनों को दोनों प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं। दोनों का अन्योन्याश्रय रहता है। कवि जब काव्य की अनुभूति करता है और पाठक को उसमें रस मिलता है तभी वह काव्य कहलाता है।"[3]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि कवि और काव्यानुरागी दोनों को रसानुभूति होती है। अब यहाँ संतकाव्य में रसानुभूति का प्रश्न उठना स्वाभाविक है। यहाँ यह स्मरणीय है कि संतों ने कविता को लौकिक उद्देश्यों की पूर्ति का माध्यम कभी नहीं बनाया। उन्होंने सदैव कविता को आध्यात्मिकता की भावभूमि का सहारा दिया है। उनके लिए कविता साध्य नहीं, साधन थी। इसीलिए संतों की वाणी में काव्य तत्त्वों के खोजकर्त्ताओं को शास्त्रीयता का सर्वथा अभाव मिलेगा। संत काव्य की रसात्मकता पर टिप्पणी करते हुए 'संतकाव्य' शीर्षक के अन्तर्गत डॉक्टर रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि "जिस अर्थ और विशेषता के साथ काव्य में रस की सृष्टि होती है वैसी विशेषता संतकाव्य में रस की नहीं है। रस का जो विशेष गुण साधारणीकरण है वह इस काव्य में अवश्य है। वस्तुस्थिति का सौन्दर्यबोध भी संतों द्वारा ग्रहण किया

---

१ हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड (सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा) के अन्तर्गत डॉ० रामकुमार वर्मा लिखित 'संतकाव्य', पृ० २२९।

२ अ० बा०, पृ० १३।

३ पं० रामदहिन मिश्र : काव्यदर्पण, पृ० १२१।

गया है। किन्तु स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और सचारी भावों की सम्मिलित अनुभूति से रस-निष्पत्ति मे सतो का काव्य नहीं लिखा गया। अपनी अनुभूति के चित्रण की विह्वलता मे उनके पास इतना अवकाश भी नही था कि वे रस के उपकरण खोजते।"[1]

स्वामी रामचरण सत कवि थे। उनका विशाल 'वाणी' एव ग्रथ साहित्य विभिन्न अनुभूतियो का आगार है। यद्यपि उन्होने रीति कवियो की भाँति रस-वर्णन की शास्त्रीय पद्धति नही अपनायी, फिर भी उनका काव्य उनके रस-बोध का परिचायक है। स्वामी जी ने लोक जीवन को निकट से देखा था। उसमे व्याप्त कुत्सा की उन्होने भर्त्सना की और सभी स्तर के सामाजिको को उन्होने रामभक्ति का पुनीत सदेश दिया था। वस्तुत यह भक्ति भावना ही उनके काव्य मे व्याप्त विभिन्न रसो की प्रेरणा है। इस दृष्टि से विचार करने पर हमे उनके काव्य मे शृगार, शात, अद्भुत, वीभत्स और हास्य रसो का प्राधान्य मिलता है। रहस्यवादी रचना मे आए दाम्पत्य प्रतीकों मे शृगार रस के दोनो पक्षो, सयोग ओर वियोग, के बडे ही मर्मस्पर्शी चित्र मिलते है। उपदेश ओर चिन्तावणी के अगों मे शान्त रस की अजस्रधारा प्रवाहित होती है। यों तो स्वामी जी के सम्पूर्ण काव्य-साहित्य मे शान्तरस का सागर ही लहराता मिलेगा। इसी प्रकार ब्रह्म की विराटता आदि के वर्णन मे अद्भुत ओर लोकजीवन की रूढिया तथा बाह्याचारो के थोथेपन का मजाक उडाने मे हास्य रस की अभिव्यक्ति पायी जाती है। यहा सक्षेप मे उनके काव्य की विभिन्न रसो की दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत है।

शृंगार रस

शृगार रस को रसराज कहा गया है। इसमे स्त्री-पुरुष के पारस्परिक प्रेम का वर्णन होता है। शृगार की लौकिकता सतकाव्य का अभीष्ट नही है पर जीव और ब्रह्म के पारस्परिक मिलन की मधुर भाव-भूमि मे सयोग और ब्रह्म को पाने की बेचैनी, तडपन म वियोग शृगार के अनेक मादक, मोहक एव मर्मस्पर्शी चित्र स्वामी रामचरण की कविता के शृगार बन कर आए है।

संयोग शृगार

एक दूसरे के प्रेम मे पडकर नायक-नायिका जब आपस मे प्रेम-क्रीडा (आलिंगन, चुम्बन, मधुर सम्भाषण, दृष्टि का आदान-प्रदान आदि) मे रत रहते है तब शृगार के सयोग पक्ष की अभिव्यजना होती है। लोक शृगार के सयोग पक्ष मे उपर्युक्त क्रीड़ाएँ वर्णित है पर आध्यात्म शृगार के सयोग पक्ष मे जीव-ब्रह्म या आत्मा-परमात्मा के सयोग या मिलन की अभिव्यक्ति प्रतीको मे हुई है। स्वामी रामचरण के काव्य मे आत्मा नायिका और परमात्मा नायक रूप मे चित्रित है। ररंकार पति और सुरति-सुदरी के परस्पर स्पर्श का यह चित्र कितना मादक है। होली का यह दृश्य सयोग शृगार का सुदर उदाहरण है—

---

१ डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य, पृ० २३३-३४।

"ररकार पति सुरति सुंदरी अर्श पर्श रमैं होरी हो।
वर अविगत नहचल अविनाशी सुंदरि नवलकिशोरी हो।
पचरंग पोम गुलाल उडाई, तिरगुन केसर गारी हो।
अर्क अबीर माच करि सूंधो भरत प्रेम पिचकारी हो।"[1]

ररकार पति और सुंदरी सुरति के केलि का यह दूसरा चित्र भी संयोग शृंगार का अच्छा उदाहरण है। इसमे भी सुंदरी को उसका नायक स्पर्श सुख देता है—

"ररकार पति परसिया सुरति सुंदरी नारि।
रामचरण केला करै, मिलकै गिगन मझारि।"[1]

दोनो सुख-सेज पर विलासरत है, इसके आगे जगत विलास नीरस लगता है। आठ पहर चौंसठ घडी इसी सुख विलास मे समय व्यतीत होता है। प्रियतम के संयोग सदृश दूसरा सुख इस धरती पर नजर नहीं आता—

"पिव पतनी सुख सेझ पर हिलमिल करत निवास।
रामचरण तबही लगै, फीको जगत विलास।
आठ पहर चौसट घडी, सुख विलसत दिन जाय।
पिव अविनासी सग सुरति, नास कबै नहिं थाय।
रामचरण पिव पाईया तब निजर न आवै ओर।
सो सुख पिव की सेझ पर, सो नहीं दूसरी ठोर।"[3]

वियोग के बाद मिलन मे जो सुखानुभूति होती है उसका चित्र निम्नलिखित पंक्तियो मे द्रष्टव्य है। सुंदरि के भाग्य से विरहिणी का प्रियतम उसकी सेज पर आ गया है। विरह की आग बुझ गयी। विरहिणी के हृदय मे आनन्द का उछाह भर गया और वह प्रियतम के आलिंगन-पाश मे बँधकर सो गई। बहुत दिनो का वियोगी प्रियतम मिला था, उसने स्पर्श किया और सभी काम बन गये—

"बिरहनि अंदर सुख भया, बलती बुझीज आगि।
पीव पधार्‌या सेज में, मोहि सुंदरि के भाग।
बिरहनि अनद उछाव कर, मिली पीव सूं धाय।
रामचरण सुख सेझ पर, सूती अंग लगाय।

---

१ अ० वा०, पृ० १००१।
२ वही, पृ० १४।
३. वही।

बहोत दिनां का बीछड़्या, मिल्या सनेही राम।
रामचरण पिव परस्तां, सरिया सबही काम।"[१]

'गावा का पद' से संयोग श्रृंगार का एक और चित्र देखिए। नायिका का हृदय संयोग सुख की कल्पना से भरा हुआ है। आज उसके महल में उसके प्रियतम का आगमन है। वह हर्षातिरेक से विभोर हो रही है, उसके साहब ने उसकी पुकार पर प्यार जो दिया है। उसका हृदय नयी-नयी कल्पनाओं का निधान बन गया है। वह अपने प्यारे को पान देगी, कत्था, चूना सुपारी सब मौजूद हैं। प्रेम के दीपक से उसका मन्दिर जगमगा उठेगा। वह प्रीति की सेज सजायेगी और शील का श्रृंगार सजा कर प्रियतम के अंग से लगकर आलिंगन सुख में जी भर डूबेगी। हृदय आनन्दोल्लास से भर उठा है। नया-नया प्यार जो हुआ है। इस नये नेह में वह अपने प्रियतम पर सर्वस्व (तन मन धन) न्यौछावर कर देने की उत्कण्ठा से विह्वल है। बहुत दिनों पर प्रियतम से मिलन हुआ है। कामनाओं को जीवन मिल गया, जैसे वे उल्लास में बिलसने लगी हों। घर आये अपने स्वामी को एक पल की चतुर्थांश अवधि के लिए भी उसे ढीला नहीं छोड़ेगी। आज वह सब कुछ हो गया जो उसके 'मन का भावता' है। संशय, शोक, दुर्भाग्य कहीं जा छिपे। वह सुहागवती हो गयी, प्रियतम के संग प्रेयसी का भाग्योदय हो गया—

"मेरे महल पधार्‌या प्रीतमा हो, सखी री मेरैं साहिब सुनी है पुकार।
पणकर पांन भाव करि काथो, चूनो कर्म जलाय।
साच सुपारी साजकर बिड़लो, मोहि सतगुरु दियो है खिलाय।
प्रेम का दीपक जोय मंदिर मैं, प्रीति का पिलंग बिछाय।
शील श्रृंगार साज पिव परशूं अंग सूं अंग लगाय।
उर आनंद उछाव भयो अति, लग्यो है नवलो नेह।
तन मन धन न्यौछावर करिहूं, साहिब कूं आपा देह।
बहुत दिनां सैं प्रीतम पाया, सर्‌या है मनोरथ काम।
पाव पलक ढीला नहिं छाडूं, घर आया केवल राम।
अब तो मेरा भया है भावता, दरिया सबही संत।
शिव सनकादिक शेष रटत हैं, सोही मैं पाया है कंत।
शांशो शोक दुहाग दुर्‌यो सब, सुंदरि लह्यो जी सुहाय।
रामचरण पूरण पद पायो, पिया संग जाग्यो है भाग।"[२]

फाग के रसरंग में प्रिया को प्रियतम ने सुहाग दे दिया। उसका हाथ पकड़ कर उसके हृदय का संशय दूर कर दिया। फिर क्या, प्यारी ने प्रेमभरी पिचकारी साधकर अपने

१. अ० वा०, पृ० ११
२. वही पृ० ९९९-१०००।

प्रियतम पर चला दी और पति ने आकर बडे प्यार से उस उत्कंठिता को आलिंगन में आबद्ध कर लिया। अंगों के इस विनिमय में प्रियतमा के चपल तन-मन थिर हो गए जैसे सलिला सागर में मिलकर सागर ही हो जाय। प्रेमी-प्रेमास्पद के पारस्परिक स्वरूप में अन्तर अदृश्य होगया—

"खेलत फाग री, मोहि बक्स्यो राम सुहाग।
पकर्‌यो हाथ नाथ अबला को, अंतर भरम बिलायो।
जाग्यो भाग राग बध्यो पिव सू, शरणा को फल पायो।
भरि पिचकारी प्रेम पियारी, मनमुख स्याम चलाई।
आवत हबस लई पति हित सू, मुदरि अंग लगाई।
अपणो अंग दियो गुणसागर, चंचल अचल कराई।
जैसे नीर बहै सरिता को, समद समद होई जाई।
अरस परस अंतर नहि दर्सो, परसै प्रीतम प्यारो।
जैसे डरी गरी सब रस की, कुण करै जल न्यारो।"[1]

तन मन प्रिय को अर्पित करके पत्नी अपने प्रिय की हो गयी। अब उससे नेंक भी विलग नहीं होगी। कवि की दृष्टि में शरण सुख की इस अवस्था को वाणी नहीं दी जा सकती।

"तन मन अर्प मिली पिव पतनी।
न्यारी नेंक न जावै।
रामचरण शरणं सुख पायो।
ताको कहत न आवै।"[2]

स्वामी जी के संयोग शृंगार की नायिका परकीया नहीं प्रत्युत स्वकीया है, वह अपने प्रियतम की प्रियतमा पत्नी है। आध्यात्मिक संयोग शृंगार के वर्णन में स्वामी जी को अन्यतम सफलता मिली है। संयोग की तीव्रानुभूति उपर्युक्त विवेचन से पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है।

वियोग शृंगार

परस्पर अनुरागरत नायक और नायिका जब एक-दूसरे से विलगावस्था में विछुडन की अनुभूति करने लगते हैं तब वियोग शृंगार की व्यंजना होती है। स्वामी रामचरण के काव्य में नायक ब्रह्म और नायिका जीव (परमात्मा और आत्मा) के एक-दूसरे से बिछुडने की बडी मर्मस्पर्शिनी अभिव्यक्ति हुई है। स्वामी जी के वियोग शृंगार में पूर्वराग की विभिन्न स्थितियां

---

१. अ० वा०, पृ० १००९।
२. वही।

के चित्र मिलते हैं। पर मान और प्रवास का कदाचित् समावेश नहीं। स्वकीया विरहिणी अपने प्रियतम के लिए बेहाल होकर बार-बार उसका स्मरण करती है। उसके लिए तड़पती है। 'विरह को अंग' में ऐसे अनेक मर्मस्पर्शी स्थल है जिसमें कवि का विरही हृदय अपने 'राम' के लिए आकुल है। कवि अपने उसी राम घन का चातक है। वह चकोर है जो सारी जिन्दगी शशि पर दीवाना रहता है। वह अपने राम को वैसे ही स्मरण करता है जैसे राही प्रभात को—

"ज्यूं चात्रग घन कू जपै, शशि कूं जपै चकोर।
रामचरण रामै जपै, जैसे पथी भोर।"[1]

राम के लिए उसका जी तड़पता है। अत वह राम को बार-बार स्मरण करता है, जैसे सीप स्वाति का और दुखियारी अपने प्रिय का स्मरण करती है—

"सीप जपै ऋतु स्वाति कू, आरतवंती पीव।
रामचरण रामै जपै, तुम बिन तलफै जीव।"[2]

विरह विकास की अवस्था मे रातदिन तड़पते तड़पते हृदय मे घाव हो गया है। इस घाव का उपचार केवल उसका प्रियतम राम ही कर सकता है, जो वैद्य है—

"रात-दिवस तलफत रहै, राम वैद तुम आव।
रामचरण बाधी बिरह, कियो कलेजै घाव।"[3]

इस विरह रोग की वेदना कोई नही जानता। इसे या तो वियोगिनी का प्रियतम या फिर स्वय विरहिणी या विरही—

"रामचरण बिरह रोग की, पीड न जांणै कोय।
कै बिरहनि का प्रीतमा, कै जा घट बिरहा होय।"[4]

विरह अग्नि है जिसमें नित्य जलना विरहिणी की रीति है। कवि कहता है कि सती तो अपना शरीर एक बार जलाती है पर वियोगिनी का रोज जलना उसकी रीति है—

"भस्म करै तन आपणो, सती विषै की प्रीति।
बिरह अग्नि मैं नित जलै, ए बिरहनि की रीति।"[5]

१. अ० वा०, पृ० १०।
२. वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ११।
५. वही।

और विरहाग्नि मे सब तन जल गया, लोहू और मास भी नहीं शेष रह पाया। तभी विरहिणी ने आर्त्त स्वर मे निवेदन किया कि हे राम हे! प्रियतम! तुम्हारे दीदार बिना साँस नाभि का स्पर्श ही नहीं कर पाती—

"बिरह अग्नि सब तन दह्यौ, लोही रह्यो न मास।
रामपियारे दरस बिन, नाभि न बैठे सास।"[1]

प्रियतम के दीदार के लिए विरहिणी दिनरात जगती है। उसे पल भर के लिए भी नींद नही आती। बाट जोहते उमर कटती है। उसके नेत्रो को दर्शन की आशा है उस पपीहे के सदृश जो बादलों से आशा पूरी होने की प्रतीक्षा मे जिया करता है। प्रिय दर्शन मे तनिक भी विलम्ब उसे सह्य नहीं—

"रमइया मेरी पलक न लागै हो।
दरश तुम्हारै कारणै, निशिबासर जागै हो।
दशू दिशा आतर करूँ, तेरो पथ निहारू हो।
राम राम की टेर दे, दिन रैण पुकारू हो।
नैन दुखी दीदार बिन, रसना रस आशै हो।
हिरदो हुलसै हेत कू, हरि कब परकाशै हो।
स्वाति बूंद चातक रटै जल और न पीवै हो।
घन आशा पूरै नहीं, तो कैसे जीवै हो।
दास की अरदास सुण, पिया दर्शण दीजे हो।
रामचरण बिरहनि कहे, अब बिलम न कीजे हो।"[2]

प्रियतम से दया की याचना करती हुई विरहिणी अपनी वियोगावस्था की विभिन्न स्थितियो का वर्णन करती है। अब तो साँस भी बिना पीडा के नही सरकती। दर्द के साथ जब श्वास भीतर प्रवेश कर शरीर मे व्याप्त होती है तो इस शरीर के पजर दुखने लगते है। शरीर की हड्डियाँ उस काठ के सदृश हो गई है जिसमे विरह के घुन लग गए है। मज्जा सूख रही है, त्वचा मे सकुचन आरम्भ हो गया है। मेरा आनन मुरझा गया है। दीदार की आशिकी मे दोनो नयन झर रहे है—

"सांईया अरज हमारी हो।
बिरहनि ऊपर कीजिये टुक महर तुम्हारी हो॥

---

१. अ० वा०, पृ० ११।
२. वही, पृ० १००६।

सास सपीडा मर्क व्यापे, पिंजर रह्यो है पिराय।
काठ जैसे अस्थि बीझै, बिरहा घुंण ज्यूं खाय।
मेद सुखत सुकुची त्वचा, मेरो बदन गयो मुरझाय।
आसको दीदार की, दोइ नैन रहे झडलाय।"[1]

'नेत्र तुम्हारे दर्शन के बिना दुखी है', इस बहाने भी प्रिय से तो मिलन हो जाय। पर तभी विरह की तीव्र धार फूट पडी और बहाने बह चले। विरहोत्कंठिता का स्वर गूँजने लगा। वह विश्वास माँगती है, प्रियतम के गले मे लग जाना चाहती है। उससे न भूलने की पुन-पुन विनती करती है—

"दुखी तुम्हारै दर्श बिन, तुम कबर मिलोगे आय।
सोही बिहाडो नीसरै सो तो एक वर्ष कै भाय।
रामचरण की बीनती, पिया मति मोही बीसर जाय।
बिरहनि कूं विश्वास दीजे, लीजे कण्ठ लगाय।"[2]

विरहिणी का जीव 'पीव' मे बसता है, नित्य उसी मे लीन रहता है, इस आशा मे कि कभी तो उसकी मनोकामना उसका प्रिय पूरी करेगा। इस ससार मे सभी सुखी है, केवल विरही मन ही दुखी रहता है—

"सुखिया सब ससार है बिरही चित्त उदास।
जीव बसै नित पीव मैं, कब हरि पुर्वे आस।"[3]

विरहिणी अन्य सभी दुख झेलने को तैयार है, पर प्रिय वियोग का दुख असह्य है। अत वह प्रियतम से शीघ्र मिलने की आकाक्षा व्यक्त करती है। निम्नलिखित पक्तियो मे कितनी आतुरता है—

"दूजा दुख सबही सहूं, पिव दुख सह्यो न जाय।
रामचरण बिरहनि कहै, बेग मिलो हरि आय।"[4]

अब उसे केवल दीदार की लालसा मात्र रह गई है। वह प्रियतम को देखकर ही सतोप करने को प्रस्तुत है। इसीलिए कहती है, प्रियतम! तुम क्यो छिपे हुए हो? ऐसी निठुराई? दरस दो प्यारे, तुम बिन रहा नही जाता। दर्शन दो नही तो प्राण शरीर छोड देगे—

---

१. अ० वा०, पृ० १००६।
२. वही।
३. वही, पृ० ११।
४. वही।

"दुखी तुम्हारे दरस बिन, तुम क्यूं रहे लुकाय।
कै दरसो कै तन तजूं, तुम बिन रह्यो न जाय।"[1]

स्वामी रामचरण के विरह दर्पण में आदर्श विरही का रूप झलकता है। विरहानुभूति की विभिन्न दशाओं के अनेक मार्मिक चित्रों का चित्राधार स्वामी जी का विरह काव्य है। इस विरह निवेदन में पपीहे की आर्त्त पुकार है, चकोर की तन्मयता है, घायल हृदय की तड़पन है और हरि मिलन की तीव्र उत्सुकता तथा दीदार के अभाव में तन त्यागने की चुनौती। विरह की आग बढ़ती गई, दर्शन की आतुरता सीमा पार कर गई। विरहिणी की कातर पुकार कातरतर से कातरतम होती चली गई। विरहिणी का सर्वाङ्ग वियोगानल की लपटों में आ गया, अब बुझने की आशा नहीं दीखती। क्या करती बेचारी, 'रमइया मिलन की चाह' हृदय में संजोये विरह में जलती रही। तभी विरह की लपटों से एक बेबस स्वर सुनाई पड़ा—

"विरह बधो विस्तार कर फैली सब घर माहि।
रामचरण क्यूं ही कियां, बुझती दीसै नाहि।"[2]

तभी उसे विदित हुआ कि उसका महबूब निरंजन राम तो उसके अति निकट था, पर माया ने पर्दा डाल रखा था, जिससे दर्शन दुर्लभ हो गया। निकट की दूरी खल गई। आशा बँधी 'पीव हजूर' के दर्शन की। अब उसे प्रतीक्षा है पर्दा के मिट जाने तक की। माया का पर्दा विरहिणी और उसके प्रियतम निरंजन राम के बीच से जब हटेगा तो वह उसका दीदार कर निहाल हो जायेगी—

"राम निरंजन निकट है माया पड़दै दूर।
बिरहनि का पड़दा मिटै तो दरसै पीव हजूर।"[3]

यही है स्वामी रामचरण की विरहानुभूति। इसमें विरही हृदयों की कसकों के अनेक सवाक् चित्र दृष्टिगत हो रहे हैं। स्वामी रामचरण का विरह वह आईना है जिसमें मीरा सदृश विरहिणियाँ अपना रूप देख सकती है।

शांत रस

संतों ने सर्वाधिक प्रमुखता से जिस रस की अनुभूति की है वह शान्त रस ही है। असार संसार के प्रति निर्वेद भाव के जागरण होने पर ही शांतरस की अनुभूति होती है। स्वामी रामचरण के काव्य में शांत रस का प्राधान्य सर्वत्र दृष्टिगत होता है। यों तो उनके सम्पूर्ण साहित्य में

---

१ अ० वा०, पृ० ११।
२ वही।
३ वही।

शांत रस की अनुभूति होती है पर चिंतावणी और उपदेश के अंगों में इस रस का वर्णन विशेष रूप से हुआ है। शांतरस के कतिपय छंद इस विवेचना में प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

'कुण्डलिया चितावणी को अंग' में सामाजिक संबंधों एवं उपकरणों की नश्वरता पर प्रकाश डालते हुए स्वामी जी इन सभी से परे होकर भजन द्वारा मुक्ति का उपाय सुझाते हैं। धरा-धाम-धन, रिश्ते-नाते सभी छूट जाते हैं, केवल यश-अपयश संसार में रह जाता है—

"धरा समधी धाम धन संग ले चल्यो न कोय।
जश कुजश संसार में, पीछे रह गया दोय।
पीछे रह गया दोय संग शुभ अशुभ सिधाया।
शुभ स्वर्गादिक सुख अशुभ दुख नरक भुगाया।
रामचरण इनकै परै मुक्ति भजन सू होय।
धरा समधी धाम धन संग ले चल्यो न कोय।"[1]

'गाथा का पद' की निम्नलिखित पद भी मन में निर्वेद का संचार करता है। यह शरीर पाहुने के समान है, इस पर गर्व करना निरर्थक है। मेहमान सदृश आज या कल में इसे उठकर चले जाना है। संसार का मोह मिथ्या है। तन, धन, धाम सभी झूठ हैं। इसीलिए सजग होकर राम का स्मरण करना चाहिए—

"यो तन पाहु्वणो रे, मति कोई करो गुमान।
विरसूं काल्ह कि आज में रे, उठ चले मिजमान।
नदिया नाव संजोग है रे, बिछड्या मेला रे नांहि।
गया सो फेर ना बाहुड्या रे, समझ देख मन मांहि।
छत्र सिंहासन छाडि कै रे, मर मर गया रे अमीर।
तू क्यों गाफिल होइ रह्यो रे, काचा धार शरीर।
मोत खड़ी सिर ऊपरै रे, जीवण झूठी रे आश।
कहा जाणूं कब चालसी रे, बाट बटाऊ सास।
झूठी जग की मोहणी रे, झूठा तन धन धाम।
रामचरण अब चेत कै रे, सुमर सनेही राम।"[2]

इसी प्रकार प्रकट जल को छोड़कर मरीची नीर के पीछे भटकते मन को कवि सचेत करता है—

---

१ अ० वा०, पृ० १७२-७३।
२. वही, पृ० १००९।

"मन तू भरम भूल्यो वीर।
मृगतृष्णा जल देखि ध्यायो, परिहरि परगट नीर।
साचा प्रीतम परिहर्‌या रे, कूडँ कीयो सीर।
भीड पड्या भग जायगा रे, कोई न बँधावँ धीर।
माता पिता सुत भामिनी रे, इन सग पावँ पीर।
धन जोबन मति देखि भूलै, ये सब नाही थीर।
जगत धार्‌यो राम बिसार्‌यो, गह कोडी तज हीर।
अन्त काल पछितायगो रे, सुन काफर बे पीर।
मर्म कर्म सू लागियो रे, समझ्यो नीर न खीर।
काचा सब कल जायगा रे, ज्यूँ पावक संग कथीर।
सतगुरु शब्द पिछाण कै रे, छाडि छीलर तीर।
रामचरण दरियाव भजिये, राम गुणा गभीर।"[1]

रामस्मरण के साथ सता की सगति भी शान्त रस का विषय है। ससार से विरक्त होकर सत सागर मे निवास करने का उद्देश्य स्वामी जी निम्नलिखित पद मे देते है—

"कर मन सत सागर बास।
यो ससार विनाश छीलर, देख होय उदास।
ज्ञान जल मुर्जाद मत दृढ, थाग पावत नाहि।
शब्द साखी सीप भरिया, राम मुक्ता माहि।
समद सुभर सीप सुभर, चुगत हसा दास।
आन दिशा को उडत नाही, पाय परम निवास।
तीन बिधि की ताप सै जग जलत छीलर तीर।
रामचरण जहाँ जाईये, जहाँ ब्रह्म सुख की सीर।"[2]

जीवन भाग रहा है, मृत्यु निकट आती जा रही है। सत सचेत कर हरिस्मरण के लिए प्रेरित करता है। सोते-सोते जीवन बीत गया। पर इस जीव ने हरि से हेत नहीं लगाया। उपर्युक्त भाव से पूरित यह पद शान्त रस की अनुभूति कराता है—

"जागो रे जीवन जाइ भागो, मरणो आवै आघो रे लो।
सत जगावै मर्म नशावै, हरि के सुमरण लागो रे लो।
ज्यो सोया ज्या सरबस खोया, हीरा-सा जन्म बिगोया रे लो।
जन जाग्या हरि सुमरण लाग्या, कर्म कालम्या धोया रे लो।

१ अ० वा०, पृ० १०१०
२ वही, पृ० १०१०।

सूता कूं जम आप पहूंता, जागत देख डराया रे लो।
गज गणिका पशुवां के हनतां, आपो आप बचाया रे लो।
.. ..
सोवत सोवत जन्म बिदिता, तरकर मुसँ न चिता रे लो।
रामचरण हरि हेत न जाग्या, आदि अंत रह्या रीता रे लो।"[1]

इसी प्रकार स्वामी रामचरण के काव्य-साहित्य मे शांत रस के छदो की भरमार है। वस्तुत सतो का जीवन ही शान्ति का स्रोत है। उनसे शात भाव की प्रेरणा मिलती है। फिर उनके साहित्य से शात रस की अनुभूति क्यों न हो ?

अद्भुत रस

अलौकिक प्रसगों से उत्पन्न विस्मय से अद्भुत रस की अनुभूति होती है। सत-साहित्य मे ब्रह्म की विराट कल्पना, अगम देश, अगम पुरुष आदि के वर्णन मे विस्मय भाव का परिपोष हुआ है। स्वामी जी के साहित्य मे अद्भुत रस के अनेक उदाहरण मिल जाते है। 'दृष्टान्त सागर' के दृष्टिकूटो मे भी अद्भुत रस के उदाहरण प्राप्त है। अगम देश की चर्चा मे कवि अद्भुत रस की अनुभूति कराने मे सफल हुआ है। निम्नलिखित पक्तियाँ इस दृष्टि से द्रष्टव्य है—

"बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजे तूर।
बिन श्रवणां अनहद सुणैं जहाँ ब्रह्मसभा भरपूर।
जहाँ ब्रह्मसभा भरपूर ओर कोई निजर न आवै।
सूरति रही मठ छाय देह तहाँ जाण न पावैं।
रामचरण वा देश मैं बहु परकाशैं सूर।
बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजे तूर।"[2]

'नाम प्रताप' मे सागर का हस मे प्रवेश का विस्मयकारी वर्णन अद्भुत रस की अनुभूति कराता है—

"सायर तट हंस बैठा जाई।
सायर हंस मे रहा समाई।
ओतप्रोत भया द्वैत न वर्षी।
संत गरक ब्रह्म सुख कूं पर्षी।"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० १०१२।
२ वही, पृ० १४१।
३ वही, पृ० २०७।

गगनवासी अलेख पुरुष का आश्चर्यमय वर्णन भी इस सदभ मे द्रष्टव्य है—

"गिगन मण्डल मे रम रह्या, रहता पुरुष अलेख।
रूप रेख जाके नहीं, नहि कोइ स्याम न सेत।"[1]

'दृष्टान्त सागर' में सीप मोती के दृष्टान्त द्वारा अद्भुत रस की प्रतीति इन पक्तियो मे होती है—

"दोय नारि को उदर इक, मिली नहीं भरतार।
बिन्दु झेल पैदा किया, पीहर पूत अपार।"[2]

इसी सन्दर्भ का दूसरा उदाहरण भी प्रस्तुत है—

"तात सही माता नहीं, नहीं तात की आस।
भई सपूती पूत जण, गई न सासर वास।"[3]

स्वामी रामचरण को अद्भुत रस के वर्णन मे सफलता मिली है। उपर्युक्त विवेचन से इस बात की पुष्टि होती है।

बीभत्स रस

घृणित उपकरणो को देखने या तद्विषयक चर्चा से जिस जुगुप्सा की अनुभूति होती है, उसे वीभत्स रस कहते है। वैराग्य उत्पन्न होने पर सासारिक वस्तुओ के प्रति जिस स्वाभाविक घृणा की अनुभूति होती है वह भी वीभत्स के सीमान्तर्गत है। जैसे शृगार रस के उद्दीपक शरीर के विभिन्न अगो का सौन्दर्य विराग के कारण वीभत्स की अनुभूति करने मे सहायक होता है। सत काव्य मे वीभत्स रस की अनुभूति इसी रूप मे हुई है। 'पडित सवाद' ग्रथ की निम्नलिखित पक्तियो को पढकर जुगुप्सा की अनुभूति होती है—

"कामणि संग कूकर ज्यू लागै।
विष की लहरि सुमति नहिं जागै।
तन मन मेल्यो मूत बिकारा।
मोहि बताय कहा आचारा।
जीं द्वारे होइकै तू आया।
सोई फिर भुगतण कू ध्याया।

---

१. अ० वा०, पृ० १३।
२ वही, पृ० १०३५।
३. वही।

रह्या मास बश प्रभ के माही।
काया रस सू रुचि उपजाही।
विष्टा मूत्र अत रस पीयो।
ता आधार गर्भ मे जीयो।"[1]

'चन्द्रायणा गाच को अग' का यह अग भी वीभत्स रस की अनुभूति कराने मे समर्थ है—

"हाड चाम अरु रक्त मास की पोट रे।
आत ओझ मल मूत्र भर्‌या मन खोट रे।
ऊपर कीया स्नान घुपै नहि कर्म रे।
परिहा रामचरण भज राम ओर तज धर्म रे।
देह भरी दुर्गन्ध बहै नव द्वार रे।
चोको चूल्हो पोत कहे आचार रे।
नरनारी का मास मदन मद पीवणा।
परिहा शुचि राम बिसार वृथा जग जीवणां।"[2]

इसी प्रकार 'कामी नर को अग' मे नारी सग के प्रति जुगुप्सा का भाव उत्पन्न कर कवि वीभत्स की सृष्टि करने मे सफल हुआ है—

"तन मन मैली नार, मैला नर संगति करै।
ले जाय नरक दुवार, जहा मैल दुर्गन्ध भरै।"[3]

स्वामी रामचरण को वीभत्स रस के वर्णन में उपर्युक्त स्थलों पर पर्याप्त सफलता मिली है। सत कवि मानव हृदय मे लौकिकता के प्रति वीभत्स रस का भाव जगा कर विराग ग्रहण करने की प्रेरणा देता है। स्वामी रामचरण ने नारी के तन मन के प्रति घृणा तो जगाई ही है, हाड-मास के शरीर के प्रति भी जुगुप्सा उत्पन्न करने में सफल हुए है।

हास्य रस

हास स्थायी भाव की पुष्टि के द्वारा हास्य रस की अनुभूति होती है। हिन्दी काव्य साहित्य में निर्मल हास्य का प्राय अभाव ही है। फिर सत काव्य मे तो उसका और भी गुजारा नहीं। हास्य के नाम पर व्यग्य को प्रश्रय मिला है। स्वामी रामचरण की कविता मे भी हास्य

१ अ० बा०, पृ० ९८४।
२ वही, पृ० ८४।
३. वही, पृ० ५६।

के नाम पर व्यग्य ही मिलेगा। ग्रथ 'पडित सवाद' मे स्वामी जी कलियुगी पडितो का मजाक उडाते हुए इस प्रकार व्यग्य करते हे—

"कलिजुग के पंडित पाखण्डी।
घर मैं कुबुधि करकसा रण्डी।"[1]

'बेजुक्ति तिरस्कार' ग्रथ मे साधु सन्यासियो के वेष की नारी वेष से तुलना करके उन सभी का मजाक उडाने मे स्वामी जी हास्य रस की सृष्टि करते है। मुडित सन्यासी और नारी की अनुरूपता का चित्र निम्नलिखित पक्तियो मे वर्णित है—

"भद्र भेष नारी सू सग।
बिना मूंछ दोन्यू इक रग।
मूछा बिना पुरुष नहि दीसै।
जैसे रांड राड मिल पीसै।"[2]

इसी प्रकार कनफटा योगी और कनफटी नारी की अनुरूपता दिखाकर स्वामी जी कनफटे योगियो पर व्यग्य करते है—

"कान फडायरु जोगी भया।
नारि कनफड़ी सू मन दिया।
कर्णफूल मुद्रा इक संग।
छैल छबीला नाना रग।"[3]

"साच को अग' मे स्वामी जी मुल्ला की अजान का मजाक यह कह कर उडाते है कि वह सर्वव्यापी करीम बहरा नही हे, फिर तू क्यो बाग देता है—

"सकल जिहान में रमि रह्या, मुल्ला एक रहीम।
बांग सुणावै कूंण कूं, बहरा नांहि करीम।"[4]

स्वामी रामचरण के काव्य मे यद्यपि हास्य प्रचुर मात्रा मे नही है, फिर भी व्यग्य प्रधान उक्तियो से वे हास्य रस की सृष्टि कर सके हे। इतने विशाल काव्य-भण्डार मे जहाँ जीवन का कोई पक्ष अचर्चित नही है, यह कैसे सभव था कि हास्य की चर्चा न हो। अनेक लौकिक

---

१. अ० वा०, पृ० ९८४।
२ वही, पृ० ९८८।
३ वही, पृ० ९८९।
४. वही, पृ० ६४।

रूढ़ियों, साम्प्रदायिक बाह्याचारो और जीवन की कुरूपताओ पर हुए व्यग्यो मे हास्य रस की अनुभूति हम कर सकते है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि स्वामी जी सामाजिक जीवन मे रुचि रखते थे।

भक्ति रस

ईश्वर, देवता और गुरु के प्रति श्रद्धामय प्रेम भाव से ही भक्ति रस की अनुभूति होती है। क्या भक्ति को एक स्वतत्र रस की मान्यता मिलनी चाहिए यह विवाद पुराना है। हिन्दी के आचार्यों ने भक्ति को रस रूप मे मान्यता दी है। विद्यावाचस्पति प० रामदहिन मिश्र ने अपने 'काव्य-दर्पण' मे इस विवाद का अन्त करते हुए लिखा है, "इसमे सन्देह नही कि भारतीय साधु-सतों ने भक्ति का जो रूप खडा किया है वह सागोपाग है। शास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर भक्तिरस परिपूर्ण तथा खरा उतरता है और रसश्रेणी मे आने के उपयुक्त है। भक्तिरस के विरुद्ध जितने तर्क है वे निस्सार है। **भक्ति रस की आस्वाद्य योग्यता निर्बाध है।**"[१] अत भक्ति का रस रूप मे निरूपण करने मे कोई आपत्ति नही है। सत काव्य का मूल ही भक्ति है। सत चाहे वे निर्गुणोपासक हो या सगुणोपासक, सभी ने भक्तिभाव से अपने आराध्य को स्मरण किया है।

भक्ति निरूपण के प्रकरण मे भावभक्ति शीर्षक के अन्तर्गत भक्ति-भावना का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। यहाँ कवि की रचनाओ के साहित्यिक मूल्याकन के सदर्भ मे भक्ति को रस रूप मे निरूपित करते समय स्वामी रामचरण के काव्य मे भक्ति रस की सक्षिप्त चर्चा अपेक्षित लगी। स्वामी जी का भक्त-हृदय उनकी सम्पूर्ण कविता मे परिव्याप्त है। उन्हे सम्पूर्ण चराचर मे 'राम' की सत्ता के दर्शन होते है। यह राम उनके आराध्य है। वे भक्ति रस को ही 'राम रस' कहते है। 'गावा का पद' की ये पक्तियाँ इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है—'

"रामरस पलक न कीजे न्यारो।
ऐसी सूंज बहुरि नहि पावै नर तन को अवतारो।"[२]

'गावा का पद' मे भक्ति रस के अनेक आदर्श पद भरे पडे है। साधु-दर्शन पाने के बाद भाव-विह्वल कवि गा उठता है—

"आज भया मन भाया रे।
मैं साधू दर्शण पाया रे।
हरिजन भला पधार्‌या रे।
जड़ जीवन कूं निस्तार्‌या रे।

---

१ प० रामदहिन मिश्र : काव्यदर्पण, पृ० २१४।
२. अ० बा०, पृ० १००४।

साधू पर उपकारी रे।
ये तो भव दुख के परिहारी रे।
प्रीति जगत सूं न्यारी रे।
उन संतन की बलिहारी रे।
हरि रस पीवण हारा रे।
जन विषिया रस सूं न्यारा रे।
रामचरण धुनि गाई रे।
मोहि लीज्यो बाह सम्हाई रे।"[1]

भक्त भगवान के प्रेम मे डूब कर नर्तन करने की अभिलाषा व्यक्त करता है। वह प्रभु के चरणाब्ज मे लीन होना चाहता है। उसे स्वर्गलोक का सुख नहीं चाहिए। वह तो केवल अपने भगवान के दास रूप मे प्रसिद्ध होना चाहता है। वह चारों पदार्थों को भूलकर भक्ति धारण करने के लिए तत्पर है। उसे ऋद्धि-सिद्धि, लक्ष्मी का वैभवादि कुछ नही चाहिए। वह अपने उपास्य की शरण में रहकर उसकी चरण सेवा का अभिलाषी है—

"निशिबासर हरि आगे नाचूं।
चरण कमल की सेवा जाचूं।
स्वर्गलोक का सुख नहि चाहूं।
जनम पाय हरिदास कुहाहूं।
च्यार पदारथ मनां बिसारूं।
भक्ति बिना दूजो नहि धारूं।
ऋधि सिधि लक्ष्मी काम न मेरै।
सेऊ चरण शरण रहूं तेरै।
शिव सनकादिक नारद गावै।
सो साहिब मेरै मन भावै।
राम राय इक अर्ज हमारी।
रामचरण कूं द्यो भक्ति तुम्हारी।"[2]

भक्ति रस में सराबोर स्वामी जी के हृदयोद्‌गार की निम्नलिखित पक्तियों मे अनेक भक्तों की चर्चा हुई है जिनका उद्धार भगवान ने किया। कवि अपने उसी प्रभु की विनय मे रत है—

---

१. अ० वा०, पृ० ९९६।
२. वही, पृ० १००२।

"विनऊं रे म्हारो रामसनेही, सब बिधि काज सँवारै रे लो।
अधम उधार बिड्द है जाको, चरण गह्यां भवतारै रे लो।
जल बूडत गज राखि लियो है, अजामील निस्तार्‌यो रे लो।
पावक मे प्रहलाद सम्हार्‌यो, असुर रह्यो पचि हार्‌यो रे लो।
ध्रू नहचल नीकां बैठार्‌यो, गणिका राम उबार्‌यो रे लो।
रामचन्द्र के सायर पाट्‌यो, अर्ध नाम शिर धार्‌यो रे लो।
. . . . . .
अनत कोटि जन महिमा गाई, निगम सुजश विस्तार्‌यो रे लो।
रामचरण को समर्थ स्वामी, नाम लेत अघ टार्‌यो रे लो।"[1]

स्वामी जी के काव्य का उपर्युक्त निरूपण सिद्ध करता है कि उनकी कविता में भक्ति रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। ईश्वर के अतिरिक्त सतजन एवं गुरु के प्रति श्रद्धामिश्रित अनुराग से भरे अनेक पदों एवं छन्दो से स्वामी जी का विशाल काव्यभडार भरा पडा है। यहाँ अति सक्षेप मे भक्ति का निरूपण रस रूप मे किया गया है। स्वामी रामचरण की कविता मे वर्णित प्रमुख रसों की इस सक्षिप्त चर्चा के साथ रसानुभूति का यह प्रकरण यहीं समाप्त होता है।

प्रकृति-चित्रण

सत-साहित्य मे प्रकृति चित्रण विषय पर पडित परशुराम चतुर्वेदी ने 'सत-काव्य' की भूमिका मे विचार किया है। वे लिखते है—"सतों की साधना अन्तर्मुखी वृत्ति के आधार पर चलती थी और वे अधिकतर अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति मे ही लगे रहते थे। बाह्य जगत की चर्चा छेडते समय भी वे बहुधा अहमन्य व्यक्तियों वा पाखण्डियो आदि के विविध आचरणो का उल्लेख कर दिया करते थे. . .प्राकृतिक दृश्यो के प्रसग वे केवल ऐसे अवसरो पर लाते थे जहाँ उन्हे सर्वव्यापी परमात्मा के अस्तित्व एव प्रभाव की ओर सकेत करना रहता था अथवा अपनी विरह दशा के वर्णन वा अन्योक्तियो की रचना करते समय उनका ध्यान इधर चला जाता था। इसीलिए प्राकृतिक वस्तुओ के स्वरूपादि के वर्णन सम्बन्धी उल्लेख उनकी रचनाओ मे बहुत कम देखने को मिलते हैं।"[2]

स्वामी रामचरण के काव्य मे भी प्रकृति का उपयोग परमात्मा के रूपाभास या कविता के उद्दीपन, प्रतीक आदि रूपो मे हुआ है। 'रमइया मित्त' की चाह के लिए वियोगिनी का आदर्श है मोर जो घन का प्रेमी है और कोयल जो वन-वन विचरण करती है—

---

१ अ० वा० पृ० १०११।
२ प० परशुराम चतुर्वेदी : संत काव्य, पृ० १०३।

"कोयल चाहैं विविध वन, मोरा पावस ऋत्त।
रामचरण यू बिरहनी चहै, रमइया मित्त।"[1]

कमल और मधुकर भी माया और जीव के प्रतीक बनकर 'कवित माया को अंग' में उपस्थित है—

"माया कमल स्वरूप ज्यू मधुकर सब झूलै।
विषिया रस मोहीत होय निज घर कू भूलै।"[2]

इसी प्रकार कीचड के मध्य स्थित कमल के फूल का निकट निवासी दादुर और कमल के पुष्प की गंध का प्रेमी भ्रमर दोनो ही 'शिष्य निरणा को अंग' की शोभा बढा रहे है—

"कमल मूल मधि कीच नीच मिण्डुक अधिकारी।
भँवर वासना लेते बसै नाहि तास मझारी।
अलि दादुर क्यू मेल आश पुनि वास विवर्जित।
सुख गत बढ़ै कलेश होय कबहू जो संगति।"[3]

गगन मण्डल में विराजमान 'प्राण-पुरुष' का रूपवर्ण प्रभात वेला के सौन्दर्य-सदृश अवर्णनीय है, जो 'नाम प्रताप' की इन पंक्तियो मे चित्रित है—

"रूप वर्ण कैसो तडका को।
ऐसो कहा बखानो जाको।"[4]

'अमृत उपदेश' के आठवें प्रकाश का आरम्भ ही रवि और शशि के उदयास्त के वर्णन से होता है। सरक्त और विरक्त को कवि ने क्रमश. चन्द्रमा और सूर्य के रूप मे देखा है—

"रवि के आथ्या रैण होइ उदै भया दिन होय।
शशि ऊग्या नाही दिवस, आथ्यां निशा न कोय।
आथ्या निशा न कोय साध यूं चाहि अचाही।
चाही शशि सामान अचाही अर्क सदा ही।
रामचरण लछ अलछ कू लखै विचक्षण सोय।
रवि के आथ्या रैण होइ उवै भया दिन होय।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० ११।
२. वही, पृ० १२६।
३. वही, पृ० १२३।
४. वही, पृ० २०७।
५. वही, पृ० ४९१।

शीत, उष्ण और पावस ऋतुओं को कवि ने 'जिज्ञास बोध' के पहले प्रकरण में 'त्रय ताप' के रूप मे निरूपित किया है। ऋतुएँ आते समय प्यारी लगती है और पीछे संताप देती है—

"शीत उष्ण पावस ऋतु है अतिसै त्रयताप।
आवत सी प्यारी लगै पीछे लगै संताप।"[1]

'गावा का पद' मे स्वामी जी ने विरहिणी को निर्वाण पद स्पर्श की राय दी। इस सन्दर्भ में असाढ, सावन, भादो और आश्विन मासो की चर्चा बड़ी मोहक लगती है—

"बिरहनि परस पद निर्वाण।
अचल के सग होय नहचल मिटै आवण जाण।
असाढ आगम राम घन को, चातक चित्त उछाव।
आनद अग न मावही, भयो शरद ऋतु को चाव।
सावन भावन घटा घमण्डी, गावन रसना राम।
सुमरण की झाड़ लूंब लागी, बरसत आठूं जाम।
भादवै भिदि गयो हिरदै, भरै सागर पूर।
निकट नागर प्रेम पीवैं, नांहि भर्मे दूर।
आसोज आरत प्यास भागी, भरे चातक चंच।
स्वाति शीतल अधर झेलै, भई तिरपति पंच।
गगन मे बस मगन बोलै, अकल सुख आराम।
रामचरण मिल ब्रह्म पूरण, सरे सरबस काम।"[2]

सतो ने प्रकृति वर्णन को अपने काव्य में वर्णन का अभीष्ट नहीं बनाया था, फिर भी उद्दीपन प्रतीक आदि के रूप में प्रकृति की सुन्दरता तक उनकी दृष्टि पहुँची अवश्य है। स्वामी रामचरण के काव्य के कतिपय स्थलों को उद्धृत कर कवि और प्रकृति के सबधो को स्पष्ट किया गया है। स्वामी जी के लिए प्रकृति-चित्रण की उतनी महत्ता नही, पर प्रकृति के उपादानो से उनका लगाव किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर होता रहता है।

पौराणिक तथा अन्य सन्दर्भ

क्रान्तिदर्शी सत कवि अपनी वाणी के माध्यम से समाज को नवजागरण का सदेश देते थे। एक ओर वैष्णव भक्ति-भावना के पोषक साधुओं के सुव्यवस्थित मठीय सगठन थे जो सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओ से समन्वय स्थापित करके अपना भक्ति सदेश समाज को देकर उसे धन्य करते थे। इन साधुओ और इनके सम्प्रदाय के महतो या आचार्यों का समाज में बड़ा

१. अ० वा०, पृ० ५१६।   २. वही, पृ० १००६-७।

सम्मान था। उच्च वर्णी समाज इन्हे श्रद्धा अर्पित करता था। दूसरी ओर ये निगुनिये संत थे जो सामाजिक रूढियों और परंपराओं से निःसंकोच टकरा गए। इन्हे लोकजीवन की कुरूपताओं से समझौता पसंद न था। समाज का उच्च वर्ग इनसे बचने की कोशिश करता था, किन्तु निम्न मध्य वर्ग के प्राणी इनकी अटपटी वाणी मे रुचि लेते थे। वे इन लोगो की खरी-खोटी से प्रभावित हो इन्हे अपनी श्रद्धा का भाजन समझते थे।

संतो को अपनी बात सम्पूर्ण समाज को सुनानी ही नहीं मनवानी भी थी। उधर सगुणोपासक वैष्णव संत-महंत पौराणिक सन्दर्भों का साक्ष्य उपस्थित कर समाज को अपनी ओर आकृष्ट कर अपने द्वारा प्रचारित सिद्धान्तो, कर्मकाण्डो को धर्म का मूल घोषित करते थे। पौराणिक सन्दर्भों को अपने रग रग मे सजाए भारतीय समाज का उधर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। निर्गुण गायक संतो को भी अपने कथनों के प्रतिपादन के लिए उन्हीं सन्दर्भों का सहारा लेना पडा। संतों ने उन संदर्भों का निरूपण अपने ढग से प्रस्तुत किया और इस प्रकार समाज जीवन को अपने प्रभाव क्षेत्र के घेरे मे करने मे सफल हुए।

स्वामी रामचरण ने अपनी अंगबद्ध वाणी और ग्रंथो मे अनेक स्थलो पर भागवत आदि पुराण ग्रंथो के साक्ष्यों का सहारा लिया है। व्यास के कथनो का संदर्भ उपस्थित कर अपने मत का प्रतिपादन करने में वे पीछे नहीं रहे हैं। गणिका, गीध, अजामिल आदि की कथाएँ, ध्रुव-प्रह्लाद की त्याग-तपस्या आदि की चर्चा उन्होने बारम्बार की है। अपने पूर्ववर्ती संतो कबीर, गोरख, नानक आदि का नाम भी आदर के साथ लिया है और इन लोगो को आदर्श भक्त चित्रित कर समाज को उनके बताये संदेशो की ओर आकृष्ट करने की भरपूर कोशिश भी की है। ऐसे ही कतिपय संदर्भों का संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकरण का अभीष्ट है।

स्वामी जी ने व्यास और भागवत की चर्चा स्थान-स्थान पर की है। भक्ति निरूपण मे उन्होने भागवत में वर्णित भक्ति का उल्लेख किया है। अपने ग्रंथ 'अमृत-उपदेश' के तृतीय प्रकाश मे भक्ति के प्रकारों की चर्चा में व्यास और भागवत का नाम उन्होने लिया है।

"व्यास कही भागवत मैं भक्ती तीन प्रकार।
कनिष्ट उत्तम मध्यमा जाकूं जो अधिकार।"[1]

ग्रंथ 'पंडित संवाद' मे पंडितो की अच्छी खबर लेने के बाद वे गीता, भागवत, वेद आदि की चर्चा करते है और पंडितो को तदनुसार आचरण करने का उपदेश देते है। सच कहने के लिए उन्होंने गीता की साखी दी है—

"साच कहत हम शंक न राखी।
नव जोगेश्वर गीता साखी।"[2]

---

१. अ० वा०, पृ० ४४३। २. वही, पृ० ९८५।

चारो वर्णों की चर्चा मे स्वामी जी भागवत की साक्ष्य का उल्लेख करते है

"च्यारू वर्ण राम की उत्पति।
ताहि तज्या पावे कैसी गति।
रामचरण भागवत बतावै।
पढिया होइ सो तत कू पावे।"[1]

स्वामी जी पडितो को अपने मन की उलझन दूर कर रामभजन के लिए प्रेरित करते है, पर पण्डित उनके कथन को सिद्धान्त वाक्य कैसे मानेगा, अत पण्डितो को विश्वास दिलाने के लिए स्वामी जी वेद की साखी भरते है—

"राम भजन बिन पार न पावो।
पडित अपना मन सुलझावो।
मेरी बात नही पतियाना।
तो वेद माहि फिर देख सयाना।
वेद बतावै सो अब कीजै।
रामचरण कू दोष न दीजै।"[2]

ग्रथ 'अणभो विलास' के अठारहवे प्रकरण मे परनारी पर कुदृष्टि रखने वालो पर प्रहार करते समय स्वामी जी को चन्द्रमा, इन्द्र, रावण, कीचक, बालि, भस्मासुर आदि की स्मृति हो आई है, ये सभी परनारी पर आसक्त थे—

"चन्द इद रावण जिस्या कीचक बालि बिचार।
कला हीन अरु सहंस भग और मिलाये छार।
और मिलाये छार पाप पर नारी केरो।
हिर्दय ज्ञान विचार दृष्टि करनी का हेरो।
रामचरण ई कलंक सू जहां तहां नही उबार।
चन्द इन्द रावण जिस्या कीचक बालि बिचार।
भस्मासुर भस्मी करयो चितवत ही परनारि।
जो प्रत्यग् ही भोगवै तो उबरै कोण विचार।"[3]

स्मरणीय है कि चन्द्रमा और इन्द्र ने गोतम पत्नी अहिल्या को छला था, रावण ने सीता का अपहरण किया था। अज्ञातवास के समय पाण्डवों के साथ द्रौपदी विराट् के वहाँ सैरन्ध्री के

---

१ अ० वा०, पृ० ९८५।
२. वही।
३. वही, पृ० २९९।

रूप मे थी। कीचक ने उस पर कुदृष्टि डाली थी। बालि ने अनुज वधू को ही अपनी रखैल बना लिया था और भस्मासुर पार्वती पर ही आसक्त हो गया था। इन सभी को जो भुगतना पडा उसकी ओर सकेत कर स्वामी जी ने जहाँ एक ओर जन मानस को परनारी के प्रति कुभाव न रखने का सदेश दिया है, वही उन्होने रामायण और महाभारत के विभिन्न प्रसगो की याद भी दिलायी है। रामायण और महाभारत के विभिन्न प्रसगो की चर्चा स्वामी जी ने अपने ग्रथ 'नाप-प्रताप' मे की है। इन प्रसगो की चर्चा स्वामी जी ने अन्य ग्रथो मे भी यथास्थान की है। ऐसा लगता है कि ये सन्दर्भ स्वामी जी को बडे प्रिय थे—

१. ध्रुव प्रसंग

"रामनाम ध्रुव ध्यान लगावै।
वसि बैकुण्ठ बहरि नहि आवै।
राम भजत छूटा सब कर्मा।
चन्दर सूर देय परिकर्मा।"[1]

अन्तिम पक्ति मे ध्रुव के अटल होने का सकेत कवि ने दिया है।

२. प्रह्लाद प्रसंग

"राम राम प्रह्लाद पुकार्यो।
ताको पिता बहुत पचि हार्यो।
संकट सह्यो पण राम न छाड्यो।
राम भरोसे मरणहि माड्यो।
अगिधार पर्वत स राख्यो।
सिह सर्प गज परिहरि नाख्यो।
अंधकूप मे राम बचायो।
जन को जश हरि जग दिखरायो।
कोप्यो असुर खड्ग लियो कर मे।
जन के हित प्रगट्यो हरि खंभ मे।
मार्यो असुर भक्ति विस्तारी।
जन प्रह्लाद की मोच निवारी।"[2]

'कुण्डल्या बिलासी को अग' मे स्वामी रामचरण सप्तम स्कध भागवत मे दासपन के सदर्भ मे प्रहलाद के कथन को प्रमाण रूप मे प्रस्तुत करते है—

---

१. अ० वा०, पृ० २०३।
२. वही।

"सेवा कर फल बंछवै सो सब भाड़ैती जांम।
करत मजूरी मांग लै तब दास पणां की हान।
तब दास पणा की हान मान यूं हिरदै धारो।
स्कंध सातवाँ मांहि साखि प्रहलाद बिचारो।
रामचरण तुछ आश धरि सुखपद नही पिछांन।
सेवा करि फल बंछवै सो सब भाड़ैती जान।"[1]

इसी प्रसंग मे होलिकादहन की चर्चा भी अनपेक्षित न होगी—

"राम राम प्रहलाद उचारै, होरी जर भई छारा हो।
जै जैकार भयो हरिजन कै रामविमुख मुखकारा हो।"[2]

३. अजामिल प्रसंग

"द्विज अजामेल मद मांस अहारी।
गणिका रति विषय अति भारी।
कर्म करत तृप्ती नहि भयो।
विषय संग आयु क्षीण ह्वै गयो।
अन्त समय जम दूतन घेर्‌यो।
रामनरायण सुत को टेर्‌यो।
जमदूतन सू लियो छुडाई।
आपणो जाण रु करी सहाई।"[3]

४. गणिका प्रसंग

"गणिका एक गरक कर्मन में।
हरि की शंक कछू नहिं मन में।
जाकूं संता सैन बतायो।
राम राम कहि कीर पढ़ायो।
सुवा पढ़ावत विषया भूली।
रामप्रताप सुख सागर झूली।"[4]

---

१. अ० वा०, पृ० १५८।
२. वही, पृ० १०००।
३. वही, पृ० २०४।
४. वही, पृ० २०४।

५. वाल्मीकि प्रसंग

"वालमीकि बहु जीव सताया।
जीव शीव का भेद न पाया।
संता शब्द मरा कहि भाख्यो।
गहि विश्वास हृदय धरि राख्यो।
तीजे शब्द उलटि भये रामा।
वाल्मीकि का सरिया कामा।
शत कोटी रामायण गाई।
रामप्रसाद असो है भाई।"[1]

६ गज ग्राह प्रसंग

"गहि गज ग्राह समंद में घेर्‌यो।
राम राम ऊँचे स्वर टेर्‌यो।
राम रटत छुट्यां सब फंदा।
मुक्त भयो तत्काल गयंदा।"[2]

७. राजा परीक्षित प्रसंग

"नरप परीक्षित भयो परायण।
शुकदेव सूं शब्द पिछायण।
राम राम दिन सात पठायो।
तजि नरलोक परमपद पायो।"[3]

८. हनुमान प्रसग

"हनूमान अंजनि को पूता।
रामचन्द्र को कहिये दूता।"[4]

९. अंबरीष-दुर्वासा प्रसंग

भक्ति महिमा के प्रसग मे अबरीप पर दुर्वासा के क्रोधित होने की चर्चा स्वामी जी ने की है। उन्होंने यही प्रसग उद्धृत कर बतलाया है कि भगवान का भक्त ही बडा होता है, चाहे विप्र हो या शूद्र—

---

१. अ० वा०, पृ० २०४।
२ वही।
३ वही, पृ० २०५।
४. वही, पृ० २०४।

"अंबरीष पर कोप कहा दुर्वासा कीयो।
द्वादश क्रोड सिखाय सरगरै जिन्न जश लीयो।
राम भजै तेही बडा आदि विप्र कहा शूद्र।
भक्ति बिना कुल ऊँच को आपो खेचै भूद।"[1]

१०. भरथरी-गोरख प्रसंग

"भरथरि कू गोरख मिल्या, मोह मेट दिया ज्ञान।
रामचरण ऐसा गुरू, करै तुरत कल्यान।
गोरख सिरखा गुरु मिलै, भरथरि सा सिख होय।
रामचरण ऐसा बिना, ज्ञान कथो मति कोय।"[2]

११. रामानन्द-कबीर प्रसंग

रामानन्द ही कबीर के गुरु थे, यहा यह भी स्पष्ट होता है—

"मिलिया दास कबीर कूं, सतगुरु रामानन्द।
चरण परस निर्भै भया, छूट गया दुख द्वन्द।
परे हुते जो पंथ मे, दास कबीरा आप।
रामानंद की लात सू मिट गयी तीनू ताप।"[3]

१२ सिकदर लोदी-कबीर प्रसग

"काशी मे एक कबीर भयो जुलह्या घर आय प्रवेस कियो है।
छाडि दियो सबही कुल को धर्म रामनिरंजन सोधि लियो है।
शाह सिकंदर ताप दई तब पूरण ब्रह्म मै प्रांग दियो है।
रामचरण्ण ये संत न सूझत ता नर को धिरकार जियो है।"[4]

स्वामी जी ने सिकदर लोदी द्वारा कबीर को कष्ट दिए जाने की चर्चा अपने साहित्य मे एकाधिक बार की है। इससे यह भ्रम तो दूर हो ही जाता है कि कबीर सिकदर लोदी के समकालीन नही थे। फिर कबीर काशी मे हुए थे, यह भी स्पष्ट समझने की गुंजाइश यहाँ स्वामी जी कर देते है।

---

१. अ० वा०, पृ० १२६।
२. वही, पृ० ४०।
३. वही, पृ० ४०।
४. वही, पृ० ८६।

१३. दादू प्रसंग

स्वामी रामचरण ने संत कवि दादू का नाम भी बड़े आदर के साथ लिया है। 'नाम प्रताप' में उन्हें नीच कुलोद्भव बतलाया है और रामस्मरण द्वारा उनके ऊँचे पद पर पहुँचने की बात भी कही है—

"दादू दास जन्म कुल नीचै।
राम रटत पहुंच्यो पद ऊँचै।
नीच ऊँच कुल भेद विचारै।
सो तो जन्म आपणा हारै।"[1]

दादू के साथ स्वामी जी ने रज्जब की आदर्श शिष्य के रूप में चर्चा की है—

"दादू सिरखा गुरु मिलै, शिख रज्जब बहो बाण।
एक शब्द मैं सुलझिया, फिर रही न खैचाताण।"[2]

१४ नगर बलख का मीर

नगर बलख के मीर की चर्चा स्वामी जी ने अपने काव्य में कई स्थानों पर की है। गुरु गोरखनाथ के प्रभाव में आकर इस मीर ने राजपाट छोड़ दिया था—

"सोला सै हुर्मां तजी नगर बलख के मीर।
गैवर हैवर करहला उमरावा की भीर।
उमरावां की भीर खीर घृतपाक रसोई।
माल मुलुक तुछ जाण त्याग जोगेश्वर होई।
रामचरण जग जाल का जालिम काट जंजीर।
सोला सै हुर्मां तजी नगर बलख के मीर।
नगर बलख का मीर कूं मिलिया गोरखनाथ।
भवसागर मे बूडता गहकर काढ्या हाथ।
गहकर काढ्या हाथ जोग कै मारग लाया।
हिरदा का पट खोल नाम का भेद बताया।
रामचरण पूरा पर्श भरी अगह की बाथ।
नगर बलख का मीर कू मिलिया गोरखनाथ।"[3]

---

१ अ० वा०, पृ० २०५।
२ वही, पृ० ४०।
३. वही, पृ० १५६।

१५. जंगड़ जाट प्रसंग

स्वामी जी ने इस जाट की चर्चा की है। इसे भी गोरखनाथ का शिष्य कहा गया है जिसे चौथे जन्म मे मुक्ति मिली—

"मिलिया जगड़ जाट कूं साधू गोरखनाथ।
रामचरण चौथे जन्म, गहकर काढ्यो हाथ।"[1]

यहाँ स्वामी रामचरण के काव्य मे वर्णित कतिपय प्रमुख सदर्भों की चर्चा हुई है। किन्तु ये केवल कुछ प्रसग है। इस विशाल साहित्य मे ऐसे अनेक प्रसग आए है जिन्हे अलग लेखन के लिए चुना जा सकता है। स्वामी जी की इन विभिन्न प्रसगो मे गहरी पैठ देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वे एक विद्वान् सत थे और उनकी साधु समाज तथा लोकजीवन मे अच्छी पैठ थी। यहाँ 'गावा का पद' से एक पद उद्धृत है जिसमे अनेक देवी-देवताओ, भक्तों और आचार्यों का नाम स्वामी जी ने बडी श्रद्धा के साथ लिया है—

"भइया ऐसो नगर मैं छाडूं नांहि।
जाके अनंत कोटि जन बसेहे मांहि।
जहाँ शिव सनकादिक शेष साध, मुनि नारद शारद ध्रुव प्रह्लाद।
कमला ऊमा हनूमान, जहाँ नेति नेति कहे निगम ज्ञान।
जहाँ ऋषभदेव जड़भरत थाय, तहाँ नव जोगेश्वर जनक राय।
कपिलदेव अरु वाल्मीकि, जहाँ ध्यान धरे शुक अंबरीष।
जहाँ रामानंद नीमानंद नाम, तहाँ माधवाचार्ज विष्णुश्याम।
ओर शिखा लिया सग साथ, इन च्यारन पकर्यो सबको हाथ।
जहाँ गोरख भरथरि गोपीचंद, तहाँ नानक फरिगा अरु बाजिंद।
महमद दादू करि निवास, जहाँ सहित एकादश हरीदास।
अल्प अकल गिणती न आय, या पद की महिमा कही न जाय।
अगम पूरि भरपूरि बास, जहाँ घरघर आनद सुख विलास।
जहाँ सब संतन को पाय शीत, चरणाजल रज सूं गयो है भीत।
मैं संतदास को पनई दास, राखो रामचरण कू चरण पास।"[2]

●

---

१ अ० वा०, पृ० ३७।
२. वही, पृ० ९९९।

अष्टम अध्याय

काव्यत्व : अभिव्यक्ति पक्ष

"कलात्मक कौशल की दृष्टि से संत-साहित्य का परिशीलन करने वालों को प्राय निराश ही होना पडेगा। रचना की काव्यमयता की ओर इन संतो का ध्यान नहीं था। वे अपनी अनुभूतियो का दान मानव समाज को देना चाहते थे और वह भी केवल इसीलिए कि बिना ऐसा किए उनकी कल्याणकारिणी प्रवृत्ति को परितोष नहीं होता था।"[1] डॉक्टर प्रेमनारायण शुक्ल के इस कथन से पूर्णतया सहमत होते हुए निवेदन है कि संतों ने काव्य-सृजन करते समय काव्य-कौशल को कोई महत्त्व नहीं दिया। विचारगत अनुभूतियो का प्रकाशन ही उनका लक्ष्य था। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन लोगो ने कविता को अच्छा माध्यम समझा। ऐसा करते समय उनका ध्यान काव्य के कलापक्ष पर नहीं जा सका जो स्वाभाविक भी लगता है। बात यह है कि अनुभूतिवादी संता को काव्य की शास्त्रीयता से कोई मतलब नहीं था। उन लोगों ने अपने विचारो की बोधगम्य अभिव्यक्ति के लिए अलंकारो, प्रतीको आदि का विधान किया और प्रचलित छदो एव रागो मे अपनी वाणी को बांधकर उसे जनोपयोगी बनाया। संत पर्यटनशील प्राणी होते थे। अत उनकी वाणी मे विभिन्न प्रान्तीय भाषाओ, आंचलिक बोलियो और विदेशी मूल के शब्द मिल जाते हैं। संतो ने भाषा मे शब्दो की तत्समता के लिए आग्रह नहीं किया। सुगमतम शैली मे वे समाज को अपना संदेश देने के पक्षपाती थे। स्वामी रामचरण भी कबीर आदि संत कवियों की परम्परा के अनुगामी थे। उन्होने भी भावाभिव्यक्ति के लिए शास्त्रीयता का आग्रह नहीं किया प्रत्युत लोकजीवन मे समरस भाषा मे अपनी अनुभूति समाज को देते रहे। ऐसा करते समय उन्हे कतिपय अलंकारो, प्रतीको आदि का सहारा लेना पड़ा है और विभिन्न छन्दो तथा रागों की योजना भी करनी पडी है। यहाँ इन्ही प्रकरणो का निरूपण हमारा अभीष्ट है।

अलंकार विधान

"संतो के काव्य को कृत्रिम अलंकरण की आवश्यकता कभी अनुभव नहीं हुई, लेकिन कहीं-कहीं अलंकार अनायास ही उनकी वाणी से अलंकृत होकर गौरवान्वित होने चले आए।"[2]

---

१ डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल : संत-साहित्य, पृ० ४७।

२ पं० प० परशुराम चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, चतुर्थ भाग, पृ० ५२२ [नागरी प्रचारिणी सभा, काशी]।

अलकार विधान की दृष्टि से जब हम स्वामी रामचरण के काव्य पर विचार करते है तो उद्धृत वाक्य के विचारो से पूर्णतया सहमत होना पडता है। स्वामी जी ने अपनी अनुभव वाणी को व्यक्त करने मे कही-कही अलकारो को सचमुच गौरव ही दिया है। यहाँ अलकार विधान की दृष्टि से स्वामी जी के काव्य पर सक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है।

यो तो हिन्दी साहित्य मे अलकार अगणित है, पर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विभावना, विशेषोक्ति, उदाहरण, लोकोक्ति आदि अर्थालकार और अनुप्रास, यमक आदि कतिपय प्रमुख शब्दालकार है। स्वामी जी के काव्य मे भी ये सभी अलकार अपनी स्वाभाविक गति से शोभित हुए हैं। नीचे हम स्वामी जी के वृहत् काव्य-भण्डार से कतिपय प्रमुख अलकारो के उदाहरण उद्धृत करेंगे।

अनुप्रास

अनुप्रास अलकार मे वर्णों की आवृत्ति होती है जिसके कारण काव्य-पंक्ति श्रवण सुखद हो जाती है—

"नाडि नाडि मे चलै गिलगिली।
सुखधारा अति बहे सिलसिली।"[1]

•   •   •

"घरर घरर अनहद घररावै।
परम ज्योति दामिनि झलकावै।"[2]

•   •   •

"करुणामय करतार करम सब दूरि निवारै।
भक्त बिछलता बिरद भक्त ततकाल उधारै।"[3]

यमक

भिन्न अर्थवाची वर्णो या निरर्थक वर्णों की आवृत्ति मे यमक अलकार होता है।[4] शब्द की आवृत्ति मे अर्थ भिन्नता से काव्य मे चमत्कार उत्पन्न होता है—

"जल बर्षा भीजै नही नहि दामनि सूं जल जाहि।
नहि गर्ज सैं थर्स लै यह बरतै नभ माहि।"[5]

---

१ अ० वा०, पृ० २०६।
२. वही, पृ० २०७।
३ वही, पृ० ३।
४. "वहै शब्द फिरि फिरि परै अर्थ और ही और।"
५. अ० वा०, पृ० २५२।

यहाँ पहले 'जल' का अर्थ पानी और दूसरे का अर्थ जलना है—

पुनरुक्ति प्रकाश

सौन्दर्य वृद्धि के लिए जब काव्य में किसी एक ही शब्द की उसी अर्थ में आवृत्ति होती है तब पुनरुक्तिप्रकाश अलकार होता है। यह अलकार स्वामी जी के काव्य में जहाँ-तहा दृष्टिगोचर होता है।

"रोम रोम मे होय रही, ररंकार झुणकार।
रामचरण कहिये कहा, यो अद्भुत सुख अपार।"[1]

.. .

"रामचरण बिभचारिणी, जन्म जन्म होय खवार।
पतिबरता पति सू मिलै, बिलसै सुक्ख अपार।"[2]

.. .

"पतिबरता को पीव के, दिन दिन आदर मान।
रामचरण बिभचारिणी, निकट न पावै जान।"[3]

उपर्युक्त उद्धरणो मे रोम-रोम, जन्म-जन्म, दिन-दिन मे पुनरुक्ति प्रकाश अलकार है।

उपमा

साहित्य का सर्वाधिक प्रिय अलकार जिसमे किसी वस्तु का वर्णन करके उसकी तुलना किसी समान धर्मी उपमान से की जाती है—

"सतगुरु बरसै मेघ ज्यू, शिख जिग्यासी होय।
रामचरण तब नीपजै, निरफल जाय न कोय।"[4]

इसमे सतगुरु की उपमा मेघ से दी गई है।

रूपक

उपमेय मे उपमान के निषेधरहित आरोप को रूपक कहते हैं। स्वामी जी के काव्य में रूपक अलकार की छटा खूब देखने को मिलती है—

---

१. अ० वा०, पृ० १४।
२ वही, पृ० १५।
३. वही।
४. वही, पृ० ४।

"सतसंग सरवर रामजल, कोइ साधू बाँधै घाट।
करम कचोई आतमा, बहती रोकै बाट।"[१]

... ...

"रामचरण बिरहा भवंग, डस्यो कलेजो आय।
राम गारडू बिष हरै, जे कोइ देय मिलाय।"[२]

... ...

"प्रेम भाल भीतर खुची, बाहर दीसै नांहि।
रामचरण कसकत रहै, निसिबासर उर मांहि।"[३]

उपर्युक्त उद्धरणो मे सत्सग को सरोवर, राम को जल, विरहा को भुजग, राम को गारड़ू [विष वैद्य] का रूप दिया गया है। रूपक के अनेक उदाहरण स्वामी रामचरण के काव्य से सचित किए जा सकते है।

विभावना

जहाँ कारण के बिना ही कार्य हो जाय, वहाँ विभावना अलकार होता है—

"बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजे तूर।
बिन श्रवणा अनहद सुणै, जहाँ ब्रह्मसभा भरपूर।
जहाँ ब्रह्मसभा भरपूर ओर कोइ निजर न आवै।
सुरति रही मठ छाय देह तहाँ जांण न पावै।
रामचरण वा देश में, बहु परकाशै सूर।
बिन रसना गुण गाइये, बिन कर बाजै तूर।"[४]

रेखाकित मे विभावना अलकार है।

विशेषोक्ति

कारण रहते जहाँ कार्य न हो सके वहाँ विशेषोक्ति अलकार होता है—

"सहँस सूर शशि कै उदय हीये न होय उजास।
सतगुण ज्ञान उद्योत से हिर्दय होत प्रकास।

१. अ० वा०, पृ० २२।
२. वही, पृ० १०।
३. वही, पृ० १२।
४. वही, पृ० १४१।

हिर्दय होत प्रकास भर्म अंधियारो भागै।
स्वप्नावत ससार जाण सोवत सो जागै।
परख भजै परमातमा रखै न मैली आस।
सहँस सूर शशि कै उदय हीये न होय उजास।"[१]

लोकोक्ति

काव्य में लोकप्रसिद्ध कहावत के प्रयोग मे लोकोक्ति अलकार होता है। सतकाव्य मे लोकोक्ति अलकार का प्राधान्य है—

"आन धर्म कू साधता मुक्ति न पावै कोय।
जो सीचै पेड बबूल का, तो आब कहां सू होय॥"[२]

उदाहरण

साधारण रूप से कही गई बात की ज्यों, जैसे आदि वाचक शब्दो द्वारा जब किसी अन्य बात से समता की जाती है तब उदाहरण अलकार होता है।

"कपटी की किरपा बुरी, जैसे बीज बबूल।
ऊपर सूं अति सुलसुलो अतर भरीज शूल।"[३]

. .. .

"काशी भया कबीर जी, ज्यूंही भया दांतड़ै संत।
भवसागर की धार सें, ज्यां तार्‌या जीव अनन्त।"[४]

.. ..

"प्रेम लहरि जैसे बहैं जैसे सिन्धु तरंग।"[५]

उदाहरणमाला

साधारण रूप से कही गई बात की समता के लिए जब एक से अधिक उदाहरण दिए जाते है तब उदाहरणमाला अलकार होता है। 'विरह को अग' की निम्नलिखित साखी इस अलकार के उदाहरण रूप मे प्रस्तुत है—

---

१. अ० वा०, पृ० २११।
२ वही, पृ० ७४५।
३ वही, पृ० २८४।
४. वही, पृ० ८५९।
५. वही, पृ० १२।

"ज्यूं चात्रग घन कूं जपै, शशि कूं जपै चकोर।
रामचरण रामै जपै, जैसे पंथी भोर।"[१]

उल्लेख

जब किसी वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन किया जाता है। तब उल्लेख अलकार होता है। 'रामरसायण बोध' मे निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत है जिसमे गुरु का वर्णन अनेक रूपो मे कवि ने किया है—

"गुरुपारख सोही गुरु गुणातीत गंभीर।
आदीत जैसा परकाशवत् निर्मल जैसा नीर।
निर्मल जैसा नीर धीर धर शांति शशी है।
रामनाम दातार गुरु गति जान इसी है।
रामचरण ये लक्षणा सो मेरे शिर पीर।
गुरुपारख सोही गुरू गुणातीत गंभीर।"[२]

दृष्टान्त

जहाँ उपमेय और उपमान के साधारण धर्म का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव मे कथन हो, वहाँ दृष्टान्त अलकार होता है—

"ज्ञानदग्ध महा मूढ को कहा करै सतसंग।
रामचरण कर दीप ले परै कूप मतिभंग।"[३]

अतिशयोक्ति

किसी वस्तु के वर्णन की अतिशयता जब लोकसीमा का उल्लघन कर जाती है तब अतिशयोक्ति अलकार की सृष्टि होती है—

"राम तुमारे नाम को कोन करै परमान।
दोय सहँस जिहवा रटै तोहि शेष न पावै मयान।
तोहि शेष न पावै मयान जहाँ नर की कहा ताकति।
गिण्या न आवै पार होय रहै नित शरणागति।
तुम तो समर्थ नाथ जी मै अनाथ बिन ज्ञान।
राम तुमारे नाम को कोन करै परमान।"[४]

---

१. अ० वा०, पृ० १०।
२. वही, पृ० ९३४।
३. अ० वा०, पृ० ११२।
४. वही, पृ० २३८।

विनोक्ति

जहाँ 'विना', 'रहित' आदि शब्दो की सहायता से एक के विना दूसरे को शोभित अथवा अशोभित कहा जाता है, वहाँ विनोक्ति अलकार होता है—

"राम बिना बेहाल चैन कहुं पावै नाही।"[1]

यहाँ 'विना' के सहारे चन को अशोभित किया गया ह।

अन्योक्ति

जहाँ अप्रस्तुत [उपमान] के द्वारा प्रस्तुत [उपमेय] का वर्णन किया जाता है वहाँ अन्योक्ति अलकार होता है—

"काग उड्या बुगला बस्या, तरुवर भया दुरग।
जो माली मूल धपाय दे, तो कूपल काम सुरंग।"[2]

अर्थान्तरन्यास

जहाँ विशेष से सामान्य का या सामान्य से विशेष का समर्थन किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलकार होता है। यथा—

"पतिव्रत को भ्रत हरत कहो कूणे सुख पायो।
हरणकशिप दशकंध मंदमति नाश गुमायो।
तपरासुर भये भस्म चाहि शिव को अर्धंगा।
विष्णु पथर तन लह्यो भ्रत वृन्दा को भंगा।
द्रौपदि को पट पाणि गहे दु:शासन नासै गये।
रामचरण इतिहास दे पतिभ्रत खंड ऐसै भये।"[3]

इस काव्य खण्ड मे स्वामी जी ने 'पतिव्रत-हरण से किसी को सुख नही मिलता, यह एक सामान्य बात कहकर उसका समर्थन पाँच विशेष बातो से करते है, अत: यहाँ अर्थान्तरन्यास अलकार हुआ।

---

१ अ० वा०, पृ० २४४।
२. वही, पृ० १०१७।
३. वही, पृ० १०८।

तद्गुण

जहाँ कोई वस्तु अपना गुणत्याग कर अपने समीपवर्ती का गुण ग्रहण कर लेती है वहाँ तद्गुण अलकार होता है। यथा—

"रामचरण बहती नदी सागर पहुंती धाय।
नहचल संग नहचल भई, चंचल गई बिलाय।"[1]

नदी चचल होती है और सागर निश्चल। नदी सागर के पास पहुँचकर अपना गुण चचलता छोडकर सागर का गुण निश्चलता ग्रहण कर लेती है। तद्गुण अलकार का यह बडा सुन्दर उदाहरण स्वामी जी ने दिया है।

अतद्गुण

जब कोई पदार्थ अन्य समीपस्थ पदार्थ के गुण नही ग्रहण करता तो अतद्गुण अलकार होता है। स्वामी जी की निम्नलिखित पक्तियों मे अतद्गुण अलकार के लक्षण विद्यमान है—

"भवंग टिपारै सेइये तोहि मिटै नहीं निज बाण।
पय पावै सत वर्ष लूं विष की होय न हाण।"[2]

. . . . .

स्वान पूंछ बारा वर्ष गडी रहै भू माहि।
तो भी मिटै न वाक बल सुधी होयज नांहि।"[3]

उपर्युक्त दोनो उद्धरणो मे अतद्गुण अलकार के दर्शन होते है। सर्प को शत वर्ष दूध पिलाया जाय पर उसका विष नही मिटता, कुत्ते की पूछ बारह वर्ष जमीन मे गाड कर सीधी की जाय पर उसका टेढापन नही मिटता।

मानवीकरण

भावनाओ अथवा वस्तु मे जब मानव गुणो का आरोप किया जाता है तब मानवीकरण अलकार होता है। नीचे की पक्तियो मे विरहभाव का मानवीकरण स्वामी जी ने किया है—

"बिरहा कर ले करद कलेजा काटि है।
पीव न सुणै पुकार कि हिवरा फाटि है।

---

१ अ० वा०, पृ० १०८।
२ वही, पृ० १५३।
३ वही १६४।

सबै बटाऊ लोग न पूछै पीउ रे।
परिहा रामचरण बिन राम करै कूण भीउ रे।"[1]

रूपकातिशयोक्ति

जब उपमेय और उपमान इतना अभेद हो जाता है कि उपमेय का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है, केवल उपमान से ही उपमेय जान लिया जाता है तब रूपकातिशयोक्ति अलकार होता है। यह स्वामी जी का बडा प्रिय अलकार है। 'दृष्टान्त सागर' मे इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं—

"गज मृग कीर कपोत हंस, केहरि कोयल सात।
इन मिल कदली बास करि, जोध बोध भखि जात।"[2]

यहाँ नारी शरीर के रूप मे कदली (केला) है। इस केला पर सात जीवो का वास है। ये सातों नारी के विभिन्न अगो के उपमान रूप मे चित्रित है। गज-जघा, मृग-नयन, कीर-नाक, कपोत-ग्रीवा, हस-चाल, केहरि-कमर, कोयल-वचन। ये सातो मिलकर योद्धा अर्थात् शूर (पडित) का बोध (ज्ञान) खा डालते है। इन अलकारो के अतिरिक्त और भी अनेक अलकार स्वामी जी के काव्य मे पाए जाते है।

प्रतीक विधान

'प्रतीक' का अर्थ है चिह्न। प० परशुराम चतुर्वेदी द्वारा प्रतीक की व्याख्या में लिखी गयी पक्तियाँ ध्यान देने योग्य है—"प्रतीक से अभिप्राय किसी वस्तु की ओर इगित करने वाला न तो सकेत मात्र है, न उसका स्मरण दिलाने वाला कोई चित्र वा प्रतिरूप ही है। यह उसका एक जीता-जागता तथा पूर्णत. क्रियाशील प्रतिनिधि है जिसके कारण इसे प्रयोग मे लाने वाले को इसके व्याज से उसके उपर्युक्त सभी प्रकार के भावो को सरलतापूर्वक व्यक्त करने का पूरा अवसर मिल जाया करता है।. इसकी सहायता बहुधा ऐसे अवसरों पर ली जाती है जब हमारी भाषा पगु और अशक्त सी बनकर मौन धारण करने लगती है और जब अनुभवकर्त्ता के विविध भाव, शिला से चतुर्दिक टकराने वाले स्रोतो की भाँति फूट निकलने के लिए मचलने से लग जाते है। ऐसी दशा में हम उनकी यथेष्ट अभिव्यक्ति के लिए उनके साम्य की खोज अपने जीवन के विभिन्न अनुभवों में करने लगते हैं और जिस किसी को उपयुक्त पाते हैं उसका प्रयोग कर उसके मार्ग द्वारा अपनी भावधारा को प्रवाहित कर देते है।"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० ७७।
२ वही, पृ० १०१८।
३ पं० परशुराम चतुर्वेदी : कबीर साहित्य की परख, [तृतीय सस्करण], पृष्ठ १४६-४७

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि प्रतीकों का विधान भावों के प्रकाशन के लिए होता है। विशेषत. ऐसे भावो के प्रकाशनार्थ जिन्हे हम भाषा की अभिधा या लक्षणा शैलियो मे भी नही व्यक्त कर पाते। ऐसी स्थिति मे प्रतीक हमारी भावधारा को गति देने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है। साहित्य मे प्रतीकों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति की परपरा पुरानी है। "उपनिषदो मे अनेक भावाये पूर्णत प्रतीक पर आश्रित है।"[1] हिन्दी भक्ति-साहित्य मे प्रतीको का अच्छा विधान हुआ है, विशेष रूप से निर्गुण गायक सत कवियों ने अपनी आध्यात्मिक भावधारा की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक शैली का अवलबन किया है। ये प्रतीक हमारे जीवन के नाना व्यापारों एव प्रकृति के अनेक रूपो से ग्रहण किए गए है।

स्वामी रामचरण भावाभिव्यक्ति के लिए प्रतीक शैली का अवलबन करने वाले निर्गुण गायक सत कवियो मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है। कबीर, दादू आदि सत कवियो द्वारा अपनायी गयी प्रतीक शैली का विकास स्वामी जी के काव्य-भण्डार मे भरा हुआ दृष्टिगत होता है। यो तो स्वामी जी के इस विशाल साहित्य-भण्डार में स्थान-स्थान पर इस शैली मे भावाभिव्यक्ति मिलती है, पर 'गावा का पद', 'दृष्टान्त सागर' एव 'परचा' अगो मे प्रतीको की अच्छी योजना दृष्टिगत होती है। स्वामी जी ने अपने भाव प्रकाशन के लिए दाम्पत्य भाव, दास्य भाव और कही-कहीं सख्य भाव के प्रतीको का भी सहारा लिया है। प्रकृति मानव जीवन की सहचरी है। प्रकृति के नाना दृश्यो को भी प्रतीक विधान के लिए उन्होंने अपनाया है। सख्यावाची एव पारिभाषिक प्रतीको का भी यथास्थान ग्रहण हुआ है। यहाँ स्वामी रामचरण द्वारा उनके काव्य मे प्रयुक्त प्रतीकों की सक्षिप्त समीक्षा हमारा उद्देश्य है।

दाम्पत्य प्रतीक

स्वामी रामचरण की रचनाओ मे दाम्पत्य भाव के प्रतीक प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। इन प्रतीको के सृजन मे उन्हे विशेष सफलता मिली है। इन दाम्पत्य प्रतीको मे सयोग और वियोग दोनो पक्षो के प्रतीका का विधान स्वामी जी ने किया है। जीव और ब्रह्म के मिलन और विछोह की अत्यन्त मार्मिक स्थितियों को लेकर प्रतीकों के सहारे आध्यात्मिक शृगार के वर्णन मे कवि अद्वितीय हो गया है।

संयोग पक्ष—

सयोग पक्ष मे स्वामी रामचरण ने आत्मा-परमात्मा या जीव-ब्रह्म के मिलने के बडे ही भावमय और मादक चित्र निर्मित किए है। 'परचा को अग' मे पति-पत्नी के प्रतीक द्वारा सयोग की बडी मर्मस्पर्शी व्यजना हुई है। सुरति शब्द के ब्याह का यह चित्र ध्यान देने योग्य है—

> "सासो रतो सुरति मे कहा मिलेंगे राम।
> सुरति ब्याह कै ले गया, शब्द आपणै धाम।"[2]

---

१. डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल . सत-साहित्य, पृष्ठ ८४। २ अ० वा०, पृ० १४।

प्रियतम का स्पर्श कर सुरति प्रियतममय हो गई जैसे पाला गल कर नीर मे मिल जाता है। अद्वैत का यह भाव निम्नलिखित पक्तियो मे है—

"रामचरण पिव परसि कै, सुरति भई गलतान।
जैसे पाला नीर मैं, गलि कै भया समान।"[1]

पीव की पहचान उसे काया नगरी मे ही हो जाती है—

"पीव पिछाण्या है सखी, काया नगरी माहि।
रामचरण गाढा गह्या, बाहर भरमै नांहि।"[2]

सयोगात्मक प्रतीक के श्रेष्ठतम उदाहरण 'गावा का पद' मे सग्रहीत है। नीचे एक पद प्रस्तुत है जिसमे प्रियतम प्रियतमा के महल मे पधार रहा है। प्रियतमा हर्पित है उसके साहब ने उसकी पुकार जो सुन ली है। वह प्रेममय हो रही है, चारो तरफ प्रेम ही प्रेम छाया है। वह महल मे प्रेम का दीपक जला कर प्रीति का पलग विछायेगी और शील से शृगार कर अग-से-अग लगाकर प्रियतम का स्पर्श करेगी। बहुत दिनो के बाद प्रिय-मिलन हो रहा है, अत वह उसे 'पाव पलक' भी ढीला छोडने को तैयार नहीं है—

"मेरे महल पधार्‌या प्रीतमा हो।
सखीरी मेरै साहिब सुनी है पुकार।
. . . .
प्रेम का दीपक जोय मदिर मैं,
प्रीति का पिलंग बिछाय।
शील शृंगार साज पिव परशूं,
अग सू अग लगाय।
. .
बहुत दिना सैं प्रीतम पाया,
सर्‌या है मनोरथ काम।
पावपलक ढीला नहि छाडूं,
घर आया केवल राम।"[3]

वह अपने रूठे प्रियतम को रिझाकर मना लेगी। नाटक और सगीत के राग का प्रतीक तो प्रस्तुत है ही, शील, सतोष, दया के गहने से सजकर प्रियतम का हृदय जीत लेगी—

---

१. अ० वा०, पृ० १४।
२. वही, पृ० १३।
३. वही, पृ० ९९९-१०००।

"रूठा राम रिझाय मनाऊँ, निशिबासर गुण गाऊँ हो।
नटवा ज्यूं नाटक करि मोहूं, सिन्धू राग सुणाऊँ हो।
शील संतोष दया आभूषण, खम्या भाव बधाऊँ हो।
सुरति निरति साईं में राखूं, आन दिशा नहि जाऊँ हो।"[1]

और यही 'फाग' का भी एक प्रतीक प्रस्तुत है जिसमें ररकार पति और सुरति सुंदरी स्पर्श की सुखानुभूति करते हुए होली खेलने में रत हैं—

"ररंकार पति सुरति सुंदरी।
अर्श पर्श रमै होरी हो।
वर नहबल अविगत अविनाशी।
सुंदरि नवल किशोरी हो।"[2]

प्रिय के संग उसका यह फाग नित्य ऐसे ही चलता रहता है। कवि के शब्दों में देखिए, प्रतीकों में यह संयोग सुख कितना मोहक बन पड़ा है—

"पिया संग प्यारी, ऐसें नित ही खेलत फाग।
रसना राम उचार सुहागणि, पिव सूं प्रीति बधावै।
काम कपट पड़दा करि न्यारा, अरस परस गुण गावै।
चित चंदन समता शिल घिसकै, पिव कै अंग चर्चावै।
चर्चत मगन भई महासुंदरि, सांगोपांग लगावै।
ज्ञान गुलाल अबीर अर्थ करि, झोरी भरभरि ल्यावै।
हंसि हंसि हर्ष हर्ष पति सनमुख, प्रेमसहित परचावै।
कंत कामना के सर मारी, ताको अंग चढ़ावै।
पांचू ठाम रंगे रंग भीनी, दूजो रंग न भावै।
तन मन अर्प मिली पिव पतनी, न्यारी नैक न जावै।
रामचरण शरणै सुख पायो, ताकी कहत न आवै।"[3]

संयोगात्मक प्रतीकों के विधान में स्वामी जी सचमुच अद्वितीय प्रतीत होते हैं। यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है। ऐसे अनेक संयोग प्रतीक स्वामी जी के काव्य में पाए जाते हैं।

वियोग पक्ष—दाम्पत्य भाव की वियोगावस्था की तीव्र अनुभूति स्वामी रामचरण के काव्य में मिलती है। इस वियोगानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए स्वामी जी ने प्रतीकों का

---

१. अ० वा०, पृ० १००१।
२ वही, पृ० १००१।
३. वही, पृ० १००९।

विधान किया है, जिनमें से कुछ उद्धरणों का विवेचन यहाँ प्रस्तुत है। प्रिय वियुक्ता विरहिणी प्रियतम राम के दीदार के लिए बेचैन हो उठी है। वह अपने साईं को दयासागर, निरधारों के आधार, जग जीवन, जगदीश आदि अनेक सगुण सम्बोधनो से पुकारती है। उसका प्रियतम अधम उधारण पतितपावन सब कुछ है, वह उसे इन सभी विरुदो की सभाल करने को कहती है। पर प्रियतम जब इन प्रशसात्मक वचनो पर ध्यान नही देता तो वह अपनी दशा का वर्णन करने लगती है। वह कहती है कि सब सखियों की सेज 'सलूणी' है, पर उसकी ही 'अलूणी' है। प्रियतम ! एक नजर इधर भी देखो, अकेली न छोडो। राजा की रानी कहाँ जाय, दूसरे घर मे उसका गुजारा भी तो नही हो सकता है। प्यारे ! तुमने मेरी बाँह पकडी है, हृदय से लगाया है, अब मुझे छोडो नहीं। स्वामी ! प्रेमजल की वर्षा करके मेरा विरह शात करो। माना तुम्हारे मेरी जैसी अनेक है पर तुम तो मेरे लिए एक ही हो, इसलिए वियोगिनी को व्याकुल न करो, इसका भार तुम्हारे कधों पर है—

"मोहि राम दया कर दर्श द्यो हो।
दर्श द्यो मेरा मन की पुर्वो आश।
तुम हो दयाल दया के सागर, निरधारा आधार।
जगजीवन जगदीश गुसाईं, सब विधि जाणनहार।
तुम रीझो तो हम नहि साध्यो, भई है दुहागणि नारि।
अधम उधार पतित के पावन, अपणो विरद सभार।
ओर सखिन की सेझ सलूंणी, मेरी अलूणी खाट।
नैक निहार निजर भर स्वामी, तजिये नही निराट।
भूपति नारि कहो कहां जावै, दूजै घर न समाय।
बाह पकड़ि छाडो मति सईया, अपणी कर अग लगाय।
मेरी बिरह बुझाय गुसांई, बरसि प्रेमजल धार।
बिरहनि कू व्याकुल नहिं कीजै, कंध तुम्हारै भार।
तुम्हरै हमसी नारि घणेरी, तुम हो हमारै एक।
रामचरण कूं करो रावरो, बकसीजे गुन्हा अनेक।"[1]

विरहिणी अपने प्रियतम 'रमइया' के दीदार के लिए अहर्निश जागती है, उसकी पलके नहीं लगतीं। नयन दर्शन के लिए दुखी है, हृदय प्यार के लिए उमड रहा है, पता नही प्रियतम कब प्रत्यक्ष होगा। उसकी दशा उस पपीहे सदृश हो गयी है जो स्वाति की एक बूंद पर आशा लगाए रहता है। यदि घन उसे निराश कर दे तो वह कैसे जीवित रहेगा। अतः कवि की विरहिणी अविलम्ब दर्शन देने के लिए प्रियतम से विनती करती है—

---

१. अ० वा०, पृ० ९९९।

"रमइया मेरी पलक न लागै हो।
दरस तुम्हारै कारणै, निशि बासर जागै हो।
दशूं दिशा आतर करूं, तेरो पंथ निहारूं हो।
रामराम की टेर दे, दिन रैण पुकारूं हो।
नैन दुखी दीदार बिन, रसना रस आसै हो।
हिरदो हुलसै हेतकूं, हरि कब परकासै हो।
स्वाति बूंद चातक रटै जल और न पीवै हो।
घन आशा पूरै नहीं तो, कैसे जीवै हो।
दास की अरदास सुण, पिया दर्शण दीजै हो।
रामचरण बिरहनि कहै, अब बिलम न कीजै हो।"[1]

आर्त्त स्वर में वह प्रियतम से 'महर' की याचना करती है—

"सांईया अरज हमारी हो।
बिरहनि ऊपर कीजिये टुक महर तुम्हारी हो।"[2]

क्योंकि विरहाग्नि में उसका सारा शरीर जल गया है, अब न रक्त है न मांस। प्रियतम मेरे राम ! तुम्हारे दर्शन के बिना मेरी नाभि में साँस का बैठना मुश्किल हो गया है—

"बिरह अग्नि सब तन दह्यौ, लोही रह्यौ न मांस।
राम पियारे दरस बिन, नाभि न बैठे सांस।"[3]

'चन्द्रायणा विरह को अंग' में घटा, निर्झर, विद्युत के प्रतीकों द्वारा विरह भाव का विकास दिखाया गया है। बेहाल विरहिणी का यह प्रतीक चित्र कितना पूर्ण बन पड़ा है—

"विरह घटा घररात नैण नीझर झरै।
चित्त चमंकै बीज की हिरदो ओलह रै।
बिरहनि है बेहाल दयाकर न्हालियो।
परिहां रामचरण कूं राम बेग सम्हालियो।"[4]

विरह स्वयं हाथ में छुरी लेकर कलेजा काटने आ रहा है। हृदय फट जायगा क्योंकि पुकार प्रियतम नहीं सुन रहा है। सभी राही हैं, पर उनमें से कोई पीड़ा के विषय में नहीं पूछता है, बिना राम के कोई भी भीड़ क्या कर सकती है ?—

१. अ० वा०, पृ० १००६।
२. वही।
३. अ० वा०, पृ० ११।
४. वही, पृ० ७७।

"बिरहा कर ले करद कलेजा काटि है।
पीव न सुणै पुकार कि हिवरा फाटि है।
सबै बटाऊ लोग न पूछै पीड रे।
परिहा रामचरण बिन राम करै कूंण भीड़ रे।"[1]

हृदय मे बिरह का छुरा लगा हुआ है, सास पीडा के साथ आती है। घाव फट जाने से दर्द और बढ गया है, निशि दिन वह रामवैद्य के आगमन के लिए पुकारती रहती है, क्योकि बिना राम के यह विरहोत्पन्न घाव भरेगा नही।

"बिरह सपीड़ा सास बहै उर करद रे।
घाव गयो है फाटि बध्यो अति दरद रे।
निशि दिन करै पुकार बैद्य हरि आवही।
परिहा रामचरण बिन राम भरै नही घाव ही।"[2]

इसीलिए हे हरि! विरहिणी की पुकार सुनते ही दौड आइए और सभी आवरण हटाकर स्वय दर्शन दीजिए—

"सुण बिरहनि तणीं पुकार बेगि हरि ध्याईयो।
सब पडदा कर दूर आप दिखलाईयो।"[3]

दास्य प्रतीक

दास्य भाव मे द्वैत प्रवृत्ति के कारण निर्गुण का द्योतन करने वाले प्रतीको के सृजन मे कठिनाई पड़ती है। स्वामी जी ने निम्नलिखित पक्तियों मे 'स्वामी' और 'गुलाम' के प्रतीक के सहारे दास्य भाव की समर्पण स्थिति निर्माण करने मे सफलता पाई है—

"स्वांम के उतार दोष, लागत गुलाम कूं।
त्रिगुण पार गुण अधार, जांणिये ज स्वांम कूं।
• • •
जैसो जांन गायो तिन, तैसो पद पायो मानि।
आप है अनामी नाम, सुमरण काम कूं।"[4]

---

१ अ० वा०, पृ० ७७।
२ वही।
३. वही।
४. वही, पृ० ११४।

स्वामी रामचरण ने संख्यामूलक, पारिभाषिक एव प्राकृतिक प्रतीकों का विधान किया है। भाव की दृष्टि से प्रतीकों के विवेचन मे इनमे से कुछ की चर्चा भी हुई है। यहाँ इन्ही विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत स्वामी जी के प्रतीक विधान का अध्ययन प्रस्तुत है।

संख्यामूलक प्रतीक

योग-साधना के सख्यामूलक प्रतीको का विधान स्वामी जी के काव्य मे मिलता है। कतिपय उदाहरण देना समीचीन होगा। यहाँ एक पद उद्धृत है जिसमे शरीर को अद्भुत नगर मानकर उसमे विभिन्न सख्यामूलक प्रतीकों का विधान किया गया है—

"करता अद्भुत नगर बसाया।
जाका बहु बिधि जतन बणाया।
ताहि नगर के नव दरवाजा।
पाधर पांच च्यार कै छाजा।
आवै जाय सप्त कै मांही।
दोय निकासु पैसण नांही।
सात पोल का हासिल च्यार।
कहू बाफू सालूं ही द्वार।
मुसरफ च्यार एक दातार।
तीन खाय खरचै न लगार।
एक दरा मैं भरती आवै।
दोय मांहि नीसर कै जावै।"[1]

एक और उदाहरण जिसमे पाँच, पचीस और तीन अक प्रतीक के रूप मे आए है—

"पाचू पकड़ पाचीसूं घूरूं।
तिरगुण को बिसराऊं हो।
चौथे दाव खेत कै खेलूं।
मोज मुक्ति की पाऊं हो।"[2]

पारिभाषिक तथा अन्य प्रतीक

योग मार्ग में प्रचलित पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग सत साहित्य में हुआ है। सत कवियों ने इन शब्दों को नाथों से ग्रहण किया था। स्वामी रामचरण की रचनाओं में उन सभी शब्दों का प्रयोग मिलता है। कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जाते है जिनमे ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए है। अन्य प्रतीको मे प्राकृतिक एवं पारिवारिक प्रतीक सम्मिलित है।

---

१. अ० वा०, पृ० १००१। २. वही।

त्रिवेणी—इडा, पिंगला, सुषुम्ना नाडियों का मिलनस्थल दोनो भौहों के मध्य मे स्थित है।

"इंगला पिंगला सुखुमणा मिले त्रिवेणी घाट।
जहाँ भाखें जल झूलि कै, निर्मल होय निराट।"[1]

त्रिकुटी—भौहो के मध्य का स्थान। इसे त्रिवेणी भी कहते है।

"त्रिकुटी सगम किया स्नाना।
जाइ चढ्या चौथे अस्थाना।"[2]

अनहद नाद—योगियो को समाधि अवस्था मे शरीर के भीतर सुनाई पडने वाली मधुर ध्वनि जिसमे सत डूबा रहता है—

"अनहद नाद गिणत नहिं आवे।
भाँति भाँति की राग उपावे।"[3]

गगन—शरीर के भीतर का आकाश जहाँ ज्योतिर्मय ब्रह्म का प्रकाश दीखता है। इसको 'शून्य' भी कहा जाता है—

"अब त्रिवेणी न्हाइ कै कीया गगन प्रवेश।
तीन लोक सूं अलघ सुख या कोइ चौथा देश।"[4]

हंस—नव द्वार के पिंजड़े [शरीर] मे बद जीव ही हस है।

"सायर तट हंस बैठा जाई।
सायर हंस मे रह्या समाई।।"[5]

भ्रमर—मन, जीव के लिए भ्रमर का प्रतीक स्वामी जी ने अपनाया है।

"नौ सै नारी मगळ गावैं।
तहँ मन भँवरा अति सुख पावै।"[6]

"अर्ध उर्ध जह कमल प्रकासा।
सुरति भँवर होइ करत विलासा।"[7]

---

१. अ० धा०, पृ० २०७।
२. वही, पृ० २०९।
३. वही, पृ० २०९।
४. वही, पृ० २०७।
५. वही।
६. वही।
७. वही।

दसवाँ द्वार—ब्रह्म रन्ध्र को कहते हे।

"द्वारं दशवें भ्यास ध्यान खंडित नहि होई।
परा मुक्ति परवेश जहाँ जन पहुँचै कोई।"[1]

अगम देश—शरीरस्थ गगन प्रदेश जहाँ ब्रह्म का निवास हे—

"सुंणी सांमली सब कहै जासूं भर्म न जात।
रामचरण देखी कहै अगम देश की बात।
अगम देश की बात जहाँ सब संत पधारे।
मिले ब्रह्म मैं जाय बहुरि होवैं नहि न्यारे।
अचल देश आसण किया मिटी काल की घात।
सुणी सामली सब कहै जासूं भर्म न जात।"[2]

इसी को स्वामी जी ने अचल देश भी कहा हे। यही चौथा स्थान या चौथा घर भी है।

"अब चौथे घर पहुँचा जाई।
जहाँ का चहन मै कहूं सुणाई।"[3]

नाभिकमल—नाभि स्थित कमल जिसे मणिपुर चक्र कहा गया है। इस कमल मे दस दल होते है और वह नील वर्ण का होता है—

"नाभि कमल मै शब्द गुंजारे।
नौ सै नारी मगल उचारे।"[4]

उपर्युक्त के अतिरिक्त और भी पारिभाषिक एव सख्यामूलक प्रतीक है, जिनका स्वामी रामचरण के साहित्य मे बाहुल्य है। अब कतिपय अन्य प्रतीकों की चर्चा करके यह प्रकरण समाप्त करेंगे।

बाजार मेला का प्रतीक—स्वामी जी ने ससार को बाजार मेला कहा है, जो साँझ होते ही उठ जाता है—

"यो संसार बजार मेलो, साझ बीछड़ जाय।
लाभ टोटो बिणज दोई, लेय आप कुमाय।"[5]

---

१. अ० वा०, पृ० १४२।
२. वही।
३ वही, पृ० २०७।
४. वही, पृ० २०९।
५. वही, पृ० १०१०।

"यो संसार हटवाड़ा को मेलो।
निशि पड़ियाँ बीछड़ जासी रेलो।"[1]

विवाह का प्रतीक

स्वामी जी ने सुरति और शब्द को दुलहिन और वर के रूप में प्रस्तुत कर विवाह का प्रतीक खड़ा किया है। इस विवाह की चौरी गगन में है। इसी चौरी पर सुरति सुहागिन शब्द वर से बरी गई। यही दोनों का विलास हुआ और मोक्षपद रूपी मिष्ठान्न से झोली भर उठी। बड़ा ही सुन्दर प्रतीक बन पड़ा है—

"चौरी गगन मझार रची है रग भरी।
सुरति सुहागणि नारि शब्द वर सूं बरी।
अरस पर्श होय एक पिया संग रमत है।
परिहां मोख पद मिष्ठान्न की झोरी भरत है।"[2]

एक और उदाहरण—

"सुरति ब्याह कै ले गया शब्द आपणै धाम।"[3]

ऋतु प्रतीक

ज्ञान, भक्ति और वैराग्य के निरूपण के लिए स्वामी जी ने ऋतुओं का प्रतीक प्रस्तुत किया है। शीत को ज्ञान, ग्रीष्म को वैराग्य और पावस को भक्ति का प्रतीक कहा है—

"शीत सरस ऋतु शीत मैं ग्रीषम अधिक तपांहि।
तब समझ्या ऐसें कहे पावस अति वर्षांहि।
पावस अति वर्षांहि बहुन मन मोद उपावै।
यूं प्रथम ज्ञान वैराग्य उभय मिलि भक्ति बधावै।
ये अगवाणी आगम कहे जाणे सो लखि जांहि।
शीत सरस ऋतु शीत मैं ग्रीषम अधिक तपांहि।"[4]

मास प्रतीक

'गावा का पद' में महीनों के प्रतीक का एक बड़ा सुंदर पद स्वामी जी ने प्रस्तुत किया है। असाढ़, सावन, भादो, आसोज महीनों को लेकर रचा गया प्रतीक यहाँ प्रस्तुत हैं—

---

१. अ० वा०, पृ० १०११।
२. वही, पृ० ७७।
३. वही, पृ० १४।
४. वही, पृ० २२१।

"बिरहनि परसपद निर्वाण।
अचल कै सग होय नहचल, मिटै आवण जांण।
असाढ़ आगम राम घन को, चातक चित्त उछाव।
आनंद अंगन मावही, भयो शरद ऋतु को भाव।
सावन भावन घटा घमण्डी, गावत रसना राम।
सुमरण की झड़ि लूंब लागी, बरसत आठू जाम।
भादवै भिदि गयो हिरदै, भरे सागर पूर।
निकट नागरि प्रेम पीवै, नाहि भरमै दूर।
आसोज आरत प्यास भागी, भरे चातक चच।
स्वाति शीतल अधर झेलै, भई तिरपति पंच।
गगन मे बस मगन बोलै, अकल सुख आराम।
रामचरण मिल ब्रह्म पूरण, सरे सरबस सकाम।"[1]

फाग का प्रतीक

दाम्पत्य प्रतीको में फाग या होली की चर्चा हो चुकी है। यहा अलग से भी इसका वर्णन इसलिए अपेक्षित है क्योंकि यह स्वामी जी का बड़ा ही प्रिय प्रतीक है। अनेक स्थलों पर जीव ब्रह्म के बीच होली का रंग स्वामी जी के पदो मे मचा है—

"पिया संग प्यारी, ऐसें नित ही खेलत फाग।"[2]

"खेलत फाग री मोहि बकस्यो राम सुहाग।"[3]

"ररंकार पति सुरति सुंदरी, अर्श पर्श रमै होरी हो।"[4]

आरती का प्रतीक

स्वामी जी ने 'गावा का पद' के अंत में तीन आरती के पदो की रचना की है। इन पदो मे सख्यामूलक, पारिभाषिक प्रतीकों का विधान तो स्वामी जी ने किया ही है, अन्तिम पद मे 'आरती' को ही प्रतीक मान लिया है। इसमे आरती की पाँच स्थितियों का प्रतीकात्मक वर्णन हुआ है—

---

१. अ० वा०, पृ० १००६-७।
२. वही, पृ० १००९।
३. वही, पृ० १००९।
४. वही, पृ० १००१।

"आरति अचल पुरुष अविनाशी।
घट घट व्यापक सकल प्रकाशी।
परथम आरति मंदिर बुहार्या।
राम राम रटि कर्म निकार्या।
दूसरी आरति दीपक जोया।
हिरदै प्रेम चाँदणा होया।
तीसरि आरति कुम्भ भराया।
नाभि कमल सू गगन चढ़ाया।
चौथी आरति चौकि बिराजै।
जहाँ अनहद का बाजा बाजै।
पचइ आरति पूरण कामा।
सुरति परसिया केवल रामा।
सेवक स्वामी भया समाना।
रामहि राम ओर नहिं आना।
रामचरण अैसी आरति कीजै।
परसि अमर वर जुग जुग जीजै।"[1]

स्वामी जी ने पशु-पक्षियों को भी अपने प्रतीक का विषय बनाया है। चातक, मोर, कोयल आदि की चर्चा तो सामान्य ढंग से हुई हैं, संतो की दुनिया का बहुचर्चित पक्षी 'इण्डल' या 'अनलपक्ष' भी प्रतीक रूप में स्वामी जी के काव्य में सम्मिलित है। यहाँ 'टेक को अंग' की कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत है जिनमें टेक के लिए उन्हें आदर्श माना गया है--

अनल पक्ष

"अंडल पंख आकाश में, रहै अधर मठ छाय।
रामचरण घर ना बसै, अपणा मत्त लजाय।"[2]

चकोर

"देखो टेक चकोर की, पावक करै अहार।
रामचरण छाँडै नहीं, जो जल बल होवै छार।"[3]

हंस

"रामचरण मुक्ताल बिन हंसा चच न बाहि।
सोग सरः भर बुगला, कर्म कीट चुगि जाहि।"[4]

---

१ अ० वा०, पृ० १०१२-१३।
२ अ० वा०, पृ० ४६।
३. वही।
४. वही।

चातक

"आस करै आकाश की, चातक रहै उदास।
भूमि पड्यो जल ना पिवै, एक राम बिस्वास।"[1]

स्वामी जी ने सूर्य, चन्द्र, गगा यमुना, अम्बुज, कुमुद तथा अन्य अनेक प्राकृतिक उपादानों को प्रतीक रूप मे ग्रहण कर अपने काव्य मे स्थान दिया है। यहाँ सक्षेप मे थोड़े प्रतीकों की चर्चा हुई है।

स्वामी जी का ग्रथ 'दृष्टान्तसागर' प्रतीकों का भण्डार है। उल्टवासियों एव दृष्टिकूटो की रचना करके स्वामी जी ने जहाँ अपने पाण्डित्य ज्ञान का परिचय दिया है वहीं उन्होंने सत-साहित्य की उलटवासी परम्परा का भी निर्वाह किया है। इन्हें स्वामी जी ने दृष्टान्त कहा है। इन दृष्टान्तों की टीका इनके शिष्य स्वामी रामजन जी ने बनाई है, जो हर दोहे के साथ सम्बद्ध है।

पडित परशुराम चतुर्वेदी लिखते है कि 'उलटवासी' शब्द को ही 'उलटा' तथा 'अश' जैसे दो शब्दो को जोड़कर बनाया गया माना जा सकता है।[2] व्युत्पत्तिमूलक अर्थ जो भी हो किन्तु उलटवासियो की परम्परा बड़ी प्राचीन है। सत कवियो ने रहस्यात्मक प्रतीकार्थो के लिए उल्टवासियां की रचना की है। इनमे से कुछ प्रतीकों पर आधारित है और कुछ अलंकार से जुडी हुई है। स्वामी जी के ग्रथ 'दृष्टान्तसागर' की उलटवासियो पर टिप्पणी करते हुए 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखकों ने लिखा है", इस ग्रथ मे स्वामी जी ने जीव, ब्रह्म, सृष्टि आदि के रहस्यों को छिपाकर प्रकट किया है।"[3] यहा स्वामी जी की उलटवासियो के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१—"पिता मरण सुत जन्मियो, निकमे लूकी लाय।
पुत्र उबै तन त्यागियो, लूकी मांहि समाय।"[4]
२—"पीहर रहाली जन्म लग, बाहिर निकसी नांहि।
कन्या कँवारी सुत जण्यो, सुत शोभा जग मांहि।"[5]
३—"रैण भई क्यूं दिवस मे, दिवस रैण क्यूं एक।
सब पृथ्वी में है नहीं, कहुं कहुं भूमि विसेख।"[6]

---

१ अ० वा०, पृ० ४६।
२. प० परशुराम चतुर्वेदी : कबीर-साहित्य की परख, पृ० १५५।
३ वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ७१।
४ अ० वा०, पृ० १०२५।
५. वही, पृ० १०३३।
६ वही, पृ० १०३४।

दृष्टिकूट

दृष्टिकूटों का निर्माण भी पाण्डित्य प्रदर्शन एवं चमत्कार प्रकाशन के लिए संतों ने किया था। सूर के दृष्टिकूट प्रसिद्ध हैं। स्वामी रामचरण के 'दृष्टान्त सागर' में 'दृष्टिकूटों' के उदाहरण मिलते हैं। यहाँ दृष्टिकूट के कतिपय उद्धरण दिये जाते हैं—

(१) "भूमि डसन रिपु तास रिपु आ शिख पर असवार।
ता सुत वाहन ज्यू फिरै, काछ लपट संसार।"[1]

[भूमिडसन दीमक-रिपु-मुर्गी-रिपु-बिलाव-शिष्य-सिंह-असवार-भवानी-सुत-भैरव-वाहन-कुत्ता-अर्थात् लपट संसार कुत्ते की तरह भटकता फिरता है।]

(२) "दधिसुत और सुमेरु सुत, रविसुत तीन मिलाय।
ये बाणक तो जब बणै, सिरी संग त्रय ताप।"[2]

[दधि सुत-मोती। सुमेरु सुत-सोना। रवि सुत-करण अर्थात् तूफान। इन तीनों के मिलाप का अर्थ हुआ सोना में मोती पिरो कर कान में पहनना। यह बानक तब बन सकता है जब श्री-लक्ष्मी के साथ त्रयताप-माया हो।]

(३) "गज मृग कीर कपोत हंस, केहरि कोयल सात।
इन मिल कदली बासकरि, जोध बोध भखि जात।"[3]

[कदली-केला-स्त्री का तन। इस तन में इन सातों का वास है। गज-जंघा, मृग-नयन, कीर-नाक, कपोत ग्रीवा, हंस-चाल, केहरि-कमर, कोयल-वचन। स्त्री तन के उपर्युक्त आकर्षण जोध-शूर का बोध-विवेक (ज्ञान) खा जाते हैं।]

(४) "सप्त वीर में सुर गुरु, ता पतनी सुत सोय।
तास पिता मुख ओपमा, हरि जन संग न होय।"[4]

[सप्तवीर—सात वार में सुरगुरु वृहस्पति की पत्नी का सुत-बुध का पिता-चन्द्रमा। चन्द्रमा जिसके मुख की उपमा है वह है स्त्री। स्त्री का हरिजनों से संग नहीं हो सकता।]

(५) "अजनी सुत सुत शैल सुत, पृथ्वी के सुत सोय।
समंद सुता जग भावता, हरिजन संग न होय।"

१. अ० वा०, पृ० १०१८।
२. वही, पृ० १०१९।
३. वही, पृ० १०१८। ४. वही, पृ० १०२७। ५. वही।

[अगनी सुत-सीसा (एक धातु विशेष)-सुत-रुपया। शैल सुत-सोना। पृथ्वी सुत-ताँबा। समुद्र सुता-कौडी। अर्थात् रुपया, सोना, ताँबा और कौडी ससार को अच्छे लगते हैं, इनसे हरि जनो का साथ नहीं हो सकता]।

उपर्युक्त उद्धरणो से स्पष्ट होता है कि स्वामी रामचरण दृष्टिकूटों की रचना मे निपुण थे। सूर ने दृष्टिकूटों के लिए पदशैली अपनायी है पर स्वामी जी ने दोहा छन्दो मे ही दृष्टिकूटो की रचना कर अपने पाण्डित्य का परिचय दिया है। 'दृष्टांत सागर' में ऐसे अनेक कूट दोहे भरे पडे है।

इन पृष्ठों मे स्वामी रामचरण के प्रतीक विधान का सक्षेप में निरूपण किया गया है। स्वामी जी के सत हृदय से निरसृत उद्‌गारो से प्रतीक योजना सजती चली गयी है। स्वामी जी के काव्य ग्रन्थो एव अणबद्ध वाणी में इतने प्रतीक है कि उनका अलग से अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है। इनमे से कतिपय उद्धरणों के सहारे स्वामी जी की प्रतीक योजना की विवेचना की गई है। दृष्टिकूटों और उलटवासियो का अध्ययन भी प्रतीक के अन्तर्गत ही मुझे उचित लगा क्योकि इनका सृजन भी प्रतीको द्वारा ही स्वामी जी ने किया है। एक बात और, 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखको ने 'दृष्टान्त सागर' मे प्रकाशित स्वामी जी के पाण्डित्य और वाग्वैदग्ध्य को स्वीकार तो किया है किन्तु वे लोग इसे स्वामी जी की स्वाभाविक शैली नही मानते।[1] इस सन्दर्भ मे इतना ही कहना है कि स्वामी जी के विशाल साहित्य में उनके द्वारा अपनायी गई विभिन्न शैलियों मे से कूट और उलटवासियो की भी शैली है। जहाँ तक उसकी स्वाभाविकता का प्रश्न है, मैं समझता हूँ कि दोहों मे लिखे गए इन दृष्टिकूटो एव उलटवासियो मे उन्हे पूर्ण सफलता मिली है। भाव प्रकाशन मे न तो उन्हे कही कठिनाई हुई है और न ग्रहण में टीकाकार को ही।

संगीत विधान

संतो का काव्य सगीतमय है। सत कवि संगीत प्रेमी थे। यह बात भिन्न है कि सगीत की शास्त्रीयता मे वे बहुत पारगत न रहे हो, पर सगीत से उनकी अच्छी जान-पहचान थी, यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं। कतिपय समीक्षक कहते है कि सतों को सगीत का बिलकुल ज्ञान ही न था क्योंकि वे पढ़े-लिखे नहीं थे। निवेदन है कि आज अनेक पढ़े-लिखे लोगो मे बहुमत सगीत न जानने वालों का ही है। सतों ने जैसे सत्सगों के द्वारा वेद, उपनिषद् एव शास्त्र पुराणो की अनेक बातें जान ली थी, वैसे ही सगीत शास्त्र से भी उनका परिचय हुआ होगा, इसमे संदेह का कोई कारण नहीं दीखता। यो सम्पूर्ण भक्ति-साहित्य पर दृष्टिपात किया जाय तो विदित होगा कि भक्त-कवियो की प्रवृत्ति सगीत की ओर थी। विद्यापति, तुलसी, सूर, कबीर और मीराँ आदि के काव्यों मे सगीतात्मकता वर्तमान है। कबीर, दादू आदि लगभग सभी सत कवियों ने पद शैली में काव्य-रचना की थी और उसे विभिन्न रागो में बाँधा गया था।

---

१. वैद्य केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्रीरामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १३४।

यह बात भिन्न है कि उन्हे रागबद्ध स्वय कवियो ने किया था या बाद के किसी उनके भक्त या प्रशसक ने।

स्वामी रामचरण के काव्य मे सगीत तत्त्व उपलब्ध है। 'गाथा का पद' शीर्षक उनकी काव्य-रचना पद शैली मे लिखी विभिन्न रागो मे बद्ध सगीत प्रधान रचना है। वैसे उनके अन्य ग्रथो मे भी बीच-बीच मे रागबद्ध पद मिल जाते है। डॉ० अमरचन्द वर्मा लिखते है कि—"स्वामी रामचरण भी इसी मस्ती मे सगीत की ओर झुक गए परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे सगीतशास्त्र के ज्ञाता थे।"[1] स्वामी जी भक्ति भावना की मस्ती मे सगीत की ओर झुके होगे, इससे तो मैं पूर्णतया सहमत हूँ पर उन्हे सगीत से कोई जान-पहचान नही थी, यह विचार चिन्त्य है।

पडित परशुराम चतुर्वेदी ने 'कबीर साहित्य की परख' मे 'कबीर साहित्य और सगीत' शीर्षक लेख मे यह सिद्ध किया है कि कबीर सगीत मे रुचि रखते थे, उनकी सगीत मे गति भी थी। कबीर पढे-लिखे नही थे पर मै समझता हूँ कि उन्होने भी सगीत की जानकारी सत्सग मे ही की होगी। फिर स्वामी रामचरण तो सम्पन्न वैश्य परिवार मे उत्पन्न हुए थे, पढे-लिखे थे एव जयपुर राज्य के उच्चपदस्थ अधिकारी भी रह चुके थे। जयपुर राज्य भारतीय विद्या एव कला का केन्द्र रहा है। ऐसी स्थिति मे यह कहना कि स्वामी रामचरण सगीत से अपरिचित थे, कुछ युक्तियुक्त नही प्रतीत होता।

स्वामी रामचरण के साहित्य के विषय मे यह भी कहने की गुजाइश नही है कि उनके काव्य-ग्रथो या वाणी का सम्पादन उनके जीवन-काल मे नही हुआ था। स्मरणीय है कि उनके सम्पूर्ण साहित्य को उनके शिष्य स्वामी रामजन एव नवलराम जी ने उनके जीवन काल मे ही सम्पादित कर डाला था। यह तथ्य भी इससे स्पष्ट होता है कि स्वामी जी के साहित्य का सम्पादन उनकी देखरेख मे ही हुआ होगा। इतना ही नही उनके गुरु दाँतडा गद्दी के महत स्वामी कृपाराम जी ने स्वामी जी की 'वाणी' देखी भी थी। अत उनके पदो को उनकी देखरेख मे ही रागबद्ध किया गया होगा या उन्होने स्वय उन्हे रागों मे बाँधा होगा, इसमे सशय का कोई कारण नहीं।

जहाँ तक स्वामी जी के सगीत ज्ञान का प्रश्न है उन्हे सगीत की जानकारी थी। उन्होंने अपनी रचनाओ में स्थान-स्थान पर 'छत्तीस राग' की चर्चा की है। अनहद नाद को उन्होने सगीत के इन सभी रागों से भिन्न एव अलौकिक बतलाया है। 'साखी परचा को अग' मे लिखते हैं—

"रामचरण संसार मे, राग छत्तीस बखाण।
संत सुनत हैं गिगन मे, अनहद बेपरमांण।"[2]

---

१. डॉ० अमरचन्द वर्मा : स्वामी रामचरण—एक अनुशीलन, पृ० २८७।
२. अ० वा०, पृ० १४।

छत्तीस रागो की चर्चा तो वे करते ही ह, विभिन्न वाद्य यन्त्रो एव उनसे निकलने वाले स्वरो पर भी उन्हे स्वामित्व प्राप्त था। वे झालरी, वीण, मृदग, शहनाई, बाँसुरी, भेरी, रणसिंग, करनाल, चग, उपग, मजीरा, ढोल्क और रायमोहचग का नाम गिनाते हे। नृत्य-घुघरू की रुनझुन से भी उनकी जान-पहचान ह। इन सभी से यदि वे परिचित न होते तो अनहद नाद मे इन सभी वाद्यों के नाद का आनन्द अनुभव कर उसे व्यक्त कैसे करते। 'रेखता प्रचा को अग' मे उन्होने 'अनहद नाद' की अनुभूति के वर्णन मे इन सभी वाद्यो के मधुर-मधुर स्वर की मधुर चर्चा की है—

"घोर अनहद की गगन गिरणाईया,
होत बहु सोर नहि कहत आवै।
झालरी वीण मरदग सहनाईया,
बांसुरी तान झुणकार लावै।
भेरि रणसिंग करनाल बंबया बजै,
चग अरु उपग गति करत न्यारी।
एक एक नाद मे मं, राग नाना उठै,
मधुर स्वर मधुर स्वर, चलत भारी।
मजीरा मान धधकार धोलक करै,
गिड़गिड़ी रायमोहोचग बाजै।
रुणझुणू रुणझुणूं नृत्य ज्यूं घुघरू,
घटा टंकोर ध्वनि अधिक गाजै।"[१]

उपर्युक्त चर्चा के बाद मै इस निष्कर्ष पर हू कि स्वामी रामचरण को सगीत के सभी रागो एव वाद्यो की जानकारी भलीभाँति थी। यह कहना कि वे सगीत के ज्ञाता नही थे अनुचित है। इसी सन्दर्भ मे एक अत साक्ष्य और प्रस्तुत कर उनके द्वारा प्रयुक्त रागो की चर्चा करूँगा। 'ताल धमाल' मे लिखे अपने एक पद मे अपने रूठे राम को मना कर प्रसन्न करने के लिए जहाँ वे नट सदृश नाटक करके उसे मोहेगे, वही उसे मोहने के दूसरे उपक्रम के रूप मे 'सिन्धू राग' भी सुनाएगे। 'आसा सिन्धू' राग मे उन्होने पद रचना की है—

"रूठा राम रिझाय मनाऊं,
निशिबासर गुण गाऊं हो।
नटवा ज्यू नाटक करि मोहू,
सिन्धू राग सुणाऊं हो।"[२]

---

१. अ० वा०, पृ० १९२-९३।
२. वही, पृ० १००१।

उपर्युक्त साक्ष्य से यह भी स्पष्ट हो गया कि स्वामी जी स्वय भी एक अच्छे गायक थे। उन्होंने 'गावा का पद' मे निम्नलिखित रागो मे पद रचे है—

१. भैरव	११ धमाल	२१ सूवा सोरठ
२ ललित	१२ काफी	२२ मारु
३ विभास	१३ आसा सिन्धू	२३ जैतश्री
४. बिलावल	१४ कल्याण	२४ धनाश्री
५ जै जैवन्ती	१५ कनडो	२५ केदारो
६ आसा	१६ कनडी	२६ जोग धनाश्री
७ गोड	१७ बिहाग	२७ गिरनारी सोरठ
८ सारग	१८ मगल	२८ आरती
९. गोडी	१९ पजाब	
१० बसत	२० सोरठ	

स्वामी जी प्रथारभ मे राग भैरव का प्रयोग अपनी रचना मे करते है।

राग भैरव

"मनवा एक एक घर राख्या,
दूजा घर सू दिल असलाक्या। (टेक)
एको ब्रह्म दूसरी माया,
दूज तज्या एकै घर आया।
एक आशरै नेक उपाया।
एकै माहि अनेक समाया।
जहाँ जाऊँ जहाँ एक अकाशा।
एक सूर ब्रह्माण्ड प्रकाशा।
एक पवन अरु एकहि पाणी।
एक धरणि पर सब घट जाणी।
एक जीव एकै सच पावै।
नाना मारग क्यू उलझावै।
सोही सतगुरु ऐक बतावै।
गुरु बिन फिर फिर जन्म गुमावै।
एक रमइया रसना भाख्या।
रामचरण जिन राम रस चाख्या।"[1]

---

१. अ० वा०, पृ० ९९१-९२।

राग ललित के एक पद में वे अपने नाथ से हाथ पकड़कर सनाथ करने का निवेदन कर रहे है—

"मे हूं अनाथ नाथ साहि हाथ मेरो।
कीजिए सनाथ तात आप साथ तेरो। (टेक)
जगत को जजाल जाल भर्म कर्म घेरो।
ज्ञान हरण भरण व्याधि जन्ममरण फेरो।
. .
मोह के समूह परत करत काल हेरो।
रामचरण रामशरण साध सगति सेरो।"[1]

राग विभास मे स्वामी जी मानव को जागरण का सदेश सुनाते है—

"जाग जाग नर रैण बदीती।
सोवत भोर भयो अणचीती। (टेक)
जाम एक गयो भोल भाल में, दोइ में गुणा वबायो।
चौथे चिंता जरा गिरास्यो, ऐसें जन्म गुमायो।"[2]

राग विलावल मे लिखित पद मे कवि राम के नाम पर न्यौछावर है। राम की महत्ता मे तल्लीन होकर वह उनके प्रति समर्पित हो जाता है—

"राम तुम्हारे नाम की, मैं बलि बलिहारी।
जीव तिरत कहा बेर है, सायर शिल तारी। (टेक)
मैं अपघाती मनमुखी, नहि साच बिचारी।
कूड़ो कपटी कातरी, मनहीण विकारी।
अजामील सूं अधिक मैं, अघ ऊमर सारी।
गणिका कैसी गिणति मैं, ऐसी मति म्हारी।
अवगुण भर्‌या अपूर करि, मेरी बोहिथ भारी।
वशूं दिशा कोई दूसरी, नहि ओट करारी।
खुद बड़ खेवट राम जी, शरणागत धारी।
रामचरण जो बूडि है, होइ हांसि तुम्हारी।"[3]

---

१. अ० वा०, पृ० ९९२।
२. वही, पृ० ९९३।
३. वही।

राग जैजैवन्ती का एक पद यहाँ उद्धृत है जिसमे स्वामी जी मन को सबोधित करते है। मन ! तू सोता क्यो है ? पलके उठाकर देख दिन भाग रहा है।। रामनाम के स्मरण की प्रेरणा से पद पूर्ण है।

"रे मन सोवै कहा राम राम गाय रे।
पलक उघारि देखि दिन चल्या जाय रे। (टेक)
पाछलो पहर रह्यो, आगलो गयो है हानि।
अबही सम्हाल प्यारे, चूक तें खला न रे।
सुत दारा धन धाम, सबही ठिगइया जान।
चित में सुचेत होय पिया कूं पिछानि रे।
काल की अवाई आई, धर लै तवाई कांन।
सजन सगाई त्याग, तेरो सुख मांन रे।
चलो चलि भाई आन, संगी सो गयो पलान।
रामचरण रामध्याय हरि हेत आन रे।"[1]

राग सारग के अधोलिखित पद मे स्वामी जी अपनी तपोभूमि 'कुहाडै' का स्मरण करते है। कुहाडै को भक्ति का प्रतीक मानकर आत्मा को उसी की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा देते है। पद में स्मरण सचारी की प्रतीति होती है—

"गैबी चलो तो कुहाडै जाईये।
और दिशा कूं गमन न कीजे, सुरति सहज घर लाईये। (टेक)
ऊँचा नगर कलोर्‌या मंदिर, निर्मल भूमि सुहाईये।
चोड़ी शिला बडला की छाया, जहाँ गोविन्द गुण गाईये।
गोकुलदास धना के बंशी, जिनकूं हरि पथ लाईये।
ठंडा जल सरिता का अचवन, शीतल ठोर सुपाईये।
जन सुदर अरु रामसनेही, उन कू संग लगाईये।
रामचरण सतगुरु के शरणै, सब संता मन भाईये।"[2]

राग विहाग मे स्वामी जी ने भक्तिरस मे सराबोर बडे ही मधुर पदो का निर्माण किया है। सबके 'सिरजनहार' राम की मुक्तकठ से प्रशसा करते हुए कहते है कि वह ऊँच-नीच के भेदभाव से परे है, जो उसे स्मरण करता है उसी का उद्धार करता है—

---

१ अ० वा०, पृ० ९९५।
२. वही, पृ० ९९७।

"रामजी सबका सिरजनहारा।
ऊंच-नीच कोई भेद न जाणै, भज्यां उतारै पारा।
पंडित गावै वेद पुराणा, दुनिया आंन पसारा।
हरि मारग की खबरि न पाई, भूल्यो सब संसारा।
सत मिल्या सबही विधि पावै, भजन भेद अधिकारा।
रामनाम निर्पख बतावै, नहि कोइ म्हारा थारा।
घट घट व्यापक राम कही जे, उत्तम मधिम विहूवारा।
जो ध्यावै सोही पद पावै, जामें फेर न सारा।
तन मन जीत रामरस पीवे, जीवै इ आधारा।
रामचरण ताहि और न भावै, सब रस लागै खारा।"[१]

राग पंजाब मे फकीरी की मस्ती मे कवि जैसे डूब गया है। किसी पद मे सत के दीवानेपन की चर्चा करता है तो किसी मे फकीरी की श्रेष्ठता घोषित करता है। यहाँ एक पद उद्धृत है जिसमे रहमान के रग मे डूबा सत आठो पहर 'पिया' के प्रेम में मस्त रहता है। सूफियाना इश्क और अगम दिशा की चर्चा से ओतप्रोत इस पद मे स्वामी जी 'दरवेश' की चाल से अवगत होते हैं—

"फकीरा रंगरता रहमान।
आठ पहर घूमत रहै, नित प्रेम पिया मस्ताना। (टेक)
अगम दिसा सू आईया, वे काया किया प्रवेश।
देख दुनी का दरध कू, पुनि उलटि गया वोही देश।
जब लग वास सराग में वे, तब लग भाखा देह।
अपणी इच्छा छाडि कै, भख पर इच्छा का लेह।
जग मे बिचरै सहज सू वे, ना काहू करै सनेह।
आसिक देखै रब्बदा, दुक जाकू आपा देह।
पथ बतावै भिस्त का वे, काढै दोजग माहि।
दीन दुनी का मेल करि, कछ आपण चाहवै नाहि।
रामचरण दर्वेश की वे, कोइ बिरला पावै चाल।
दुनिया कू दिल ना देवै, रसे अपणै ह्याल खुस्याल।"[२]

राग सोरठ के अन्तर्गत गिरनारी सोरठ और सूवा सोरठ तथा सोरठ शीर्षको के अन्तर्गत पदो के सग्रह मिलते है। यहाँ सूवा सोरठ राग का एक पद प्रस्तुत है जिसमे ससार

१ अ० वा०, पृ० १००४।
२. वही, पृ० १००५।

को समुद्र का रूपक देकर उसके खारे जल से विरत एव वैराग्य को सरोवर का रूपक देकर उसके शीतल जल से आनन्दित होने की बात स्वामी जी करते हे—

"ससार समंद जल खारो रे।
पीवत प्यास मिटत नहि कबहू, उठत अधिक धकारो रे। (टेक)
सौ के भये सहँस की तिरखा, सहँस भया लख हारो रे।
लखहूं सैं क्रोडी धज अडवा, खडवा पद्म पसारो र।
सुख चाहूं तो दुख अगवांणी, अहनिशि अजक अधारो रे।
सिद्ध भया भी प्रापति नांही, रोग शोक शिर भारो हे।
जो मै जाति जगत जश चाहू, भति अपजश होइ म्हारो रे।
बिगडी मै कोइ वल्लभ नाही, सबही दे दुर्कारो रे।
भेली कू भय कटक राज को, तस्कर अग्नि अहारो रे।
ज्यू देखू ज्यू सुख नहि दीशैं, सता शरण सहारो रे।
ज्ञान शक्ति मैं निरभैताई, जहा न म्हारो थारो रे।
रामचरण बैराग सरोवर, शीतल अनद अपारो रे।"[१]

और यह राग धनाश्री का एक पद हे जिसमे पत्नी भाव से कवि मन को पति की ओर से विमुख होने के लिए उलाहना देता है। योवन के जोर मे तूने मुझे खराब कर दिया। यदि मुझे पता होता कि योवन यम का गुलाम हे तो उससे रुठ कर उदासीन हो जाती—

"फिट जोबन जोरै लिया रे,
तैं मोहि करी रे खराब।
पति कू पूठ दिखावता,
म्हारी कछू न राखी आब। (टेक)
दिवस अधेरी निशि गिणी रे, बस्ती गिणी रे उजाड़।
विषिया रस छकियो फिर्‌यो रे, तोडि सरम की बाड़।
पर को गिण्यो न आपणो रे, ऐसो तू अंध अमान।
दिना च्यार को गारबो रे, फल सैंमल सामान।
माया केरा कीच मै रे, कल भूल्यो भगवान।
तू तो फटक परो गयो रे, मोहि पीव करी हैरान।
पान उड्यां खंखर रह्या रे, शोभ न पावै रे ढाक।
भई निलाजी नाह सूं, म्हारी बाद गुमाई छाक।
जे हू ऐसो जाणती रे, जोबन जम को रे दास।
रामचरण करि रूसणो, मैं रहती निपट उदास।"[२]

---

१ अ० वा०, पृ० १००७। २ वही, पृ० १००९।

राग केदारो मे स्वामी जी भ्रम में भूले मन को समझाते है—

"मन तू भरम भूल्यो बीर।
मृगतृष्णा जल देखि ध्यायो, परिहरि परगट नीर। (टेक)
साचा प्रीतम परिहर्या रे, कूडै कीयो सीर।
भीड पड्या भग जायगा रे, कोइ न बधावै धीर।
मात पिता सुत भामिनी रे, इन संग पावै पीर।
धन जोबन मति देखि भूलै, ये सब नाही थीर।
जगत धार्यो राम बिसार्यो, गह कोड़ी तज हीर।
अंतकाल पछितायगो रे, सुण काफर बेपीर।
भर्म कर्म सूं लागियो रे, समझ्यो नीर न खीर।
काचा सब कल जायगा रे, ज्यूं पावक संग कथीर।
सतगुरु शब्द पिछांण कै रे, छाडि छीलर तीर।
रामचरण दरियाव भजिये, राम गुणां गंभीर।"[१]

उपर्युक्त उद्धरणों के द्वारा स्वामी रामचरण की संगीतात्मकता से हमारा परिचय हो जाता है। स्वामी जी के केवल ग्यारह रागो के उद्धरण यहाँ दिए गए है, विस्तारभय के कारण अन्य रागों मे लिखित पदों के उदाहरण नही दिए जा सके। इन पदो मे स्वामी जी के वैयक्तिक स्पर्श की जहाँ झलक मिलती है वही ससार की असारता, रामनाम-स्मरण आदि की प्रेरणा भी। स्वामी रामचरण का भावुक कवि हृदय सत से भक्त हो गया है। सगीत की रागोर्मियों में डूबते-उतराते कवि अपने 'खावद' की शरण पा गया है—

"वार पार कहुं थाह न आवै, सुमर सुमर जन मज्झि समावै।
ऐसा साहब खावंद मेरा, रामचरण चरणों का चेरा।"[२]

छंद विधान

स्वामी रामचरण के छद विधान का अध्ययन अपने मे एक रोचक विषय है। यों सत कवियो ने छद विधान को बहुत गभीरता से नही लिया है। उनमे से अधिकाश ने 'साखी' और 'सबद' शीर्षकों में काव्य रचना कर छुट्टी ली है। उन्होने छदों के नियम-उपनियमों, भेद, मात्रा, वर्ण, गण-विचार आदि के चक्कर मे पडना या तो उचित नही समझा या फिर इन सबकी व्यापक जानकारी उन्हे न थी। स्वामी रामचरण इस भावधारा के अपवाद लगते है, यद्यपि सत परिपाटी के निर्वाह के प्रयास में उनके छद विधान में भी थोड़ी अव्यवस्था

---

१ अ० वा०, पृ० १०१०।
२ वही, पृ० १०१२।

दृष्टिगत होती है। स्वामी जी के 'अणभै वाणी' नामक विशाल सग्रह महाग्रथ मे ३० छन्द शीर्षकों के अन्तर्गत काव्य रचना हुई मिलती है। छन्दो मे से लगभग सभी छन्द पिंगल शास्त्र में उल्लिखित छन्द-लक्षणो की कसौटी पर खरे उतरते है। पर इनके अध्ययन मे थोडी कठिनाई यह होती है कि कुछ छन्दो के अलावा शेष छन्दों मे से कतिपय ऐसे है जिनके नाम हिन्दी छन्दशास्त्र के प्रचलित ग्रथो जैसे 'छन्द प्रभाकर' मे नहीं ह, किन्तु भिन्न-भिन्न नाम से वे मौजूद है। दूसरी कोटि उन छन्दों की है जिनके लक्षण से विदित होता है कि वे किसी एक ही छन्द के विभिन्न नाम धारण कर आए हे। एक कोटि और भी है। यह कोटि उन छन्दो की हे जो नाम तो प्रसिद्ध छन्दो का धारण किए हुए है, पर उनके नामों के छन्दो के लक्षणो से उनका कोई मेल नहीं है। नाम की गड़बडी से थोडा भ्रम अवश्य उत्पन्न होता है। पर यदि नाम की गडबडी को हटा दिया जाय तो वे छन्दशास्त्रीय कसौटी पर खरे है। यहाँ इसी क्रम मे हम स्वामी रामचरण के छन्दों का अध्ययन करेंगे।

[क] पहले उन छन्दों का विवेचन प्रस्तुत है जिनके नाम एव लक्षण के सम्बन्ध मे छन्दशास्त्र के ग्रन्थों से कहीं भी अनमिल स्थिति नही है। ये छन्द हैं—दोहा, सोरठा, चौपई, चौपाई, सवैया, मनहर, त्रोटक या तोटक, पद्धरि, गीतिका, कुण्डलिया और चान्द्रायण।

१. दोहा

१३ और ११ मात्राओं (विषम चरण मे १३ और सम चरण मे ११) की यति से २४ मात्राओं का यह छन्द साहित्य की एक गौरवमयी परम्परा अपने साथ रखता है। सत कवि, भक्त कवि, रीति कवि और नीति कवि सभी का यह प्रिय छन्द रहा है। स्वामी जी ने अपनी रचनाओं मे इसका खूब प्रयोग किया है। एक उदाहरण उद्धृत है—

"जगत अंधेरो बाग है, विविध फूल फल रंग।
रामचरण मन भँवर होय, जहाँ किया परसंग।"[1]

२ सोरठा

दोहे का उल्टा छन्द सोरठा भी स्वामी जी के काव्य में पर्याप्त सख्या मे है—

"संग्रह स्वाद सिंगार, रामचरण ये जगत सुख।
मंता कै तस्कार, जे जन रत्ता राम सूं।"[2]

३. चौपई

१५ मात्राओं के इस छन्द का एक उदाहरण स्वामी जी के काव्य से यहाँ प्रस्तुत है—

---

१. अ० वा०; पृ० १०।
२ वही, पृ० १८।

"वाम वाम के निकट न जाय।
हाथ न परसै छिवै न पाय।"[1]

४ चौपाई

१६ मात्राओं का यह छन्द सतो और भक्त कवियो का अत्यन्त प्रिय छन्द है। स्वामी रामचरण ने इसे अपनी अगबद्ध वाणी तथा ग्रन्थो मे प्रचुरता से प्रयोग किया है—

"मन उपजा कर पडै अयागा।
उपजी राखै संत सुजाणा।"[2]

५. सवैया

वाणी साहित्य मे स्वामी जी ने इस छन्द शीर्षक के अन्तर्गत विभिन्न अगो की रचना की है। इस छन्द के कई भेद है। स्वामी जी ने सवैया नाम पर मत्तगयंद सवैया की ही बहुतायत से रचना की है। प्रत्येक चरण के २३ वर्ण वाले इस छन्द मे ७ भगण और २ गुरु होते है। 'नाम महिमा को अग' से एक सवैया यहा उद्धृत है—

"काशी मे एक कबीर भयो जुलह्वा घर आय प्रवेश कियो है।
छांडि दियो सबही कुल को धर्म, रामनिरंजन सोधि लियो है।
शाह सिकंदर ताप दई तब पूरण ब्रह्म मै प्राण दियो है।
रामचरण ये सत न सूझत ता नर को धिरकार जियो है।"[3]

६ मनहर

प्रत्येक चरण मे १६, १५ की यति मे ३१ वर्णों के इस छन्द मे भी स्वामी जी ने प्रचुर काव्य रचना की है। यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"साही है फकीरी जिन खाई दिलगिरी सब,
आई है गरीबी मगरूरी कूं गुमाई है।
भाग्यो है अभाग राग जागियो बैराग भाग,
नीति कू निवास दे अनीति कूं न्हसाई है।
धकायो वड्डाग दूर पायो है सुहाग पूर,
रामजी सू प्रीति रीति भावना बधाई है।

---

१ अ० वा० पृ० १८।
२ वही, पृ० २०।
३ वही, पृ० ८६।

ताही को सन्यास तिन त्यागो है जगत्त बास।
रामचरण ऐसी गुरु ज्ञान में बताई है।"[1]

७ त्रोटक या तोटक

१२ वर्णो के इस वृत्त मे चार सगण होते है। स्वामी जी का यह प्रिय वर्णवृत्त है। 'अणभो विलास' के सप्तम प्रकरण से एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"मुख राम भजन्न गलै मन रे।
ऋम काम विकार तजै तन रे।
अप लख्खन तख्खन होय जिता।
सब जाय बिलाय कहूंज किता।"[2]

८. पद्धरि

इस छन्द के प्रत्येक चरण मे १६ मात्राएँ होती है। स्वामी जी के ग्रन्थो मे इस छन्द मे रचे पद्यों की सख्या भी पर्याप्त है। पर कही-कही मात्रा दोष मिल जाते है। लेकिन बहुधा ऐसा नही हुआ है—

"वैराग्य रूप सुख सर्व त्याग।
उपदेश ज्ञान दे - नहीं राग।
किरपाल मिले किरपाज कीन।
अब परो पाय ह्वै ह्वै अधीन।"[3]

९. गीतिका

१४, १२ की यति से इसके प्रत्येक चरण मे २६ मात्राएँ होती है। यह छन्द स्वामी जी के ग्रन्थो मे नही के बराबर प्रयुक्त हुआ है। 'सुख विलास' के चौथे प्रकरण मे इसका एक उदाहरण मिलता है जिसका प्रथम चरण ही मात्रा की दृष्टि से दोषपूर्ण है। नीचे के दोनो चरण भी दोषपूर्ण है—

"संत बकसै राम निज धन, तन मन पावनकार है।
परम धर्म प्रकाश निर्मल, परम आप उदार है।

---

१ अ० वा०, पृ० ८८।
२ वही, पृ० २४२।
३ वही, पृ० २११।

सुमरण साख सदीव ने पै महा अगम फल वर्षा ही।
यह सुकाल जो होय साता राम रसायण वर्षे ही।।"[1]

१०. कुण्डलिया

स्वामी जी इसे 'कुण्डल्या' लिखते हैं। १४४ मात्राओं का यह पूर्ण छन्द ६ चरणों वाला है। आरम्भ के दो चरण दोहा के और शेष चार रोला के होते हैं। स्वामी जी के काव्य में साखी के बाद इसी छन्द का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है—

"अैसो अणभो अमर घन बकसै सत सुजाण।
लेवै लगन लगाय कै बड़भागी बहु जाण।
बड भागी बहु जाण जाणपण वाका साचो।
गुरुगम ज्ञान विचार ओर धन वर्ष्यौं काचो।
वाकी महत्त्वै समझि को करिये कहा बखाण।
अैसो अणभो अमर घन बकसैं संत सुजाण।"[2]

११ चान्द्रायण

इसे स्वामी जी ने 'चन्द्रायणा' कहा है। ११, १० की यति से इसके प्रत्येक चरण में २१ मात्राएँ होती हैं। ११ मात्रा जगणान्त और १० मात्रा रगणान्त होनी चाहिए। स्वामी जी के प्रिय छन्दों मे इस छन्द का भी स्थान है। 'नाम सामर्थाई को अग' से एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"आभा केरी छाँह, सील का कोट रे।
ओस नीर यूं जान, अनि की ओट रे।
ज्ञान भाण मारूत, उवै उड जाय रे।
परिहाँ रामचरण भज राम सबल शरणाय रे।"[3]

१२ बेताल

छन्दशास्त्र में उल्लिखित 'कामरूप' छन्द का दूसरा नाम बेताल छन्द है।[4] १६, १० की यति से प्रत्येक चरण में २६ मात्राएँ होती है। 'सुख विलास' के प्रथम प्रकरण से एक छन्द उद्धृत है—

---

१. अ० वा०, पृ० ३५२।
२. वही, पृ० ३५२।
३. वही, पृ० ७६।
४. भानु रचित 'छन्द प्रभाकर' में द्रष्टव्य 'कामरूप' छन्द, पृ० ६७।

"मानवे तन धारि कलि में, होय सन्मुख राम सूं।
बिमुखता बेअकल तजिये, नाहि भजिये काम कूं।
सज्जना ये सीख मेरी, कहै देरी सत जू।
आदि अंत जू राम रिच्छक, आप आतम कत जू।"[1]

स्वामी जी ने कहीं-कहीं वेताल छन्द को ६ चरणों का भी कर दिया है पर मात्रा दोष से मुक्त रखा है।

[ख] इस कोटि मे उन छन्दो का निरूपण हमारा अभीष्ट है जिनके नाम 'छन्द-प्रभाकर' मे दूसरे हे। यहाँ स्वामी जी द्वारा उल्लिखित नाम ही के शीर्षकों मे उनकी चर्चा हो रही है।

१३. रेखता

यह 'छन्द्र प्रभाकर' का 'करखा' छन्द है। इस छन्द के प्रत्येक चरण मे ८-१२-८-९ की यति से ३७ मात्राएँ होती है। अन्त मे यगण होता है। 'सुमरण को अग' का यह छन्द यहाँ उद्धृत है—

"राम का नाम कू जप्प रे बावरे, राम का नाम बिन मुक्ति नाही।
शिव्व सनकादिका शेष भी रटत हे नाम की रटत है गवरि ध्याही।
नव्व जोगेश्वरा नाम कूं रटत है शुक्र हनुमत अरु वेद गाही।
नारदा शारदा रटत मौनी जना नाम तत्सार तिहुं लोक माही।"[2]

इस छन्द मे भी स्वामी जी ने कहीं चार चरण और कही छ चरण रखे हे पर मात्रा भेद कही भी नहीं रखा हैं।

१४. निसाणी या निशाणी

यह छन्दशास्त्र का 'शोकहर' छन्द है। भानु जी ने 'छन्द प्रभाकर' मे यही नाम दिया है। इसका एक नाम 'शुभगी' भी है।[3] इस छन्द के प्रत्येक चरण मे ८-८-८-६ की यति मे ३० मात्राएँ होती है, अन्त मे 'गुरु' होना चाहिए—

" .लिका जोगी बिपति बियोगी जोग जुक्ति बिसराइंदा।
कान फडाया शिर सुरड़ाया भगवा भेष बणाइंदा।

---

१ अ० वा०, पृ० ३३०।
२ वही, पृ० १९०।
३. भानु : छन्द प्रभाकर, पृ० ७४।

खाख चढाया खोल कढाया जोगी जगत जणाइंदा।
सार न पाया तार बजाया घर घर भरथरि गाइंदा।"[1]

१५ निराज

'हीर' छन्द को स्वामी जी ने 'निराज' कहा है। इस छन्द के प्रत्येक चरण मे १२-११ की यति से २३ मात्राएँ होती है। इसका आदि वर्ण गुरु हो और अन्त मे रगण अपेक्षित है। 'अणभो विलास' के पन्द्रहवे प्रकरण का निम्नलिखित छन्द उदाहरण रूप में प्रस्तुत है—

"झूठ सू अरूठ सदा, साच को विचार है।
और न उपाय कोई, राम हो उचार है।
उत्तम अगाध सदा, एक रस ज्ञान है।
राम ही चरण वाच, साच ही समान है।"[2]

१६ झपाल

'छन्द प्रभाकर' का 'सार' छन्द ही स्वामी जी का 'झपाल' है। प्रत्येक चरण मे १६-१२ की यति से २८ मात्राओं वाले इस छन्द के अन्त मे दो गुरु अपेक्षित है—

"जतर मतर करि है, करि है औषधि बूंटी।
डडा फडा डोरा कंडा, करि है कांमण झूंठी।
नाना विधि परपंच पसारै, माया आश न छूटी।
स्वाद सिगारा अति हुसियारा, पाचूं फिरै न पूठी।"[3]

१७ उद्घोर

प्रसिद्ध 'रूपमाला' छन्द ही स्वामी जी का 'उद्घोर' छन्द है, इसके प्रत्येक चरण मे १४-१० की यति से २४ मात्राएँ होती है, इस छन्द का प्रयोग स्वामी जी ने कम किया है। एक उदाहरण 'सुखविलास' के बारहवे प्रकरण से उद्धृत किया जाता है—

"विभव मंदिर देख सुदर, काइ गर्वं अंध।
सबै ऊभा मेल्ह जासी, काल ले जाइ बंध।
नाम निधि है अजर अम्मर, कोइ गंजै नाहि।
भय न भूपर सुर न ससै, मिलै निजपद माहि।"[4]

---

१ अ० वा०, पृ० ९९१।
२ वही, पृ० २८०।
३ वही, पृ० ८३२।
४. वही, पृ० ४१३।

१८. चम्पक

छन्दशास्त्र में उल्लिखित 'सखी' छन्द ही कवि का 'चम्पक' छन्द है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में १४ मात्राएँ होती है। भानु जी ने 'छन्द प्रभाकर' मे 'चम्पकमाला' छन्द का उल्लेख किया है किन्तु वह वर्णवृत्त है और उसका स्वामी जी के इस 'चम्पक' से कहीं मेल नहीं। वस्तुत स्वामी जी का चम्पक 'छन्द प्रभाकर' का सखी छन्द ही है। 'लच्छ अलच्छ जोग' नामक लघु ग्रन्थ का अधिकाश इसी छन्द मे है। उसी से एक उदाहरण दिया जाता है--

"साधा की मडली आवै।
सब नगरी कै मन भावै।
ये साध गरीब निवाजा।
ये सब राजा का राजा।"[1]

[ग] इस श्रेणी मे उन छन्दो का निरूपण इष्ट है जिनके नाम छन्दशास्त्र मे प्रसिद्ध है। पर उन छन्दो के लक्षणो से स्वामी जी द्वारा उद्धृत छन्दो के लक्षणो का मेल नहीं है। किन्तु वे सभी छन्द शुद्ध है और छन्दशास्त्र मे दूसरे नामो से जाने जाते है। ये छन्द है—झूलणा, शिखरणी, अरेल, त्रिभगी, भुजगी, मोतीदाम, हसाल और चामर।

१९ झूलणा

'झूलना' नाम के तीन छन्दो का उल्लेख भानु जी ने 'छन्द प्रभाकर' मे किया है। १ झूलना (प्रथम),[2] २ झूलना (द्वितीय),[3] ३ झूलना (तृतीय)[4], किन्तु स्वामी जी का झूलणा इनमें से कोई नहीं है। यह छन्द स्वामी जी के साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि इस छन्द मे उन्होने कई अगो का निर्माण किया है। यह 'झूलणा' छन्दशास्त्र का प्रसिद्ध छन्द 'सवैया' है। इस सवैया मे भी दो प्रकार के प्रमुख सवैया छन्दो का झूलणा के नाम पर स्वामी जी के काव्य मे समावेश है। ये छन्द है—१ मदिरा सवैया, २ दुर्मिल सवैया।

१. मदिरा सवैया का उदाहरण

"यू कोउ मानव मान के कारन कूरहि गाल बजावता है।
पढि बेद पुरान कुरान घना बाणी आप बखाण वणावता है।

---

१ अ० बा०, पृ० ९८७।
२ भानु छन्द प्रभाकर, पृ० ६७।
३ वही, पृ० ७८।
४. वही, पृ० ७९।

करणी जु बिना कछु काज नही कहीं ठोर न आदर पावता है।
ऐसें वो बाघ की लच्छ बिना मन रंजन फोकट गावता है।"[1]

२ दुर्मिल सवैया का उदाहरण

"बिन साधन सिद्धि न होय प्यारे कोइ बात अनेक बनाय है जी।
कोउ मन्न लड्डू करि पेट भरै ताकी भूख किसी विधि जाय है जी।
बहु भांति सु सांति विहीन फिरै समता लवलेश न पाय हे जी।
जन रामचरण्ण भजन्न बिना जैसें बाझ धतूरो मचाय हे जी।"[2]

उपर्युक्त दोनों छन्द झूलणा शीर्षक के अन्तर्गत एक ही स्थान पर उद्धृत हैं। वास्तव में सवैया को ही उन्होंने झूलणा कहा है। पर सवैया के दोनो प्रकारो का एक ही शीर्षक के अन्तर्गत उल्लेख चिन्त्य अवश्य है। 'अणभैवाणी' में ऐसा कई स्थानो पर दीखता है।

२० शिखरणी

प्रसिद्ध वर्णवृत्त 'शिखरिणी' से स्वामी जी के शिखरणी छन्द का मेल नहीं है। वस्तुत यह 'छन्द प्रभाकर' में उल्लिखित 'भव छन्द' है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में ११ मात्राएँ होती है, अन्त में गुरु होना चाहिए। 'अणभै विलास' के सप्तम प्रकरण में हमें इसका एक उदाहरण मिल जाता है—

"विरह रूप सापणी।
डस्यो है मन्न पापणी।
लगत तन्न करपणी।
मिलत नांहि वापणी।"[3]

२१. त्रिभंगी

स्वामी जी के छन्द निशाणी और त्रिभंगी में अन्तर नहीं है। दोनो एक ही छन्द है। निशाणी 'छन्द प्रभाकर' का 'शोभहर' छन्द है, यह पीछे स्पष्ट किया जा चुका है। यही बात प्रसिद्ध ३२ मात्रा वाले त्रिभंगी छन्द की। उस छन्द का प्रयोग स्वामी जी ने नहीं किया है।

---

१ अ० वा०, पृ० ३८९।
२ वही, पृ० ३८९।
३. वही, पृ० २४५।

२२. अरेल

छन्द प्रभाकर में 'अरिल्ल' छन्द का लक्षण लिखा गया है। किन्तु स्वामी जी का 'अरेल' 'अरिल्ल' नहीं है। 'अरेल' छन्द के वही लक्षण है जो स्वामी जी के चन्द्रायणा (चान्द्रायण) के है, अर्थात् अरेल छन्द चान्द्रायण छन्द ही है।

२३ चामर

स्वामी जी का चामर छन्द 'छन्द प्रभाकर' में उल्लिखित 'विधाता' नामक छन्द है, छन्दशास्त्र का बहुचर्चित चामर छन्द से यह बिल्कुल भिन्न है। १४-१४ की यति से इस छन्द में २८ मात्राएं होती है। वैसे तो इस छन्द का प्रयोग उनके ग्रन्थो मे यत्र-तत्र हुआ है पर लघु ग्रन्थ 'चिन्तावणी' मे इसका अधिक प्रयोग मिलता है। उसी से एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"अब तू राम रसना गाय।
बीतो जन्म अहलो जाय।
तेरा जन्म की सुण आदि।
मूरख खोइये नहि बादि।"[1]

२४. मोतीदाम

२५. हसाल

२६. भुजगी

उपरिलिखित तीनो छन्दो का वर्णन छन्दशास्त्र के ग्रन्थो मे मिलता है। पर 'छन्द प्रभाकर' मे इनके उल्लिखित लक्षणो और स्वामी जी द्वारा लिखित इन छन्दो की रचनाओ के लक्षण बिल्कुल भिन्न है। दूसरी बात यह भी कि मोतीदाम, हसाल और भुजगी—इन तीनो नाम से निर्मित छन्द रचनाओं का लक्षण एक है अर्थात् एक ही छन्द को तीन नामो से तीन स्थलों पर लिखा गया है। इन तीनों छन्दों की रचनाओ को देखने से विदित होता है कि ये रचनाएँ 'भुजगप्रयात' छन्द में रची गई हैं।

'भुजगप्रयात' १२ वर्णो का वर्णवृत्त है जिसमें चार यगण होते है। उक्त तीनो छन्दो की रचना नीचे उद्धृत है जिसमे भुजगप्रयात के लक्षण विद्यमान है—

---

१. अ० वा०, पृ० ९७७।

१. मोतीदाम के नाम पर प्राप्त छन्द का उदाहरण

"रहे राम रामं, दहे कूर कामं।
अकाम अरूपं, अखण्डे स्वरूपं।
नहीं पावतीनं, परापार लीनं।
महा तेज नूर, उवै बोहो सूरं।"[1]

२ भुजगी के नाम पर प्राप्त छद का उदाहरण

"नमो राम रूप गुरूजी अगाधै।
तुम्हे मेव सानद सूं सर्व साधे।
ब्रह्मा ईस विष्ण्वादि औतार धारै।
सदा एक म्हैमा गुरूजी उचारे।"[2]

३. हंसाल के नाम पर प्राप्त छन्द का उदाहरण

"गुरु ज्ञान रूप, महिमा अनूप।
गुणा तीन पार, सबै तो आधार।"[3]

उपर्युक्त उद्धरणो की जाँच करने से स्पष्ट हो जाता है कि सभी में 'भुजगप्रयात' छन्द के लक्षण वर्तमान है। इन तीनो छन्दो की छन्दशास्त्र मे महत्ता है साथ ही 'भुजगप्रयात' भी कम महत्त्वपूर्ण छन्द नहीं है, फिर कैसे यह सब हो गया ? चिन्त्य है।

२७ कवित

'छन्द प्रभाकर' मे भानु जी ने मनहर या मनहरण का पर्याय कवित को लिखा है।[4] मनहर ३१ वर्ण का छन्द होता है। इसकी चर्चा पीछे हो चुकी है। स्वामी जी का 'कवित' 'मनहर' नही है। इसके लक्षण का कोई दूसरा छन्द भी नही मिलता है। मात्रा की दृष्टि से यह छन्द नितान्त शुद्ध है। ६ पद के इस छन्द मे १४४ मात्राएँ होती है। आरम्भ के चार चरणो मे रोला और बाद के दो चरणो मे दोहा के लक्षण मिलते है। यह कुण्डलिया का उलटा है। इस छन्द में भी स्वामी जी ने पर्याप्त लिखा है। इस छन्द शीर्षक मे विभिन्न अग रचे गए है—

"कमल मूल मधि कीच नीच मिण्डुक अधिकारी।
भँवर बासना लेत बसै माँहि तास मँझारी।

---

१ अ० वा०, पृ० ४२९।
२ वही।
३. वही, पृ० ८५६।
४. भानु : छन्द प्रभाकर, पृ० २१४।

अलि बावुर क्यू मेल आश पुनि वास विवर्जित।
सुख गत बढै कलेश होय कबहूँ जो सगात।
गुरु पूजा कूं खैंचि ले सो कहा करै शिखज्ञान।
ज्ञान भक्ति वैराग्य सू रखै दोष अभिमान।"[1]

२८. जुगती

इस छन्द के नाम पर एक पद्य ग्रन्थ 'अणभै विलास' के चौदहवें प्रकरण मे उपलब्ध हैं। १५-१३ की यति से इसमे कुल २८ मात्राएँ है। 'छन्द प्रभाकर' मे इस नाम और लक्षण का कोई छन्द मुझे नही मिला। उद्धरण रूप मे इसकी एक पंक्ति दी जाती हैं—

"राम सदा सुख दानियां, सब वेद पुराण बखानिया।"[2]

२९. साखी

यह संत कवियो का सर्वाधिक प्रिय छन्द है। पंडित परशुराम चतुर्वेदी लिखते है कि "साखी शब्द "साक्षी' का अन्यतम रूप मान लिया जा सकता है।"[3] डॉक्टर रामकुमार वर्मा ने लिखा हैं कि "साखी वस्तुतः दोहा ही है किन्तु उसे आध्यात्मिक नाम 'साखी' दे दिया गया हैं। जो कथन सत्य के साक्षी स्वरूप है वही साखी है।"[4] चतुर्वेदी जी का अनुमान है कि, "साखी रचना को परम्परा कबीर साहब के समय से अधिक प्राचीन अवश्य रही होगी।"[5] दोहा छन्द का प्रयोग भी प्राचीन अपभ्रंश काव्यो मे मिलता हैं। अत यह मान लेने मे आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि साखी दोहा का ही रूप है। लक्षण की दृष्टि से समता भी लक्षित होती हैं। कहीं-कहीं अन्तर भी दीखता है। एक उदाहरण देना समीचीन होगा—

"संतां बांण चलाईया धर कर सूधी मूंठ।
प्रेमसहित सिख झेलिया, गया कलेजा फूट।"[6]

किन्तु साखी का दूसरा उदाहरण जो नीचे उद्धृत है, मात्रा दोष से रहित नहीं—

---

१ अ० वा०, पृ० १२३।

२ वही, पृ० २७५।

३ प० परशुराम चतुर्वेदी कबीर-साहित्य की परख, पृ० १८४।

४ डॉ० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सपादित हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत डा० रामकुमार वर्मा का 'संतकाव्य' शीर्षक लेख, पृ० २३८।

५ प० परशुराम चतुर्वेदी : कबीर-साहित्य की परख, पृ० १८५।

६. अ० वा० पृ० १२।

"गिरिवर कूं मोरा जपै, सायर जपै मराल।
रामचरण रामै जपै, तुम रका करण निहाल।"[1]

इसमें नीचे की पंक्ति में दो मात्राएं अधिक है। साखी के उपर्युक्त दोनों रूप स्वामी रामचरण के काव्यग्रन्थो एव 'वाणी' मे उपलब्ध है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी रामचरण को पिंगलशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। उन्होने अपने भाव प्रकाशन के लिए ऊपर वर्णित सभी छन्दो का विधान किया है। विशेष बात यह है कि मात्रिक और वर्णिक दोनो प्रकार के छन्दो का प्रयोग उन्होने किया है। पर मात्रा, वर्ण या गण सम्बन्धी दोष अपवाद स्वरूप ही मिल सकते है। स्वामी जी छन्द विधान के शिल्पी थे, इस कथन मे अत्युक्ति नहीं।

भाषा

यद्यपि स्वामी रामचरण जी की काव्यभाषा का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन हमारा उद्देश्य नही है, फिर भी स्वामी जी की भाषा के सामान्य गुणो, शब्द-भण्डार, लोकोक्ति-मुहावरो आदि से परिचित होना हमारा अभीष्ट है। सत कवि अपने सिद्धान्तो के प्रचार के उद्देश्य से काव्य-रचना करते थे। जन सामान्य तक अपने सन्देश प्रेषित करना उनका ध्येय होता था। इन उद्देश्यो के लिए ये विचरण करते थे और जनजीवन के निकट सम्पर्क मे भी आते थे। पर्यटनशीलता के कारण उनके शब्द-भण्डार मे विभिन्न प्रादेशिक भाषाओ एव बोलियो के शब्दो का सम्मिलित हो जाना स्वाभाविक था। दूसरी बात यह है कि अपनी विचार-सामग्री को सर्वग्राह्य बनाने के लिए सहज स्तर की भाषा का प्रयोग करते थे। कदाचित् इसी गुण के कारण सामान्य जन सतो के विचार से प्रभावित होकर उन्हे ग्रहण कर लेता था। हाँ, जहाँ सतो को पाण्डित्य प्रदर्शन की अभिलाषा हो जाती थी, वहाँ वे भाषा मे रहस्यात्मकता का समावेश कर दिया करते थे।

स्वामी रामचरण की भाषा के विषय म 'अणभै वाणी' के प्रस्तावनाकार राव कार्यराम लिखते है—"इन महावाक्यो की रचना सरल भाषा मे होने के कारण सत स्त्री-पुरुषो को पठन-श्रवण मे सुगम और सहज कल्याण मार्ग दर्शक कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।"[2] इसी सन्दर्भ मे 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के लेखको का मत उद्धृत करना भी असगत न होगा। वे लिखते है—"अणभैवाणी की भाषा लोकभाषा के वैभव को लिए है।"[3] स्पष्ट है कि स्वामी रामचरण की भाषा सत परम्परा की अनकूलता से समन्वित है। यहा हम स्वामी जी की काव्यभाषा की विशेषताओं का सक्षेप मे निरूपण करेंगे।

---

१. अ० बा० पृ० १०।
२. अणभैवाणी की प्रस्तावना, पृ० २।
३ वैद्य। केवलराम स्वामी तथा अन्य : श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १३२।

भावानुकूलता

स्वामी जी की भाषा उनके भावों की अनुगामिनी है। भाषानुकूल शब्दों का चयन ही सशक्त भाषा का मापदण्ड है। इस विचार की पुष्टि में कतिपय उद्धरण देना असंगत न होगा। साईं के सामर्थ्य में कितना ओज है इसकी अभिव्यक्ति की भाषा से ही स्पष्ट होने लगता है—

> "समर्थ मेरा साईया, जाकी समर्थ ओट।
> रामचरण ताकू भज्या, लगै न जम की चोट।"[1]

भाव के साथ भाषा भी ओजस्वी हो गयी है। 'समर्थ ओट' और 'जम की चोट' से ओजस्विता ध्वनित हो रही है। भावों के सहज प्रकाशन में उनकी भाषा कितनी जीवन्त है, निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है। विनय भाव के प्रकाशन में भाषा यहाँ निखरी है—

> "तुम तो रामदयाल हो, मैं अनाथ निरधार।
> रामचरण कह रामजी, बेग लगाओ पार।"[2]

आत्मा विरहिणी अपने प्रेमी नायक परमात्मा के आगमन से हर्षित है। हृदय मधुर भावों का आगार हो रहा है, उत्कण्ठाओं को जैसे स्फूर्ति मिल गई हो। भाषा का माधुर्य यहाँ ध्यान देने योग्य है—

> "प्रेम का दीपक जोय मंदिर में, प्रीति का पिलंग बिछाय।
> शील शृंगार साज पिव परशू, अंग सू अंग लगाय।
> अति आनंद उछाव भयो अति, लग्यो है नवलो नेह।
> तन मन धन न्यौछावर करि हूं, साहिब कू आपा देह।"[3]

उपर्युक्त पंक्तियों की शब्दमाला ही भाव संवेतिका है। दीपक, पलंग और शृंगार के रूपकों से ही प्रेमभावना का माहौल निर्मित हो गया है। 'अंग सू अंग लगाय' पद से तो 'नवलो नेह' का 'उछाव' फूटा पड रहा है। भाषा का यह माधुर्य काव्य का शृंगार है।

अनुरणनात्मकता

शब्दों से भावों का अनुरणन सशक्त भाषा का एक और मापदण्ड है। भक्त-हृदय के उद्गार भाषा के स्वाभाविक प्रवाह से और भी प्रभावशाली हुए हैं। स्वामी रामचरण की भाषा में इस स्वाभाविक अनुरणन शक्ति के उदाहरण मिल जाते हैं। 'रेखता प्रचा को अंग' में अनहद

---

१ अ० व० पृ० १६।
२ वही, पृ० १०।
३ वही, पृ० १०००।

नाद की ध्वनि कवि सुन रहा है। वर्ण वाद्यों की झकार हम भी सुन रहे है जैसे। यह अनुरणन भी ध्यान देने योग्य है—

"घोर अनहद को गगन गिरणाईया होत बहु सोर नहि कहत आवै।
झाझरो बोण मरदंग सहनाईयां बासुरी ताल झुणकार लावै।"[1]

निम्नलिखित पंक्तियों मे घटा, निर्झर और बिज्जु के रूपको द्वारा विरह को रूपायित करने मे कवि को जितनी सफलता मिली है उसका बहुत कुछ श्रेय शब्दों की अनुरणनशीलता को है—

"बिरह घटा घररात नैन नीझर झरै।
बिस चमकै बीज कि हिरदो ओल्ह रे।"[2]

सचमुच जैसे घटा घहरा रही है, निर्झर झर रहे है और बिजली चमक रही हो। हृदय इस अनुभूति से उल्लसित हो रहा है। कवि के हृदय का यह उल्लास साकार हो उठा है।

रूपात्मकता

स्वामी जी की भाषा वर्ण्य का रूप खडा करने मे समर्थ है। होली का एक चित्र है। पिया-पियारी का फाग, गुलाल उड रहा है, केसर गारी जा रही है, रंग अबीर की धूम मची है, पिचकारी मे रंग भरा जा रहा है। अनहद नाद सुनाई पड रहा है। रंगो की यह बरसात फागुन को भादो बना रही है। इसी वर्षा मे भीगकर सुख मे तन्मय प्रिया का रूप उसका प्रियतम निरख रहा है—

"पच रंग पीस गुलाल उडाई, तिरगुण केसर गारी हो।
अर्थ अबीर साच करि सूधो, भरत प्रेम पिचकारी हो।
शील सिंगार नेह अति नौतम, खेलत पिया पियारी हो।
अनहद नाद बैन धुनि ऊठै, गरजत गगन मझारी हो।
फागुन फाग रमत भयो भादू अबर बरसै भारी हो।
भीजत सुरति गरक भई सुख मै, निरखत रूप मुरारी हो।"[3]

शब्द भण्डार

स्वामी रामचरण राजस्थानी थे। उनकी भाषा राजस्थानी है किन्तु उसमे अन्य प्रादेशिक भाषाओं, बोलियो एव विदेशी मूल के शब्दो का बाहुल्य है। लोक-भाषा का अक्षय

१ अ० वा० पृ० १९२।
२. वही, पृ० ७७।
३. वही, पृ० १००१।

शब्द भण्डार उनकी अगबद्ध वाणी एव काव्य ग्रन्थो मे भरा पडा है। सस्कृत के तत्सम शब्दो के अलावा अनेक तद्भव, देशज शब्द विभिन्न बोलियो का परिवेश धारण करके स्वामी जी के शब्द भण्डार मे समाविष्ट हुए है। पजाबी, ब्रजी, खडी बोली एव गुजराती भाषाओं के अनेक शब्दो का प्रयोग तो उन्होंने किया ही है, अरबी-फारसी मूल के भी अनेक शब्दो को नि सकोच भाव से अपनाया है।

संस्कृत

राजस्थानी प्रान्तीयता के प्रभाव स्वरूप सस्कृत के तत्सम शब्दो के रूपो मे विकृति स्वाभाविक है किन्तु स्वामी जी ने सस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया है। अनेक काव्य पक्तियाँ उन्होंने सस्कृत मे ही लिखी है। यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है। 'साखी गुरुदेव को अग' मे लिखते है—

"गुरोर्पादो तु स्पर्शात पातक तु विनश्यति।
ज्ञानोदय रामचर्ण: सुचितेर्भाग तु लभ्यते।
गुरोर्मत्रेस्त चित्त मोहवित्तेन लिप्यते।
स्वच्छ शुद्ध परमानन्द प्राप्यते सुखसागरम्।"[१]

स्वामी जी ने अपने काव्य मे सस्कृत के ऐसे तत्सम शब्दो का प्रयोग धडल्ले मे किया है जिन्हे सरलता से ग्रहण किया जा सकता है। उनका रूप परिवर्तन उन्हे अभीष्ट नही। कुछ शब्द उदाहरण रूप मे प्रस्तुत है—

"रामचरण वदन करे सब ईशन के ईश।
जगपालक तुम जगतगुरु जगजीवन जगदीश।"[२]

'स्तुति का कविता' से उद्धृत उपर्युक्त पक्तियो मे 'वदन', 'ईश', 'जग', 'पालक', 'जगत', 'गुरु', 'जीवन' और 'जगदीश' आदि शब्द तत्सम शब्द है। राजस्थानी मे 'व' का 'ब' रूप मे उच्चारण होता है। स्वामी जी ने भी अन्य स्थानो पर 'व' के लिए 'ब' लिखा है पर 'व' का 'ब' लिखना भी अपवाद नही है। सस्कृत की तत्सम शब्दावली का एक और उदाहरण भी प्रस्तुत है—

"चिदानन्द चिरंजीव है, है सुखसागर राम।
रामचरण सुख राम मैं, ओर सबै बेकाम।"[३]

---

१ अ० वा०, पृ० ३।
२ वही, पृ० ३।
३ वही, पृ० ६।

चिदानद, चिरजीव, सुखसागर, सुख तत्सम शब्द है।

तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों का मेल

स्वामी जी ने शब्द प्रयोग में पर्याप्त स्वतन्त्रता से काम लिया है। एक ही शब्द के तत्साम और तद्भव रूप उनके काव्य मे मिलते है। यह भिन्न बात हे कि तद्भवता का कारण राजस्थानी रूप हो। जैसे—

१. उपकार—लोहा से कंचन भया, ये पारस उपकार।[1]
उपगार—रामचरण सतगुरु मिल्या, किया बहोत उपगार।[2]

२. गगन—अब त्रिवेणी न्हाई कै, कीया गगन प्रवेश।[3]
गिगन—कूप गिगन मधि ऊरघ मुख, निसिदिन अमी झरंत है।[4]

३. सागर—चिदानंद चिरंजीव है, है सुख सागर राम।[5]
सायर—शुँन सायर हंस का वासा।[6]

४ निशि—राम नाम निशिवासर गासी।[7]
निसि—निसिदिन भजिये राम कूं, तजिये नही लगार।[8]

५. प्रकाश—राम रट्या का यह प्रकाशा।[9]
प्रकास—सतगुरु ज्ञान उद्योत सें हिर्दय होत प्रकास।[10]
परकास—यह उजास गुरु ज्ञान सें, उर लोचन परकास।[11]
परकाश—सब अंधियारा मिट गया, राम शब्द परकाश।[12]

१ तत्सम और देशज शब्दों का एक साथ प्रयोग नीचे उल्लिखित साखी मे उपलब्ध है।

---

१ अ० वा०, पृ० ८।
२ वही, पृष्ठ ४।
३ वही, पृ० २०७।
४. वही, पृ० १४।
५ वही, पृ०६।
६ वही, पृ० २१०।
७. वही, पृ० २१०।
८ वही, पृ० ६।
९ वही, पृ० २१०।
१० वही, पृ० २११।
११. वही, पृ० २११।
१२. वही, पृ० ११।

"टटपूंज्या धनवंत भया, सतगुरु सरणै आय।
रामचरण अब रामधन, मुक्ता खरचै खाय।"[1]

यहाँ टटपूंज्या (टुटपुंजिया) देशज और धनवत तत्सम साथ-साथ प्रयुक्त हुए हैं।

२. इसी प्रकार तत्सम और तद्भव शब्दों का साथ भी नीचे की साखी मे देखा जा सकता है—

"रामचरण खेती फल्यो, तृष्णा गई बिलाय।
निरधनिया धनवंत भया, अब धन खरचै खाय।"[2]

निरधनिया तद्भव और धनवत तत्सम साथ प्रयुक्त है।

३. एक उदाहरण विदेशी मूल के शब्द और तत्सम के एक साथ प्रयोग का भी नीचे प्रस्तुत है—

"रामचरण करसण भक्ति, सुद्ध हिरदो सूं खेत।
नाम बीज गुरु महर जल, तब ब्रह्मज्ञान फल देत।"[3]

यहाँ महर (कृपा) फारसी और जल तत्सम का साथ प्रयोग हुआ है। इस प्रकार के प्रयोगो की भरमार है। स्वामी जी के पास विभिन्न भाषाओं के शब्दो का भण्डार था।

'न' के स्थान पर 'ण'

राजस्थानी भाषा मे बहुधा 'न' के स्थान पर 'ण' बोला जाता है। स्वामी जी की रचनाओं मे 'न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग खूब हुआ है। जैसे—हाणि (हानि), बखाण (बखान), साबण (साबुन), आवण-जाण (आना-जाना), बाण (बानि), अपणै (अपने), आसण (आसन)।

'उ' के स्थान पर 'ओ'

उकार के स्थान पर ओकार का समावेश भी स्पष्ट दीखता है। जैसे—बहोत (बहुत), बाहोबली (बाहुबली)।

---

१. अ० वा०; पृ० ४।
२. वही।
३. वही।

अनुनासिकता

राजस्थानी भाषा अनुनासिकता प्रधान भाषा है। स्वामी जी की भाषा में अनुनासिकता का बाहुल्य यह सिद्ध करता है। जैसे—

"राम बिना भावै नही रामचरण कूं आंन।"[1]

यहाँ बिना, कूं और आन को अनुस्वार लगाकर अनुनासिक बना दिया गया है। अधिकरण के चिह्न 'में' के स्थान पर 'मैं' और 'में' दोनों का प्रयोग 'अणभैवाणी' में मिलता है।

१ "छै ऋतु बारा मास मैं पावस जीवन जान।"[2]
२ "नाम बिना त्रय लोक में, सुख कहुं दीसै नांहि।"[3]

विदेशी (अरबी-फारसी) शब्दों का प्रयोग

विदेशी मूल के शब्दों को स्वामी जी ने निस्संकोच भाव से अपनाया है। कतिपय शब्दों के उदाहरण देना असंगत न होगा—

खसम—	नारि कहावै खसम की पाडोसी सूं मेल।[4]
दीदार—	नैन दुखी दीदार बिन, रसना रस आसो हो।[5]
अदल—	सत सिपाई अदल जमाई, तत तरवार सम्हाई है।[6]
आसिक (आशिक)—	आसिक देखै रब्बदा, टुक जाकूं आपा देह।[7]
गुसल, आब—	ज्ञान आब से गुसल कर।[8]
दर्वेश, खलक—	रामचरण दर्वेश का वे, खलक न जाणै भेव।[9]
दिल, साबूत—	जा का दिल साबूत है।[10]

---

१ अ० वा०, पृ० १४०।
२ वही।
३. वही।
४ वही, पृ० ४२।
५ वही, १००६।
६ वही, पृ० १००५।
७ वही।
८ वही।
९ वही।
१० वही।

मुरशिद— तत की तबल बजाई मुरसद।[1]
असल, पीर, असल फकीरी पीर बतावै।
मीर, मुरीद, फकीरी मीर मुरीद सम्हावै वे।[2]

कब्ज— मनवा कब्ज करै धरि कदमा।[3]
बंदगी, बेअदबी— छाड बंदगी करै बेदबी, अपणै ही मन दासा वे।[4]
बरकत, ईमान— बरकति है ईमान मैं ईसान तज्या नहि कोय।[5]
असनाई— तजि अज्ञान ज्ञान गहि लीजे, आनन करि असनाई।[6]
मगरूर— मै मेरी ससार मैं अह मान मगरूर।[7]
मोहब्बत (मुहब्बत)— मुहबत से दुख होय पीड पर की बर्तावै।[8]
कहर— बिकर्म क्रत्य कहर लिया मैं मेरी ममता।[9]

ग्रन्थ 'विश्वास बोध' के छठे प्रकरण के पृष्ठ ६८७-८८ मे विदेशी मूल के शब्दो का भरमार है। सस्कृत के तत्सम शब्दो के साथ इनके प्रयोग मे स्वामी जी को अद्भुत सफलता मिली है। 'फकीरी' शीर्षक के अन्तर्गत इस शब्द समाज को सजोया गया है। उदाहरण रूप में कतिपय अशो को यहाँ उद्धृत किया जाता है।

"फकीरी फकत या जगत से भिन्न है,
मज कोइ रीति की फिकर नाही।
हूवाल मैं मस्त जिर पीर का दस्त है,
बसत एकान्त रब ध्यान माही।"[10]

"सफा सबूरी बंदगी अडिग एक इकलार।
महर मोश दिल पाक सव तज्यां ताक विस्तार।

१ अ० वा, पृ० १००५।
२ वही पृ १००६।
३ वही।
४ वही।
५. वही, पृ० ८१२।
६. वही, पृ० ७४८।
७. वही, पृ० ७४४।
८ वही, पृ० ७१०।
९ वही, पृ० ७०८
१०. वही, पृ० ६८७।

तज्यां ताक विस्तार नहीं उपजै फिकराई।
फैसल फैल फितूर फकीरां ये फुरमाई।
नरमाई नेकी लियां कियां कब्ज तकरार।
रामचरण कीजै सबां हुलस उसे दीवार।"[१]

... ...

"माल मुल्क ऐसैं तज्यां, ज्यूं खोर किया शिर केश।"[२]

... ...

"कर्मी को नहिं पार मार मोहोकम भुगतासी।
दीन दरगह मांहि मियां जी जाब न आसी।"[३]

... ...

"खालक मांही खलक, खलक मैं खालक जाण्या।"[४]

... ...

"आसिक इस्क लगाय कै जीं प्रसन्न किया महबूब।
इस्क जिनूंवा जांणिये सब इस्कां शिर खूब।
सब इस्कां शिर खूब मीर मुल्ला फिरवाई।
काजी राजी होय पीर भी करत बड़ाई।
बिन रहीम राजी इस्क जानि इस्कां सैं डूब।
आसिक इस्क लगाय कै जीं प्रसन्न किया महबूब।"[५]

... ...

"दोजग दरध देखि भिस्त को उपाव किये,
नेकी सो निकट राखि बदी हूं से डर है।"[६]

उपर्युक्त उद्धरणों में विदेशी मूल के अनेक शब्द हैं। इनमें से कतिपय शब्दों का रूप स्वामी जी ने परिवर्तित भी कर दिया है। यथा—ह्वाल (हाल), दरगह (दरगाह), आसिक (आशिक), इस्क (इश्क), फुरमाई (फरमाई), भिस्त (बहिश्त), दोजग (दोजख), दरध (दर्द)। इसके अलावा काफिर, नूर, मोजूद (मौजूद), ओजूद, खिलवत, हुरमा तथा अन्य अनेक विदेशी शब्दों से स्वामी जी ने अपनी वाणी का शृंगार तो किया ही है, उन शब्दों का नया संस्कार भी कर दिया है।

---

१. अ० वा०, पृ० ६८७
२. वही, पृ० ६८८।
३. वही।
४. वही।
५. वही, पृ० ६८८। ६. वही।

पंजाबी

स्वामी रामचरण की 'वाणी' में पंजाबी के शब्द भी पाये जाते हैं। जैसे—

शिख्खा—"सतगुरु ज्ञान ध्यान का दाता।
शिख्खा आग्य न करि है।"[1]
रिछपाल—"तुम कर्ता रिछपाल तुम तुमही गरीब निवाज।"[2]

पृष्ठ ७७९ पर बिसराइन्दा, बणाइन्दा, जणाइन्दा, गाइन्दा, पाइदा, लाइन्दा, भराइन्दा आदि शब्द पंजाबी बोली के हैं। पंजाब और राजस्थान की सीमाएँ एक-दूसरे से मिलती हैं। अतः पंजाबी और राजस्थानी में बहुत अन्तर नहीं दिखाया जा सकता।

खड़ी बोली

संतों ने खड़ी बोली के शब्दों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया था। स्वामी जी की रचना में भी खड़ी बोली उपस्थित है। यथा—

"कलिजुग के पंडित पाखण्डी।
घर में कुबुधि करकसा रण्डी।

ईश्वर इच्छा रहे उदास।
भिक्षा भोजन परम निवास।"[3]

खड़ी बोली के अनेक शब्दों को स्वामी जी ने अपनाया है। कहीं-कहीं पूरी पद संघटना ही खड़ी बोली में मिल जाती है।

ब्रजभाषा का प्रभाव

स्वामी रामचरण की काव्य भाषा पर ब्रज भाषा का भी प्रभाव है—

"जगत अंधेरो बाग है विविध फूल फल रंग।
रामचरण मन भँवर होइ जहाँ किया परसंग।"[4]

अथवा—

"रामचरण रामैं जपै जैसे पंथी भोर।"[5]

---

१ अ० वा०, पृ० २१७।
२. वही, पृ० २४४।
३. वही, पृ० ९८४।
४ वही, पृ० १०।
५ वही।

खड़ी बोली, पंजाबी, ब्रजभाषा और स्वामी रामचरण की काव्यभाषा राजस्थानी के शब्द-भण्डारों में पर्याप्त समता है। वस्तुतः ये सभी हिन्दी भाषा की शाखाएँ हैं। इन सभी के व्याकरण में भी समता है। ऐसी स्थिति में इन सभी का राजस्थानी से अलग करके विवेचन करना भाषाविज्ञान का विषय है। यहाँ सामान्य रूप से स्वामी जी की काव्यभाषा का विवेचन किया जा रहा है। हाँ, विदेशी मूल के शब्दों की ओर हमारा ध्यान जाना स्वाभाविक है क्योंकि उन शब्दों का प्रयोग स्वामी जी ने जितने धड़ल्ले से किया है वह हमारे अध्ययन की अपेक्षा रखता है।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ

स्वामी रामचरण की भाषा काव्यभाषा है। फिर उसमें लोकोक्तियों और मुहावरों का होना स्वाभाविक है। स्वामी जी ने 'कविता कविता के लिए' नहीं की थी। उनकी काव्य-रचना का उद्देश्य लोकमंगल था। लोकमंगल की इस भावना के प्रचारार्थ उन्होंने कतिपय सिद्धान्त निश्चित किए थे और रामस्नेही सम्प्रदाय नामक पंथ का निर्माण भी किया था। अपनी कविता में उन्होंने अपनी विचारधारा को सजाया और जनमानस का स्पर्श करने में सफल हुए। लोकोक्तियों और मुहावरों के माध्यम से लोकमानस को सफलतापूर्वक मापा जा सकता है और इनकी उपस्थिति से किसी भी काव्यभाषा का सौन्दर्य निखरता है। स्वामी जी का काव्य मुहावरों और लोकोक्तियों का कोष ही है। यहाँ उनमें से कुछ की चर्चा आवश्यक है।

१. लै लगना (लौ लगना)

"लै लागी तब जाणिये निरिहि। छूटै नाहि।"[१]

२. काल की जाल कटना।

"रामचरण लै कै लग्या कटी काल की जाल।"[१]

३. मीन नीर सम होना

"पतिबरता पति सूं कहै सुण हो कंत सुजाण।
मीन नीर सम होय रही, बिछड़त तजूं पराण।"[३]

४. घर घर की पणिहारि

"पण पकड़ी हरि भक्ति की सो पणहारी नारि।
रामचरण अब हरि करी घर घर की पणिहारि।"[४]

---

१ अ० वा०, पृ० १२। २. वही।
३ वही, पृ० १५। ४ वही, पृ० १६।

५. धक्का खाना

"रामचरण बिभचारिणी धका खाय दरबार।"[1]

६. राम का हजूरी

"सत हजूरी राम का सबसू रहे उदास।"[2]

७. नूर झलकना

"सूर का वदन पर नूर झलकै सदा।"[3]

८. अधे की गाँठ

"परख बिन अध की गाँठ खोटा गरथ अत की बेर दुग्ग अधिक होवे।"[4]

९. आक सींच कर आम पाना

"अम्ब का वृक्ष कै अम्ब फल लाग है आक कू सीच नहीं अम्ब पावै।"[5]

१०. च्यार दिना की चाँदणी

"च्यार दिना की चाँदणी बहु अधियारी रात।

. . .

दिना च्यार की चादणी, बेते नही अमान।"[6]

११. फिटफिट होना

"जो बेटी का दाम लै जग में फिट फिट होय।"[7]

१२ गरी गरी भटकना

"गरी गरी मे भटकता हार्‌यो हरि गिवार।"[8]

१३. काम सँवारना

"अपणूं काम सवार ले कहा जानै परपीर।"[9]

१४. श्वान की पूंछ

"श्वान पूछ करडी रहै स्वारथ ढीली होय।"[10]

---

१. अ० वा०, पृ० १६। २ वही, पृ० १९। ३ वही, पृ० १९३। ४. वही। ५ वही, पृ० १९४। ६ वही, पृ० २२०। ७. वही, पृ० २२३। ८. वही, पृ० २२४, ९ वही, पृ० २४०। १० वही, पृ० २६०।

१५. जोरू तणा गुलाम

"जोरू तणा गुलाम को नर तन जाय निकाम।"[1]

१६. रोयां मिलै न राबडी

"रोयां मिले न राबडी तो रोयां कुण दे राज।"[2]

१७. ऊँची दुकान फीका पकवान

"ऊंची है दुकान जामैं फीकै पकवान भरे,
खडे है गिंवार लोग जाणै हलवाई है।"[3]

१८. फूटा ढोल

"जहा तहा बकता फिरे जैसै फूटा ढोल।"[4]

१९. बट्टा लगाना

"कैसै कहूँ बणाय साच कू बटो लगावै।"[5]

२०. काँटे से काँटा निकालना

"काँटै काँटो नीसरै बिन काँटै निकसै नांहि।
कोई परेलो प्रीति कर भल केती फूक दिवाहि।"[6]

२१. माथा मारना

"भटके भर्मक गरल जहाँ तहाँ माथो मारे।"[7]

२२ दो अंधो के बीच दीपक रखना

"दोय आधा बिच दीपक मेल्हयौ कूण लहै परमान।
श्रोता वक्ता रत्ता माया तातै तिमिर न जाव।"[8]

२३. काणी कोड़ी चलना

"काणी कोडी ना चलै जम पकडेती बार।"[9]

---

१. अ० वा०, पृ० २९७। २. वही, पृ० २९६। ३. वही, पृ० १००। ४. वही, पृ० २८२। ५ वही। ६ वही। ७. वही, पृ० २३२। ८. वही, पृ० २६९। ९. वही, पृ० ३६६।

२४. कागद की नाव से सागर तिरना

"बिधि भूषण जल पोस कै जाको किसो बणाव।
कहो सायर कैसे तिरै चढि कागद की नाव।"[1]

२५. मन मैला तन उजला

"मन मैला तन ऊजला थैसा ज्ञान अनत।
रामचरण मन ऊजला को इक विर्लो संत।"[2]

ऊपर स्वामी रामचरण के विशाल सग्रह मे से थोड़े से मुहावर छाट कर यहाँ एकत्र किए गए है। सागर सदृश विशाल ग्रन्थ मे मुहावरो का वृहत् कोष सुरक्षित है। केवल बानगी रूप मे कुछ मुहावरे यहाँ उद्धृत किए गए है।

लोकोक्तियाँ

स्वामी जी की काव्य-रचनाओ मे से थोडी सी लोकोक्तियाँ यहाँ दी जाती है—

१—वाह् वै बीज बबूल का उर अम्बा की आश।[3]
२—मैलो कपडो मैल सू कदे न उज्ज्वल थाय।[4]
३—जे वृक्ष ऊखल्या मूल सू सीच्या हरा न होय।[5]
४—कहा रेत को चूतरो, कहा इरण्ड को बाग।[6]
५—नारि कुहावै खसम की, पाडोसी सू मेल।[7]
६—वैद्य मित्र रोगी तकै, नही निरोग सुहाय।[8]
७—काजल तजै न कालम्या गरल न तजै भुजग।[9]
८—नीर तीर कर बास पियासाँ मरत है।[10]
९—आधा सू चूधर बुरा, म्यासे अरु भूलै।[11]
१०—बाजीगर को बाग कहो कूणै फल पायो।[12]
११—खाड गलेफ्या भींगणा कदे न खुरमा होय।[13]
१२—ओछा जन की माछरी कदे न पावै चैन।[14]
१३—अकल गई आकाश कू सिकल गई पाताल।[15]

---

१ अ० वा०, पृ० ३७६। २. वही, पृ० ४९६। ३. वही, पृ० २६५। ४. वही, पृ० ७। ५. वही, पृ० २३४। ६. वही, पृ० ४४। ७ वही, पृ० ४२। ८. वही, पृ० ४२। ९ वही, पृ० ४३। १० वही, पृ० ८०। ११ वही, पृ० ७४। १२. वही, पृ० ११५। १३ वही, पृ० १३९। १४. वही, पृ० १५१। १५. वही, पृ० ३५४।

१४—मिजनू सैं लैलै भया लैलै लग्न लगाय।[1]
१५—देवाला की दिलबरी कारण लगे कगाल।[2]
१६—सागर जाचै सागरी गागरि जाचै नाहि।[3]
१७—मोती नाही समद का स्वाति बूंद का होय।[4]
१८—भूखा मागै राबडी धायो बकसै ज्ञान।[5]
१९—आबा के फल आब बूल के बूल्या लागै।[6]
२०—आबा गाय बबूल जमावै तो आबा उदै न होय।[7]
२१—जो आसूं पूछै नहीं जासू किसी पुकार।[8]
२२—कोयल कउवा उडि गया बुगला पैठा आब।[9]
२३—सूरा की तरवार को कोइ सूराहि करै बखाण।[10]
२४—घोडा पर अवसार होइ, गधा चराबा जाय।[11]
२५—दूध भवगा पाइये तो पलट जहर करि लेह।[12]

स्वामी जी के काव्य मे मुहावरो और लोकोक्तियो का विपुल भण्डार है, उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है। इस भण्डार में से चुनकर कतिपय लोकोक्तियो एव मुहावरों को उद्धृत किया गया है। 'अणभैवाणी' मे उपलब्ध लोकोक्तियो और मुहावरो का अलग से अध्ययन किया जा सकता है।

लोकोक्तियो एव मुहावरो के अतिरिक्त स्वामी जी की भाषा मे कवि समय के सकेतक शब्दो की भी बहुतायत है। अनल पक्ष, चातक, चकोर, मोर, हस आदि विभिन्न पक्षियो से सबद्ध कवि सत्यो के सहारे कवि अपनी बात जन-समाज तक ले जाने मे पूर्ण सक्षम रहा है। स्वामी जी के काव्य का कलापक्ष सर्वाङ्गपूर्ण है।

यद्यपि स्वामी रामचरण ने किसी प्रबन्ध महाकाव्य की रचना नही की, फिर भी उनका यह विशाल काव्य भण्डार महाकाव्य से किसी भी प्रकार कम नही। उन्होने यद्यपि काव्य-रचना के लिए मुक्तक एव गीति-काव्य की शैली अपनायी है, फिर भी उनका सम्पूर्ण साहित्य उन्हे महाकवि कहने को बाध्य करता है। उनके काव्य मे तत्कालीन समाज का जीवन मुखर है। सत कवि विचारक होने के साथ-साथ भावावेशी भी होते है। सामाजिक कुरीतियो, रूढिगत परम्पराओ पर क्षुब्ध होकर जब प्रहार करते है तो अनजाने ही सही, काव्यदोषों से भी मुक्त नही रह पाते। स्वामी रामचरण के काव्य मे भी इस आवेश के कारण कही-कही अश्लीलत्व का दोष झाँकने लगा है, जिसकी समीक्षा मैने अति यथार्थ कह कर की है। काव्यत्व की दृष्टि

---

१ अ० वा० पृ० ४५८। २. वही, पृ० ५५४। ३. वही, पृ० ५८६। ४. वही, पृ० ५९५। ५ वही, पृ० ६००। ६. वही, पृ० ६०९। ७. वही, पृ० ६३५। ८. वही, पृ० ७४६। ९. वही, पृ० ७५८। १०. वही, पृ० ८१९, ११. वही, पृ० ८२८। १२. वही, पृ० ८७८।

से भले ही उसे दोष कह लिया जाय किन्तु समाज के प्राणियों की दृष्टि पर पड़े आवरण को हटाने के लिए जिस स्पष्टवादिता की अपेक्षा समाज के किसी भी अगुवा से की जाती है, स्वामी जी के काव्य का यह दोष उसी अगुवाई का प्रतीक बन कर आया है। इस दृष्टिकोण से उसे हम गुण ही समझेंगे।

काव्यत्व की दृष्टि से अन्य सभी प्रकार की पूर्णता 'अणभैवाणी' में पायी जाती है। भावपक्ष और कलापक्ष दोनों के निरूपण में यह बात भली प्रकार स्पष्ट हो गयी है। स्वामी रामचरण का काव्य हिन्दी संत-साहित्य का शृंगार है।

उपसंहार

स्वामी रामचरण युगपुरुष थे। उनका आविर्भाव अठारहवीं शताब्दी में हुआ था। यह समय उथल-पुथल का था। राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक स्तर पर देश और विशेषकर राजस्थान प्रदेश की दशा पर्याप्त चिन्त्य थी। दिल्ली के तख्त पर कठपुतली एवं दुर्बल मुगल बादशाह विराजते थे। स्वामी जी के आविर्भाव काल में फर्रुखसियर का वध हो चुका था और मुहम्मदशाह ने शासन की बागडोर सम्भाल रखी थी। राजस्थान के कमजोर राजपूत शासक मराठों के आक्रमणों के शिकार बने राजा-महाराजा कहलाने का शौक पूरा कर रहे थे। जयपुर, जोधपुर और उदयपुर जैसे प्रसिद्ध राज्य मराठों द्वारा अनेक बार रौंदे जा रहे थे। स्वामी रामचरण ने जिस समय भीलवाडा छोड शाहपुरा प्रस्थान किया था, मराठों ने आक्रमण कर भीलवाडा को बुरी तरह लूटा और बर्बाद कर दिया था। स्वामी जी के जीवनीकार ने अपने जीवनी ग्रंथ 'गुरुलीलाविलास' में इस आक्रमण की चर्चा की है। उस आक्रमण के परिणामस्वरूप समस्त भीलवाडा वीरान हो गया था और नरनारी बाराबाट हो गए थे। स्मरणीय है कि भीलवाडा उदयपुर के महाराणा के अधीन नगर था।

देश की धार्मिक स्थिति में भी गिरावट आ गयी थी। मुस्लिम आक्रमण एवं बर्बरता का शिकार हुई जनता प्रभु-स्मरण के सहारे जीने का प्रयास कर रही थी। अठारहवीं शताब्दी आते-आते धार्मिक आडम्बरों की चरम सीमा भी आ पहुँची। राजस्थान, स्वामी रामचरण की जन्म तथा कर्मभूमि, स्वयं धार्मिक असंतुलन की चपेट में था। निर्गुण-सगुण विवाद, नागा साधुओं की फौज का अनाचार, जैन यतियों की भ्रष्टता, विभिन्न छोटे-मोटे सम्प्रदायों की आपसी नोंक-झोंक से समाज-जीवन ग्रस्त था। जयपुर की समीपवर्त्तिनी गलता गद्दी प्रसिद्ध वैष्णव गद्दी थी। स्वामी रामचरण की गुरुगद्दी दांतडा के महंत भी इसी सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे। एक बार सम्पूर्ण राजस्थान वैष्णव-भक्ति-भावना से भर उठा था, किन्तु कालान्तर में इस भक्तिभावना का स्थान धार्मिक रूढ़ियों एवं पाखण्डों ने ले लिया। स्वामी रामचरण स्वयं कृपाराम जी से दीक्षित हुए थे, पर बाद में पंथ में 'राड-भड' देख सगुणोपासना से विरत हो गये और भीलवाडा में आकर निर्गुणोपासना का प्रचार आरंभ किया। इसे उन्होंने 'रामनाम' की संज्ञा दी और संगठन को 'रामसनेही सम्प्रदाय' कहा।

अब यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि अनेक सगुण-निर्गुण पंथों के होते हुए स्वामी जी ने नये पंथ की स्थापना क्यों की। वस्तुतः स्वामी रामचरण साधु वेश धारण करने के पहले जयपुर राज्य के उच्चपदस्थ कर्मचारी थे। उन्होंने विरागी होने के बाद विभिन्न पंथों में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं पाखण्डों को देखा। अपने विभिन्न ग्रंथों में उन्होंने साधु-समाज की

कुरूपताओं के चित्र प्रस्तुत किये है। उन्होंने सच्चे साधु के लक्षण निर्धारित किये और रामसनेही साधुओं मे उन लक्षणो को साकार देखना चाहा।

गृहस्थो को भी स्वामी जी ने पथ में महत्त्व दिया। उन्होने घरबारियों को शीलव्रत (ब्रह्मचर्य) पालन करने के लिए प्रेरित किया। अनेक गृहस्थ शीलव्रत ग्रहण कर पवित्राचरण मे रत हुए। स्वामी जी ने पथ की व्यवस्था का भार भी गृहस्थ राम-सनेहियो को सौपा था और साधुओ को भजनरत रहने का निर्देश दिया था। बारह थम्बे के साधुओ मे ग्यारह साधु ओर एक नवलराम जी गृहस्थ थे। साधु-गृहस्थ समन्वय के कारण ही रामसनेही सम्प्रदाय आज भी व्यवस्थित रूप से सगठित है।

स्वामी रामचरण का तत्कालीन जनजीवन पर गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उन्होने समाज मे व्याप्त कुरीतियो एव रूढियो पर प्रहार किया ओर समाज को उनसे विरत होने की प्रेरणा दी। एतदर्थ समाज के रूढिवादियो से उन्हे सघर्ष भी करना पडा था। एक बार तो उन्हे महाराणा के आदेश से भीलवाडा नगर से निकलना भी पडा था। किन्तु उनके जागरूक अनुयायियो ने सगठित होकर महाराणा के समक्ष अपना पक्ष रखा और उन्हे इसमे विजय भी मिली। शाहपुरा आगमन के बाद उन्हे अपने मत एव पथ के प्रचार-प्रसार की पूर्ण सुविधा रही।

स्वामी जी समन्वयशील मध्यमार्गी सत थे। निर्गुनिया होने के बाद भी सगुण वैष्णवो से उनका मेल-मिलाप बना रहा। वे स्वय को दाँतडा से बराबर जोडे रहे। स्वामी कृपाराम के देहावसान के बाद दाँतडा गद्दी के उत्तराधिकारी को स्थापित कराने मे स्वामी जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। आज भी शाहपुरा के पीठाधीश दाँतडा के आचार्य का वैसा ही सम्मान करते है जैसा स्वामी रामचरण करते थे।

स्वामी रामचरण साधक सत थे। उन्होने भीलवाडा को अपनी साधनास्थली बनायी थी और अनेक वर्षों साधनारत रहे थे। उनकी अणभैवाणी, जिसकी रचना भीलवाडा मे ही हुई थी, उनकी साधनानुभूतियों से पूर्ण है। 'नाम प्रताप' और 'शब्द प्रकाश' नामक ग्रथो तथा परचा अगो मे सुरति-शब्दयोग की बडी स्पष्ट कल्पना मिलती है। भजन प्रताप की चारो चौकियो का बड़ा स्पष्ट विवेचन उन्होने किया है।

स्वामी रामचरण का विशाल साहित्य उनकी व्यक्तिगत साधना की अनुभूतियो से ओतप्रोत तो है ही, समाज-जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण का भी परिचायक है। उन्होने एक ओर अध्यात्म के ऊँचे शिखर का स्पर्श किया है तो दूसरी ओर समाज-जीवन के धरातल पर इतना अधिक चले कि आज भी उनके उदार चरणों के अनेक निशान पश्चिमी भारत (राजस्थान, गुजरात और मध्यप्रदेश) की धरती पर दृष्टिगोचर होते है। उनका साहित्य हिन्दी सत-साहित्य की अमूल्य निधि है।

●

सहायक-ग्रंथों की सूची

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डॉ० दीनदयालु गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २००४ वि०।

२. आधुनिक हिन्दी साहित्य, डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, लोकभारती, इलाहाबाद।

३ आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, सन् १९५२।

४ उत्तरी भारत की संत-परंपरा, प० परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, प्रयाग, सं० २००८।

५ उपदेशामृत (तृतीय पुष्प), स्वामी दर्शनराम जी, जरीवाला, सूरत, गुजरात।

६ कबीर, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९७१।

७ कबीर साहित्य की परख, पं० परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, प्रयाग, सन् १९७२।

८. कबीर ग्रंथावली, डॉ० भागवतस्वरूप मिश्र, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, सन् १९७३।

९. कबीर ग्रंथावली, श्री पुष्पपाल सिंह, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९६९।

१० कबीर का रहस्यवाद, डॉ० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद, १९७२।

११ कबीर की विचारधारा, डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन, कानपुर, स० २००९।

१२ काव्यदर्पण, प० रामदहिन मिश्र, ग्रंथमाला कार्यालय, बाँकीपुर, सन् १९५१।

१३. काव्यप्रदीप, प० रामबहोरी शुक्ल, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, सन् १९४८।

१४ काव्यशास्त्र, डॉ० शम्भूनाथ पाण्डेय, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, सन् १९५८।

१५. गुरलीलाविलास, श्री जगन्नाथ, हस्तलिखित प्रति।

१६. चिन्तामणि, आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, प्रयाग, स० २०२७ वि०।

१७ छन्द प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', जगन्नाथ प्रेस, बिलासपुर, सन् १९३९।

१८. तुलसीदास, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद्,प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग।

१९. नाथ-सम्प्रदाय, डॉ० हजारीपसाद द्विवेदी, नैवेद्य निकेतन, वाराणसी, सन् १९६६।

२०. नवधा भक्ति, श्री जयदयाल गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर।

२१ निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ० मोती सिंह, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, स० २०१९।

२२. प्रामाणिक हिन्दी शब्दकोष, श्री रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, स० वि० २००७।

२३ फूलडोल समाद, श्री जगन्नाथ, हस्तलिखित प्रति।

२४. ब्रह्मसमाधि लीन जोग, श्री जगन्नाथ (अणभैवाणी के अन्तर्गत)।

२५ भारतीय अनुशीलन ग्रथ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

२६. भारत का धार्मिक इतिहास, पं० शिवशकर मिश्र।

२७ वीर विनोद, भाग १, २, कविराज श्यामलदास।

२८. रामस्नेही धर्म दर्पण, साधु मनोहरदास जी।

२९. रामचरण चरितावली, स० प्र० पं० मानकराम, दिल्ली।

३०. राजस्थान का इतिहास, कर्नल जेम्स टॉड, हिन्दी सस्करण, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद, सन् १९६५।

३१. राजपुताने का इतिहास, डॉ० जगदीश सिंह गहलौत।

३२ राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, प० मोतीलाल मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९५१।

३३ रामपद्धति, स्वामी रामजन जी (अणभैवाणी के अन्तर्गत)।

३४. रहस्यवाद, श्री राममूर्ति त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९६६।

३५. संत कबीर, डॉ० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद, सन् १९६६।

३६. सत कवि दरिया : एक अनुशीलन, डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, सं० २०११।

३७ सत साहित्य, डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल, ग्रंथम, कानपुर, सन् १९६५।

३८ सत साहित्य और साधना, श्री भुवनेश्वर मिश्र 'माधव', नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, सन् १९६९।

३९. सतकाव्य, पं० परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९५२।

४०. सिद्ध-साहित्य, डॉ० धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९६८।

४१ सत कवि दादू और उनका पंथ, डॉ० वासुदेव शर्मा, शोधप्रबंध-प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् १९६९।

४२. सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली १९७०।

४३. स्वामी रामचरण : एक अनुशीलन, डॉ० अमरचन्द्र वर्मा प्र० जरीवाला, सूरत, गुजरात।

४४. स्वामी रामचरण जी की अणभैवाणी, स्वामी कार्य्यराम जी, राम निवासधाम शाहपुरा, सन् १९२५।

४५. स्वामी रामचरण जी की परची, हस्तलिखित प्रति।

४६. सूरदास, डॉ० ब्रजेश्वर, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, सन् १९५०।

४७ संतकाव्य मे परोक्ष सत्ता का स्वरूप, डॉ० बाबूराम जोशी, कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर, सन् १९६८।

४८. हिन्दुत्व, रामदास गौड, ज्ञानमण्डल, वाराणसी।

४९. हिन्दुई साहित्य का इतिहास, गार्सां द तासी (अनु०—डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय), हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, सन् १९५३।

५०. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, आचार्य चतुरसेन।

५१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा।

५२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, चतुर्थ भाग, सं०—पं० परशुराम चतुर्वेदी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०२५।

५३. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, अनु०—पं० परशुराम चतुर्वेदी, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ सन् १९६८।

५४. हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड), सं०—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग, सन् १९५९ ई०।

५५. श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पं० केवलराम जी तथा अन्य, आयुर्वेद सेवा निकेतन, ट्रस्ट बीकानेर, राजस्थान।

५६. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं० २००५।

५७. हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य, डॉ० ओमप्रकाश, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली, सन् १९५७।

५८. हिन्दी मुहावरा कोष, डॉ० भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९६४।

अंग्रेजी

१ श्री रामकृष्ण सेण्टिनरी मेमोरियल, वाल्यूम—२।

२. कल्चरल हेरिटेज ऑफ इण्डिया, एडिटेड . हरिदास भट्टाचार्य।

३ ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दू सिविलिजेशन डूरिंग ब्रिटिश रूल, वाल्यूम-१, प्रमथनाथ बोस।
४ ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दू लिटरेचर, एफ० ई० के।
५ कबीर एण्ड हिज फालोअर्स, एफ० ई० के।
६ मिस्टिक्स, एसेटिक्स एण्ड सेन्ट्स ऑफ इण्डिया, जान कैम्पवेल ओमन।
७ इण्डिया सोसाइटी इन द एटीन्थ सेन्चुरी, वी० पी० एस० रघुवंशी, एसोशियेटेड पब्लिशिंग हाउस, न्यू डेलही।

पत्र-पत्रिकाएँ

१ जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बेंगाल, फेब्रुअरी, १८३५।
२ 'कल्याण' संत-अंक, गीताप्रेस, गोरखपुर।
३ प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का चौदहवाँ त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९२९-३२)। —डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, ना० प्र० स०, काशी।
४ प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज (१९३८-४०), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।